समाजशास्त्र के सिद्धान्त

(भारतीय समाज की संक्षिप्त विवेचना सहित)

लेखक

रघुराज गुप्त

भूतपूर्व रिसर्च एसोशियेट, कार्नेल विश्वविद्यालय
और लेक्चरर, डी० ए० वी० कालेज, देहरादून

भारती भवन

पुराना नाला, देहरादून

प्रकाशक
राजेन्द्र बसल एम० ए०
नारायण बिल्डिंग
६३, कावली रोड,
देहरादून ।

दूसरा सस्करण १९५६
मूल्य सात रुपये आठ आने

मुद्रक
हकूमतराय
विश्व भारती प्रेस
देशबन्धु गुप्ता रोड,
पहाड़गंज नई दिल्ली।

दूसरे संस्करण की भूमिका

आज से तीन साल पहले मैंने हिन्दी में समाजशास्त्र के सिद्धान्तों पर पहली पुस्तक प्रस्तुत करने का दुस्साहस किया था। प्रसन्नता का विषय है कि समाजशास्त्र के विद्वानों और विद्यार्थियों ने उस प्रयत्न का स्वागत किया। इसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हू। यह पुस्तक एक लम्बे अरसे से समाप्त हो चुकी थी अत इसके नये संस्करण की आवश्यकता थी। पर इसके साथ-साथ मैंने यह अनुभव किया कि पहले संस्करण में जो कि बहुत ही शीघ्रता में तैयार किया गया था, अनेक त्रुटियां रह गई थीं। उनका दूर होना जरूरी था। इस बीच अवकाश ने मुझे समाजशास्त्र के विभिन्न पहलुओ पर पर्याप्त अध्ययन करने और सोचने का मौका दिया। १९५४ में मुझे कार्नेल विश्वविद्यालय की ओर से समाजशास्त्रीय क्षेत्रीय कार्य (Field Work) करने का निमन्त्रण मिला। इस कार्य ने मुझे सामाजिक प्रश्नो को अधिक स्पष्टता और वास्तविकता से समझने में मदद की। यह कहना गलत न होगा कि क्षेत्रीय कार्य का व्यावहारिक अनुभव वैज्ञानिक सैद्धान्तिक विवेचना के लिए एक आवश्यक शिक्षा है।

समाजशास्त्र के सिद्धान्त का यह दूसरा संस्करण सर्वथा नये रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें सारी ही विषयवस्तु को पूर्णत संशोधित और भाषा को सरल कर दिया गया है तथा पर्याप्त नई सामग्री और कुछ नये विषय बढ़ा दिये गए है। परिस्थितिशास्त्र भौगोलिक वातावरण, ग्राम और नागरिक जीवन वाले अध्याय तो बिल्कुल बदल दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त भारतीय नस्लों, भारतीय संस्कृति का विकास उस पर मुस्लिम और पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव तथा भारतीय सामाजिक जीवन के कुछ अन्य पहलुओं पर नई सूचनाएं जोड़ दी गई है। लगभग १०० पृष्ठों की सामग्री को बढ़ाने के बावजूद, पुस्तक को विद्यार्थियों के लिए सुलभ बनाने के लिए उसकी कीमत बहुत घटा दी गई है। अत यह आशा की जा सकती है कि यह संस्करण पर्याप्त संतोषजनक सिद्ध होगा। फिर भी मैं पाठकों से अनुरोध करूंगा कि वह मुझे इस संस्करण के पुन संशोधन के लिए अपने सुझाव भेजने की कृपा करें ताकि अगले संस्करण में उनका उपयोग किया जा सके।

सभी समझदार विचारक आज यह अनुभव करते हैं कि विभिन्न शैक्षणिक, नैतिक धार्मिक, राजनतिक, आर्थिक और अन्य सामाजिक समस्याओ को एकान्तत नही सुलझाया जा सकता। एक ऐसे विज्ञान और विश्लेषणयन्त्र की आवश्यकता है, जो सिर चकरा देनवाली विभिन्नताओं और अन्तरों तथा विरोधी विचारो और सकीर्ण दृष्टिकोणों का सग्रह और एकीकरण, विश्लेषण और सश्लेषण करके विस्तृत और सन्तुलित धारणाओं को प्रस्तुत कर सके।

बी० ए० और एम०ए० की कक्षाओ में समाजशास्त्र एक पृथक विषय क रूप में स्वीकृत हो चुका ह। प्रस्तुत पुस्तक विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम को दृष्टि में रखकर लिखी गई ह। लखनऊ आगरा और राजस्थान विश्वविद्यालयों की बी०ए० कक्षाआ के विद्यार्थी विशेष रूप से इसका पाठ्य-पुस्तक के रूप में प्रयोग कर रहे हैं। अत उनकी सुविधा के लिए उन विश्वविद्यालयों का पाठ्य क्रम भी पुस्तक के अन्त में दे दिया गया ह। विद्यार्थी-समाज के अतिरिक्त समाजशास्त्र में अभिरुचि रखने वाले सभी पाठक इससे लाभ उठा सकते ह।

प्रस्तुत पुस्तक में समाजशास्त्र के समस्त पहलुआ का विशद विवेचन करन का प्रयत्न किया गया ह तथा पिछले तीस सालों में इससे सम्बद्ध जो गम्भीर और महत्त्वपूर्ण गवेषणाए हुई ह विभिन्न निष्कर्षों पर पहुचने में उनकी भरपूर सहायता ली गई है। खेद की बात है कि हमारे देश में इस सम्बन्ध में बहुत कम काय हुआ है। परिणामत, हमें समस्त उदाहरणा के लिए विदेशों का ही मुह ताकना पड़ता ह मानो कि हमारे यहा कोई समाज और सामाजिक-व्यवहार ही नहीं है। विदेशी समाजो पर आधारित परिणाम जिनका सास्कृतिक ढाचा और आदश हमसे पर्याप्त भिन्न ह हमारे देश पर अक्षरश लागू नही हो सकते। ऐसी अवस्था में यह उचित है कि हम समाजशास्त्र का अध्ययन करते समय उन्हें समझने के लिए और उनकी व्याख्या करने के लिए अधिकाधिक भारतीय उदाहरणा का प्रयोग करें। तुलना के लिए अथवा देशीय आकडा और विश्वसनीय तथ्यों के अभाव में, विदेशी उदाहरणा, आकडो और तथ्या का प्रयोग सर्वथा युक्ति-सगत है। इस पुस्तक में सवत्र यथासभव भारतीय उदाहरण देने की चेष्टा की गई है।

समाजशास्त्र एक अत्यन्त रोचक और उपयोगी विषय है, जिसका ज्ञान समाज के प्रत्येक शिक्षित सदस्य के लिए अनिवार्य ह। पर यह एक बहुत ही नया विज्ञान है, जो कि अभी विकसित और निरन्तर सर्वधित हो रहा है। जर्मनी फ्रास, इटली और अमरीका में इसने विभिन्न रूप धारण किये ह, विभिन्न प्रवृत्तिया का सूत्रपात किया है, विभिन्न प्रकार स वहाँ के सामाजिक जीवन और उसके नेताओं को प्रभावित और आकर्षित किया ह। इसलिये समाजशास्त्र के सिद्धान्तों समाज शास्त्र की प्रणालियों और उद्देश्य के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद पाया जाता ह। यही

महीं, एक ही देश के महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथ्यों, उनके विश्लेषण और समाधान के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानो की पृथक-पृथक सम्मतिया हैं। अन्य सामाजिक विज्ञानो की भाति इसकी भी अनेक भ्रान्तिया और च्युतिया, टोटके और अन्धविश्वास, ओझे और मसीहा ह। ऐसी स्थिति में समाजशास्त्र के अध्ययन में अति सावधानी और समझदारी की जरूरत है, ताकि हम अनजाने में ही किन्ही भ्रान्त तथ्यो और सिद्धान्तो को वैज्ञानिक सत्य के नाम पर न अपना लें। इस पुस्तक में इस बात का ध्यान रखा गया है कि पाठकों के सम्मुख विभिन्न दृष्टिकोणों को पक्षपातरहित होकर प्रस्तुत किया जाय, उनका विश्लेषण करके कुछ सतुलित और सश्लेषणात्मक परिणामो पर पहुचा जाय, और साथ ही पाठको को अपने निजी निष्कर्ष निकालने के लिए स्वतन्त्र छोड दिया जाय।

यह पुस्तक प्रधानत उन तरुण विद्यार्थियों के लिए, सामाजिक समस्याओ पर जिनके विचार और धारणाए बहुत ही कच्ची उथली नमनीय और तरल होती ह, लिखी गई है। उनमें से अधिकाश एक पाठ्य-पुस्तक से ही अपने विचार और धारणाए बनाते ह। ऐसी स्थिति में समाजशास्त्र के लेखक का उत्तरदायित्व बहुत बढ जाता है कि कही वह अनजाने में, निश्चितता की धुन में, मिथ्या सिद्धान्तो का प्रचारक न बन जाये।

अन्त में उन सभी व्यक्तियो का, जिनसे कि मुझे इस पुस्तक को तैयार करने में सहयोग मिला है, धन्यवाद करना म अपना कर्तव्य समझता हू। पहले सस्करण के 'आनुवशिकता और वातावरण' तथा समूह और 'सामूहिक व्यवहार' शीर्षक अध्यायो का ड्राफ्ट मेरे मित्र श्री सुरेन्द्रमोहन ने तैयार किया था। उन्होने इसको पुन सशोधित करने की कृपा की है। मित्र प्रो० हरिदत्त से परिवार और विवाह विषयक अध्याय को सुधारने और नई सूचनाए जोडने में सहयोग मिला है। सही, सुबोध और उपयुक्त पारिभाषिक शब्दों के घडने में उनका मुख्य हाथ रहा ह। प्रो० सुखदा गुप्ता ने पुराने सस्करण के सशोधन के लिए बहुत ही उपयोगी सुझाव दिये। इसके अतिरिक्त डा० आर० एन० सक्सेना, डायरेक्टर सोशियोलाजी इस्टीट्यूट, आगरा विश्वविद्यालय, डा० इरावती कर्वे अध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, पूना विश्वविद्यालय, डा० एस० सी० दुबे, अध्यक्ष मानवशास्त्र विभाग, उस्मानिया विश्व विद्यालय, डा० सच्चिदानन्द, अध्यक्ष मानवशास्त्र विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, डा० आई० पी० देसाई रीडर, बडौदा विश्वविद्यालय डा० एल० डब्ल्यू प्राइस, प्रोफेसर कोलम्बिया विश्वविद्यालय डा० ए० एम० लोरेंजो, टाटा इस्टीट्यूट आफ सोशल साइस, डा० एम० पी० माथुर और प्रो० के० एन० शर्मा, डी० ए० वी० कालेज कानपुर प्रो० आर० एस० गौड़, बी० आर० कालेज, आगरा, प्रो० जी० एस० भटट, क्रिश्चियन कालज, इदौर, प्रो० बी० आर० चौहान, एम० बी०

कालेज उदयपुर डा० वाई० वी० डामले डैका कालेज, पूना, प्रो०मी०आर० सिर सालकर, आर्ट एंड साइंस कालेज गुल्बर्गा प्रो० राजाराम शास्त्री, कादी विद्यापीठ, महापंडित राहुल सांकृत्यायन और प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार से विशेष प्रोत्साहन और सहयोग प्राप्त हुआ है। मैं इन सभी महानुभावों का आभारी हूं।

प्रिय बन्धु इन्द्रराज पाल तथा मेरे पिता श्री धनराज विद्यालंकार ने मूल्यवान सामयिक सहायता प्रदान की है। इसके मुद्रण का श्रेय मेरे आदरणीय मित्र श्री क्षेमचन्द्र सुमन को है जिन्होंने स्नेहवश मेरे लिए अत्यधिक कष्ट उठाकर वर्तमान रूप में नया संस्करण प्रस्तुत करना सम्भव बनाया है। मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

नई दिल्ली
१५ दिसम्बर १९५५

रघुराज गुप्त

विपय-सूची

पहला अध्याय

समाजशास्त्र की विषयवस्तु

SUBJECT MATTER OF SOCIOLOGY

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। हम सब अपने पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए किसी न किसी समाज का अंग बनते हैं। इसीलिए मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी कहा गया है। पर कोई भी मनुष्य एक-सी परिस्थितियों में जन्म नहीं लेता। उसे विभिन्न वातावरणों में रहना पड़ता है। वह विभिन्न समूहों का सदस्य बनता है, विभिन्न सम्बन्धों की स्थापना करता है विभिन्न समस्याओं को जन्म देता है। इन समूहों, सम्बन्धों और समस्याओं और उनसे सम्बन्धित विषयों का अध्ययन अपने आप जहाँ अत्यन्त रोचक है वहाँ अत्यन्त उपयोगी भी है।

समाज और उसकी संस्थाओं का वैज्ञानिक अध्ययन केवल व्यक्तिगत मान्यताओं, पसंदगी और नापसंदगी के आधार पर करना कभी भी वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। उसके लिए यह जरूरी है कि हम एक वैज्ञानिक निष्पक्ष और तटस्थ दृष्टिकोण को अपनाएं। वर्गीय जातीय या राष्ट्रीय दृष्टिकोण हमें इस दिशा में आगे नहीं ले जा सकते।

पिछले दो सौ सालों में मनुष्य ने भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में असाधारण उन्नति की है पर समाज के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर उसका ध्यान काफी देर में गया है। किन्तु आज बड़े से बड़े भौतिक क्षेत्र में गवेषणा करने वाले वैज्ञानिक भी मानव सम्बन्धों के वैज्ञानिक अध्ययन पर जोर दे रहे हैं। मनुष्य विज्ञान से बड़ा है। उसके आदर्श आवश्यकताएं सबसे महत्त्वपूर्ण हैं। विज्ञान स्वयं एक सामाजिक वस्तु है। वैज्ञानिक ज्ञान और मानवीय ज्ञान के बीच संतुलन स्थापित करना आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है।

समाजशास्त्र मुश्किल से सौ साल पुराना शास्त्र है। न तो उसकी विषय वस्तु ही और न ही उसकी परिभाषाएं अभी तक एक सर्वमान्य रूप धारण कर सकी हैं। फिर भी उस दिशा में प्रयत्न जारी है और उसमें पर्याप्त सफलता भी मिली है।

समाजशास्त्र के अध्ययन में सबसे पहले उसके विषयक्षेत्र को समझना आवश्यक हो जाता है। अन्य सामाजिक विज्ञानों से उसके सम्बन्ध और भेद और उसकी अध्ययन पद्धतियों से जानकारी भी जरूरी है।

समाजशास्त्र की विषयवस्तु

पीतिम सोरोकिन के मत में ' समाजशास्त्र सामाजिक तथ्यों के उन पहलुओं और उनके सम्बन्धों में दिलचस्पी रखता है जो कि समय, काल अथवा दोनों में दोहराये जाते हैं जो कि परिणामत कुछ एकरूपता, स्थिरता और विचित्रता प्रदर्शित करते हैं । ऐतिहासिक विज्ञान द्वारा अध्ययन किये अनुपम तथ्य एक विशिष्ट व्यक्ति संस्था सामाजिक वस्तु विशिष्ट अवस्थाओं के सामाजिक पुंज (Constellation) का व्यक्तिगत चित्र आंकते हैं समाजशास्त्र या तो एक काल्पनिक गुर देता है (जो कि परिमाणत अथवा अन्य प्रकार से एक दुहराई एकरूपता या विभिन्नता की तीव्रता है) या किन्ही दो अथवा अधिक समाजी परिवर्तनों या एक विशिष्ट प्रकार के दुहराये हुए सामाजिक तथ्य की मिश्रित फोटोग्राफी के नमूने का वर्णन करता है। यह अन्तर समाजशास्त्र को अन्य ऐतिहासिक सामाजिक विज्ञानों से स्पष्टत विभक्त व पृथक कर देता है ।

वह बुनियादी तथ्य अच्छी तरह समझ लेने पर सामान्य और साथ ही विशिष्ट समाजशास्त्रों की प्रकृति सरलता से समझी जा सकती है । ऐसी अवस्थाओं में सामान्य समाजशास्त्र का कार्य स्पष्ट ही और कुछ न होकर केवल उन गुणों *और सम्बन्धों का अध्ययन करना है जो कि समस्त सामाजिक तथ्यों के लिए समान* है । समस्त सामाजिक तथ्यों में समान होने का अर्थ जहाँ-कहीं और जब कभी भी सामाजिक तथ्य मौजूद हो, वहाँ मौजूद होना है, या किसी भी समय और कहीं पर भी जहाँ कहीं भी कोई सामाजिक तथ्य दिया हुआ हो, दोहराया जाना है । इस विषय-वस्तु से सामान्य समाजशास्त्र मूलत अन्य सामाजिक विज्ञानों से पृथक होता है । जब तक कि ये विशिष्ट सामाजिक विज्ञान रहते हैं उनमें से कोई भी इस समस्या का अध्ययन नही करता और न ही कोई इस समस्या का अध्ययन करने के योग्य ही होता है । इनमें प्रत्येक सामाजिक विज्ञान सामाजिक तथ्य की एक विशिष्ट किस्म का ही अध्ययन करता है । अर्थशास्त्र आर्थिक किस्म का, राजनीतिशास्त्र राजनैतिक किस्म का, अस्तु । किन्तु जहां तक यह सब किस्में सामाजिक तथ्य की उस सामान्य श्रेणी की उप किस्में है, उनके विशिष्ट गुणों और सम्बन्धों के साथ साथ उन सबो में कुछ समान गुण और सम्बन्ध होने चाहिए, अन्यथा वह तथ्यों की श्रेणी में नही आ सकते और समाज-विज्ञानों के समान नाम से घोषित नहीं किए जा सकते । क्रम प्रणाली द्वारा सामाजिक तथ्यों की विभिन्न किस्मों के निम्न तत्वों और सम्बन्धों को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है —

आर्थिक – अ, ब, स, म, फ, इ
राजनैतिक – अ, ब, स, ह, उ, ज, प
धार्मिक – अ, ब, स, ग, ई, क, र　　और इसी तरह

"यह मानकर कि सामाजिक तथ्यों की अन्य सब किस्मों में यही समान तत्व और सम्बन्ध अ, ब, स, मौजूद है यह अ, ब, स, सामान्य समाजशास्त्र का क्षेत्र बनायेंगे। इन समान तत्वों और सम्बन्धों का पृथक्करण, वर्णन विश्लेषण और वर्गीकरण समाजशास्त्र का विवेच्य विषय है। इस क्षेत्र का अन्य समाज विज्ञानों द्वारा अध्ययन नहीं किया जाता। यदि केवल एक किस्म में प्राप्त गुणों (उदाहरण के लिए पौधों के विशिष्ट गुणों) को तथ्यों की समस्त श्रेणी पर लागू किया जाय, तो सिद्धान्त अपर्याप्त और भ्रान्त होगा। इसके विपरीत, यदि प्रत्येक विशिष्ट विज्ञान, जो कि एक विशिष्ट प्रदत्त श्रेणी के तथ्यों से सम्बद्ध है समग्र श्रेणी में समान गुणों को दोहराता है उसका यह अध्ययन प्रयत्न की बचत की दृष्टि से अपर्याप्त और अत्यन्त बेकार होगा। - -

' इससे पहले कि मैं विशिष्ट समाजशास्त्र की ओर जाऊं एक टिप्पणी जरूरी है। बहुत से लोग सामान्य समाजशास्त्र की उपर्युक्त कल्पना को अस्पष्ट समन्वयात्मक दार्शनीकरण (Philosophising) से मिला देते हैं। वे सोचते हैं कि समाजशास्त्र की ऐसी कल्पना इसे एक विशिष्ट विज्ञान नहीं बनाती, बल्कि एक समन्वयात्मक खिचड़ी' या समस्त समाज विज्ञानों का विश्वकोष बना देती है। मैं बलपूर्वक कहूंगा कि ऐसा परिणाम सर्वथा गलत है।" -

उपर्युक्त विवेचना से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि वह लक्षण, गुण और सम्बन्ध जो कि समस्त समाजिक तथ्यों के लिए समान है सामान्य समाजशास्त्र के अध्ययन का उचित विषय हैं। यह अध्ययन एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक रूप धारण कर लेता है, जब कि यह क्रियायें उन शब्दों में व्यक्त की जा सकें, जिनके आधार पर हम ठोस परिस्थितियों (Cases) में मानवीय व्यवहार की भविष्योक्ति कर सकें। भविष्योक्ति (Prediction) सामान्य समाजशास्त्र के अध्ययन का अभिन्न अंग है। - -

विभिन्न लेखकों ने समाजशास्त्र की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं— -

"समाजशास्त्र समाज का विज्ञान है।' —वार्ड

समाजशास्त्र नाम उस प्रारम्भिक सामग्री को दिया जाता है जिसमें हमारा सामाजिक ज्ञान निहित है।' —आर्थर फयर बैंक्स

'समाजशास्त्र मनुष्य का यह अध्ययन है जो कि संसर्ग से प्रभावित होता है और संसर्ग को प्रभावित करता है। —स्माल

"समाज का वैज्ञानिक अध्ययन समाजशास्त्र है। समाजशास्त्र सामूहिक रूप से विकासवाद की प्रक्रिया में संलग्न भौतिक, प्राणिक और मानसिक कारणों द्वारा समाज के जन्म, विकास ढांचे और क्रियाओं के वर्णन का प्रयत्न है। —गिडिंग्स

'समाजशास्त्र समाज के उन तथ्यों का अध्ययन करता है जो कि मानवजाति के ससग स उत्पन्न होते ह ।' —लम्मार और गिलिन

'सामाजिक तथ्यों का विज्ञान समाजशास्त्र है।" —रास

मानव ससग और जो कुछ उसे लाभ पहुंचाये या सुधारे, उसका अध्ययन समाजशास्त्र है।' —डीले आर वार्ड

ममाजशास्त्र समूह में मनुष्यों के व्यवहार से सम्बद्ध ह।' —किम्बाल यग

'अपने-आप में सामाजिक सम्बन्ध समाजशास्त्र की विषयवस्तु ह।' —मकाइवर

'व्यक्तियों के आपसी सम्बन्धो का अध्ययन, एक-दूसरे के प्रति उनका व्यवहार उनके मानदड जिनसे कि व अपने व्यवहार को नियन्त्रित करते हैं, समाजशास्त्र का विषय ह।' —हिलर

'मनुष्य और उसके मानवीय वातावरण से सम्बद्ध अध्ययन समाजशास्त्र है।' —फेयर चाइल्ड

"उन मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन, जो कि सामाजिक वर्गों द्वारा समूहों में व्यक्तित्व को विकसित एव परिपक्व करने का कार्य करती हैं, समाजशास्त्र का सार है। —वागाडस

विभिन्न सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन मौरिस जिन्सबग के शब्दों में 'विस्तृत अर्थों में समाजशास्त्र मानव अन्तर्क्रियाओं, अन्तःसम्बन्धो, उनकी समस्याओं और परिणामों का अध्ययन है। आदर्शतः समाज में मनुष्य की समस्त क्रियाएं जिनमें मनुष्य जीवन-सघर्ष में अपने को कायम रखते हैं, नियम और कायदे जो एक दूसरे से उसके सम्बन्धो की व्याख्या करते हैं ज्ञान और विश्वास की प्रणालियां कला और नैतिकता तथा एक समाज के सदस्य की हैसियत से प्राप्त किंवा विकसित योग्यताएं और स्वभाव इसके अध्ययन के विषय ह।

उपर्युक्त आदर्श वास्तव में बहुत विस्तृत है। यह भी सही ह कि कोई भी विज्ञान यदि मानव सम्बन्धो की प्रत्येक शाखा और उनकी अनन्त प्रशाखाओं के अध्ययन का प्रयत्न करे वह जरा आगे नहीं बढ सकता। तब प्रश्न उठता है किस भांति इस क्षेत्र को परिसीमित किया जाए ?

विशयात्मक और समन्वयात्मक दो दृष्टिकोण इस प्रश्न के दो प्रकार से उत्तर दिये गये है, जिन्होंने समाजशास्त्र के क्षेत्र के विषय में दो विभिन्न कल्पनाओं को जन्म दिया है। एक लेखक-वर्ग प्रसिद्ध जर्मन समाजशास्त्री साईमल जिसका अच्छा प्रतिनिधि ह समाज के अन्य विज्ञानों से पृथक समाजशास्त्र को हल साधने के लिए उसे महत्वाकांक्षाओं के दोष से मुक्त करने के लिए तथा मानव सम्बन्धों के कुछ विशिष्ट पहलुओं म उसे सीमित करने के लिए बहुत व्यग्र ह।

दूसरा वर्ग स्पष्टत मानता ह कि सामाजिक अन्वेषण का क्षेत्र किसी भी विज्ञान के लिए अति विस्तृत है। किन्तु वह इस बात पर जोर देता ह कि विशिष्ट सामाजिक विज्ञानों, जैसे कि अर्थशास्त्र मानवशास्त्र, तुलनात्मक धर्म तुलनात्मक विधि (कानून) इत्यादि विज्ञानों के अतिरिक्त भी, एक सामान्य विज्ञान की जरूरत है, जिसका कार्य कि विशिष्ट विज्ञानों को एक दूसरे के निकट सम्पर्क में लाना ह, सामाजिक जीवन की सामान्य अवस्थाओं का मुकाबला करना है, जो कि अपनी सामान्यता के कारण अक्सर विशेषज्ञों द्वारा उपेक्षित रहती ह। संक्षेप में, उसका काम सामाजिक जीवन को पूर्ण रूप में देखना ह।

समाजशास्त्र के स्पष्टत निश्चित विशिष्ट ज्ञान की कल्पना तथा समाज-विज्ञानों के समन्वय की दृष्टि, दोनों पक्षों के ही पक्के समर्थक विद्यमान हैं। संक्षेप में, इन दोनों दृष्टिकोणों की समालोचना और विश्लेषण आवश्यक ह।

विशेषात्मक अध्ययन के अग्रणी साईमल पहले दृष्टिकोण को विभिन्न प्रकार से विकसित और प्रस्तुत किया गया ह। इसमें से हम मुख्य का ही जिक्र करेंगे। साईमल का समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के स्वरूप और उनके विषय वस्तु के भेद पर आधारित ह। उदाहरण के लिए, प्रतियोगिता, आज्ञापालन, श्रेणीबद्ध सगठन, श्रम विभाजन जसे सम्बन्ध, हमें सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों, आर्थिक राजनैतिक यहा तक कि धार्मिक, नतिक और कलात्मक क्षेत्रों में भी, दृष्टिगोचर होते ह। सामान्य समाजशास्त्र का कार्य इन सामाजिक सम्बन्धों को अलग करना तथा परिवर्तित विषय या वस्तु जिसमें वह प्रकट होते हैं, उनका अमूर्त रूप (Abstraction) में अध्ययन करना है। इस दृष्टिकोण के अनुसार समाजशास्त्र तथा अन्य समाज-विज्ञानों म यही अन्तर है कि यह उन्हीं विषयों का जिक्र करता ह जिनका कि वे, किन्तु सामाजिक सम्बन्धों के पथक रूपों के दृष्टिकोण से।

वीरकांदत बहुत कुछ इस प्रकार एक अन्य जर्मन समाजशास्त्री वीरकादत समाजशास्त्र को एक ऐसा विशिष्ट ज्ञान माना है, जो कि उन मानसिक बन्धनों के उन अंतिम स्वरूपों से सम्बद्ध ह जो समाज में एक मनुष्य को दूसरे स मिलाते ह। वास्तविक ऐतिहासिक समाज उदाहरण के लिए अठारहवीं शती का फ्रांसीसी अथवा चीनी परिवार, केवल एक विशेष प्रकार के सम्बन्धों, उदाहरण के लिए शक्ति अथवा निकटता की तीव्रता के उदाहरण के रूप में ही उपादेय ह। किन्तु समाजशास्त्र को, यदि इसे अस्पष्टता और अनिश्चितता के आरोप से मुक्त होना है, तो किसी मूर्त समाज के यथार्थ और ऐतिहासिक अध्ययन का प्रयत्न नही करना चाहिए। वीरकांद्त क अनुसार, इसका उद्देश्य सीधे अन्त पर्यवेक्षित विश्लेषण के द्वारा सामाजिक सम्बन्धों की कम-से-कम श्रेणियो, जसे कि सम्मान, शम, प्रेम या समर्पण, दूसरों की स्वीकृति के अनुभव के उस सूत्र को, जो व्यक्तियों और वर्गों को बाधता

है, प्राप्त करना है। इसी तरह संस्कृति का अध्ययन करते हुए, उसके अनुसार, सांस्कृतिक विकास की वास्तविक विषय वस्तु को ले इतिहासकार के साथ प्रतियोगिता नहीं करनी चाहिए। इसे अपने को परिवर्तन और स्थिरता (Persistence) की आधारभूत शक्तियों की खोज तक ही सीमित रखना चाहिए। केवल इन्हीं तरीकों में समाजशास्त्रीय अन्वेषण के विशिष्ट क्षेत्र को पृथक किया जा सकता है।

मक्स वेबर समाजशास्त्र का इससे अधिक ठोस और ऐतिहासिक विवेचन अन्य जर्मन समाजशास्त्री मक्स वेबर का है, यद्यपि वह भी समाजशास्त्र के लिए एक विशिष्ट क्षेत्र निश्चित करने के लिए उत्सुक है। समाजशास्त्र का उद्देश्य सामाजिक व्यवहार की व्याख्या करना अथवा उसे 'समझना' है। सामाजिक व्यवहार मानव सम्बन्धों के समस्त क्षेत्र को नहीं ढक लेता। यह वह कर्म है जो कि कर्ता की इच्छा में दूसरों के व्यवहार द्वारा सम्बद्ध और निर्धारित है। किसी भौतिक वस्तु के प्रत्याशित व्यवहार से प्रेरित कर्म सामाजिक नहीं है। वस्तुतः समस्त मानवीय अन्त क्रियाएं सामाजिक नहीं हैं। उदाहरण के लिए, दो साइकिल सवारों के बीच टक्कर, जब कि एक-दूसरे के मन में पहले से ही एक-दूसरे के व्यवहार के प्रति कोई पूर्वधारणा नहीं है, एक प्राकृतिक घटना है, किन्तु उनके एक-दूसरे को बचाने के प्रयत्न, या घटना होने के पश्चात् उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा, असल सामाजिक व्यवहार है। समाजशास्त्र इस प्रकार के व्यवहार की सम्भावनाओं और अवसरों में दिलचस्पी रखता है। समाजशास्त्र के नियम दृश्य अनुभव पर आधारित सम्भावनाओं या आवृत्ति द्वारा स्थापित उस सामाजिक व्यवहार, के परिणाम हैं जिसकी कि व्याख्या की जा सकती है, अर्थात् जो कि समझा जा सकता है।

विशेषात्मक दृष्टिकोण की कमियां

केवल अमूर्त (Abstract) में अध्ययन का कोई लाभ नहीं सामाजिक सम्बन्धों के नमूनों का विश्लेषण और श्रेणी विभाजन समाजशास्त्रीय अन्वेषण का अभिन्न अंग है। यद्यपि इसमें अवश्य सन्देह है कि आया वह, जैसा कि उसके समर्थकों का दावा है समाजशास्त्र और अन्य समाज-विज्ञानों के सम्बन्ध की समस्या को हल कर देता है। चूंकि सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन, यदि वह जीवन के उन ठोस पहलुओं के जिनसे कि वह सम्बद्ध है समुचित ज्ञान के बिना केवल अमूर्त रूप में किया जाता है तो वह एक दम निकम्मा रहेगा। उदाहरण के लिए प्रतियोगिता के अध्ययन से बहुत थोड़ा ही लाभ होगा, जब तक कि हम आर्थिक जीवन अथवा कला और विज्ञान के क्षेत्र में उसकी अभिव्यक्ति का अनुगमन नहीं करते। ऐसा भी हो सकता है कि सामाजिक सम्बन्ध जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न तथ्यों पर आधारित हैं। उदाहरण के लिए पराधीनता की परिवार सम्प्रदाय और राज्य में विभिन्न कैफियत है। वास्तव यह सत्य है कि नहीं इस

इन सस्थाओ के विस्तृत ज्ञान क बिना नहीं परखा जा सकता। इस भाति हमें समाजशास्त्र के इस दृष्टिकोण में कि यह सामाजिक सम्बन्धो का अध्ययन ह, विस्तार करने की जरूरत ह। विभिन्न विशिष्ट समाजशास्त्रो को, जो कि सस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे कि धर्म के, कला के, कानून के, ज्ञान के समाजशास्त्र में प्रकट हुए हैं, उन्हें उसमें जोडने की जरूरत है। किन्तु तब फिर हमारे सामने इन विशिष्ट समाजशास्त्रों की अधिक सामान्य और सिलसिलेवार समाजशास्त्र के साथ सम्बन्ध की समस्या ज्यो की त्यों रह जाती है। क्या इस तरह हम फिर दुबारा समाजशास्त्र के विश्वकोषीय या (Synoptic) दृष्टिकोण पर नही लौट आते ?--

समग्र रूप में अध्ययन आवश्यक इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले हमें समाजशास्त्र के इस दूसरे दृष्टिकोण पर विचार कर लेना चाहिए। यह बात सर्वस्वीकृत ह कि सामाजिक जीवन के समस्त भाग परस्पर घनिष्ठतया सम्बद्ध और गुथे हुए हैं। यदि समाज एक शरीर नहीं ह तो भी इसके स्वभाव में कुछ न कुछ शारीरिक तत्व इस अर्थ में विद्यमान हैं कि इसके भाग साथ-साथ काम करते हैं तथा किसी एक कोने में हुए परिवर्तन सम्पूर्ण समाज पर प्रभाव डालते हैं। अत यह अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं कि समाज का अध्ययन समग्र रूप में हो, और उसके विभिन्न तत्वो की अन्त-क्रियाओ के स्वभाव को समझा जाय। विशेषज्ञ स्वभावत सामाजिक जीवन के उस पहलू की प्रधानता का दावा करता नजर आता है, जिससे कि वह विशेषत सबधित हैं। उदाहरणार्थ, राजनीति का विद्यार्थी राज्य को समाज से मिला देता ह, अर्थशास्त्री समस्त सामाजिक परिवर्तनो में आर्थिक कारणो को देखता है धर्म और नैतिकता का इतिहासकार धार्मिक और नैतिक विश्वासो को निर्णायक श्रेय प्रदान करता है, प्राकृतिक विज्ञानो का विद्यार्थी बौद्धिक और यान्त्रिक विकास में सामाजिक परिवर्तनो को खोजता ह। किन्तु सामाजिक जीवन के इन तत्वो के अन्त सबध सूक्ष्म व्यावहारिक और तुलनात्मक अध्ययन द्वारा ही निर्धारित किए जा सकते ह। ऐसा अध्ययन अक्सर उन विशेषज्ञो द्वारा नही किया जाता जो कि सस्कृति के किसी एक भाग से सम्बद्ध होते हैं। अतएव स्पष्ट ही एक सामान्य और सिलसिलेवार समाजशास्त्र की आवश्यकता है, जो कि विभिन्न विशेषज्ञो के परिणामो से लाभ उठा, विशेषत उनके अन्त सम्बन्धो से सम्बद्ध होता है तथा सामाजिक जीवन की समग्र रूप में व्याख्या करने की कोशिश करता है।

समग्र रूप में अध्ययन के समर्थक दुरखाइम और हाबहाउस की पुष्टि समाजशास्त्र की यह कल्पना प्रसिद्ध फ्रांसीसी विचारक दुरखाइम और अंग्रेजी विचारक हाबहाउस के विचारो की पुष्टि करती हैं। दुरखाइम के अनुसार समाजशास्त्र के तीन प्रमुख विभाग हैं जिन्हें कि उसने सामाजिक स्वरूपशास्त्र (Morphology), सामाजिक शरीरक्रिया (Physiology) और सामान्य समाजशास्त्र का नाम

दिया ह । सामाजिक स्वरूपशास्त्र जनता के भौगोलिक और प्रादेशिक जीवन के आधार तथा सामाजिक सगठन के नमूनों स उसके सम्बन्ध और जन-सख्या की समस्याओ जसे कि सख्या और घनत्व, स्थानीय वितरण, इत्यादि से सम्बद्ध होता है। सामाजिक शरीरक्रिया अत्यन्त जटिल है और उसे विभिन्न शास्त्रा, जैसे कि धर्म के, नैतिकता के कानून क आर्थिक जीवन के और भाषा के समाजशास्त्र में, जिनका कि वतमान में समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण स अध्ययन किया जा रहा है विभक्त करना होता ह । यह सब इन अर्थों में समाजशास्त्र की शाखाएं ह कि इनमें स प्रत्येक एक सामाजिक तथ्यों के सेट का, अर्थात् उन क्रियाओ का, जो कि सामाजिक समूहा से सम्बद्ध तथा पोषित हैं विचार करती हैं। समाजशास्त्र का कार्य इन तथ्यों क सामान्य लक्षणो को खोजना हैं अर्थात् इस बात का निर्धारण करना ह कि सामाजिक तथ्य किसमें बनता है, और क्या कोई एसे सामान्य सामाजिक नियम ह, जिनके कि अन्य सामाजिक विज्ञाना द्वारा स्थापित नियम विशेष अभिव्यक्तियां हैं। इस दुरखाइम समाजशास्त्र का दार्शनिक भाग मानता ह और वह यह भी मानता ह कि समन्वय का मूल्य विश्लेषण की विश्वसनीयता पर, जिसका कि वह परिणाम है, निर्भर करता ह । विश्लेषण का काय अर्थात् विशेषो का विकास इस समय समाजशास्त्र का बहुत मुख्य काय ह ।

हाबहाउस के परिणाम दुरखाइम स बहुत भिन्न नहीं हैं। उसके लिए आदर्शत समाजशास्त्र विभिन्न समाज विज्ञानो का समन्वय है। किन्तु एक समाजशास्त्री का मुख्य काय दोहरा ह । प्रथमत एक विशेषज्ञ की हैसियत से उसे समाज के एक विशष भाग में अपने अध्ययन को जारी रखना चाहिये किन्तु द्वितीयत और अधिक सामान्य रूप स सामाजिक अन्तःसम्बन्धा को ध्यान में रखते हुए, केन्द्रीय कल्पनाओ की विवेचना द्वारा, जिसस कि एसा समन्वय आगे बढे, अन्तिम समन्वय के लिए जमीन तैयार करना है। सामाजिक सम्बन्धों के सामान्य लक्षणो के विश्लेषण स्थायित्व और और परिवर्तन, सामाजिक विकास, की प्रकृति और अवस्थाओ के अध्ययन द्वारा ही यह समव है।

विशिष्ट अध्ययन और समन्वय दोनों ही आवश्यक ऊपर वर्णित समाजशास्त्र क विरोधी विचारों की सूक्ष्म परीक्षा से यह प्रकट होता है कि मूलत इनके बीच कोई विरोध नहीं है। वस्तु जगत् से दूर कल्पनालोक में सामाजिक सम्बन्धो का अध्ययन निर्विवाद रूप स ऐतिहासिक तथ्या द्वारा उनके परिणामा की जांच की ओर अग्रसर होता है, और यह सामाजिक अन्वेषण के विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा ही सफल हो सकता ह । जिसे कि हम सामान्य अथवा सिलसिलेवार समाजशास्त्र कहते हैं एक शुष्क और निर्जीव श्रेणियो की सूची नहीं ह किन्तु उसे इतिहास, मानव शास्त्र और सामाजिक संस्थाओ क साथ सम्बन्ध स्थापित कर अपनी जीवन शक्ति

का प्रमाण देना चाहिये। समन्वय और व्योरेवार या विशिष्ट अध्ययन दोनों ही जरूरी ह और साथ-साथ चल सकते ह। इस माने में समाजशास्त्र उन विज्ञानों से जो कि जीवित प्राणियों से सम्बद्ध ह बहुत मिलता ह। उदाहरण के लिए प्राणिशास्त्र (Biology) विभिन्न विज्ञानों का जिनमें से हर एक ही बहुत विशिष्ट ह एक सग्रह है। पर कोई इन्कार नही करता कि जीवन की अवस्थाओं का एक विकासमान ज्ञान सामान्य प्राणिशास्त्र नही ह। इसी तरह समाजशास्त्र में सामाजिक जीवन के टुकडो से सम्बद्ध बहुत-से विशिष्ट ज्ञान हैं। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्र को समाज विज्ञानों के समग्र समूह से मिलाया जा सकता है। अन्य अर्थों में यह अपने आप में विशिष्ट शास्त्र ह जिसका लक्ष्य दूसरे विज्ञानों के बीच कडियों का खोजना तथा सामाजिक सम्बन्धों के सामान्य लक्षणों का वर्णन करना ह।

समाजशास्त्र के मुख्य कार्य

अब हम सक्षेप मे समाजशास्त्र के प्रमुख कार्यों को गिना सकते हैं।

१ सामाजिक सम्बन्धो का स्वरूप निर्धारण यह सामाजिक सम्बन्धो, विशेषकर उनके जो कि सस्थायें अथवा समितियाँ कही जा सकती हैं स्वरूपो या नमूनो का वर्गीकरण और स्वरूप निर्धारित करता हैं।

२ उनके आपसी पहलुओं व सम्बन्धों का निर्धारण यह सामाजिक जीवन के भागों और पहलुओ, उदाहरण के लिए आर्थिक और राजनैतिक, नैतिक और धार्मिक, नैतिक और कानूनी, बौद्धिक और सामाजिक तत्वो के आपसी सम्बन्धो को निश्चित करने का प्रयत्न करता ह।

३ सामाजिक परिवर्तन की समस्याओं का समाधान यह सामाजिक परिवर्तन और स्थिरता की मूलभूत अवस्थाओ को सलझाने की चेष्टा करता हैं। चू कि सामाजिक सम्बन्ध व्यक्तियों के स्वभाव और (क) एक दूसरे से उनके सम्बन्धो, (ख) समुदाय (Community) से उनके सम्बन्धो (ग) बाह्य वातावरण से उनके सम्बन्धों पर निर्भर करते हैं इसलिए समाजशास्त्र इनका अध्ययन करता है और उनमें उत्पन्न सघर्षों का समाधान प्रस्तुत करता ह।

समाजशास्त्र की प्रमुख समस्याएँ

प्रो० जिसबर्ग ने मानव समाज के अध्ययन की समस्याओ को निम्न चार भागों में बाँट दिया ह—

(क) सामाजिक रचनाशास्त्र (Morphology) (१) इसमें उस हद तक जनसख्या की सख्या और गुणो का अध्ययन किया जाता है, जिस हद तक वह सामाजिक सम्बन्धो और सामाजिक समूहो (groups) के स्वभाव को प्रभावित करते ह। (२) सामाजिक सगठन या ढाँचे (structure) या सामाजिक समूहो और सस्थाओं के प्रमुख प्रकारों का वर्णन या वर्गीकरण।

(ख) सामाजिक नियंत्रण (Controls) कानून नैतिकता, धर्म, परम्परा, फैशन और अन्य पोषण और नियन्त्रण रखने वाले साधनों का अध्ययन।

(ग) सामाजिक प्रक्रियाएं (Processes) व्यक्तियों और समूहों के बीच अन्तःक्रियाओं (Inter action) के विभिन्न प्रकारों, जिनमें कि सहयोग, विरोध सामाजिक विभेदीकरण (Differentiation) और एकीकरण (Integration) विकास, रुकावट और पतन का समावेश है का अध्ययन।

(घ) सामाजिक रोगशास्त्र (Pathology) सामाजिक असमीकरण (mal adjustment) अस्थिरता या व्याघात (disturbance) और उनके निपटाने की पद्धतियों का अध्ययन।

इस महत्वाकांक्षी प्रोग्राम को कार्यान्वित करने के लिए समाजशास्त्र का ऐसे विशेष शाखाओं जैसे कि इतिहास, तुलनात्मक कानून, मानवशास्त्र, जो कि अपने आप सामाजिक क्षेत्र में है तथा अन्य अधिक सामान्य विज्ञान जैसे कि प्राणिशास्त्र और मनोविज्ञान से मैत्री स्थापित करनी होगी। इसका लक्ष्य सब समय ही सभ्यता के सम्मुख समग्र रूप में सामाजिक तथ्यों का निर्धारण करना है। इसमें विभिन्न विज्ञानों के परिणामों को साथ लाना निहित है, जो कि विशिष्ट शाखाओं द्वारा सम्पन्न नहीं किया जा सकता।

समाजशास्त्र एक विज्ञान

यद्यपि प्राकृतिक विज्ञानों और समाजविज्ञानों की विषयवस्तु तो भिन्न होती है फिर भी इन दोनों का ही वैज्ञानिक प्रणाली से अध्ययन किया जा सकता है। इसका अर्थ हुआ कि तथ्यों की खोज प्रस्थापना का प्रस्तुत करना, मापना और पद्धति का विश्लेषण वह प्रणालियाँ हैं जो प्राकृतिक और सामाजिक दोनों विज्ञानों पर लागू होगी है।

हमारे पास बहुत से प्राकृतिक व सामाजिक विज्ञान हैं जिनमें से प्रत्येक वास्तविकता के किसी पहलू का अध्ययन करता है। इन सब से ऊपर एक अन्य विज्ञान है जिसे १९वीं शती में विज्ञान कहा गया और २०वीं में विज्ञान का दर्शन कहते हैं जो संसार को अपनी समग्रता में बताना चाहता है अथवा बताने की आशा करता है और जो कि विभिन्न पृथक विज्ञानों की खोजों व शोधों का समन्वय है। इस दृष्टि से यह विज्ञान कला दर्शन, धर्म, इतिहास— जिनमें हर एक संसार की पूर्णता में उसकी व्याख्या करने का दावा करते हैं, इन सभी से प्रतियोगिता करता है। किन्तु सामाजिक विज्ञानों का कोई सामान्य विज्ञान नहीं है जिसके ऊपर कि विभिन्न विज्ञानों के क्षेत्रों के निष्कर्षों के समन्वय का भार हो।

दूसरे अभी तक समाजशास्त्र का स्वरूप राष्ट्रीय है। समाजशास्त्र में राष्ट्रवाद उसकी अपरिपक्वता का द्योतक है।

स्पेन्सर की सबसे बड़ी सफलता विभिन्नजातीय तत्वों के जोड़ को समझना था। स्माल के अनुसार समाजशास्त्र मानव संसर्गों में फैले भावों के प्राप्त ज्ञान को सगठित और सामान्य करने का प्रयत्न था। इससे मिलती-जुलती कल्पना वार्ड की थी कि समाजशास्त्र विशिष्ट समाज विज्ञानों का समन्वय है किन्तु उनके समन्वय से मिश्रित रसायन(compound)है। न यह कोई समाज विज्ञानों में से एक है न ही यह उन सब से मिल कर बना है। विशिष्ट सामाजिक विज्ञान योग की इकाइयां है जो कि समाजशास्त्र निर्मित करने के लिए तैयार की जाती हैं किन्तु वह अपनी व्यक्तिगत सत्ता सम्पूर्णतः उसी भांति खो बैठती है जिस भांति कि रासायनिक इकाइयां और उनसे तैयार वस्तु उनसे सर्वथा भिन्न और ऊंचे दर्जे की होती है।

इससे पृथक् कल्पना कि समाजशास्त्र एक पृथक् विज्ञान है, जिसका कि अन्य समाज विज्ञानों पर प्रमुख स्थायी शासन करने का कोई इरादा नहीं है प्रो० गिडिंग्स द्वारा प्रस्तुत की गई है। उनके अनुसार इसका क्षेत्र अन्य समाज-विज्ञानों का सहवर्ती है किन्तु यह इस क्षेत्र के प्रारम्भिक और जातीय स्वरूप के विस्तृत अध्ययन से ही सन्तुष्ट रहता है। इसलिए यह समाज विज्ञानों का पूरा योग नहीं, वरन् उनका समान आधार है। इसके सिद्धान्त अन्य सामाजिक विज्ञानों की प्रस्थापनाएं हैं और इस तरह वह समस्त क्षेत्र को एकीकृत करने में मदद पहुँचाते है। इस भांति विशिष्ट सामाजिक विज्ञान समाजशास्त्र के सहयोगी बन जाते है। अब समाजशास्त्रियों का ऐसा विचार हो गया है कि समाजशास्त्र दूसरे समाज विज्ञानों के लिए आधार भी है और अन्य विशिष्ट ज्ञानों के साथ एकीकृत विशिष्ट ज्ञान भी है। समाजशास्त्र अब 'न तो समाज विज्ञानों का स्वामी है और न ही दास बल्कि उनका भाई है"—(बार्नस बेकर)।

ऐतिहासिक दृष्टि से और उसके मुख्य विज्ञानों की दृष्टि से समाजशास्त्र ही एक ऐसा विज्ञान है जो कि अन्य समाज विज्ञानों का समन्वय है और एक बुनियादी समाज विज्ञान है। कई बार इस प्रश्न के अन्य दृष्टिकोण भी रखे जाते है कि यह इनमें से कुछ भी नहीं है बल्कि वह प्रणाली है जो कि सामाजिक तथ्यों के अध्ययन में प्रत्येक समाज विज्ञान द्वारा प्रयुक्त की जाती है। समाजशास्त्रियों ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि यह विभिन्न विचार एक दूसरे के प्रतियोगी न होकर पूरक हैं। इस तथ्य को अच्छी तरह से समझने के लिए समाजशास्त्र तथा अन्य सामाजिक विज्ञानों के सम्बन्ध को समझना भी आवश्यक है।

समाजशास्त्र और अन्य विज्ञान

समाजशास्त्र का विद्यार्थी समाजशास्त्र की दीवार के पीछे अन्य विज्ञानों से आंख मूंद कर नहीं बैठ सकता। अन्य विज्ञानों में अपने विज्ञान की स्थिति को

उसे भली भाँति पहचानना चाहिए। विज्ञान सामान्यत दो श्रेणियों में विभक्त किए जाते हैं प्राकृतिक अथवा सामाजिक या भौतिक प्राणिक या सामाजिक विज्ञान। पहले हम प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करेंगे।

भौतिक (Physical) और सामाजिक विज्ञान (Social Science)

एक ऐसी भी धारणा है कि विभिन्न विज्ञानों को वह वस्तु पृथक करती है जिनका कि वह अध्ययन करते है। इस तरह इस मत के अनुसार प्राकृतिक विज्ञान जैसे कि *भौतिकशास्त्र केवल स्थूल भौतिक वस्तुओं से ही सम्बन्धित हैं, जब कि समाज* शास्त्र सामाजिक व्यवहार अर्थात् विशिष्ट प्रकार के जीवित प्राणियों और उनकी क्रियाओं की खोज करता है। यह धारणा कुछ अंशों में ही सही है। यह सही है कि विभिन्न विज्ञानों में एक विशिष्ट श्रेणी की वस्तु पर अधिक ध्यान दिया जाता है किन्तु यह भी सही है कि विभिन्न विज्ञान एक ही वस्तु का अध्ययन कर सकते है। एक मानवशास्त्री कंकाल के जोड़ों की प्रणाली में, रसायनशास्त्री उस शरीर के तत्वों और अंगों में, शरीर रचनाशास्त्री पंक्तियों हड्डियों और अंगों के सम्बन्ध में समाजशास्त्री उसके सामाजिक व्यवहार में दिलचस्पी रख सकता है। या एक और उदाहरण लीजिए। एक पहाड़ एक भूगर्भ शास्त्री के लिए पृथ्वी के तल के पूर्व परिवर्तनों का द्योतक है वनस्पतिशास्त्री के लिए वह विशिष्ट पौधा की जन्मभूमि होने के कारण महत्व रखता है एक समाजशास्त्री की दृष्टि में वह मानव विकास और निष्क्रमण पर क्या प्रभाव डालता है अथवा मानव समाज द्वारा इसके क्या धार्मिक अर्थ दिये गये है महत्व रखता है अस्तु। यह उदाहरण इस ओर संकेत करते है कि हम एक ही वस्तु का विभिन्न दृष्टिकोणों से अध्ययन कर सकते है और विषय वस्तु का पार्थक्य विज्ञानों के पार्थक्य का मानदण्ड नहीं है।

सामान्यत प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में निम्न प्रकार का भेद किया गया है (१) इनके सद्धांतिक और वास्तविक तत्व भिन्न होते हैं अत इनको नियन्त्रित करने वाले नियम भिन्न है। *इसलिए किसी क्रिया को जड वस्तु (mass)* कहना उतना ही निरर्थक है जितना कि तारे को बौद्धिक प्राणी कहना।' (२) यह ज्ञाता अपनी व्यावहारिक साक्षी में जो कि उनके लिए उपयोगी है, भिन्न है। इस तथ्य का कि सामाजिक विज्ञान मानव प्राणियों से सम्बद्ध हैं, अर्थ हुआ कि वह मानव विचारों, उद्वेगों तथा अन्य मानसिक प्रक्रियाओं के तथ्यों से संबद्ध है जो सामग्री कि *अन्य कम विकसित और भौतिक विज्ञानों को उपलब्ध नहीं है।* (३) प्राकृतिक और सामाजिक विज्ञानों में अन्य भेद समस्या के सम्मिलित तत्वों के पृथक्करण की सीमा से सम्बद्ध हैं। तुलनात्मक दृष्टि से हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के कणों को जिनसे मिलाकर पानी बना है पृथक करना सुगम है।

किन्तु मानव क्रियाओं में निहित मानव प्रेरणाओ (motives) को पृथक करना बहुत कठिन है ।

यद्यपि सब ही विज्ञान गवषणा की सामान्य प्रणाली का जिसे वज्ञानिक पद्धति कहते ह अनुसरण करत है, पर व विज्ञान अपन दृष्टिकोणा और दिलचस्पी क केन्द्रों में भिन्न ह। प्रत्येक विज्ञान इस विश्व की वास्तविकता के किसी एक पहलू पर विचार करता ह। जसा कि हम बता चुके ह समाजशास्त्र प्रकृति क उन पहलुओ से सम्बद्ध ह जो मानव प्राणियो की अन्त क्रियाओ से सम्बधित ह।

समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानों में अन्तर वह विज्ञान, जिनके अध्ययन का क्षेत्र मानव जाति है, सामाजिक विज्ञान कहलाते ह और जो विज्ञान मानव सम्बन्धो के किसी एक पहलू का अध्ययन करता है वह विशेष सामाजिक विज्ञान कहलाता है। इन विज्ञानो और समाजशास्त्र में मूल अन्तर यह कि वह किसी एक पहलू और कभी कभी किसी एक मनुष्य अथवा मनुष्य क प्रतिनिधि का अध्ययन करते ह जब कि समाजशास्त्र समाज के पृथक सदस्यो को समाज के सदस्यो की हैसियत से देखता ह।

इसका अर्थ यह कदापि नही कि समाजशास्त्री क लिए व्यक्ति का काई महत्व नही है। अन्ततोगत्वा व्यक्तियो का सुख ही सामाजशास्त्री का मुख्य ध्येय ह। अन्तर इतना ही है कि समाजशास्त्र को समाज बनाने वाले मानव प्राणियो के एक और अनेक प्रत्येक सम्बन्ध का अध्ययन करना पडता ह जब कि प्रत्येक अन्य विज्ञान उसके किसी एक विशेष पहलू पर विचार करता ह और अन्य किसी सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश नही करता ।

समाजशास्त्र अन्य सम्बद्ध विज्ञानो की सहायता लेन में अन्य विज्ञानो का अनुगमन करता ह जिस तरह कि इ जीनियरिंग, गणित, भौतिक और रसायनशास्त्र क परिणामों म लाभ उठाती है जिस भाति अर्थशास्त्र को उन भौतिक नियमो पर ध्यान देना पडता ह जो कृषि को प्रभावित करते ह उसी भाति समाजशास्त्र को आर्थिक जीवन के विश्लेषण म अर्थशास्त्र की खोजो की मदद लेनी पडती ह। इस तरह यह अन्य समाज विज्ञानो के परिणामो को ही स्वीकार नहीं करता, बल्कि 'यह विशिष्ट ज्ञानो क परिणामो को एक दूसरे के पास लाता ह यह ध्यान रखते हुए उनम आवश्यक हेर फेर करता है कि वह सब सामाजिक जीवन का अंग है जिनमें से प्रत्येक या समग्र रूप में समाज के जीवन को निर्धारित करने में अत्यधिक महत्व ह।'

जीवन का उद्देश्य सुख ह। क्या अभी कोई ऐसा विज्ञान ह जिसकी खोज मानव जाति को सुख की ओर ले जा सके ? समाजशास्त्र का विज्ञान बहुत कुछ इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकता है।

विज्ञानों में समाज विज्ञान का स्थान

यहा पर विज्ञानो में समाज विज्ञान के स्थान के बारे में कुछ शब्द कहना उचित होगा। एक लम्बे समय तक स्वयं विज्ञानों में ही एक प्रकार के जातिभेद और ऊंच नीच की प्रवृत्ति विद्यमान थी। गणित और भौतिकशास्त्र (Physics) का एक विशेष कुलीनता प्राप्त थी। उनकी इस उच्चता का आधार काट की यह धारणा थी कि वही विज्ञान सबसे अधिक श्रेष्ठ है जिसमें सबसे अधिक गणित का अंश हो। कुछ समय बाद रसायन (Chemistry) को भी गणित और भौतिकशास्त्र की ऊंची जातियों में मिला लिया गया। किन्तु एक लम्बे अरसे तक प्राणिक विज्ञानों (Biological Sciences) को हिकारत की निगाह से देखा जाता रहा। पर यह स्थिति अधिक समय तक न चल सकी और शीघ्र ही प्राणिक विज्ञानो को विज्ञानों में एक सम्मानजनक स्थान मिल गया। किन्तु समाज विज्ञानो के प्रति यह अहंकार का भाव अभी तक समाप्त नहीं हुआ है। यद्यपि आइंसटीन जैसे महान् वैज्ञानिकों ने इस प्रवृत्ति की निन्दा की है।

यदि हम गणित के रूप में ही किसी ज्ञान को विज्ञान स्वीकार करते हैं तब तो शायद समाज विज्ञान कभी भी विज्ञान नहीं बन सकते। अरस्तू ने आज से ३००० साल पहले आचार शास्त्र के सम्बन्ध में यही चेतावनी दी थी कि आचारशास्त्र कभी भी उन अर्थों में निश्चित (exact) नहीं हो सकता जिस अर्थों में कि भौतिक विज्ञान। यही चेतावनी अर्थशास्त्र, राजनीति, धर्मशास्त्र इत्यादि सामाजिक विज्ञानो पर लागू होती है।

समाज विज्ञान जीवित प्राणियों का अध्ययन करते हैं उन्हें हम मशीनों की तरह प्रयोग में नहीं ला सकते और न ही उन्हें हम गणित के कठोर नियमों में बांध सकते हैं।

बावजूद इसके, पिछले सौ सालों में इन सभी समाज विज्ञानों ने कुछ नियमों को खोजा है जो गणित की तरह निर्भ्रान्त और निश्चित तो नहीं है, पर जिन्हें हम प्रवृत्तियों के नियम (Laws of Tendencies) कह सकते हैं, जो कि अल्पाधिक रूप में अवश्य मानव व्यवहार पर लागू होता है। बर्नार्ड बावर ने अपनी पुस्तक विज्ञान और सामाजिक व्यवस्था में समाज विज्ञानों को स्वीकृति प्रदान करने और माप और गणित को विज्ञान का मापदण्ड का मानने का आग्रह छोड़ने की जोरदार वकालत की है।

भौतिक विज्ञानों के विकास में जो चीज महत्वपूर्ण है वह उनकी निरपेक्षता (Objectivity) और निष्पक्षता है। समाज वैज्ञानिकों की यह निरपेक्षता और निष्पक्षता ही समाज विज्ञानों को एक विज्ञान कहलाने का अधिकारी बनाता है।

समाजशास्त्र का प्रमुख सामाजिक विज्ञानों से संबंध

अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र जीविकोपार्जन की दृष्टि से मानव जाति का अध्ययन अर्थशास्त्र है। मार्शल ने ठीक ही कहा है कि यह एक ओर सम्पत्ति का अध्ययन है, दूसरी ओर अधिक महत्त्वपूर्ण और मनुष्य का अध्ययन है। अधिकांश मनुष्यों को अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किसी न किसी आर्थिक कर्म में लगना पड़ता है। वह वस्तुओं का उत्पादन करता है उनका विनिमय करता है सम्पत्ति का विभाजन करता है, अन्ततोगत्वा उसका उपभोग करता है। मनुष्य का बहुत अधिक समय आर्थिक समस्याओं को सुलझाने में लग जाता है। मनुष्य किस भांति उत्पादन करते हैं किस भांति वस्तुओं का विनिमय करते हैं अथवा किस भांति सम्पत्ति का वितरण करते हैं, यह केवल मनुष्यों की व्यक्तिगत इच्छा का परिणाम न होकर समाज के संगठन और संस्थाओं और विचारधाराओं का परिणाम होता है। इसी तरह आर्थिक क्रियाएं केवल व्यक्तियों की आर्थिक आय को ही प्रभावित नहीं करती वह उनके सामाजिक दर्जे, समाज में उनके सम्मान तथा उनके बौद्धिक और नैतिक विकास पर भी प्रभाव डालती है। इस भांति हम देखते हैं कि अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र में बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। बिना समाजशास्त्र के अध्ययन के आर्थिक समस्या की जड़ों तक नहीं पहुंचा जा सकता। बिना आर्थिक जीवन समस्याओं के अध्ययन के समाज का अध्ययन सर्वथा अधूरा है।

मनोविज्ञान (Psychology) और समाजशास्त्र मानसिक अनुभव के तथ्यों का अध्ययन मनोविज्ञान का विषय है। मनोविज्ञान की भी दो शाखाएं हैं, व्यक्तिगत मनोविज्ञान और सामाजिक मनोविज्ञान। व्यक्तिगत मनोविज्ञान, सामाजिक परिस्थिति से पृथक मनुष्य की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है। मनुष्य के सामूहिक व्यवहार में सामाजिक संगठन आदर्शों और संस्थाओं की छाप स्पष्टतः दिखाई देती है। क्या कुछ जातियां शांतिप्रिय और क्यों कुछ युद्धप्रिय होती हैं क्या कुछ जातियां भाग्यवादी और क्यों कुछ कर्मवादी होती हैं, इसका बहुत कुछ परिचय हमें उस समाज की बाह्य परिस्थिति के अध्ययन द्वारा मिल सकता है। इसके विपरीत बाह्य परिस्थितियों के परिवर्तन का मानवसमूहों पर क्या प्रभाव पड़ेगा इसके लिये मानव मन की प्रक्रियाओं उसकी सहज प्रवृत्तियां, स्वभाव और गुणों की ओर दृष्टिपात करना होगा। इससे यह स्पष्ट है कि मनोविज्ञान और समाजशास्त्र आपस में घनिष्ठतया सम्बन्धित हैं। सामाजिक समस्याओं को भलीभांति समझने के लिये, उनका समुचित समाधान ढूंढने के लिए हमें मानव प्रकृति और व्यवहार का अध्ययन करना होगा। इसके विपरीत, मानवीय व्यवहार को समुचित रूप से समझने के लिये हमें उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि पर दृष्टि डालनी होगी।

आचारशास्त्र(Ethics) और समाजशास्त्र आचारशास्त्र मनोविज्ञान से घनिष्ठतया सम्बन्धित है। आचारशास्त्र का उद्देश्य मानव जीवन में अच्छे और बुरे कार्य का मानदण्ड स्थापित करना, अर्थात् नैतिकता की विवेचना है। यह कार्य केवल ऐतिहासिक और तुलनात्मक अध्ययन से ही समाप्त नहीं हो जाता वरन् इसमें सदैव एक नीति-तत्त्व विद्यमान रहता है अर्थात् उच्चतम कल्याण क्या है? कुछ व्यक्तियों का कहना है कि यह दर्शन का विशिष्ट क्षेत्र है। यह बात देखने में आती है कि मनुष्य की भले-बुरे की कल्पना कोई अपरिवर्तित शाश्वत, निर्दोष व पूर्ण चीज नहीं है। उसकी शिक्षा और वातावरण द्वारा बराबर उनमें परिवर्तन होते रहते हैं। जहां एक और मनुष्य की भले-बुरे की कल्पना व्यक्तिगत विचारों से प्रभावित होती है, वहां दूसरी ओर स्वयं वह विचार सामाजिक संगठन, संस्थाओं *और उनके आदर्शों से प्रभावित होते हैं। समाजशास्त्र जहां उन दोनों के* पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण करता है वहां क्या वह समाजनीति के बारे में स्वयं तटस्थ रह सकता है? यदि समाजशास्त्र को एक उपयोगी और जीवित विज्ञान बनना है तो उसे अन्धविश्वासों अज्ञान परम्परा अशिक्षा के वातावरण और जाल से मुक्त करके एक सामाजिक आदर्श-सुख की खोज में मानव जाति के एक अन्तिम उद्देश्य का उद्धार करना होगा।

कानूनशास्त्र (Law) और समाजशास्त्र व्यक्तियों के आचरण और पारस्परिक व्यवहार को नियन्त्रित करने के लिये तथा निषिद्ध कार्यों के करने पर उन्हें दण्डित करने के लिये कानून की आवश्यकता पड़ती है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि यह प्रायः कानून किसी एक व्यक्ति की सनक और मन-मरजी का परिणाम न होकर तत्कालीन समाज की भले-बुरे की कल्पनाओं और विश्वासों का प्रतिबिम्ब होते हैं। पर जहां कानून विद्यमान सामाजिक अवस्था का प्रतिबिम्ब होते हैं वहां वह बहुत कुछ सामाजिक संगठन संस्थाओं और आदर्शों को मोड़ने और ढालने में भी योगदान देते हैं। इस सम्बन्ध में एक और बात भी मार्के की है। केवल कानून बना देने से ही उनका पालन नहीं हो जाता। विभिन्न परिस्थितियों में उनका विभिन्न सीमाओं में पालन होता है। विभिन्न वर्गों की परिस्थितियां इस पर अच्छा प्रकाश डालती है। इस भांति हम देखते हैं कि बिना कानून को स्थान दिये सामाजिक अध्ययन अपूर्ण है। इसी तरह एक कानूनशास्त्री के लिये भी सामाजिक परिस्थितियों का अध्ययन परम आवश्यक है।

इतिहास(History) इतिहास और समाजशास्त्र जो ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं उसमें कोई मौलिक भेद नहीं है। इतिहास मानव जाति के कृत्यों का सिलसिलेवार लेखा तथा विभिन्न घटनाओं के पारस्परिक महत्व की आंकने का एक प्रयत्न है। यह विवेचना की तुलना में वर्णन अधिक है। एक समाजशास्त्री को

सामान्य प्रवृत्तियों को जो कि मानव जाति के आन्दोलना को आज निर्धारित करता है तथा यदि उन्हें जारी रहने दिया जाय तो उनका क्या प्रभाव पड़ेगा उनका जन का प्रयत्न करता है। इससे स्पष्ट है कि समाजशास्त्री और इतिहासकार कोई भी अच्छे-बुरे के निर्णय से मुक्त नहीं हो सकते। इतिहास मानव जाति के अतीत आन्दोलना का अध्ययन करता है। समाजशास्त्री इतिहासकार के कार्य को उसमें प्राप्त ज्ञान के आधार पर वर्तमान और भविष्य के लिये उपयोगी बनाता है। एक विद्वान् का कहना है कि "समाज शास्त्र केवल इतिहास के सामाजिक तथ्य का अध्ययन करता है' — (वर)। इसके विपरीत, कुछ विद्वानों का कहना है कि इतिहास और समाजशास्त्र में कोई सम्पर्क नहीं है। इतिहास व्यक्तिगत समग्रता की स्थूल अन्तर्दर्शित (intuitive) अनुभूति है —(क्रोश)। वास्तव में सामाजिक सिद्धान्त और सामाजिक इतिहास को पृथक नहीं किया जा सकता। जो इतिहास अक्सर हमें पढ़ाया जाता है उसका उद्देश्य एक मिथ्या राष्ट्रीय अहंकार उत्पन्न करना होता है। किन्तु विश्व के इतिहास का निष्पक्ष अध्ययन हमें बताता है कि सहयोग द्वारा ही मानव जाति प्रगति कर सकती है। इतिहास का अध्ययन हमें यह बतलायेगा कि इस सहयोग की क्या शर्तें हैं समाजशास्त्र के अध्ययन का सामाजिक सम्बन्धों की समान चेतना को विकसित करना चाहिए। सामाजिक समस्याओं के स्पष्टीकरण में इतिहासकारों का सहयोग अनिवार्य है। इतिहास की समाजशास्त्रीय व्याख्या द्वारा ही मानव जाति अतीत के अर्थ और भविष्य के महत्व को समझ सकती है।

राजनीतिशास्त्र (Politics) और समाजशास्त्र राज्य और सरकार के सिद्धान्तों का अध्ययन राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का विषय है। मनुष्य की सामाजिक प्रवृत्ति को ही राज्य-संस्था को जन्म देने का श्रेय प्राप्त है। मनुष्य की यौन धार्मिक आर्थिक आवश्यकताओं ने परिवार सम्प्रदाय और सामूहिक उत्पादन जैसी संस्थाओं का जन्म दिया है। सुरक्षा और नियम की भावना ही सामाजिक भावना का सहारा पा राज्य का रूप धारण कर बैठी। इस संस्था तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं में अन्तर यही है कि यह सर्वोपरि और सार्वभौम प्रभुता सम्पन्न है अर्थात् जब कि अन्य संस्थाओं की शक्ति बहुत सीमित है राज्य ही एक ऐसी संस्था है जिसकी शक्तियाँ व्यापक विस्तृत और विशाल होती हैं राज्य की नीति केवल राजनैतिक जीवन को ही प्रभावित नहीं करती उसका प्रभाव कानून की मदद से समाज के समस्त क्षेत्रों पर पड़ता है। इसके अतिरिक्त आर्थिक जीवन के केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति तथा आर्थिक आयोजन के आन्दोलनों ने राज्य के क्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया है। वर्तमान सामाजिक प्रवृत्तियाँ दिन पर दिन राज्य को समाज से मिलाती जा रही हैं किसी भी सामाजिक समस्या का अध्ययन

और हल बिना विद्यमान राजनैतिक परिस्थितियों को समझे और बदल नहीं किया जा सकता। साथ ही किसी भी प्रकार का राजनैतिक परिवर्तन सामाजिक स्थिति का ध्यान किये बिना कार्यान्वित नहीं किये जा सकते।

प्राणिशास्त्र (Biology) और समाजशास्त्र 'हमारा यह विचार कि मनुष्य के लिए किस प्रकार की प्रगति सम्भव या उचित है, बहुत कुछ उसकी प्रकृति के प्रति हमारी धारणा उसके जन्म के ढंग उसके परिवर्तन की पद्धति तथा उसके आपसी तथा उसकी प्रकृति के सम्बन्धों पर निर्भर करता है'—(एच० जे० मुलर)। अन्तत इस जगत् में मनुष्य क्या करने जा रहा है यह बहुत कुछ उसकी मानसिक और शारीरिक रचना पर निर्भर करता है। उसे यह जानना चाहिए कि उसकी क्या शक्तियां है और वह उन्हें कितना विकसित कर सकता है। उसे अपनी कमियों का जानना जरूरी है। यह एक परिचित तथ्य है कि मनुष्य के यान्त्रिक विकास की तुलना में उसका मानसिक और नैतिक विकास बहुत ही मन्द गति से हुआ है और यही कारण है कि वह अभी भी दमन और निषेधों के शिकंजे में है। अन्य बातों के अतिरिक्त, समाजशास्त्र मानव प्राणियों और समूहों और संस्थाओं पर मानसिक और शारीरिक विभिन्नताओं के विपरीत सामाजिक संस्थाओं और समूहों के मानव प्राणियों पर होने वाले प्रभावों का अध्ययन करता है। वह यह जानने की कोशिश करता है कि आनुवंशिकता (Heredity) व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों में क्या पार्ट अदा करती है, और कहां तक आनुवंशिकता अपने-आप और कहां तक वातावरण (Environment) और अनुभव से संशोधित होती है। यह प्रजननशास्त्र (Genetics) के दावों को कि नस्ल की किस्म मानव-समितियों पर क्या प्रभाव डालती है तथा कौन कारण नस्ल की किस्म को निर्धारित करते हैं छानबीन करता है। यह उस विकट समस्या का मुकाबिला करता है कि हम कहां तक और किस तरह मनुष्य की नस्ल को सुधार सकते हैं। समाजशास्त्री इस ओर ध्यान दे रहे हैं। इस दशा में प्राणिशास्त्र उनके लिये अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगा।

विभिन्न विज्ञानों की अन्त निर्भरता उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि समाजशास्त्र और विभिन्न सामाजिक विज्ञान किस भांति एक दूसरे पर अन्त निर्भर है। पहले लोगों का ऐसा विश्वास था कि समाजशास्त्र पर समस्त सामाजिक विज्ञान निर्भर है। इस प्रकार राजनीति और अर्थशास्त्र समाजशास्त्र पर निर्भर विज्ञान माने जाते थे। अधिकांशतः अब समाजशास्त्रियों ने एक परस्पर सम्मान की नीति के पक्ष में, जो कि सामाजिक विज्ञानों की अन्त निर्भरता को स्वीकार करती है एक विश्व-साम्राज्य की कल्पना को छोड़ दिया है। यह आन्दोलन दोनों ही ओर से चला है जिसमें दोनों को ही लाभ हुआ है। समाजशास्त्री आदिम सामाजिक

सगठन की मानवशास्त्रीय खोजा से प्राप्त लाभो को स्वीकार करके कानूनशास्त्री कानून के व्यावहारिक पहलू के आग्रह में कानून की एक सामाजिक सस्था की कल्पना में, इसके ाय सामाजिक उद्देश्या पर जोर देने में, समाजशास्त्र क प्रति अपने विशाल दायित्व को प्रकट करता ह । अथशास्त्रियो ने समाजशास्त्र की उस सहायता का स्वीकार किया ह जो कि सामाजिक नियन्त्रण, सामाजिक अनुकूलन (Adaptation), सामाजिक शक्तिया प्रतियोगिता और सामाजिक व्यवहार को स्पष्ट करने में पहुचाता ह और समाजशास्त्री समाज के आर्थिक पहलुओ (Phases) को समझने के लिए अथशास्त्रियो की ओर झुके है। समाजशास्त्र राजनीतिशास्त्र की ओर राजनैतिक सगठन के तथ्यो के लिए देखता है, और राजनीतिशास्त्र समाजशास्त्र से सामाजिक ढाचे का राजनतिक सगठन जिसका केवल एक हिस्सा ह ज्ञान प्राप्त करता हैं इतिहास सामाजिक सगठन की एक सामान्य दृष्टि के लिए जो कि उसके तथ्यो के उचित वितरण का आधार बन सके, समाजशास्त्र की ओर मुडता है और समाजशास्त्र अपने महत्वपूण तथ्या के लिए इतिहास की ओर देखता ह । अन्तत आचारशास्त्र भी समाजशास्त्र की शोधा से ही अपने अधिकाश तथ्य, विषयवस्त सग्रह करता ह । इस तरह व्यवहार में समाजशास्त्र और अन्य सामाजिक विज्ञानो का सम्बन्ध सामान्य किन्तु विशिष्ट चुने हुए लेन-देन का ह । यद्यपि सभी समाज विज्ञान बहुत जगह एक-दूसरे को ढक देते ह पर ऐसा कोई प्रश्न नही कि समाजशास्त्र ही एक-मात्र समन्वित समाज विज्ञान ह । विभिन्न विज्ञानो के लिए कोई अमिट सीमाए नही ह, और जो खींची भी गई हैं वह भी पुनर्जीवन और अतिरिक्त पोषण के लिए किसी भी स्थान पर पार की जा सकती है ।

समाज विज्ञानों का एकीकरण जब समाजशास्त्रियो न यह कहा कि उनका विज्ञान समन्वयात्मक या बुनियादी ह उनका ध्यान उस बात पर केन्द्रित था कि यदि समाज विज्ञानों का उद्देश्य सामाजिक तथ्यों की पूण व्याख्या ह तो यह सम्भव नही कि हम उसे प्रचलित अधूरे तरीकों से प्राप्त कर सकें। मानव व्यवहार और उसकी कृतिया, अर्थात् संस्कृति को ज्ञान के क्षेत्र के लिए एक ही मानना चाहिए। सामाजिक विज्ञानो का उद्देश्य अन्त में समस्त महत्वपूण कारणों और सम्बन्धो का पृथक पृथक कर देना ह । पर उन्हें समग्र रूप से देखने पर ही उस क्षेत्र की समुचित और सतुलित व्याख्या की जा सकती है ।

आज स्थिति ह कि प्रत्येक सामाजिक विज्ञान उस क्षेत्र के एक भाग का अधूरा वणन करता ह । उनको एक सगत सम्पूण में मिलाना सभव नही ह । उनके अधूरेपन की सीमा भी अज्ञात है। एक प्रणाली के रूप में विशिष्टीकरण (Specialisation) के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसके बिना ज्ञान

से सम्बन्धित वस्तुगत (Obj ctive) सम्बन्धों तथा सम्बद्ध तथ्यो के आकड़ो और तथ्यों क सकलन में प्राप्त होता है जिससे कि उसके गुणों, प्रभावो या समाज के समस्त भाग पर प्रकाश डाला जा सके।

(४) इसका उद्देश्य विषय विशेष और सामाजिक जीवन, जिसका कि वह अग है, दानो की वृद्धि और उत्कृष्ट व्याख्या करना है।

विशिष्ट पद्धतियां उपयुक्त सामान्य अध्ययन पद्धति के अतिरिक्त, समाज शास्त्र क स्वयप्रतिष्ठ विद्वानो ने सामाजिक घटनाओ और तथ्यो क अध्ययन के लिए विभिन्न विशिष्ट पद्धतियां बनाई हैं उनकी श्रेष्ठता सिद्ध करने का प्रयत्न किया है अथवा उनक अपनाने पर बल दिया है। सुविधा के लिए हम इन विशिष्ट पद्धतियो को तीन भागो में विभक्त कर सकते है—

पद्धति तथाकथित यथार्थवादियों ने पद्धतिशास्त्र (Methodology) पर कई कल्पनाए और दृष्टिकोण प्रस्तुत किये ह। कोम्त का सामाजिक ऐक्य दुरखाइम का सामूहिक प्रतिनिधित्व माइकल का अन्त क्रियाओ का सामाजिक स्वरूप, वबर का आदश टाइप विश्लेषण सुमनर की जनरीति और मान्य रूढ़ि, स्माल का समूह कल का सहानभति युक्त अन्त पयवक्षण, पाक का सामूहिक व्यवहार इसके अच्छे उदाहरण हैं।

१ तथ्य सकलन पद्धति समाजशास्त्रियो के दूसरे वग का कहना है कि प्राकृतिक विज्ञानों की मुख्य प्रणालिया—अवलोकन, तुलना, सवहन (commun cation) मानव सामाजिक व्यवहार पर क्या लागू नही की जा सकतीं ?

व्यक्ति जीवनी का महत्व इसके अतिरिक्त, किसी भी विज्ञान के लिए एक उपयुक्त यन्त्र की खोज या आविष्कार जरूरी है। ज्योतिषशास्त्र के लिए टेलिस्कोप, रसायनशास्त्र के लिए टेस्ट ट्यूब प्राणिशास्त्र क लिए माइक्रोस्कोप ऐसे ही यन्त्र है। कुछ विद्वानो का कहना है कि व्यक्तिगत जीवनी के रूप में समाजशास्त्र क लिए वह एक ऐसे ही यन्त्र की खोज कर चुके हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययन में व्यक्तिगत जीवनियो का महत्व दिन-पर दिन बढ़ता जा रहा है।

केस अध्ययन (Case study) पद्धति का विकास किसी भी सामाजिक घटना का अध्ययन करते समय उसके बाह्य और आन्तरिक, दोनो ही कारणों पर ध्यान देना और विचार करना आवश्यक ह। इसके लिए वग अध्ययन, अर्थात् व्यक्ति विशेष की मानसिक प्रतिक्रियाओ तथा उसक बाह्य वातावरण का जानना जरूरी है। व्यक्तिगत जैसे इस काय को सम्पन्न करते ह। आल्पोट क मत में व्यक्तिगत ऐसे एक वज्ञानिक पद्धति के रूप में स्वीकार होने चाहिए क्योंकि यह सूचना पूर्वोक्ति और नियन्त्रण शक्ति को जिसे कि मनुष्य बिना किसी मदद क

प्राप्त कर लेता है, बढाते है। जान डौलाड के अनुसार जीवन इतिहास के मापदड में उसका उद्देश्य मम्पूण व्यक्ति और उसकी सम्पूण सस्कृति का अध्ययन है। वास्तव में व्यक्तित्व का जननिक (Genetic) तत्वो, सास्कृतिक मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र सबो का एक साथ अध्ययन आवश्यक है।

व्यक्तिगत लेखा के अध्ययन की भी दो पद्धतिया ह—(क) निष्कर्ष का तुलना, (ख) व्यक्तिगत केस का उसके पूर्व व्यक्तित्व और सम्पूणता में मूल्याकन करना।

आदश टाइप पद्धति कमा और व्यक्तिगत लेखो के विश्लेषण के लिए दुरखाइम और वैवर जैसे समाजशास्त्रियो ने आदश टाइप (Ideal Types) की सहायता ली है। आदश टाइप अन्वेषण की एक प्रणाली ह जिसमें कि अन्वेषक विशष केस क गणो को बढा चढा कर एक आदश कल्पना के रूप में रखता है और उसकी स्पष्ट व्याख्या देता ह। उदाहरण के लिए ववर ने एक दवी नेता का आदश टाइप प्रस्तुत किया ह जिसे कि उसने अति-मानवीय अलौकिक शक्तिया से विभूषित माना ह। आर्थिक मनुष्य (Economic Man) जो हर समय केवल आर्थिक लाभ-हानि की ही दृष्टि से सोचता ह एक आदश टाइप है।

२ **गणनात्मक (Statistical) पद्धति का विकास** हाल ही में समस्त सामाजिक अन्वेषणा में गणनात्मक पद्धति का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। जनगणना के तथ्य-सग्रहों से इस विशेष प्रेरणा मिली है। वास्तव में जन्म मरण, प्रव्रजन (migration) इस विषय अन्वेषक की व्यक्तिगत धारणा और मूल्यो से सम्बद्ध नही है अत उनका वज्ञानिक अध्ययन पर्याप्त निष्पक्ष सिद्ध हुआ ह।

पूव कल्पना (Hypothesis) विश्लेषण के साथ सामाजिक परिमाणात्मक (Quantitative) तरीको स एक नये सम ज गणित का विकास हुआ है जिसे कि समाजमिति (Sociometry) कहते ह। समाजमिति धीरे धीरे काल्पनिक सामाजिक विश्लेषण और आकडो के बीच के अन्तर को कम कर रही है।

कस अध्ययन और आंकडों का पारस्परिक सम्बध केस अध्ययन और गणनात्मक पद्धति— आकडा के प्रयोग का प्रचार दिन पर दिन बढता जा रहा है। यद्यपि गणनात्मक पद्धति अभी भी बहुत सी सामाजिक समस्याओं पर लागू होती नहीं दीखती। फिर भी यह दिन पर-दिन पूणता की ओर अग्रसर हो रही ह। यद्यपि केस अध्ययन आख खोलने वाले ह। किन्तु जटिल पूवकल्पनाओं का परीक्षण बहुत कठिन काय है। निसन्देह कस अध्ययन और व्यक्तिगत लेख ने गवेषक को एक नया शस्त्र प्रदान किया है। केस अध्ययन आकडों का उपयोगी सहायक है आकडो की खोजो की व्याख्या में बहुत मूल्यवान है। आकडे और केस अध्ययन, दोनो ही एक दूसरे के सहायक ह।

तरह नहीं समझ सकता। इसके अतिरिक्त उसके एकाकी अध्ययन में, जिस विषय का वह विशेषज्ञ है उसकी अनुचित प्रभुता का आ जाना भी बहुत स्वाभाविक है। इस कमी से बचने का एक ही उपाय है कि विभिन्न सम्बन्धित विषयों के विद्वान् मिलकर क्षेत्रीय गवेषणा के कार्य को सम्पन्न करें। हाल ही में इस दृष्टिकोण को लेकर दो उल्लेखनीय गवेषणाएं हुई हैं। शाप, हौंक जानलेख और टक्सटर चार अवयवों ने मिलकर स्याम के चावल उपजाने वाले गाँव का एक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस टीम में दो मानवशास्त्रियों (Anthropologists) एक कृषि अर्थशास्त्री तथा एक पोषणशास्त्र (Nutrition) के अध्यापक ने कार्य किया है। यह लोग गवेषणा के समय में साथ रहे और साथ मिलकर कार्य किया। इस प्रकार एक दूसरे की खोजों से वह अपने काम का सम्बन्ध स्थापित कर सके। इस प्रकार जहाँ पोषण शास्त्री ने स्वास्थ्य की चर्चा की, वह वहाँ पर श्रम और चिकित्सा की धारणाओं से उनका सम्बन्ध स्थापित कर सका। इसी प्रकार विभिन्न विज्ञानों के विद्वानों के सहयोगी अध्ययन का एक अन्य उदाहरण दुबे की *भारतीय गाँव* नामक पुस्तक है। यद्यपि इसे एक ही व्यक्ति ने लिखा है फिर भी इसके तथ्य संग्रह में अर्थशास्त्रियों, चिकित्सकों और कृषिशास्त्रियों ने सहयोग दिया है।

किसी छोटे समुदाय में अन्वेषकों की एक बड़ी टीम के कार्य करने में एक ही खतरा है कि वहाँ उनकी उपस्थिति स्वयं ही वहाँ की परिस्थिति को न बदल दे। अतः ऐसे समुदायों में गवेषणा करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि टीम के कम से कम सदस्य हों।

(ii) कार्यात्मक प्रवेश (Functional Penetration) किसी वर्ग या समूह विशेष का अध्ययन अधिक श्रेष्ठ और सुचारु रूप से किया जा सकता है यदि अन्वेषक स्वयं उस वर्ग या समूह का सदस्य बनकर कार्य कर सके। इस प्रणाली की कार्यात्मक प्रवेश का नाम दिया ... एक विशेष स्थान और ... उस समाज में जिसमें कि वह अध्ययन कर रहा है एक विशेष स्थान और भूमिका (Role) प्राप्त कर लेता है।

अन्वेषक का किसी कार्य की भूमिका ग्रहण करना (उदाहरण के लिए कारखाने में एक मजदूर की) उस समुदाय के सदस्यों में एक सहानुभूतिपूर्ण प्रतिक्रिया पैदा करेगा। उस कार्य का अनुभव उसे बतलाएगा कि उसे कौन से प्रश्न पूछने चाहिएं। कार्य का यह प्रयोग अनुभव नई समस्याओं और नई पूर्व कल्पनाओं (Hypotheses) को प्रस्तुत करने का आवश्यक मानसिक आधार जुटाएगा।

कार्यात्मक प्रवेश की प्रणाली एक टीम के लिए अधिक उपयुक्त है जिसमें कि उसके सदस्य विभिन्न भूमिकाएं ग्रहण कर समाज के विभिन्न वर्गों का निकट से अध्ययन कर सकते हैं। श्रेणीबद्ध (Hierarchal) समुदाय के लिए जिसमें कि

एक वर्ग का सदस्य दूसरे वर्ग से एक से सम्बन्ध नहीं बना रख सकता, यह अध्ययन-प्रणाली बहुत उपयोगी है। टीम के सदस्य विभिन्न वर्गों के सदस्य बन कर उनका सूक्ष्म अध्ययन कर सकते हैं।

(ii) अन्तर्सांस्कृतिक गवेषणा (Inter cultural Research) भिन्न संस्कृतियों के अन्वेषक चाहे वह कितने ही निष्पक्ष क्यों न हो, जब किसी संस्कृति विशेष का अध्ययन करते हैं उनके अध्ययन पर उनकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, उसकी मान्यताओं की कुछ न कुछ छाप तो अवश्य रह जाती है और इस प्रकार उनके अध्ययन पूर्ण रूप से निरपेक्ष (Objective) नहीं कहे जा सकते। इसके अलावा, विभिन्न राष्ट्रों का गवेषणा पद्धतियों में पर्याप्त अंतर है। उदाहरणार्थ, अमरीकन स्कूल में घटना (Phenomenon) के सूक्ष्म और निश्चित मापने की प्रवृत्ति प्रबल है। फ्रेंच स्कूल में संख्या पर कम और अवलोकन पर अधिक जोर देता है। ऐसी स्थिति में सामाजिक घटनाओं के अधिक संतुलित और निरपेक्ष अध्ययन के लिए यह उचित है कि भिन्न संस्कृतियों के अन्वेषक मिलकर गवेषणा करें। इस प्रकार वह बहुत कुछ एक दूसरे की भूलों को सुधार सकेंगे। अन्तर्सांस्कृतिक गवेषणा में यदि संभव हो तो एक सदस्य उस संस्कृति का जिसका कि अध्ययन हो रहा है, अवश्य होना चाहिए।

अन्त में हम इतना ही कह सकते हैं कि अन्तर्शास्त्रीय कार्यात्मक प्रवेश और अन्तर्सांस्कृतिक गवेषणा की प्रणालियों को मिलाकर बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं।

अन्तर्दृष्टि (Insight) और सहक्रिया (Participation) प्रो० डी० पी० मुकर्जी ने प्रथम समाजशास्त्र सम्मेलन में भारत में सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में अन्वेषक को सामाजिक जीवन में हिस्सा लेने पर बहुत बल दिया ... अनुसार सामाजिक जीवन का लम्बा अनुभव ही सामाजिक तथ्यों को समझने की पहली बात है। केवल परम्पराओं में सरोबार होकर ही समाजशास्त्री एक सहज अन्तर्दृष्टि और सूझ प्राप्त कर सकता है। इस समझने में अध्ययन किए जाने वाले विषय से एकता की अनुभूति (Empathy) आवश्यक है। एक भारतीय समाजशास्त्री के लिए पहले भारतीय होना, देश की जनरीति रूढ़ियाँ रिवाजों परम्पराओं में साझीदार होना जरूरी है। इसके लिए संस्कृत और स्थानीय बोलियों का ज्ञान भी अनिवार्य है। समाजशास्त्रीय अन्वेषण उस भाषा पर आधारित होना चाहिए जिसमें कि स्थानीय परम्पराएं प्रतीकों द्वारा सुरक्षित हों।

सामूहिक कर्म (Group Action) और सामूहिक परम्पराएं (Tradition) प्रो० मुकर्जी के मत में, जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, समाजशास्त्र

के सामान्य स्थूल तथ्यों और घटनाओं को हम सामूहिक कर्म और सामूहिक परम्पराओं के अध्ययन द्वारा ही सबसे अच्छे तरीके से समझ सकते हैं। क्योंकि उनके अनुसार एक भारतीय का धर्म मूलत व्यक्तिगत न होकर सामूहिक है। भारत का धर्म जीवन और संस्कृति जीवन की परम्परागत रीति है। अभी भी यहां पर भौतिक रागात्मक बोधात्मक कर्म और आकांक्षा की इकाई समूह ही है। मनुष्य की हमारी कल्पना व्यक्ति न होकर पुरुष है।

विभिन्न पद्धतियों का समन्वय आवश्यक प्रथम महायुद्ध के पश्चात् आदर्शात्मक काल्पनिक विश्लेषण, तथ्य संकलन तथा विचारधारात्मक विवेचन के बीच की खाई को पाटने का प्रयत्न किया गया है। वास्तव में किसी भी सामाजिक अध्ययन के लिए आवश्यक तथ्यों का मौजूद होना, तथ्यों को समझने अथवा बदलने के लिए वर्तमान विचारधारात्मक पेचीदगियों से परिचित होना बहुत जरूरी है। इस तरह तीनों पृथक पद्धतियां एक-दूसरे की प्रतियोगी न होकर पूरक हैं शत्रु नहीं, सहयोगी हैं।

दूसरा अध्याय

प्राथमिक परिभाषाएं

PRIMARY DEFINITIONS

प्रतिदिन के प्रयोग के कारण निर्दिष्ट अर्थ का अभाव समाजशास्त्र मनुष्य के सर्वाधिक महत्वपूर्ण व्यवहारों— सामाजिक व्यवहारों— का अध्ययन करता है, या जैसे बोगार्डस ने कहा है समाजशास्त्र उन सामाजिक अन्तर्क्रियाओं का अध्ययन है जो व्यक्तियों के विकास और परिपक्वता में सामाजिक समूहों के द्वारा कार्यान्वित होती हैं। इसलिए कितनी ही बार हम उसमें प्रयुक्त शब्दों और धारणाओं को अपने दैनिक, अवैज्ञानिक और अनिर्धारित अर्थों में ग्रहण करते हैं। बार-बार जब हम उन्हीं विचारों उन्हीं क्रियाओं और शब्दों के प्रतिदिन सम्पर्क में आते हैं तो उनका अलग-अलग अर्थों में प्रयोग, अलग-अलग क्रियाओं के लिए उनका नामकरण होना स्वाभाविक है। पर जब भी हम एक वैज्ञानिक, एक शास्त्रीय दृष्टिकोण से इन व्यवहारों और क्रियाओं का अध्ययन करने लगें, हमें कुछ विशेष शब्दों की परिभाषा करनी होगी उनके अर्थ निर्धारित कर लेने होंगे।

स्थूल वस्तु रचना न होने से अर्थ में भ्रान्ति यह न केवल इसलिए बल्कि इसलिए भी कि— समाज, समुदाय नस्ल, जनरूढ़ि, इत्यादि शब्द हमारे सम्मुख एक स्थूल शरीर लेकर उपस्थित नहीं है। कुर्सी, सूर्य, चावल, मेंढक इत्यादि स्थूल वस्तुओं के साथ यह कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। सामाजिक व्यवहार में आने वाले शब्दों में इस निश्चितता का अभाव है। समाज शब्द को ही लें। क्या यह किसी एक साम्प्रदायिक धार्मिक समूह का नाम है, जैसे ब्रह्मसमाज या आर्यसमाज, या एक राष्ट्र का, या यह सभी व्यक्तियों की एक समष्टि का ?

एक समुदाय (Community) और समाज (Society) में क्या अन्तर है ? संस्था क्या है ? यह सब तथ्य हमारे सामाजिक अध्ययन का अभिन्न अंग हैं पर इनका प्रयोग विभिन्न व्यक्ति विभिन्न अर्थों से करते हैं। अतः इनकी एक निश्चित परिभाषा देना किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन के लिए जरूरी है।

समाज (Society)

हम सभी दूसरे मनुष्यों के साथ रहते हैं। दूसरे मनुष्यों—परिवार—पर ही बच्चा अपने भरण पोषण के लिए, अपने शरीर की रक्षा के लिए अपने ज्ञान के लिए निर्भर करता है। दूसरे मनुष्यों के सहयोग में ही आरण्यक अवस्था का प्रत्येक प्राणी कठोर और भीषण परिस्थिति में अपने को सुरक्षित रख सका। सहयोग,

साहचर्य सामूहिक जीवन ने ही मानव जाति को यह विकास दिया है जो कि आज उसे प्राप्त है।

समाज मानव व्यवहारों, अन्तःक्रियाओं और सामूहिक प्रणालियों का विधान

यह दूसरे मनुष्य, यह समूह, जिनमें हम अपनी पूर्णता को प्राप्त करते हैं, अपने पेट को भरने तन को ढापने, जीवन की रक्षा करने का प्रयास करते हैं, ज्ञान प्राप्त करते हैं जो समूह हमारे व्यवहारों को एक दिशा देता है, जो हमारे व्यवहारों का नियन्त्रण भी करता है, वही समाज है। इसमें हमारा व्यवहार तथा इसमें प्रविष्ट सभी व्यक्तियों का व्यवहार सामाजिक व्यवहार है। इसीके व्यवहारों, परिपाटियों, परिवर्तनों, विकास इत्यादि को हम सामाजिक प्रक्रिया कहते हैं और रौस के मत में यही समाजशास्त्र के अध्ययन के विषय हैं।

मैकाइवर के शब्दों में "समाज व्यवहारों और प्रणालियों का एक विधान है, शासन और सहयोग समूहों और विभक्तियों का, मानव व्यवहार के नियन्त्रणों और स्वाधीनताओं का एक ढांचा है। इस सदा परिवर्तनशील, पचीले विधान को हम समाज कहते हैं।

समाज एक अन्तःप्रेरित सदा विकासमय और परिवर्तनशील मानव समूह

इस प्रकार समाज ऐसे मनुष्यों का समूह है जो एक दूसरे के व्यवहार में आते हैं अर्थात् जो एक दूसरे की उपस्थिति में, एक दूसरे के व्यवहारों में प्रेरित होते हैं। पर उनकी प्रेरणा के ये विषय— दूसरे लोगों के व्यवहार— भी तो उनके अपने व्यवहारों की ही प्रतिक्रियाएं हैं। इसलिए ऐसे मनुष्यों का समूह जो एक दूसरे से अन्तःप्रेरित होते हों एक समाज कहलाता है। और ये प्रेरणाएं प्रतिक्रियाएं सामाजिक व्यवहार हैं। क्योंकि हम अपनी परिवर्तित अवस्था के कारण या अपने सहयोगियों या उपस्थितों के बदलने के कारण अलग-अलग शारीरिक प्रतिक्रियाएं करते हैं। इसलिए परिवर्तन इन सामाजिक व्यवहारों का मूल मन्त्र है। मनुष्य जीवित प्राणी है। जीवन को मृत्यु से पहचानने का एकमात्र साधन है विकास, परिवर्तन। अतः मानव समूह और उसकी अन्तःप्रेरणाएं, परिणामतः उसका समाज, सदा ही जीवित, विकासमय और परिवर्तनशील है।

एक दूसरे की उपस्थिति का ज्ञान अन्तःप्रेरणा का आधार परन्तु यदि समूह अन्तःप्रेरित नहीं, तो उसे समाज कैसे कहा जाए? अन्तःप्रेरणा तभी होगी जब हम अपने समीप के लोगों से प्रेरित होंगे जब उनकी उपस्थिति का हमें ज्ञान होगा। इसलिए यह आवश्यक है कि समाज के व्यक्तियों को एक दूसरे की की उपस्थिति का आभास हो।

एक दूसरे से परिचय, समानता और भिन्नता एक दूसरे की उपस्थिति का ज्ञान सामाजिक व्यवहार को जन्म भले ही दे दे पर उसे विकसित करने जारी

रखने के लिए एक दूसरे से जान पहचान होना, एक दूसरे के साथ मिलकर चल सकना अधिक आवश्यक है। मानव-मानव बहुत अशो में समान ह। उनके हित एक दूसरे से जुडे हुए है। सामाजिक जीवन से रहित वे नही जी सकते। हिता की इसी एकता और समानता और एक दूसरे से सम्बधित होने की इसी भावना से समाज का जन्म हुआ है।

एक समान होते हुए भी मानव मानव भिन्न हैं। भिन्न विचार, भिन्न व्यक्तित्व और भिन्न हित लिए हुए है। इसीलिए सघष, युद्ध, विरोध, प्राय सभी समाजों के अग ह। विविधता बहुमुखता और विकास सामाजिक व्यवहारो की विभिन्नता के परिणाम ह। पर यह विकास और विविधता मानव मानव की भिन्नता के ज्ञान के कारण और उस भिन्नता में भी एक दूसरे की भिन्नता को पहचान कर मिल सकने की भावना के कारण ही हो सके हैं। मानव-मानव में भिन्नता के बावजूद भी, जिसे गिडिंग्स ने "एकजातीयता की भावना" कहा ह। उस भावना के कारण ही मानव प्रगति कर सका है चूकि उसमें भिन्नता से समानता अधिक ह।

प्रधान हितों की प्राप्ति में सलग्न समूह इस समानता की ओर लक्ष्य करके ही फयरचाइल्ड न समाजशास्त्र क शब्द कोष में कहा ह "समाज उन मनुष्यो का एक समूह ह जो अपने कुछ प्रधान हितो की प्राप्ति में सहयोग कर रहे हो। इन हितो में आत्मरक्षा और मानव जाति का निरतर प्रसार प्रधान ह। इसमें जटिल सामिलित सम्बन्ध धारावाहिकता और पुरुषों स्त्रियो और शिशुओ के सम्मिलन को लिया जाता ह।

समुदाय (Community)

सहवास, प्रधान हितों की एकता और आत्मीयता इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज उन समानजातीय' मनुष्यो का समूह ह जो इस समानजातीयता के कारण समाज का अग ह। समाज का वह सीमित रूप जिसमें मनुष्य एक छोटी परिधि में एसी परिधि में, जिसमें एक साथ रहने के कारण उनका जीवन समान हो और सामूहिक हो जिसमें उनके सभी प्रधान हित पूरे हो पाए समाज से छोटा होने पर समुदाय कहलाता है। एक गाव को ही ले लें। सभी ग्रामीणो के चिर सहवास के कारण उनक हित करीब-करीब ग्राम तक ही सीमित हो जाते ह, सहवास के कारण ही उनमें एकता की भावना, एक स्थानीयता और अपनेपन की भावना का जन्म हो जाता है। ऐसे समूह को जिसमें सहवास प्रधान हितो की पूर्ति और अपनेपन की भावना हो, हम समुदाय कहते हैं।

सहवास एकात्मता के दृढ़ सूत्र का पोषक सहवास, अर्थात् साथ-साथ रहना समूह के जीवन को एक लडी म पिरो देता है। एक साथ रहने से सामाजिक आत्मीयता का एक दृढ़ सूत्र सबको बाध लेता ह। इन अर्थों में एक समुदाय

भौगोलिक इकाई और सांस्कृतिक एकता के घनिष्ठ सम्मिलन का परिणाम है। इस बात के बावजूद भी कि भौगोलिक या प्रादेशिक प्रभाव यातायात और संचार (Communication) के साधनों के विकास के कारण कम हो गया है सह-वासजनित एकता और घनिष्ठता से इनकार नहीं किया जा सकता।

ऐकात्मता सामुदायिक भावना का मूल परन्तु फिर भी केवल सहवास ही किसी समुदाय को जन्म दे पाए, ऐसा नहीं है। जिस सामाजिक सामान्यता और दृढ़ता से समुदाय में एक होने की अपना होने की, या गैर होने की भावना का जन्म होता है उसके लिए स्थानीय ही नहीं, मानसिक धारणाओं का ऐक्य भी आवश्यक है। जो लोग एक समुदाय से मानसिक एकता होने पर दूसरे स्थानों पर भी रहते हैं, वह भी अपने को उसी समुदाय का अंग मानने में गर्व करते हैं।

एक समुदाय एक समान जीवन और सहजीवन का क्षेत्र है और इस समान जीवन में यह आभास भी होना चाहिए कि समूह के अलग अलग व्यक्ति एक विशिष्ट समान जीवन की रीति को अपनाए हुए है, एक विशिष्ट जीवन प्रणाली में भाग ले रहे हैं सार्वजनिक कार्यों में योग दे रहे हैं।

समुदाय की कुछ परिभाषाएं फेयरचाइल्ड के अनुसार "एक समुदाय में एक क्षेत्र बड़ी मात्रा में अन्तर्व्यक्तिगत परिचय, एक दूसरे से जान पहचान सम्बन्ध, और सामाजिक एकता की विशिष्टता का, जो समुदायों को पड़ोसी समूहों से अलग करती है, होना आवश्यक होता है।'

आस्बोन के शब्दों में, 'ऐसे मनुष्यों का समूह, जो एक ही भौगोलिक क्षेत्रीय इकाई में रहते हों, कार्यक्रमों और हितों के समान केंद्र रखता हो और जीवन के महत्वपूर्ण कामों में सामूहिक रूप में सहयोग करता हो, समुदाय है।"

बोगार्डस के मत में "समुदाय एक ऐसा सामाजिक समूह है, जिसमें 'हम एक ही हैं' की भावना और एक विशेष क्षेत्र में निवास, यह दोनों तत्व विद्यमान हैं।'—

समिति (Association)

जहां सामान्य निवास और प्रधान हितों की उपलब्धि की सामूहिक चेष्टाएं समुदाय को जन्म देती हैं, वहाँ जब मनुष्य एक जगह न रहते हुए भी सभी प्रधान हितों की समानता न रखते हुए, कुछ खास हितों के लिए अपने को एक सम्बन्ध में बांध लेते हैं, ऐसे सम्बन्धों के औपचारिक संगठन को हम समिति कहते हैं।

कुछ विशेष हितों की प्राप्ति समिति का लक्ष्य स्पष्ट है कि अलग-अलग श्रेणियां, अलग-अलग हितों, अलग-अलग समुदायों या एक श्रेणी के लोग भी एक समिति के सदस्य हो सकते हैं। उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक चेष्टा होती है और इसी के लिए समिति का संगठन होता है। इस संगठन के कुछ सुनिर्धारित नियम-उपनियम होते हैं, जो या तो समुदाय के [illegible] होते हैं या

बनाए जाते ह ।

समिति की विशेषताए नियम, पदाधिकारी, सगठन और सम्पत्ति सगठन के न केवल निर्धारित नियम और नियमावली होती हैं, बल्कि समिति की चेष्टा को निर्दिष्ट करने के लिए, सामान्य हितो की प्राप्ति या रक्षा के लिए कुछ अधिकारी भी होते हैं। चदा भी इसीलिए इकट्ठा होता ह और इस प्रकार सदस्य अपना-अपना योग देकर सामितिक सम्पत्ति सगृहीत कर पाते ह ताकि सामान्य लक्ष्य प्राप्ति का प्रयत्न चल सके और चलता रहे। अत ऐसा सगठित समूह, जो एक सामान्य हित की प्राप्ति या रक्षा के लिए बनाया जाय और जिसके कुछ अपने ही विशिष्ट पदाधिकारी हो 'अपनी ही आत्मसीमित शासन व्यवस्था हो, समिति कहलाता है ।

सस्थाएं (Institutions)

प्रधान हित या हितो की समानता के कारण समुदाय बनते हैं या समितियां बनाई जाती ह । परन्तु उन हितो की प्राप्ति के लिए कुछ मान्य प्रणालियां, कुछ सब स्वीकृत तौर-तरीके अपनाए जाते है। यह प्रणालियां या व्यवहार सस्थाए कहलाते ह ।

सस्थाए व्यवहार प्रणाली के सवमान्य रूप इन अर्थों में जो विभिन्न चेष्टाए समाज और स्वीकृत ढगो पर हम अपने सामूहिक लक्ष्यो की प्राप्ति के लिए करते हैं वही सस्थाए हैं। चाहे प्रजनन के लिए विवाह की प्रणाली, चाहे क्रय और विक्रय के सगठन के लिए बाजार और उसके नियम चाहे अपराधी को दण्ड देने के लिए जेल, यह सभी सस्थाए ह । यह सस्थाए सामूहिक क्रिया या व्यवहार की विशिष्टताए होती ह ।

सस्कृति प्रणालियों के समूह गिलिन ने कहा ह एक (सामाजिक) सस्था सस्कृति प्रतिमानो (Patterns) का कार्यात्मक समूह ह, (क्रियाएँ, विचार सम्मान और सास्कृतिक साधन सभी इसके अतगत हैं) जो कुछ स्थायी होता ह और जिसका जन्म अनुभव होने वाली सामाजिक आवश्यकताओ की पूर्ति क लिए हुआ ह ।' समाजशास्त्र के शब्दकोष म सस्था का अथ यह ह "सस्था एक स्थायी बहुप्रथित, एकीकृत और सगठित व्यवहार प्रणाली ह जिसके द्वारा सामाजिक नियत्रण किया जाता हैं और जो बुनियादी सामाजिक मांगों या आवश्यकताओं का पूरा करता है।"

सस्था की विशेषताएं सस्था की निम्न मुख्य विशेषताए हैं —

(१) व्यवहार प्रणालियो का सगठित समूह या रूप एक सस्था ह । हैमिल्टन ने इसे 'सामाजिक प्रयोगो का समूह' कहा ह । इस प्रकार सस्थाए सारे सास्कृतिक

विधान की अलग-अलग इकाइयों के तौर पर काम करती है।

(२) स्थायित्व या या स्थिरता संस्था का स्वभाव है। जब तक यह सर्व-स्वीकृत है यह प्रचलित रहेगी, पर परिवर्तनशील समाज में यह भी समय पाकर बदलेगी। परिवर्तन का प्रभाव एक संस्था पर बहुत देर में होता है।

(३) प्रत्येक संस्था के कुछ सुनिर्धारित लक्ष्य या उद्देश्य होते हैं।

(४) सांस्कृतिक विकास और सांस्कृतिक विरासत के लिए, व्यक्ति की शिक्षा और सामाजिक जीवन में उसके सहयोग के लिए ये व्यवहार प्रणाली समूह बहुत लाभदायक होते हैं।

(५) प्रत्येक संस्था के कुछ प्रतीक या चिह्न होते हैं।

(६) प्रत्येक संस्था की कुछ निश्चित परिपाटी या विधान होता है।

(७) संस्था सामाजिक नियंत्रण का एक साधन होती है।

समाज, समुदाय, समिति और संस्था का अंतर

समाज उन मनुष्यों का वृहत् समूह है जिनको एक दूसरे का ज्ञान है, और जो समानताओं के कारण एक दूसरे को प्रेरित करते हैं।

ऐसा समाज जब एक ही स्थान पर रहता है रहते रहते प्रधान हितों की उपलब्धि सहयोग द्वारा करता है और अपनेपन की भावना से ओत प्रोत हो जाता है समुदाय कहलाता है।

स्पष्ट है, प्रत्येक समुदाय समाज हो सकता है, पर प्रत्येक समाज समुदाय नहीं। इनका बड़ा अंतर घनिष्ठता, ऐक्यात्मता हितों की एकता और समान जीवन की मात्रा में है।

मनुष्यों का अंतःप्रेरित समूह जब कुछ प्रधान हितों को पाने के लिए संगठित होता है समिति कहलाता है। इसके अपने कार्यकर्ता, सम्पत्ति और नियम होते हैं। एक समिति एक समुदाय से इस रूप में भिन्न है कि घनिष्ठता की वह पराकाष्ठा जो सामुदायिक भावना का प्राण है, समिति में नहीं होता। समुदाय का तो व्यक्ति पूर्णतः अंग होता है। वह हर पहलू से उसका होता है। समिति में वह केवल कुछ हितों के लिए अपनापन महसूस करता है। अतः अपनेपन की भावना कम होती है। न ही उसमें समान सहचर जीवन की ही समता, रहन सहन खान पान रीति रिवाज की एकता ही आ पाती है। जहां समाज बनने के लिए एक दूसरे की उपस्थिति का ज्ञान समानता का आभास ही पर्याप्त है, समिति के लिए एक खास या कुछ खास हितों की एकता अनिवार्य है। पर समिति की तरह समाज के नियमबद्ध व्यवहार और निश्चित कार्यकर्ता नहीं होते।

एक संस्था एक समाज, समुदाय या समिति का किसी सामूहिक व्यवहार प्रणाली या प्रणालियों के समूह का नाम है। किसी एक सामाजिक मांग को पूरा

करने के लिए इसकी उत्पत्ति होती है। इसलिए यह इन तीनो समूहो का साधन है, पर कितनी ही बार यह स्वय ही पवित्रता, पुरातन सत्ता की बात करके अपनी श्रेष्ठता जताती है, हालाकि यह तो स्वय समाज समुदाय और समिति की शिशु है। सस्थाओ के हम अग नही होते। समुदाय के कुछ अपने हम हो सकते है इसमें कुछ तो घनिष्ठता है, सस्था में इतनी भी नही है।

एक समुदाय के कुछ रीति रिवाज ही होते है। पर एक समिति की अपनी सम्पत्ति इत्यादि भी होती है। सस्था आज उससे भी अधिक महत्व ले रही है। सस्था तो सामुदायिक या सामितिक जीवन की एक छोटी इकाई है।

नस्ल (Race)

नस्ल का विचार जब मानवशास्त्रियो ने शुरू में रखा उसका आधार प्राणिक या रक्त-शुद्धि था। पर एसी नस्लें मिल जाना जो शताब्दियो से बिल्कुल अलग-अलग रहती है, जिनकी दूसरी नस्लो के रक्त से मिलावट न हुई हो, सभव नही है। अत इस अर्थ में कोई शुद्ध नस्ल नहीं मिल सकेगी।

पर पुरातन काल में एक ही पुरखे की सतान एक ही स्थान में पली, एक ही भौगोलिक वातावरण और परिस्थिति के प्रति उसने अपने को बदला बनाया, सतुलित किया और इस प्रकार एक भाषा, एक सस्कृति व्यवहार और मर्यादा का उदय हुआ। इस प्रकार प्राणिक और सास्कृतिक दोनो आधार मिल गए, और परिणामत नस्ल एक प्राणिक सास्कृतिक आधार पर समझी जाने लगी। परन्तु स्थान परिवर्तन (interbreeding) अन्य जातियो से मिश्रण चुनाव (selection) और अत परिवर्तना (mutation) इत्यादि कारणो ने इन सास्कृतिक विशेषताओ को भी अक्षुण्ण नही रखा।

फिर भी अज्ञात के भय से जो आदिम अवस्था में रहने वाला था, वे अधिक मुक्त नहीं हो पाए। प्रजनन के लिए विवाह का रूप रूढ़ि द्वारा निर्धारित करके उन्होने कुछ मात्रा में रक्त-शुद्धि रखी। 'अपने ही समूह में विवाह करो' के रिवाज और एक ही सामाजिक और प्राकृतिक वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया के कारण पर्याप्त एकता, निरन्तरता पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रही। और इसी आधार पर कुछ शारीरिक विशेषताओ और रक्त-सम्बन्धी गुणो को लेकर लोग अलग-अलग नस्लो की बात कहते हैं। मजूमदार के शब्दो में 'यदि मनुष्यो का कोई-समूह कुछ सामान्य शारीरिक गुणो या चिन्हो के कारण दूसरे समूहो से विशिष्ट हो तो वह अपने सदस्यो के बहुत दूर स्थानो में बिखरे होने पर भी एक नस्ल कहलाएगा। परन्तु यह नस्ली भेद ऐसे महत्वपूर्ण आनुवशिक गुणो पर आधारित होने चाहिए, जिन पर वातावरण का कोई भी प्रभाव नहीं पडा है।'।

जो लोग सस्कृति और नस्ल को आपस में मिला देते है, या राष्ट्र और नस्ल को

मिला दन है जसे कि आयर बीय ने किया, मै प्राणिक तत्व को छोड कर, कृत्रिम सामाजिक तत्व का लेते हैं । पर हमें सदा याद रखना हागा कि नस्ली भद का आधार प्राणिक और शारीरिक हो है ।

समूह (Group)

निश्चित मानस व्यवहार प्रणाली आवश्यक कोई भी दो मनुष्य जिनमें मानसिक अत क्रिया या अन्तव्यवहार का एक निश्चित आकार या निश्चित प्रणाली विद्यमान हो, एक समूह कहला सकते हैं । ऐसे एक समूह का न केवल समूह के सदस्यों द्वारा बल्कि दूसरे लोगों द्वारा भी एक पृथक इकाई के रूप में माना जाता है । इस इस प्रकार की इकाई मानने का कारण इसका एक विशेष सामूहिक व्यवहार है ।

सामाजिक सम्बन्धों से समूह का उदय एक निश्चित मानसिक व्यवहार प्रणाली की स्थापना तभी होगी जब कुछ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित होंगे । इसी को देखकर मकाइवर ने मनुष्यों के किसी भी ऐसे समूह को, जो एक दूसरे के साथ विशिष्ट सामाजिक सम्बन्ध में आ जाये, समूह कहा है । इस परिभाषा के अनुसार मे समूह जो केवल गिनती और परीक्षण के लिए गिन लिए जाते हैं, जैसे स्त्री समूह या युवक समूह समूह नहीं कहे जा सकते ।

तीसरा अध्याय
प्राणिक विकास
BIOLOGICAL EVOLUTION

पशु जगत् में मानव का स्थान

पशु जीवन की श्रेणी-व्यवस्था में मनुष्य का क्या स्थान है ? पृथ्वी के इतिहास काल में उसका क्या स्थान है ? मानव जाति का प्राणिक विकास किस प्रकार हुआ ? इन प्रश्नों के उत्तर हमें मानव जाति के बहुविध सामाजिक तथ्यों को अधिक अच्छी तरह समझने में पर्याप्त सहायता प्रदान करते हैं क्योंकि वह मनुष्य के प्राणिक शरीर की बुनियादी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हैं। मनुष्य की शारीरिक और मानसिक विशेषताएं वह ढांचा है जिन पर कि उसके सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था खड़ी हुई है। उसकी प्राणिक विचित्रतायें और नस्ली विभिन्नतायें उसकी आदतों रिवाजों परम्पराओं, आविष्कारों तथा संगठित सामाजिक जीवन को जानने में मदद पहुंचाती है। मनुष्य पशु जगत् का एक सदस्य है इसमें सभी सहमत है। यद्यपि वह पशु है फिर भी वह बहुत-सी बातों में पशुओं से भिन्न है।

शारीरिक मानवशास्त्र (Physical Anthropology) का मुख्य कार्य प्रकृति में मनुष्य के स्थान उसके विकास, पशु जगत् में उसकी स्थिति तथा उसकी आनुवंशिक (Heredity) विभिन्नताओं का अध्ययन करना है। मानवशास्त्र की कुछ खोजें इस बात पर अच्छा प्रकाश डालती हैं कि मनुष्य के अन्दर एक विशिष्ट व्यवहार क्यों विकसित हुआ तथा नस्ल और संस्कृति का क्या सम्बन्ध है।

प्राणिशास्त्री शारीरिक श्रेणी विभाजन

किसी वर्ग के रक्त सम्बन्ध प्रकट होते हैं पशुओं का पृथक् के आधार पर जिनसे कि है। इस योजना में मनुष्य का स्थान बहुत कुछ निश्चित है। वर्तमान में जावित मनुष्य की जाति (Species) होमोनिडि वर्ग (Hominidae) की बची जाति है। विस्तृत श्रेणी विभाजन से संकुचित श्रेणी विभाजन की ओर अग्रसर हो प्राणिशास्त्री हमें बताते हैं कि मनुष्य बहुकोषीय पशु (Metazoa), पृष्ठवंशी (Vertebrate) अर्थात् जिनके अन्दर रीढ की हड्डी है स्तनधारी (Mammals) प्रधानवर्ग (Primate) मानवसम प्रधानक (Anthropoid Prim

ate) और मानव वर्ग था है। मानवसमों में पुराने विश्व विभाजन के अनुसार शारीरिक दृष्टि से मनुष्य वन्दरों गिबन औरंगुटान शिपाजी, गोरिल्ला से घनिष्ठ तया सम्बद्ध है।

मनुष्य जाति का विकास

(१) प्रादिनूतन (E cene) युग में आदि स्तनधारी अन्य स्तनधारियो से इस बात में भिन्न थे कि वह पड़ पर पजा से चढ़ने के बजाय उसे हाथ से पकड़ते थे। उनकी अन्य विशेषताएं विशेषतः थे अध्ययन का विषय है।

(२) वन्दर विकासवाद की दूसरी अवस्था का दर्शाते हैं। इनमें इन्द्रियां दिन के समय में पेड़ों में वास के अनुकूल बन गई। सूंघने की शक्ति कम हो गई, शरीर के बाल समाप्त हो गये, दोनों आंखों से एक साथ देखने और रंग पहचानने की दृष्टि विकसित हुई, बाहरी कान छोटा हो गया तथा आवाज को जानने के लिए सिर को इधर-उधर घुमाना सम्भव हुआ।

(३) लगूर अवस्था वह है जब कि हाथ व पुट्ठों में ऐसे हेर-फेर हुए जिनसे पेड़ों पर सीधा रहना शुरू हुआ। पशुओं के लम्बे हाथ छोटा पड़ तथा आदमी जैसी उनकी आतें भी व्यवस्थित होने लगी।

(४) मानवीय अनुकूलता में ऐसे विकासगामी परिवर्तन निहित थे जिनसे पृथ्वी पर पैर के बल खड़े होना सम्भव हुआ। कुछ बन्दर, जैसे कि अफ्रीका के बबून चौपाये के रूप में ही जमीन पर रहने लगे। इन परिवर्तनों में उन शारीरिक अनुकूलताओं का समावेश है जिनमें कि मानव जाति के मुख्य गुण निहित हैं तथा जिन्होंने कि मनुष्य को जमीन पर सीधा खड़े होने में समर्थ बनाया। इसे पहों पर वास करने वाले आदि स्तनधारियों की पृष्ठभूमि में देखना जरूरी है। इस तरह मनुष्य में बहुत से मानवसम वानरमानव के लक्षण हैं किन्तु उनके संशोधन द्वारा वह उनसे पृथक है।

मनुष्य और उनके निकट सम्बन्धी ... जन्तु बिना पूंछ के लंगूर

वानरमानव में मनुष्य से शिपांजी और गोरिल्ला प्यार करते हैं। इनमें से शिपांजी और गोरिल्ला मनुष्य से सबसे अधिक मिलते हैं। यद्यपि यह पशु हमें मनुष्य की हास्य विकृतियां दिखाई देते हैं पर इनमें तथा मनुष्यों में घनिष्ट शारीरिक सादृश्य है। इनके शरीर की हर एक हड्डी और अंग मनुष्य में मिलता है। मानवसम लंगूरों के कपाल यद्यपि छोटे और सरल होते हैं तो भी मूलतः मनुष्य के समान होते हैं तथा उनकी मानसिक क्रियाएं प्यार गोष माल व दक्ष के समान होती हैं। उनके संवेग या उद्गम भी मनुष्य के समान होते हैं यहां तक कि वह मनुष्य की ही बहुत-सी बीमारियों से पीड़ित होते हैं। उनके रक्त तथा मनुष्य के

रक्त में सूक्ष्मतम परीक्षणों से भी भेद करना कठिन है। यहा तक कि नारी चिंपाजी और गोरिल्ला को मासिक धर्म भी होता है। वास्तव में चिंपाजी उसी जीवन चक्र से गुजरते हैं जिससे कि मनुष्य, अन्तर केवल इतना ही है कि उनके बढने की गति तेज होती है तथा उनकी उम्र कुछ कम होती है।

लगूर और मनुष्य के बीच यह समानताए इस बात को सिद्ध करती है कि यह दोनो निकटतम सम्बन्धी है, फिर भी यह स्मरण रखना जरूरी है कि मनुष्य वर्तमान बन्दरो और लगूरो का वशज नही है। मनुष्य की विशिष्ट विशेषताओ के अध्ययन से हमें यह पता लगेगा कि यद्यपि मनुष्य और बन्दर में अन्य पशुओ की तुलना में सबसे अधिक समानता है फिर भी इनमें एकवशीय (Lineal) सम्बन्ध नही है। विकासवादी दृष्टि से सम्भवत लगूर और मनुष्य किसी समान पुरखा की ही सतान है। यह 'खोयी कडी' (Missing link) जिसको कि अभी तक वैज्ञानिक नही जान पाये है कुछ भी हो, यह सिद्ध करती है कि लगूर और मनुष्य के बीच यह विभिन्नता कम-से-कम कई लाख साल पहले घटी होगी। अत वर्तमान लगूर हमारे बहुत दूर के चचेरे भाई ठहरते हैं। फिर भी इन चचेरे भाइयो से समानता इस माने में मनोरजक है कि यह हमें इस बात की सुविधा प्रदान करती है कि हम उन बुनियादी विभिन्नताओ को समझ सकें जो कि मनुष्य को उन कार्यों के करने के योग्य बनाती है जो कि लगूरो तथा अन्य पशुओ के बूते के बाहर है। यद्यपि चिंपाजी और गोरिल्ला की कम-से-कम दो जातियां हैं परन्तु मनुष्य की केवल एक ही जीवित जाति है। इस तरह मनुष्य के अध्ययन में हम एक ही प्राणिक वर्ग का अध्ययन कर रहे है जिसके उपवर्ग आपस में प्रजनन क्रिया सम्पन्न कर सकते है।

मानव जाति की विशेषताए

यह तथ्य कि मनुष्य एक पशु है, इस बात की ओर सकेत करता है कि [illegible] उन्ही आन्तरिक और बाह्य आवश्यकताओ द्वारा नियन्त्रित है जो कुछ प्रमुख विशेषताओ पर विचार [illegible] निर्भर है। फिर भी मनुष्य और उसके

१ बडा मस्तिष्क मनुष्य की सबसे प्रमुख विशेषता उसके [illegible] में बनावट की और [illegible] नाडी सस्थान (Nervous System) है। मस्तिष्क नाडी सस्थान सबसे विकसित भाग है। पशु जगत् में इसका चरम विकास मनुष्य में हुआ है। कुल वजन में मनुष्य का दिमाग अन्य समस्त मानवसम वानरो जिनका कि अपने वजन के अनुपात में सबसे बडा मस्तिष्क है से भी बडा है। एक पुरुष कपाल का औसत आयतन १,४५० वर्ग सेन्टीमीटर और स्त्री कपाल का १,२०० वर्ग सेन्टी

मीटर हैं जब कि सबसे बड़े मानवसम लंगूर, गौरिल्ला का केवल ५०० घन सेन्टीमीटर लगभग एक तिहाई है।

मनुष्य का मस्तिष्क बड़ा ही नहीं बल्कि बहुत जटिल भी है। बृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) जो कि उच्च मानसिक प्रक्रियाओं का संचालक है, अन्य पशुओं में अधिक विकसित होता है। बृहत् मस्तिष्क करोटि (Cortex) या सतह अधिक लिपटी हुई तथा अन्य पशुओं की तुलना में अधिक बड़ी होता है। यह अनुमान लगाया गया है कि मानव बृहत् मस्तिष्क करोटि में कम-से-कम १० अरब नाड़ियों के छोर जुड़े हुए हैं जिनके अन्तःसम्बन्धों से अनन्त प्रकार की व्यवहार प्रतिक्रियायें संभव हैं।

२ सीधे खड़ा होना मनुष्य की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि वह सीधे अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। मनुष्य के सीधे खड़े होने ने उसके दोनों हाथों को शरीर का भार संभालने से छुट्टी दे दी है। इससे केवल श्रम की ही बचत नहीं हुई, प्रत्युत इससे बाहुओं को विभिन्न प्रकार के काम करने तथा वातावरण को अपने अनुकूल बनाने की छूट मिल गई। चतुष्पाद पशुओं को अपने निकटवर्ती वस्तुओं को सूंघ, सूंघ, चख अथवा काटकर मलिन और सीमित प्रकार से छूना पड़ता है, जब कि मनुष्य उन्हें हाथ में उठाकर उनकी समुचित परीक्षा कर सकता है। बड़े लंगूर भी स्वभावतः दो पैरों पर नहीं चलते, जमीन पर चलते समय वह अपने दोनों हाथों का सहारा लेते हैं। दो महत्वपूर्ण शारीरिक परिवर्तनों ने मनुष्य को सीधा खड़े होने में समर्थ बनाया है।

(क) मनुष्य का पैर भारवहन करने के एक विशिष्ट और स्थिर अंग के रूप में विकसित हो गया है। मनुष्य के पैर में पकड़ने की शक्ति जो कि वानर मानव के पैरों का प्रमुख लक्षण है, समाप्त हो गई। टखने की हड्डियों ने एक चपटा फैला रूप धारण कर लिया है बड़ी उंगली और छोटी उंगलियां सम्मिलित हो गई हैं एड़ी की हड्डी लम्बी हो गई तथा पैर का घटाव बढ़ गया है। इन सब विशेषताओं ने मनुष्य को जमीन पर सीधा खड़े होने में समर्थ बनाया। इसके विपरीत, लंगूरों के हाथ जैसे पैर पेड़ों के जीवन ...

पैर सीधा खड़े होने को समर्थ बनाने में दूसरा विकास रीढ़ की हड्डी का है जो कि अन्य पशुओं में नहीं पाये अंग्रेजी अक्षर S की आकृति वाला घुमाव है जो कि अन्य पशुओं में नहीं पाया जाता। इसके अतिरिक्त, श्रोणि (pelvis) के परिवर्तनों ने पैरों को लम्बा ... सीधी दशा में शरीर के भार को वहन करने की सामर्थ्य उत्पन्न की। मनुष्य की रीढ़ की हड्डी (vertebral column) एक ओर से देखने में S

वक्ररेखा की भांति दिखाई देती है जिसके दो झुकाव (curves) आगे की ओर और दो पीछे की ओर हैं। अग्रगामी झुकाव शरीर के वजन को बांटने तथा सन्तुलन को कायम रखने में योग देता है। लंगूरों के पास इस प्रकार के झुकावों के अभाव में ऐसी कोई शारीरिक प्रणाली नहीं जिससे कि वह धड़ के भार को पैरों के गुरुत्वाकर्षण केन्द्र पर संभाल सके। इसके लिये उन्हें पेशियों पर जोर देना पड़ता है। मनुष्य बिना पेशियों पर जोर दिए ऐसा कर सकता है।

३ **हाथों का अधिक लचकीलापन** अन्य वानर-मानवों की भांति मनुष्य को पकड़ने के लिए हाथ प्राप्त हैं किन्तु अन्तर यही है कि मनुष्य में इनका लचकीलापन बहुत विकसित है। हम अपने अंगूठों की भीतरी तह को सब अंगुलियों की तह से मिला सकते हैं। इसके अतिरिक्त, अंगूठे और अंगुलियां अपेक्षाकृत लम्बाई में बढ़ गई हैं तथा हाथ का शारीरिक गठन इतना सुन्दर है जैसा कि किसी भी वानरसम मानव में नहीं पाया जाता।

४ **सम्भाषण योग्यता** मनुष्य का अन्य महत्वपूर्ण लक्षण उसकी स्पष्टतः बोलने की योग्यता है। शारीरिक दृष्टि से यह योग्यता बाहुतः सीधी देह और वृहत् मस्तिष्क से सम्बद्ध परिवर्तनों का परिणाम है। अन्वेषण और कार्य के लिए मुक्त हाथों ने मानव प्राणी के लिए लम्बी, बाहर निकली थूथनी की आवश्यकता को समाप्त कर दिया। इसीलिए मनुष्य के जबड़े बड़े लंगूरों की तुलना में अपेक्षाकृत छोटे और कम बाहर निकले हैं। लंगूरों में वृहत् निचला जबड़ा सामने के दांतों के नीचे की एक हड्डी की तह से संरक्षित होता है जिसे कि वन-नर पटटिका (Semian plate) कहते हैं जो कि जीभ को स्वाधीनतापूर्वक इधर-उधर घुमाने-फिराने में सबसे बड़ी बाधक है। मनुष्य में यह बाधा नहीं है, उसकी जीभ सरलता से मुंह के अन्दर घूमती है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य का बड़ा मस्तिष्क लंगूरों की तुलना में बड़े कपाल में रखा है। निचला जबड़ा ठीक कानों के छेदों के नीचे कपाल के साथ सीधा जुड़ा हुआ है। अपेक्षाकृत चौड़े कपाल का अर्थ निचले जबड़े की हड्डी का चौड़ा होना है। मनुष्य में निचले जबड़े को यदि ऊपर से देखा जाय तो उसके दोनों पार्श्व (side) V की भांति दिखाई देते हैं। लंगूरों में जबड़े के दोनों पार्श्व बहुत कुछ समानान्तर U जैसे दिखाई देते हैं ये समस्त शारीरिक विशेषताएं मनुष्य को आवाज निकालने की योग्यता में योग देती हैं। पर वास्तव में बोली विचारों के प्रतीकों का एक समूह मात्र है। बिना अति विकसित नाड़ीयन्त्र और मस्तिष्क के मनुष्य का असाधारण वाक्‌यन्त्र विशेष काम न आता। यह तथ्य इससे पुष्ट होता है कि मूर्ख मानव (Idiots) स्पष्ट बोलने में असमर्थ होते हैं। उनके मुंह और गले सामान्य होते हैं, किन्तु मस्तिष्क और नाड़ीयन्त्र अपूर्ण होता है। यह सम्भव है कि एक शिपाजी, स्पष्टतः, यद्यपि कुछ मोटी आवाज में, मानव

बोली की सब ध्वनियां को निकाल सके, किन्तु यह लगभग निश्चित है कि मस्तिष्क के अपूर्ण विकास के कारण उसके लिए बोलना असंभव है। मानव बोली श्रवण प्रभावों और वाक् अभिव्यक्ति के बीच सुन्दर समन्वय चाहती है, उससे अधिक वह विचार चाहती है। बावजूद इसके कि मनुष्य जो यान करता है उसका बौद्धिक महत्त्व कम है पर उसका समाजशास्त्रीय महत्त्व अत्यन्त अधिक है। चूंकि बोली द्वारा समव बनाये गए व्यक्तियों के बीच अन्त संवाद द्वारा ही सामाजिक जीवन से सम्बद्ध व्यवहार का बड़ा अंश क्रियान्वित होता है।

अन्य विशेषताएं उपर्युक्त मुख्य विशेषताओं के अतिरिक्त, मनुष्य में निम्न गौण विशेषताएं हैं। मानव शरीर पर सापेक्षतया बाल नहीं है। प्राकृतिक आवरण का अभाव और शारीरिक प्रक्रिया उसके शरीर की बहुत-सी गर्मी को नष्ट कर देते हैं परिणामत उसे ठंडे प्रदेशों में रहने के लिए कृत्रिम आवरण की जरूरत पड़ती है। मनुष्य के पास अन्य स्तनपायियों की भांति शिकार योग्य दांत नहीं होते इसकी क्षतिपूर्ति वह सुरक्षा के कृत्रिम साधनों के आविष्कार से करता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य की नाक का उठा हुआ सेतु (bridge) तथा मांसल द्वार ऊपर के होंठ के बीच का गड्ढा, नीचे के होंठ का झिल्ली तक उसका विस्तार तथा बाहर निकली ठोड़ी उसे अन्य वानरों से पृथक् करती है यद्यपि ऐसा कहा जाता कि कुछ वानरों में भी पर्याप्त ऊंची नाक और ठोड़ियां पाई जाती हैं।

इस सम्बन्ध में मनुष्य की कुछ विशिष्ट शरीर क्रियात्मक विशेषताओं का और भी जिनका कि सामाजिक जीवन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है, उल्लेख करना आवश्यक है। अन्य समस्त मानवसम वानरों की तुलना में मनुष्य का शैशवकाल सबसे दीर्घ होता है, वह उस समय सबसे अधिक असहाय तथा दूसरे व्यक्तियों की देख रेख पर अवलम्बित होता है। इन तथ्यों का मानव परिवार और सामाजिक जीवन पर विशिष्ट प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त, मनुष्य नाना प्रकार के पदार्थ, मांस अनाज, घास, फल, फूल इत्यादि खाकर जीवित रह सकता है। उसे किसी वस्तु के प्रति सहज घृणा नहीं है इसलिए उसे कुछ भी खाने पीने का अभ्यस्त किया जा सकता है।

सृष्टि में मनुष्य का आगमन और विकास

तुलनात्मक दृष्टि से पृथ्वी पर यथार्थ मानव (Homo Sapiens) का अवतरण पर्याप्त बाद की घटना है। पृथ्वी की पृष्ठभूमि में मनुष्य का संक्षिप्त अध्ययन हमें उसकी वर्तमान अवस्था और व्यवहार को समझने में सहायता प्रदान कर सकता है।

पृथ्वी का इतिहास भूगर्भशास्त्रियों ने पृथ्वी के इतिहास को विभिन्न कल्पों और उपयुगों में बांटा है। पृथ्वी की आयु आंकने के लगभग चालीस तरीके उन्हें

ज्ञात ह और उनके द्वारा प्रयुक्त किए गय ह, जिससे साक्षा में उनके हिसाब में कुछ अन्तर पडता है। फिर भी विभिन्न युग की सापक्ष आयु और सापेक्ष तिथियो के बारे में प्राय विभिन्न तरीके प्रयुक्त करने वाले सभी अन्वेषक एकमत ह। पृथ्वी की आयु पता लगाने का सम्भवत सबसे उपयोगी तरीका रेडियो एक्टिविटी के अध्ययन पर आधारित है। इस साक्षी के अनुसार पृथ्वी की आयु २,०००,००० ००० वर्ष ठहरती ह। अन्य साक्षियों पर आधारित अल्पतम अनुमान १ ००० ००० ००० वर्ष है। दोनों ही अनुमानो के अनुसार लगभग ३० प्रतिशत समय आदि जीवीय-काल (Archeoz ic Era) को वह काल जिसम कि हमें कोई भी जीवित शरीर नहीं मिलते पर जिसमें स्वभवत एककोषीय जीवन (Unicellar Life) का विकास हुआ है, दिया गया ह। अगला काल सुपुराजीवीय काल (Proter ozoic) था, जिसमें अपष्ठवंशी जीव (Invertebrate Life) घोघे कीडे, इत्यादि प्रकट हुए पृथ्वी की आयु का लगभग २० प्रतिशत भाग घेरता है। तीसरा काल पुराजीवीय या प्राथमिक (Paleozoic or Primary) काल ह, जिसमें पष्ठवंशा (Vertedrate) मछलिया, ग्राह तथा अस्थिमत्स्य उभयचर (Amphibian) और सरीसृप (Reptiles) विकसित हुए पृथ्वी के आयु क लगभग अन्य ३० प्रतिशत भाग का यह काल घेरते ह। चौथा काल मध्यजीवीय या द्वितीयक (Mesozoic or Secondary) या सरीसृप युग कहलाता है, जो लगभग ११ प्रतिशत भाग घेरता है। इस युग में वायवीय तथा पार्थिव सरीसृप और जलचारी विकसित हुए, इसी युग में प्रथम चिडिया और आदिकालीन छोटे स्तनधारी (Mammals) भी प्रकट हुए।

परवर्ती युग को नूतन जीवन (Cenazoic) आधुनिक जीवन या स्तनधारी युग कहते हैं। इसे छ कालो में बाटा गया ह। यह अनुमान किया जाता ह कि यह अवस छ करोड वर्ष पूर्व शुरू हुआ। इसम सबसे पहला काल प्रादिनूतन (Eocene) कहा जाता ह, जिसमें जेरवाले (Lutberian or Placental) स्तनधारी पहले नर वानर और कीटभोजी (Insectivora) प्रकट हुए। दूसरा काल, अल्पनूतन (Oligocene) था, जिसमें पहले छोटे मानव सदृश वानर (Anthropoid Apes), वतमान स्तनधारी के अग्रगामियो का आगमन हुआ। तीसरा काल मध्यनूतन (Miocene) था जो कि दो से चार करोड वर्ष पहल शुरू हुआ, जिसमें वतमान महापुच्छहीन वानरो के सामान्य पूर्वज तथा सभवत अब तक न खोजे गये भूमिवासी दा पर वाले मानव सदृश रूप प्रकट हुए। चौथा काल अतिनूतन (Pliocene) ह, यदि हम वतमान अनुमान सही मानें तो यह आज से लगभग दस लाख से बीस लाख वर्ष पूर्व समाप्त हो गया। पाचवें काल प्रतिनूतन या हिम युग (Pleistocene or Glacial Epoch)

ने उत्तरी गोलार्द्ध को चार हिम खण्डों से ढकते-बढ़ते देखा। इसी काल से हमें मानव सदृश जीवों के सर्व प्रथम अवशेष प्राप्त होते हैं।

प्रतिनूतन या हिमयुग में मनुष्य मनुष्य के रूप में प्रकट और विकसित हुआ। अभी तक प्राप्त ज्ञान के आधार पर हम इतना कह सकते हैं कि प्रतिनूतन युग के समाप्त होने से पहले पृथ्वी पर तीन प्रकार के मुख्य मानव वर्ग पैदा हुए, जिनमें से आधुनिक मनुष्य को छोड़ आज कोई भी जीवित नहीं मिलता।

(१) वानर मानव (Pithecanthropus) प्रथम वर्ग में था तीन प्रकार के वानर-मानव थे जो कि दक्षिणी अफ्रीका में रहते थे। इन प्राणियों के सापेक्षतया छोटे मस्तिष्क थे और निश्चित रूप से यह आधुनिक मनुष्य की तरह न थे। फिर भी यह वानरों से मानव की दिशा में काफी आगे बढ़ चुके थे, दो पैरों पर चलने तथा जमीन पर रहने लगे थे।

(२) प्राचीन मानव दूसरे वर्ग को हम प्राचीन मानव कह सकते हैं। यह विश्व के विभिन्न भागों में प्रकट हुए और यह मानव की विभिन्न नस्लों के थे। जावा के वानर मानव और उनके साथी पेकिंग के पास प्राप्त चीनी मानव दक्षिणी इंग्लैंड के पिल्टडाउन स्थान से मिले उषा मानव तथा पश्चिमी योरोप, निकटपूर्व और मध्य रूस में बिखरे नीनडरथल घाटी की खुदाई में प्राप्त नीनडरथल मानव (Neanderthal) के अवशेष इसी श्रेणी में आते हैं। इस बात की पर्याप्त साक्षी उपलब्ध है कि जहां-जहां नीनडरथल और वर्तमान मनुष्य सम्पर्क में आये उन्होंने आपस में सन्तानोत्पत्ति की। प्रतिनूतन या हिम-युग के अन्तिम चरण में फिलस्तीन में, विशेष रूप से कामल पर्वत के निकट ऐसा ही हुआ।

(३) आधुनिक मानव तीसरे वर्ग में आधुनिक मानव का समावेश है, जो अपने वर्तमान रूप में आज से २५ ००० साल पहले पश्चिमी योरोप और भूमध्यसागरीय प्रदेश में प्रकट हुआ। योरोप में आधुनिक मानव के प्रारम्भिकतम रूप क्रोमैग्नौन स्थान में प्राप्त क्रमैगनौन मानव (Cro magnon) थे। वह कहां से आये वह किनके वंशज थे यह अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ है। उनके आगमन से उनसे पहले के नीनडरथल तथा अन्य पूर्वरूप लुप्त हो गये। तब से आज तक समस्त पृथ्वी पर आधुनिक मानव का ही आधिपत्य और विस्तार है।

अतिनूतन के आखिरी समय से हमें मनुष्य की प्रारम्भिकतम संस्कृति के अवशेष मिलते हैं। यह पत्थर के औजार हैं या वह चूल्हे हैं जहां आग जलायी जाती थी। वानर मानव (Pithecanthropus) भी दो पैरों पर खड़े होते थे बोल सकते थे तथा छोटे-छोटे सामाजिक समूहों में रहते थे। प्रतिनूतन या हिम युग में रहने वाले नीनडरथल मानवों की पत्थरों और हड्डियों के औजारों की संस्कृति, जो कि भूमध्य सागर तथा निकटवर्ती एशिया में विस्तृत थी, पर्याप्त उन्नत थी।

पश्चिमी गोलार्द्ध में मेधावी मानव को छोड अन्य किसी पूर्व मानवसम रूप के दर्शन नही होते। यह भी यहा पर हिमयुगके अन्तिम चरणमें अवतरित हुए।

प्रतिनूतन युग के पश्चात् सर्वनूतन (Holocene) या आधुनिक युग का प्रारम्भ हुआ जो कि २५,००० साल पहले शुरू हुआ। स्वभावत १०,००० ई० पूर्व तक कुछ मानव समुदायो ने पशु पालना कृषि करना और शहरो में रहना सीख लिया। निःसन्देह १० ००० और ५ ००० ई० पूर्व, नवपाषाण युग (Neolithic Age) के विकसित समय में जीवन और कला के क्षेत्र में पर्याप्त उन्नति हुई। ५००० ई० पूर्व तक मिश्र और मेसोपोटामिया में सुमेरिया, मोहनजोदडो और मक्सिको में पर्याप्त उच्च श्रेणी की संस्कृतियाँ की स्थापना हुई और इसी समय से लिखित इतिहास का प्रारम्भ हुआ।

मनुष्य का समाजशास्त्रीय पहलू एक पशु की हैसियत से मनुष्य को पशुओं की तुलना में अनेक असुविधाए हैं। यह सत्य है कि वह अपनी बुद्धि के बल पर कृत्रिम साधनो के आविष्कार द्वारा उन पर विजय प्राप्त कर चुका है। इसी लिए उसे पशुओ के राजा की उपाधि दी जाती है। मनुष्य का शरीर तुलना में लघु और दुर्बल है। उसका दो परो पर चलना उसके चलने की रफ्तार को कम कर देता है। उसके शरीर पर बालों या काँटो का अभाव उसकी असुरक्षा, और उसका सीधा खडा होना उसके उत्पादन अंगो की क्षति की सम्भावना को बढाता है। असहाय अवस्था में उसका जन्म होता है और उसे अपने पैरों पर खडा होने के लिए दूसरो द्वारा दीर्घ लालन पालन की आवश्यकता पडती है। जन्म के समय उसे कुछ भी ज्ञान नहीं होता। लम्बे श्रम और शिक्षा द्वारा ही वह अपने को वातावरण के अनुकूल बना पाता है। मनुष्य को यदि केवल पशु माना जाय तो वह अति क्षुद्र और अकिंचन है। किन्तु मनुष्य के पास मस्तिष्क है, सीखने की क्षमता है, कुशल हाथ है सीधे खडे होने की शक्ति है, बोलने की विशेषता है, और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को, वर्तमान सतति से भावी सतति को ज्ञान सक्रमित करने की सामर्थ्य है। इसीसे हम इस बात का अनुमान कर सकते है कि क्यों मनुष्य के लिए सामाजिक जीवन इतना महत्वपूर्ण है। एक मनुष्य व्यक्तिगत रूप में दुर्बल होते हुए भी सामूहिक रूप में सबल हो जाता है। अज्ञानी जन्मते हुए भी, सीखने की असीम योग्यता होने के कारण, वह हजारो जीवनकालो के अनुभव अपने साथियो से कुछ सालो में ही सीख जाता है। अन्तत मनुष्य सर्वाधिक अनुकूलनीय पशु है। उसने अपने प्राणिक विशिष्टीकरण के सकीर्ण बन्धन तोड दिये है। वह अपनी सहजप्रवृत्तियो द्वारा किसी विशेष वातावरण से बधा नहीं है। मनुष्य अपनी सीखने की योग्यता के कारण विश्व के समस्त क्षेत्रो में फैला हुआ है। इस तरह मनुष्य पशुओ में अनुपम है क्योकि उसके व्यवहार का प्रमुख पक्ष सांस्कृतिक है।

चौथा अध्याय
मनुष्य की नस्लें
RACES OF MAN

आज भी ससार में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो कि नस्ल (Race) को किसी समाज की स्थिति, संस्कृति, सभ्यता का मापदण्ड मानते हैं। हिटलर का आर्य जाति का सिद्धान्त इसका मुख्य उदाहरण है। यद्यपि युद्ध में तथाकथित श्रेष्ठ आर्य जर्मन नस्ल की हार हो चुकी है, तथापि ऐसी विचारधाराओं के समर्थक अभी भी बहुत देशों में जीवित हैं। दक्षिण अफ्रीका में मलान सरकार की नस्ल नीति श्वेत नस्ल की श्रेष्ठता की घोषणा कर रही है। अमरीका में नीग्रो के साथ भेद भाव और उनके प्रति उपेक्षा और घृणा में नस्ल ही बड़ा कारण है। नस्ली श्रेष्ठता का यह सिद्धान्त कहां तक वैज्ञानिक है और कहां तक राजनैतिक स्वार्थों पर आधारित है, इसका अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि से परम आवश्यक है।

आर्यवाद १९ वी सदी के भाषाशास्त्रियों की देन था। केवल मेगयर और फिनी भाषा को छोड़कर योरोप की समस्त भाषाए संस्कृत से सम्बद्ध हैं। अत इस एक भाषा परिवार के लोगों को आर्य परिवार का नाम दिया गया। साथ ही भारत, मध्यपूर्व और योरोप की उन्नत संस्कृतियों को देखकर यह परिणाम निकाला गया कि आर्य रक्त उच्च संस्कृति के लिए पहली शर्त है।

नार्डिसिज्म इसी सिद्धान्त की एक शाखा थी जिसके अनुसार लम्बे, श्वेत वर्ण, लम्बे सिर वाले, उत्तरी योरोप में बिखरे लोग असली आर्य थे यद्यपि इस सिद्धान्त के समर्थकों ने पूरे के पूरे राष्ट्रों को नार्डिक ठहराया। परिणामत, नार्डिक नस्ल को विशुद्ध रखने की चिन्ता उत्पन्न हुई और गैर-नार्डिकों से रक्त मिश्रण के विरुद्ध आवाज बुलन्द हुई। नात्सी जर्मनी में नार्डिसिज्म ने ट्यूटनिज्म, इग्लैण्ड में एग्लो-सैक्सनिज्म और फ्रांस में गालसिज्म का रूप धारण किया। हिटलर ने घोषणा की 'नस्लों की असमानता राष्ट्रों के भाग्य को समझाने में समर्थ है। सभ्यता और संस्कृति एकान्तत श्रेष्ठ नस्लों द्वारा सृजित है और प्रत्येक प्रकार की संस्कृति केवल नस्ली गुणों की अभिव्यक्ति मात्र है।'

नस्ली सिद्धान्त की भूलें

भाषा और रक्त की अविच्छिन्नता की धारणा उपर्युक्त सिद्धान्तों की दो बुनियादी भूलें हैं। पहली तो नस्ल का, जो कि प्राणिक आनुवंशिकता

की द्योतक है राष्ट्र या संस्कृति से मिला देना है। उदाहरण के लिए यह सिद्धान्त यह मान लेना है कि आर्य भाषा भाषी आर्य रक्त के हैं। वास्तव में भाषा का रक्त से कोई अविच्छिन्न सम्बन्ध नहीं है। भाषा संस्कृति का अंग है। उसका सम्बन्ध नस्ल से न होकर सीखने से है। अमरीका के सवा करोड़ नीग्रो द्वारा मातृभाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा का प्रयोग इसी बात को सिद्ध करता है। और फिर यदि जनन जाति ही सभ्यता की सामर्थ्य रखती है, तो क्या रोमन लोगों के आक्रमण से दो हजार वर्ष पहले वह जंगलियों की भांति रहती थी? इतिहास इस बात का साक्षी है कि अनेक उन जातियों ने महान् संस्कृतियों की स्थापना की जिनका कि आर्य जाति तथा उसके तथाकथित गुणों से कोई सम्बन्ध न था। उदाहरण के लिए मिस्र मेसोपोटामिया चीन, द्रविड भारत, कम्बोडिया और यूकटान माया की उन्नत संस्कृतियां अनार्य भाषा भाषियों की ही कृतियां थीं।

योरोप की नस्ली शुद्धता की धारणा इन सिद्धान्तों की दूसरी मुख्य भूल वर्तमान योरोप की जनसंख्या की बनावट के बारे में है। यदि यह भी मान लिया जाय कि नार्डिकों में सभ्यता के लिए कोई असाधारण प्रवृत्ति विद्यमान है योरोप भर में कोई नार्डिक नस्ल मौजूद नहीं है। संसार के समस्त भागों में ही विभिन्न नस्लों का रक्त मिश्रण हुआ। योरोप में तो यह प्रक्रिया बड़े पैमाने पर हुई। अतः यह बड़े मजे की बात है कि नस्ली विशुद्धता की आवाज वहां से उठायी जाती है, जहां वह सबसे कम है। इस तरह हम देखते हैं कि नस्ली सिद्धान्तों का तथ्यिक आधार बहुत ही लचर है।

नस्लों की परिभाषा

नस्ल की प्राणिक (Biological) परिभाषा प्राणिशास्त्र में उस पशु वर्ग के लिए जाति (Species) शब्द का व्यवहार होता है जिनकी शारीरिक रचना समान होती है जिनके प्रजनन (Genetic) तत्व इस भांति संगठित होते हैं कि वह आपस में प्राणिक दृष्टि से स्वस्थ संतानोत्पत्ति कर सकें। इस कसौटी पर इस पृथ्वी पर वास करने वाले समस्त मनुष्य एक ही जाति या नस्ल के हैं। बावजूद बाह्य आकृति के परिवर्तनों के एक अफ्रीकी पिग्मी, एक चीनी एक फ्रांसीसी या एक भारतीय सभी एक दूसरे से संतानोत्पत्ति कर सकते हैं।

फिर भी मानव जाति में प्रजनन (Genetic) परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। हम मानव वर्गों को वाहकाणु (Genes) या आनुवंशिक गुणों के आधार पर नस्लों में बांट सकते हैं। इस तरह नस्ल की आधुनिक कल्पना प्रजननशास्त्र (Genetics) पर आधारित है और प्राणिक ढंग के कठोर आनुवंशिक मापदण्ड से सम्बद्ध है।

यह सर्वविदित है कि वंशानुगत (Inherited) गुण शारीरिक रज और

वीय द्वारा नियन्त्रित होते ह। प्रत्येक शरीर म हजारो वाहकाणु (Genes) होते ह, जिनसे कि सतान की शरीर रचना प्रभावित होती ह। बाह्य आकृति रूप (Phenotypes) की आनुवंशिकता के अन्तर्गत समस्त प्रजनन कारणो का अभी तक सही सही विश्लेषण नहीं हो सका ह, फिर भी प्रजननात्मक दृष्टि से अनक गुणा को जाना जा चुका ह। मानवीय नस्ला के सम्बन्ध में सर्वोत्तम तथ्य रक्त वर्गो(Blood groups) के अध्ययन स प्राप्त होते ह। रक्त वर्गो म प्रजनन गुण सरलतया जाने जाते ह। विभिन्न भौगोलिक वर्गों में फली मानव जाति के वाह काणुआ के विभाजन में पर्याप्त अन्तर पाया जाता ह।

प्रजनन रूप (Genotypes) की समानता इस भांति हम नस्लों को मानव जाति के वह वग मान सकत ह जिनमें एक सीमा तक प्रजनन रूप की समानता ह जो कि उन्हें अन्य वर्गों से पृथक् करती ह। उस प्रजनन समानता क कारण किसी नस्ली वर्ग के सदस्य प्राय अन्य वर्गों की तुलना में एक दूसरे के अधिक समान नजर आते हैं।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि मनुष्य के वर्णसूत्रो (Chromo somes) में लगभग साठ हजार वाहकाणु हैं जिसमें से प्रत्येक की अपनी स्वतन्त्र सत्ता है, और उनमें से सब ही में अन्तःपरिवतन (Mutation) अर्थात् प्रजननात्मक परिवतन हो सकता ह। इस भांति प्रजनन तत्वो के नाना मिश्रण उपस्थित हो सकत हैं और इसीलिए यह कोई आश्चर्य नही कि कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य से हूबहू नही मिलता, विशेषकर जब कि हम जानते ह कि प्रजननात्मक विशेषताए वातावरण की स्थिति से भी पर्याप्त प्रभावित होती ह।

नस्लों का उदय

नस्लें कसे बनीं यह एक महत्वपूर्ण और मनोरंजक प्रश्न ह। प्राणिशास्त्रियों क अनुसार (१)अन्त परिवतन, (२) चुनाव (३) पृथक्करण इसके तीन कारण ह।

१ अन्तःपरिवतन (Mutation) नव प्रजनन विशेषताए एक प्रकार से एक स्वाभाविक परिवतन या परिणाम होती ह जो कि वाहकाणु या वाहकाणु वर्ग में होती ह। इस प्रक्रिया के कारक कारणों को अभी तक भली भांति नही समझा जा सका है, फिर भी पशुओं और पौधा पर परीक्षण कर इसे प्रदर्शित किया जा चुका ह। शायद नीग्रोयडो का काली खाल को नियंत्रित करने वाले वाहकाणु मनुष्य जाति में अन्त परिवतन से ही उत्पन्न हुए हैं।

२ चुनाव (Selection) आया एक वाहकाणु में रज और वीय रहता ह कि नही चुनाव पर निर्भर करता ह। यदि वह आगत विशेषता है या उसक रहने में कोई मुख्य बाधा नही ह, वह प्राय रहती है, यदि नही तो इसके वाहक एक समय में स्वय ही नष्ट हो जाते ह। चुनाव भी दो प्रकार का होता है

(क) प्राकृतिक (ख) कृत्रिम। प्राकृतिक वातावरण में तथाकथित जीवन के लिए सघर्ष मनुष्य की शारीरिक विशेषताओ पर एक प्राकृतिक प्रभाव छोडता है, जब कि कृत्रिम रूप से नियन्त्रित अन्त प्रजनन अथवा सस्कृति द्वारा विभिन्न वर्गों में प्रजनन का नियन्त्रण कृत्रिम चुनाव का परिणाम होता है।

३ पृथक्करण (Isolation) एक बार 'चुने जाने' का एक सभावित परिणाम प्रजनन विशुद्धता की चिन्ता का उत्पन्न होना है, जो कि केवल पृथक्करण द्वारा ही सभव है जिसका परिणाम प्रजनन तत्वो का दूसरे प्रजनन तत्वो से मिश्रण रोकना है। यह पृथक्करण भी दो प्रकार का होता है (क) प्राकृतिक प्राय भौगोलिक और (ख) कृत्रिम। कृत्रिम पृथक्करण में मनुष्यों द्वारा खडी की गई उन दीवारों का समावेश है जो कि प्रजननात्मक दृष्टि से विशेष वर्गों में अन्त प्रजनन को रोकती है। अतनस्ली (Inter-racial) विवाहो का निषेध इसका मुख्य उदाहरण है। बावजूद इसके भौगोलिक पृथक्करण आज की मानव जाति की नस्लो का मुख्य कारण है। जब कि मनुष्य भौगोलिक दृष्टि से अति दूर हो उनके लिए अन्त प्रजनन सम्भव नहीं होता।

ससार की प्रधान नस्लें

हम देखते है कि आधुनिक युग के प्रारम्भ से ही ससार की प्रधान नस्लें विभिन्न क्षेत्रो में केन्द्रित हो गई है। विशिष्ट शारीरिक लक्षणो और रक्त समहो (Blood groups) के आधार पर विभिन्न विद्वानो ने मनुष्य जाति को पृथक नस्लो में बाटने का प्रयत्न किया है। पर यह कार्य आसान नही है। न ही विद्वान् किसी एक वर्गीकरण में सहमत है। क्लाइड क्लकहोन ने इस तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है। मानव जनसख्या अत्यन्त मिश्रित और परिवर्तनीय है। उन्हें पशुओ की भाति सार्थक जातियो में विभक्त करना आसान नहीं है। बाह्य रूप के आधार पर किये गये वर्गीकरणो में सगति नही है। जितने शारीरिक मानवशास्त्री (Physical Anthropologists) है, करीब करीब उतने ही नस्लों के समूह है।[1]

उदाहरण के लिए लीनियस और कूवियर ने मानवजाति को तीन नस्लो में बाटा है। ब्लूमनबक ने उन्हें पाच श्रेणियो में बाटा है। हकल ने १८७६ में १२ और १८७८ में ६४ नस्लो की घोषणा की। डनिकर ने १२ नस्लो और ३० उप नस्लो का पता लगाया। ईक्सटड्ट और यूजिन फिशर ने यूरोपिड, नीग्रिड और मगोलायड तीन प्रधान नस्लें तथा १८ उपनस्लें बताई। उनमें से अधिकाश वर्गीकरण अशत शारीरिक और अशत भौगोलिक क्षेत्रो के आधार पर किये गये है। वुडवर्थ ने मनुष्य जाति को सात और इलियट स्मिथ ने उन्हें छ भागो में विभाजित किया।

फिर भी ससार की अधिकाश नस्लें मनुष्य जाति के तीन प्रधान समूहो में बांटी जा सकती है। यह समूह है। (१) काकेशायड नार्डिक मेडाटरनियन

और एल्पाइन इनके मुख्य उप विभाग ह। (२) मगोलायड एशियाटिक, ओशिया निक और ऐमरिंड इनके मुख्य उप विभाग हैं। (३) नीग्रायड अफ्रीकन ओशिया निक और नेग्रिटो इनके प्रमुख उप विभाग ह।

इन नस्ली समूहो के शारीरिक लक्षणो म पर्याप्त अतर पाया जाता है। कद म काकेशायड मझले स लम्बे मगोलायड मझले छोटे से मझल लम्बे और नीग्रा यड बहुत छोटे मे बहुत लम्बे होते हैं।

रग में, काकेशायड बहुत हल्के लाल और बहुत सफेद मे कुछ भूरे तक, मगोलायड पीले भूरे से लाल भूरे तक, निग्रायड भूरे काले, भूरे और पीले भूरे होते ह।

काकेशायड लोगो की आखें हल्की नीली से गहरी भूरी मगोलायड की भूरी स गहरी भूरी नीग्रायड की भूरी मे भूरी काली होती ह। मगोलायड लोगो की आंख म एक विशेष शिकन (Epicanthic fold) पायी जाती ह।

काकेशायड लोगो की नाक का सतु (Bridge) प्राय बहुत ऊचा तथा मपतला चौडाई तग से मझली मगोलायड की नाक का सतु नीचा या मझला, चौडाई मझली और नीग्रायड की नाक का सेतु सदा ही नीचा और उसकी चौडाई विशेष रूप से अधिक होती ह।

काकेशायड लोगो क सिर के बाल हल्के, सुनहरे मे लेकर गहरे भूरे रग के होते हैं। उनकी बनावट बारीक या मझली होती ह और वह सीधे या लहरदार होते हैं। मगोलायड में वह भूरे या भूरे-काले, सख्त और सीधे होते हैं। नीग्रायड में यह भूरे काल, सख्त ऊन की तरह बहुत घुघराले और चुभन वाले होते हैं। काकेशायड लोगों के शरीर के बाल मझले से बहुत ज्यादा तक, मगोलायड में बहुत हल्के और नीग्रा यड म बहुत कम होते ह। इसके अलावा मगोलायड चेहरे की गाल की हड्डी बहुत ऊची और उभरी हुई तथा नीग्रायड के जबडे बहुत निकले हुए होते ह।

महत्वपूर्ण उप समूह (Sub-groups) उक्त तीन प्रमुख नस्ल समूहो के अतिरिक्त, कुछ अन्य महत्वपूर्ण उप-समूहो का भी सक्षिप्त विवरण आवश्यक है। यह उप-समूह निम्न ह —

१ मेलीनेशियन यह दक्षिणी प्रशान्त द्वीपो के जिन्हें कि मलीनेशिया कहा जाता ह निवासी ह।

२ माइक्रोनेशियन-पौलीनेशियन इनमें ओशनियन पौलीनेशियन द्वीपों के निवासी सम्मिलित हैं।

३ केन्द्रीय अफ्रीकन पिग्मी यह केन्द्रीय अफ्रीका के कांगो प्रदेश में रहते हैं।

४ सुदूर पूर्वी पिग्मी अण्डमान द्वीप लुजोन और मिडानाओ क निवासी इसके अन्तगत आते हैं।

५ आस्ट्रेलायड यह आस्ट्रेलिया के काले आदिवासी ह।

६ बुशमन होटनटौग यह अफ्रीका के कालाहारी मरुस्थल और उसके आस पास रहते हैं। यद्यपि इनमें नीग्रायड लोगो के पर्याप्त शारीरिक लक्षण हैं इनकी आखा म विशेष शिकन (Epicanthic fold) है जा कि मगोलायड जाति की विशेषता है।

७ आइनू यह जापान के प्राचीन वासी ह। इनकी खाल का रग काकेशायड लोगा में मिलता ह।

८ वद्दायड यह लका की फल सचय करने वाली जाति के, जो कि शीघ्र ही समाप्त हो रही है सदस्य ह। इनका स्थान काकेशायड और आस्ट्रेलायड समूह के बीच में ह।

नस्लों का अन्त मिश्रण

निष्क्रमण मुख्य कारण सृष्टि के आरम्भ स ही मनुष्य घुमक्कड रहे है। उत्तम शिकारगाहा और हरे चरागाहो की खोज में वह एक स्थान स दूसरे स्थान पर घूमत रह। शायद अन्ततोगत्वा वह विना बसे स्थाना में जाकर बस गये और इस तरह अपन साथियो से बिछुड गय तथा एक पथक नस्ल और उप-नस्ला क रूप में विकसित हो गय। पर जसे-जस पृथ्वी की जनसख्या तथा बसे हुए प्रदेशों का क्षेत्रफल बढा निष्क्रमण ने पृथक वर्गों के बीच सम्पक स्थापित किया। भौगोलिक पृथक्करण इस तरह समाप्त हो चला। यह सम्पक चाह मैत्रीपूर्ण रहा, चाहे शत्रुतापूर्ण इसका अन्तिम परिणाम किसी न किसी प्रकार का अन्त प्रजनन ही हुआ। इस तरह पृथक रूपों (Types) की विशुद्धता" बहुत कुछ नष्ट होने लगी और अधिकाधिक व्यक्ति विभिन्न-जातीय प्रजनन शरीर धारण करने लगे।

अन्तमिश्रण का परिणाम बुरा नहीं यहा पर हम अन्तर्मिश्रण के परिणामा की विवचना नही करगे, फिर भी इतना कहना अनुपयुक्त न होगा कि इस बात की कोई वैज्ञानिक साक्षी नहीं ह कि सामान्य अवस्थाओं में नस्ला का अन्तर्मिश्रण किसी भाति के प्राणिक पतन (Biological Degeneration) को जन्म देता है। यह मिलन या मिश्रण अवश्य पृथक् रूपो की विशुद्धता को नष्ट करता ह, और यदि यह अन्तर्मिश्रण चलता रहे तो भावी पीढिया अधिकाधिक विभिन्न-जातीय और अपन पितामहा की असल प्रतिलिपियां तैयार करने में असमर्थ रहेंगी।

कोई नस्ल आज विशुद्ध नहीं यह जानते हुए कि हजारों वर्षों से जारी अन्तर्मिश्रण की इस प्रक्रिया को आधुनिक यात्राओं और सम्पर्कों ने बहुत गति प्रदान की है विशेषज्ञा का यह कहना ह कि सामान्य बोल चाल की भाषा में आज कोई भी नस्ल विशुद्ध नही ह। यद्यपि आज भी मानव प्राणियो के बड़े समूह— मुख्य नस्लो को— बाह्य आकृति रूपो में और प्रजनन रूपो में पृथक् पहचाना जा सकता है फिर

भी वह विभिन्न रूप उन विस्तृत अन्तरों को स्पष्ट करते हैं जो कि सीमा पर एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं।

नस्ल का निर्णय

द्रव्य माप्य गुण नस्ल का आधार वास्तव में नस्ल एक ही वंश में आनुवंशिकता० (Heredity) द्वारा प्राप्त प्राणिक गुणों से पृथक् वर्ग का नाम है। यद्यपि मानव वंश के कई श्रेणी विभाजन किये जा चुके हैं, पर इस बात में सभी नवंशशास्त्री (Ethnologist) सहमत हैं कि किसी भी नस्ली वर्गीकरण का आधार आनुवंशिक रूप की दृश्य और माप्य शारीरिक विशेषताएं होनी चाहिए। इस तथ्य को स्वीकार करते ही हमें भाषा या संस्कृति के आधार पर नस्लों के वर्गीकरण का अनौचित्य भली भांति ज्ञात हो जाता है।

प्राय प्रयुक्त माप नस्लों का अध्ययन पर्याप्त शारीरिक विशेषताओं पर आधारित है जिन्हें कि मापा और देखा जा सकता है। उनमें से प्राय प्रयुक्त माप यह हैं (१) शरीर के प्रमुख व्यासों का माप, जिसमें ऊंचाई, कंधे की ऊंचाई बैठने की ऊंचाई, वक्ष की चौड़ाई छाती का व्यास और श्रेणिका (Pelvis) के व्यास का समावेश है, (२) जुड़े भागों और ओष्ठों की लम्बाई, जिसमें कुल बाजू की लम्बाई उपरले और निचले बाजू की लम्बाई, परों की लम्बाई सम्मिलित है, (३) कपाल खोपड़ी और चेहरे के व्यास, जिसमें कपाल की लम्बाई, चौड़ाई ऊंचाई कुल चहरे और ऊपर से चेहरे की लम्बाई और चौड़ाई सम्मिलित हैं, (४) सिर के बालों शरीर के बालों, आंख की पुतली और खाल का रंग, (५) सिर चेहरे और शरीर पर बालों का वितरण और स्वरूप, (६) नाक के पार्श्व (septum), छिद्रों कानों के छिद्र और कर्ण-पपटी, ठोडी जबड़े मसूढ़ों के किनारों गाल की हड्डियां और होठों की बनावट (७) शरीर का गठन और वजन।

एक समाजशास्त्री की हैसियत से हम निम्न तीन बातों में मुख्य दिलचस्पी होती है।

१ माप शारीरिक बनावट से संबद्ध इसमें पहली बात यह है कि यह माप और परीक्षण जिनका नस्ल के निर्धारण में प्रयोग किया जाता है शारीरिक विशेषताओं से सम्बन्धित हैं और सब माप्य हैं। सूक्ष्म विश्लेषण और भूल जांचने के लिए मान्य प्रणालियां और सूक्ष्म यंत्र उपलब्ध हैं। यहां तक कि बालों के घुंघरालेपन या रंग को जानने के लिए अन्वेषक के पास मान्य नमूने रहते हैं अथवा आंखों का रंग जानने लिए अन्वेषक के पास रंगीन चार्ट होते हैं। इस तरह नस्ल के निर्धारण में अनुमान का स्थान वैज्ञानिक प्रणाली ने ले लिया है।

२ कंकाल से प्राप्त सूचनाएं अधूरी दूसरी बात यह है कि नस्ल के वर्गीकरण में हमें कंकाल से कुछ ही सूचनाएं मिलती हैं। बाल रंग मुलायम अंगों की

बनावट मृत्यु के बाद अधिक दिन तक कायम नही रहती, अत प्रागऐतिहासिक मनुष्यो की नस्ल का निर्धारण कम शुद्ध और अपूर्ण है। इसी का परिणाम है कि हमें यारोप की नस्लो के प्रकारो के बारे म भी जहां कि इनका सूक्ष्म अध्ययन किया गया है सही जानकारी नही है, जिससे कि हम जान सकें कि कहा और कब आज वतमान मानवजाति (species)के उपवग प्रकट हुए। प्राप्त वशावलिया (Geneologies) बहुत कम और अपूर्ण है। यद्यपि मानवशास्त्र की दृष्टि से यह बहुत उपयोगी है। उन मेंस कोई भी पाच पीढ़ी स अधिक पुरानी नही है। इसलिए हमें विद्यमान मेधावी मानव के वर्गीकरण से ही सन्तुष्ट होना पडता है।

बौद्धिक भावात्मक (Emotional) विशेषताओं को स्थान नहीं इस सबध में यह बात और दृष्टव्य है कि मानव जाति के इस वर्गीकरण की प्रक्रिया में कही भी उसकी बुद्धि', 'भावात्मक विशेषताओं' अथवा 'स्नायुधर्मिन का जिक्र नही है। इसलिए वह प्रचारक जो यह कहता है कि कजूसी और क्रूरता यहूदी रक्त की सुस्ती और काहिलपन मगोल रक्त की अथवा उद्यम और बलिदान श्वेत नस्ल की विशेषता है नस्ल शब्द का वैज्ञानिक अर्थों में प्रयोग नही कर रहा है।

नस्ल एक अल्प वास्तविक इकाई मनुष्य इस दृष्टि से अनुपम है कि ध्रुव प्रदेशो को छोडकर वह पृथ्वी के समस्त भागो में अवस्थित है तथा एक स्थान से दूसरे को परिव्रजन करने (Migration) का अभ्यस्त है। विभिन्न नस्लो के अन्तर्मिश्रण स्वतन्त्र परिवर्तनो तथा विभिन्न वातावरणो में प्राकृतिक चुनाव ने एक विचित्र स्थिति को जन्म दिया है जिसमें विशुद्ध नस्ल और परिवारो के लिए कोई स्थान नही है। नस्ल को हम एक आदर्श प्रकार अथवा गणनात्मक कल्पना ही मान सकते है। इसके अतिरिक्त इस बात की कोई साक्षी नही है कि आनुवशिक अर्थों में कभी भी विशुद्ध नस्ल रही है, क्योकि प्रारम्भ से ही अन्तर्मिश्रण और नये नये वातावरण म प्रव्रजन मनुष्य की एक विशेषता रही है जो उसकी आनुवशिक विशेषता पर सदा चोट करती रही है।

परिणामत, जैसा कि लोग सामान्यत समझते हैं उसके विपरीत नस्लें अल्प वास्तविक और स्थूल इकाइया है। यहा तक कि उप नस्लें (Breeds) भी जिन्हें कि हम बहुत पृथक् समझते हैं, केवल आदर्श प्रकार मात्र हैं, जिनमें पर्याप्त विभिन्नताए दिखाई देती है। भारतवर्ष के विषय में यह बात बहुत सही है, जहा कि विभिन्न नस्लो का अत्यधिक मिश्रण हुआ है।

नस्ल के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पहलू

नस्लो के मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पहलू के सम्बन्ध में बहुत-सी भ्रान्तिया विद्यमान हैं। इसमें सन्देह नही कि मानव जाति के वृहत् वर्गों में पर्याप्त शारीरिक विभिन्नताए पायी जाती हैं। पर समाजशास्त्र के लिए यह आनुवशिक विशेषताए

अपने आप में कोई महत्व नहीं रखती, जब तक कि इनका उन वर्गों के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि क्या इस बात की कोई निष्पक्ष साक्षी है कि मानव के उप-वर्गों की विभिन्नताएं उनके सामाजिक जीवन के व्यवहार, स्वरूप और संस्कृति को प्रभावित करता है ? यदि इस प्रकार के कोई आनुवंशिक तत्त्व विद्यमान हैं तो उनका अध्ययन जरूरी है।

नस्ल के आधार पर श्रेष्ठता सिद्ध नहीं की जा सकती इस सम्बन्ध में विदेशों विशेषकर संयुक्त राज्य अमरीका, में अनेक परीक्षण हुए हैं। इन परीक्षणों का बड़ा दोष यह है कि इनमें से कोई भी परीक्षण ऐसा नहीं है जो कि जन्मजात (Innate) से सीखे हुए (Acquired) गुण योग्यता और रुचि को पृथक कर सके। फिर भी अभी तक इस सम्बन्ध में जो परीक्षण हुए हैं उनसे यह स्पष्ट है कि नस्ल के आधार पर योग्यता, बुद्धि और रुचि के भेदों को नहीं दर्शाया जा सकता।

इस सम्बन्ध में जूलियन हक्सले के शब्द स्मरणीय हैं यह सम्भव है कि जन्मजात मानसिक नस्ली विशेषताओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के मौन रहने के बावजूद भी कुछ लोग सन्तुष्ट न हो सकें। इस सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के कई उत्तर हैं। पहला, हम सांस्कृतिक विभिन्नताओं को जन्मजात विशेषताएं नहीं समझ बैठना चाहिए, और वास्तव में सांस्कृतिक विभिन्नताएं ही सबसे अधिक और महत्वपूर्ण हैं। दूसरा कि मानसिक सफलता सबसे अधिक परिवर्तनीय गुण है। तीसरा, इस बात से इनकार न करते हुए कि विभिन्न नस्लों में मानसिक विभिन्नताएं हो सकती हैं यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि विपुल अन्वेषण अभी तक यह सिद्ध करने में असफल रहे हैं जो कि यह सिद्ध करना चाहते हैं।'

विभिन्न नस्लों की श्रेष्ठता का रहस्य उनकी नस्ल में न होकर अन्य कारणों में निहित है। यह एक मार्के की बात है कि संसार की विकसित सभ्यताएं उन्हीं लोगों की कृतियां हैं जिनमें पर्याप्त नस्ली मिश्रण अर्थात वर्णसंकरता हुई है।

सामाजिक पहलू यद्यपि अभी तक प्राप्त ज्ञान हमें यह बताने में असमर्थ है कि विद्यमान नस्लें और उप नस्लें ऐसा व्यवहार क्या करती हैं जैसा कि वह कर रही हैं तथापि यह मत कि वह बड़ा महत्वपूर्ण है समाजशास्त्रीय दृष्टि से महत्व का है। यदि किसी सामाजिक वर्ग के व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि उनमें कुछ शारीरिक विशेषताओं का होना किसी प्रकार की श्रेष्ठता का चिन्ह है तो निसंदेह उनके व्यवहार में एक विचित्र अहंकार और दूसरी नस्लों के प्रति एक तिरस्कार की भावना जागृत हो जाती है किन्तु यह एक विशुद्ध सांस्कृतिक तथ्य है प्राणिक नहीं।

अन्त में हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि नस्ली विभिन्नताओं का मनुष्य के व्यवहार पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता।

पाँचवा अध्याय

आनुवशिकता और वातावरण

HERFDITY AND ENVIRONMENT

मनुष्य अपने वंश से शारीरिक विरासत ही लेता है कि बौद्धिक और चारित्रिक भी ? आनुवशिकता मनुष्य के विकास व्यक्तित्व और जीवन पर कितना प्रभाव डालती है ? इन प्रश्नों का उत्तर देने से पहले जो प्रश्न उठता है वह है आनुवशिकता क्या वस्तु है ?

कोष (Cell) से जीवन का प्रारम्भ मानव अपना जीवन एक अकेले कोष के रूप में आरम्भ करता है। स्त्री जब गर्भ धारण करती है उस समय जो कोष बनता है उसका व्यास (Diameter) केवल एक इंच का २०० वा भाग होता है। यह कोष दो भागो म विभक्त हो जाता है। और यह कोष क्रमश दो चार आठ सोलह और इस प्रकार कोटि-कोटि कोषो को जन्म देते है। यह सभी कोष एक ही होने के बावजूद भी भिन्न भिन्न रूप से विकास पाते हैं। इनमे से कोई पशियो का आधार बनते है तो कोई ग्रन्थियाँ (Glands) का।

कोषों का निर्माण और विकास कार्य प्रत्येक कोष के दो महत्वपूर्ण भाग होते हैं एक केन्द्र (nucleus) दूसरा केन्द्र के अतिरिक्त कोष का शेष सारा भाग। केन्द्र कोष के शेष भाग से रासायनिक बनावट (Composition) और शारीरिक व्यवस्था म पूर्णत भिन्न होता है। यह केन्द्र कोष के अत्यधिक विभाजन और जीवन की क्रिया को कायम रखने में अपना महत्वपूर्ण कार्य करता है जबकि शेष भाग शरीर के भिन्न भिन्न अगो को उनके कार्यो के अनुसार विकसित करता है। जो कोष ग्रन्थियो (glands) की उत्पत्ति करेंगे उनके केन्द्र उनमें शक्ति काम क्षमता प्राण और विकास के उत्तरदायी होंगे और उनके शेष भाग स्रावों (secretion) की जिम्मेवारी निभाएग। जो कोष मास पशियां बनायेंगे उनके शेष भाग पेशियो की सिकुडन सकोच इत्यादि का कार्यान्वित करेंगे।

आनुवशिकता में माता पिता दोनो का योगदान निषिक्त अण्ड (fertilised ovum) का केन्द्र प्रत्यक कोष को दो केन्द्र देगा। एक पिता के वणसूत्र (Chromosomes) का और एक माता के वणसूत्र का और जब यह कोष दो में विभाजित होगा तो यह भी दो दो केन्द्र देगा और इस प्रकार शरीर के

कोटि कोटि कोषों में अनिवार्यत माता और पिता दोनों के वर्णसूत्रों का समावेश होगा। इससे स्पष्ट है कि आनुवंशिकता केवल माता या केवल पिता के प्रभाव का परिणाम नहीं होती और 'मां पर पूत पिता पर घोड़ा' वाली पुरानी उक्ति चरितार्थ नहीं होती।

आनुवंशिकता के इस विवरण से हम तीन परिणामों पर पहुंचेंगे।

१ माता और पिता दोनों ही आनुवंशिकता के लिए जिम्मेदार हैं।

२ गर्भाधान के समय आनुवंशिकता का निर्धारण चूंकि गर्भधारण के समय ही रज और वीर्य का जो मिलन होता है, उसी से निर्मित कोष के कोटिश विभाजन में आनुवंशिकता का निवास है, इसलिए आनुवंशिकता उसी समय निर्धारित हो जाती है और अपरिवर्तित रहती है। न तो निषिक्त अण्ड में कोई बाह्य पदार्थ प्रवेश कर सकता है, और न ही आनुवंशिकता में कोई बाह्य गुण आ पाते पाते हैं। यहां तक कि प्रसव से पहले के गर्भधारण के लम्बे समय में गर्भ की *आन्तरिक दशा भी आनुवंशिकता को प्रभावित नहीं कर सकती।*

३ शरीर के प्रत्येक अंश में आनुवंशिकता का निवास शरीर के प्रत्येक भाग में, प्रत्येक कण कण में, प्रत्येक अणु और कोष में आनुवंशिकता का निवास है। कारण स्पष्ट है कि एक ही कोष के असंख्य विभाजनों ने शरीर को बनाया और विकसित किया है।

इससे स्पष्ट है कि आनुवंशिकता प्रत्येक मनुष्य को जन्म से ९—१० मास पहले ही प्राप्त हो जाती है जब कि रज और वीर्य परस्पर मिलते हैं। उससे उत्पन्न कोष असंख्य कोषों में विभक्त होकर शरीर के प्रत्येक अंग को जन्म देता है। उसके बाद जीवन की दीर्घ यात्रा आनुवंशिकता पर कोई प्रभाव नहीं डालती यह तो निर्णीत और पूर्वनिर्धारित होती है।

वर्णसूत्र (Chromosomes) और आनुवंशिकता प्रत्येक केन्द्र दण्डाकार सूत्रों का समूह होता है जिन्हें वर्ण सूत्र कहा जाता है। यह वर्णसूत्र लम्बे, छोटे, टेढ़े-मेढ़े अंडाकार, कितने ही रूपों के होते हैं। प्रत्येक कोष के केन्द्र में ४८ वर्ण सूत्र होते हैं। प्रत्येक कोष विभाजन के समय उस कोष का प्रत्येक वर्णसूत्र एक समान दो भागों में बंट जाता है और एक-एक भाग एक एक कोष की सम्पत्ति बनता है। इस प्रकार नवजात दोनों कोषों में ४८ वर्णसूत्र होते हैं।

प्रत्येक कोष के ४८ वर्णसूत्र कहने के स्थान पर उन्हें २४ जोड़े कहना उपयुक्त होगा। वर्णसूत्र जोड़ों में ही मिलते हैं। निषिक्त अंड भी वर्णसूत्रों के २४ जोड़े रखता है जिनमें से एक वीर्य से प्राप्त होता है और दूसरा रज से। अत प्रत्येक कोष में २४ वर्णसूत्र रज से उपलब्ध होते हैं और २४ वीर्य से। जब वह दो कोषों में विभक्त होते हैं तो फिर २४ २४ होकर यह २४ जोड़े हो जाते

है। इस प्रकार प्रत्येक कोष माता और पिता दोनो के वर्णसूत्र बराबर-बराबर रहता है।

वाहकाणुओं (Genes) का प्रभाव एक वर्णसूत्र मनकों की माला का सा रूप लिए हुए होता है जिसमें मनको जैसे अलग-अलग पिरोए-से वाहकाणु (genes) रहते है। इन वाहकाणुओं की सख्या लगभग एक हजार होती है और यह असमान सख्या में ४८ वर्णसूत्रो में बटे रहते है। वर्णसूत्रो के समान ही यह भी माता और पिता दोनो के वीर्य और रज के जोडो (pairs) में उपस्थित होते हैं।

अधिकांशत, एक समय किन्ही जोडो के वर्णसूत्र एक समान होते है और माता पिता और सन्तान में भिन्नता की अपेक्षा समानता की अधिक उत्पत्ति करते हैं। समानताए भिन्नताओ से कई गुणा अधिक होती है। परन्तु कुछ जोडों में वाहकाणु भिन्न भी हो सकते है। उदाहरणत, एक वाहकाणु नीली आखो वाला है और दूसरा भूरी आखो वाला है। यदि सन्तान को माता और पिता से भूरी आखो वाले वाहकाणु प्राप्त है तो उसकी भूरी आखें ही होगी यदि दोनो ने एक एक नीली आखों वाला वाहकाणु दिया है तो नीली आखो वाली सतान होगी। परन्तु यदि माता भूरी आखो वाला वाहकाणु दे, पिता नीली आखो वाला तो सन्तान को भूरी आखें ही मिलेंगी केवल इस कारण कि भूरी आखो के वाहकाणुओं को नीली आखों वाले वाहकाणुओं पर प्रमुखता प्राप्त होती है।

मैंडल का आनुवंशिकता का सिद्धान्त

आनुवंशिकता शारीरिक विशेषताओं और लिंग के निर्धारण में कैसे अपना महत्वपूर्ण योग देती है इसको प्रकट करने का मुख्य श्रेय ए जी मडल को है जिन्होने आठ साल लगातार पौधो पर परीक्षण किए और १८६५ में एक सिद्धान्त निकाला।

मैंडल के सिद्धान्त को समझाने के लिए उसके ही परीक्षण का सरल वर्णन करना अधिक उपयुक्त रहेगा।

मटरों पर परीक्षण तीन साल की निरन्तर चेष्टा और यह निश्चय कर लेने के पश्चात् कि उनके परीक्षण की सामग्री, अर्थात् मटर, जिनमत और प्राणिशास्त्र के दृष्टिकोण से शुद्ध है और वर्णसकर (hybrid) नही है, मडल ने लम्बे मटर के बीज और नाटे मटर के बीज एक साथ बो दिए। सभी उगे पौधे लम्बे हुए। उनके बीजो को दूसरी बार बोया गया। इस बार ¼ भाग नाटे या छोटे और ¾ भाग लम्बे पौधे उगे। नाटे पौधो के इस चौथे भाग को दुबारा उगाने पर यह सभी नाटे ही उगे। परन्तु ¾ भाग वाले सभी लम्बे पौधे उगाने पर ¼ फिर नाटे पौधे उगे। स्पष्ट है कि इन ¾ भाग में ¼ तो शुद्ध दीर्घ पौधे थे, परन्तु शेष ½ वर्णसकर थे।

प्रश्न यह उठता है कि यह वर्णसंकर पौधे लम्बे ही क्यों उगे ? इसका उत्तर यहीं दिया गया है जो भूरी आंखों वाले वाहकाणुओं के नीली आंखों के वाहकाणुओं पर अधिकार करने में प्रयुक्त हुआ है, अर्थात् लम्बे पौधे नाटे पौधों की विशेषता को अपनी विशेषता से दबा गये।

इस अध्ययन से जिन दो बातों पर अधिक प्रकाश पड़ता है वे यह हैं

१ प्रबल (Dominant) या दुर्बल (Recessive) गुणों का सिद्धान्त।

२ पृथक्करण (Segregation) का सिद्धान्त।

प्रबल और दुर्बल गुण जो विशेषताएं वर्णसूत्रों या वाहकाणुओं में प्रबल हैं वे ही वर्णसंकर होने पर प्रकट होंगी परन्तु साथ साथ दूसरी विशेषता भी चलती रहेगी। नीली आंखों पर भूरी आंखों वाले वाहकाणु प्रबल रहे और लम्बे पौधे नाटे पौधों पर। परन्तु फिर भी नीली आंखों और नाटे पौधों की विशेषताएं आनुवंशिकता के साथ-साथ आगे चलती रहीं।

वाहकाणु (Genes) गुणों की इकाइयां वर्णसूत्रों (Chromosomes) में विद्यमान वाहकाणु आनुवंशिकता के वाहक हैं। एक पीढ़ी को उससे पूर्वज पीढ़ियों से जो प्राप्त होता है वह उसके साधन हैं। हमारे विशेष शारीरिक चिन्हों को निर्धारित करने में यह अति महत्वपूर्ण भाग लेते हैं। ये वाहकाणु निश्चित ढंग में एक एक समूह के रूप में अलग-अलग विशेषताओं की इकाइयों के वाहक होकर रहते हैं और ये समूह जो पृथक-पृथक विशेषताओं को नई पीढ़ी की आनुवंशिकता में ले जाते हैं आनुवंशिकता की शृंखला को अटूट और अविच्छिन्न रखते हैं।

लिंग (Sex) और आनुवंशिकता

यह एक मनोरंजक प्रश्न है कि आनुवंशिकता की नवजात शिशु को विशेष लिंग देने में कितनी जिम्मेदारी है ? क्या किसी खास नियम के आधार पर पहले ही यह कहा जा सकता है कि शिशु पुत्र होगा कि कन्या।

आकस्मिकता ही कारण प्राणिशास्त्रियों का कहना है कि शरीर कोष में जो ४८ वर्णसूत्र रहते हैं उनमें दो वर्णसूत्र क क रज में और क ख वीर्य में रहते हैं। यही क क और क ख शिशु को उसका लिंग प्रदान करते हैं। माता पिता के प्रजनन कोषों में २३ जोड़े साधारण वर्णसूत्र और एक जोड़ा विशेष लिंग वर्णसूत्र (क क या क ख) का निवास होता है। जब रजकण निषिक्त होता है तभी लिंग निर्धारण हो जाता है। दोनों माता पिता यदि एक एक क प्रदान करें तो लिंग स्त्री होगा और यदि पिता का भाग ख हो तो लिंग पुरुष होगा। इसमें पिता का दान क्या है यह न तो पिता की इच्छा पर निर्भर है न ही डाक्टर या वैद्य

की जड़ी-बूटी पर यह केवल आकस्मिकता की बात है।

स्त्री-पुरुष बराबर क्यों ? यदि यह केवल आकस्मिकता की बात है तो फिर लगभग बराबर संख्या में ही पुरुषों और स्त्रियों का जन्म क्यों होता है और उनकी संख्या शताब्दियों से करीब-करीब बराबर क्यों चली आ रही है ? यह स्मरण रखना चाहिये कि पिता के वर्णसूत्रों में दोनों प्रकार के वाहकाणुओं की एक जैसी संख्या होती है और इसलिए इस बात के अवसर कि पिता का दान क है कि ख कोई अंतर नहीं डालता। इस बात का कोई भय नहीं है कि कभी पुरुषों की संख्या बहुत न्यून हो जाएगी या पुरुष कुंआरों और विधुरों के रूप में ही नजर आयेंगे।

भारत जैसे देश में जहां इस दिशा में पर्याप्त अंधविश्वास हैं, जहां सन्तान के लिंग निर्धारण में पुरुष के वीर्य का महत्व न होकर मुल्ला के ताबीज और संन्यासी की बूटी का अधिक महत्व है, इस तथ्य को समझना बहुत आवश्यक है, कि आनुवंशिकता और संतान के लिंग का और मनुष्य की इस लिंग निर्धारण को प्रभावित या निर्धारित करने में असफलता का क्या सम्बन्ध है ? कौन जान सकेगा कि वीर्य रज के मेल में वीर्य के दोनों क और ख में से किसने रज के क से मिलाप किया ?

जुड़वां बच्चों का जन्म एक साथ जुड़वां (Fraternal twins) और समरूप जुड़वां बच्चों (Identical twins) को जन्म देने में भी रज और वीर्य के मिलन का समय ही अन्तिम निर्णायक है। हो सकता है कि एक रजकण एक वीर्यकण से मिले, या ऐसा न होकर दो रजकण एक ही समय में या थोड़े समय पश्चात् दो वीर्यकणों से निषिक्त हों। इस परिस्थिति में दो जुड़वां बच्चे जन्मते हैं। परन्तु समरूप जुड़वां बच्चे जो एक समान ही होते हैं एक ही निषिक्त रजकण से उत्पन्न होते हैं। इसमें रजकण वीर्य से निषिक्त होकर दो भागों में विभक्त हो जाता है, परन्तु दोनों भाग एक जैसे ही होते हैं और एक ही जैसे शिशुओं के जन्म का कारण बनते हैं।

मेंडल का सिद्धान्त और मनुष्य मेंडल का प्रबल विशेषताओं के ¾ और दुर्बल विशेषताओं के ¼ के परिमाण में प्रकट होने का नियम मानव पर कुछ सीमाओं के भीतर लागू होता है। जो विशेषताएं इकाइयों में वर्णसूत्रों में समाई हुई होती हैं केवल उन्हीं में यह सिद्धांत अपना कार्य करेगा। परन्तु मनुष्य के सभी शारीरिक गुण इकाइयों में इस प्रकार विभक्त होकर वर्णसूत्रों को नहीं प्राप्त होते। दूसरी बात यह है कि ये विशेषताएं या गुण वर्णसूत्रों के जोड़ों के भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्मिश्रण पर निर्भर हैं। कैसे जोड़े किन जोड़ों से मिलते हैं, यह आकस्मिक-सी क्रिया है और इसलिए बच्चा माता के किन गुणों का अधिकारी

होगा और पिता से कौन से गुण होंगे, यह इस बात से जाना जा सकेगा कि (१) वंशसूत्रों का मेल किस प्रकार का है और (२) इस मेल में किसकी ओर से प्रबल विशेषता वाले वंशसूत्र ने प्रवेश किया है। क्या यह भी कभी जाना जा सकेगा ?

जैसे नाटे पौधे दूसरी फसल में उपजे ही नहीं, बल्कि तीसरी में उपजे, और वह भी केवल एक चौथाई और बाकी आधे कुल पौधे ऐसे रहे जिनमें से अगली या न जाने किस अगली उपज में, नाटे पौधे उपज सकें। इसी प्रकार हमारे किस पिता या पितामह का कौन-सा शारीरिक गुण हमें किस समय मिल जाए, इसका अनुमान लगाना असम्भव है। होम्ज ने इस तथ्य को सुन्दरता से व्यक्त किया है। उसके शब्दों में 'आनुवंशिकता तो सभी स्थानों पर पहुंचाने वाली एक बस सी है; इसमें हमारे सभी पुरखे सवारी कर रहे हैं और समय-समय पर अपना अपना सिर बाहर निकाल कर हमें चकित कर देते हैं।"

इसी सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि आनुवंशिकता से हमें जो मिल चुका है, वह हमारे शरीर की परिपक्वता के साथ-साथ अपना प्रभाव बढ़ाता है। आंखों की बनावट या नाक का चपटा होना इत्यादि तो जन्म से ही निश्चित हो जाता है, पर बालों का रंग, गंजापन और ऐसी ही विशेषताएं, समय पाकर प्रकट होती हैं।

आनुवंशिकता से प्रभावित विशेषताएं १९१० में यह सिद्ध हो गया कि मैंडल की धारणा मूलतः ठीक होने पर भी आनुवंशिकता की उलझी हुई गुत्थी पूर्णतया सुलझाकर नहीं रख सकी। यह सारी क्रिया जितनी मैंडल समझता था उससे कहीं अधिक पेचीदा है। फिर भी यह निर्विवाद सिद्ध हो गया है कि निम्नलिखित विशेषताएं आनुवंशिकता से निर्धारित या प्रभावित होती हैं —

लिंग भेद, आंखों और बालों का रंग, चेहरे का रंग और बनावट, बालों का विभाजन और रक्त की रासायनिक अवस्था, शरीर की स्रावक ग्रन्थियों के प्रकार, उंगलियों के चिह्न, हथेली और चरण-तल की बनावट, हाथ और पांवों की बनावट और ऐसी दूसरी शारीरिक विशेषताएं।

आनुवंशिकता, शारीरिक रोग और त्रुटियां

शारीरिक त्रुटियां, अस्वाभाविकताएं और रोग, यह न केवल वैयक्तिक दृष्टिकोण से, बल्कि सामाजिक दृष्टिकोण से भी कई मामलों में महत्वपूर्ण हैं। आनुवंशिकता का प्रभाव केवल छः या सात बीमारियों में ही पाया गया। मधुमेह, बचपन का जोड़ों का दर्द, मोतिया और प्रवर्ता ग्लोकोमा, माया वर्णान्धता, मैंगापॅन, गंजापन और करीब-करीब एक तिहाई बहरापन ऐसी बीमारियां हैं।

आनुवंशिकता का रोगों से अति न्यून सम्बन्ध कुछ रोग ऐसे होते हैं जो बाह्य कृमियों के आक्रमण का परिणाम होते हैं, परन्तु कुछ ऐसे हैं, जो मानव शरीर के कोषों में बसते हैं। पहले प्रकार के रोग, टाइफाइड, सिफिलिस, खांसी, मलेरिया इत्यादि हैं चूंकि यह बाह्य संसर्ग से प्राप्त होते हैं, इसलिए इनके आनुवंशिक होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

आनुवंशिक कहे जाने वाले कितने कुल-रोग जन्म से पहले तभी लग जाते हैं, जब गर्भस्थिति में माता के स्वास्थ्य का कुप्रभाव बच्चे पर पड़ता है। कई रोग जो मां को होते हैं, यदि दूर किए जा सकें, तो सम्भवतः होने के बाद वह मां एक स्वस्थ बच्चे को उत्पन्न करेगी। संक्षेप में यह कहना पर्याप्त होगा कि आनुवंशिकता और रोगों के सम्बन्ध में पहले के अनुमान और भय आज विज्ञान की परीक्षा से निरर्थक सिद्ध हुए हैं और रोग और आनुवंशिकता का अति न्यून सम्बन्ध है।

आनुवंशिकता के कट्टर समर्थक आज से करीब चालीस वर्ष पूर्व प्राणि-शास्त्रियों का एक ऐसा सम्प्रदाय था जिसने मानव का ध्यान अपनी ओर इस धारणा के कारण आकर्षित कर रखा था कि वह हमारी सभी सामाजिक समस्याओं का एक ही कारण—हमारी आनुवंशिकता ही बताता था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इस धारणा ने वैज्ञानिकों को जो अनवरत परीक्षण करने के लिए प्रेरित किया, उनके परिणामस्वरूप आज हम बहुत भिन्न तथ्यों को स्वीकार करने पर मजबूर हुए हैं।

आनुवंशिकता की प्रबलता के द्योतक अनुसंधान: मंदधी (Feeble minded) व्यक्तियों के आरम्भिक अध्ययनों से उन निष्कर्षों की पुष्टि होती थी, जो आनुवंशिकता को सामाजिक त्रुटियों का उत्तरदायी ठहराते थे। गोडार्ड का १९१२ का कल्लीकाक कुल का अध्ययन, डेविनपोर्ट और डेनियलसन का पहाड़ी जातियों का अध्ययन और एस्टाब्रुक का १९१५ का ज्यूकस के विषय में किया अनुसंधान, ऐसे निष्कर्षों को वैज्ञानिक परीक्षण का फल बता रहे थे। ज्यूकस के विषय में तो यहां तक कहा गया कि उनके मंदधी कुल के कारण समाज को पच्चीस लाख डालरों का व्यय सहन करना पड़ा है। कल्लीकाक कुटुम्ब, जिसके पितामह मार्टिन कल्लीकाक अमेरिका की क्रांतिकारी सेना के एक मंदधी सैनिक थे, उनके ४८० पौत्र प्रपौत्रों में ४३ मंदधी, ४३ स्वस्थ और शेष संदेहात्मक ज्ञात हुए। यह सब उनकी नाजायज सन्तान की सन्तानें थीं। परन्तु उनकी जायज सन्तानों में सभी अच्छे नागरिक प्राप्त हुए। इससे गोडार्ड का यह मत बना कि मंदधीयता एक आनुवंशिक गुण है। इसी प्रकार जोनाथन एडवर्ड्स के कुल के करीब सभी लोग डाक्टर, प्रोफेसर और लेखक प्रमाणित हुए। इन खोजों से

आनवशिक्ता और अपराधी वृत्ति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध भी स्थापित किया गया लोम्ब्रोजो जैसे प्रसिद्ध अपराधशास्त्री ने भी इसे स्वीकार किया। इसी प्रका ज्यूकस कुल के १,२०० उत्तराधिकारियों में से ४४० मदधी, ३१० बहुत गरी और भिखमगे और ३०० ऐसे थे जो पागलखानों में काल का ग्रास बने।

आनुवंशिकता का सिद्धान्त भ्रान्तिपूर्ण इस सम्बन्ध में दो प्रश्न विचारणी हैं। पहला, आज के ज्यूकस और एडवर्ड्स वही कुल कैसे कहे जा सकते हैं ज १२ या १५ पीढ़ी पहले इस नाम के कुल थे? प्रत्येक कुटुम्ब एक नयी सन्धि है एक नया सम्मिलन है और हमारी नाड़ियों में अगणित कुलों का रक्त प्रसारि है और कई बार तो प्रसिद्ध पुरखों के नाम वह लोग भी उधार ले लेते हैं ज आनुवंशिक दृष्टि से उनके समीप नहीं होते। इसके अतिरिक्त यह भी न भूल चाहिये कि प्रत्येक प्रजनन में आधी आनुवंशिक धारा तो कट ही जाती है, औ यह असंख्य वर्णसूत्र नाना प्रकार से मेल करते हैं। क्या यह सदा दो अवसरों प एक ही धारा अपनाते हैं? कोक्लिन ने ठीक ही कहा है "बहुत सम्भव है सर्वोत्तम विशेषताएं माता पिता में प्रकट हो जाएं और बच्चों में न मिलें। वाय तीव्रबुद्धि की सन्तान मंदधी, पागल और अयोग्य ही हो।" फिर वातावरण क कितना तीव्र प्रभाव वर्णसूत्रों पर पड़ता है इसे नहीं भूलना चाहिए। वर्णसूत्रों भिन्न भिन्न प्रकार के मेल और वातावरण के प्रभाव के कारण कोई भी एडवर्ड्स औ ज्यूकस एक-से नहीं होते।

मायरसन ने गोडार्ड की जांच के तरीके को अवैज्ञानिक बताया है। इस अतिरिक्त यह भी सिद्ध हुआ कि कुलीन एडवर्ड, जिसके वंश में योग्य ही ल हुए, की दादी स्वयं बहुत ही चरित्रहीन थी। इन अनुसंधानों से एस क इतिहासों की महत्ता कम हो गई। यह भी माना गया कि मदधीयता के मु कारण (१) बच्चे के जन्म से पहले और जन्म के समय सिर पर लगी चो (२) काली खांसी का बच्चों पर प्रभाव, (३) चुल्लिका (Thyroid) ग्रन्थि असन्तुलन इत्यादि हैं।

वातावरण मानसिक गुणों का एक प्रमुख कारण इन्हीं बच्चों पर किये गये परीक्षणों और दूसरे अनुभवों के बाद आज यह माना जाने लगा है कि मान सिक दुर्बलताएं आनुवंशिक नहीं हैं। जन्मजात अपराधी या नेता के सिद्धान्तों को आज का विद्वान अस्वीकार करता है। पी० ए० विट्टी के निम्न शब्दों में हम एक मान्य सिद्धान्त पर पहुंच पाएंगे। उनका कहना है

"हमें सदा ही व्यक्ति की अद्वितीयता को ध्यान में रखना चाहिये जिनका प्रत्येक कोष एकसम वंशसूत्र और एकसम वाहकाणु अपने में समाये रखता है, जो एक समान होते हुए भी किसी भी दूसरे प्राणी के वाहकाणुओं से अलग होते हैं,

और परिणामस्वरूप वातावरण के उन थपेडों के प्रति जो उसके विकास का दिग्दर्शन करते हैं, प्रत्येक व्यक्ति की अपनी विशिष्ट प्रतिक्रिया होती है।" इसलिए यदि मनुष्य और उसके व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन करना है यदि मनुष्यों की एकता और भिन्नता और सामाजिक व्यवहारों में अन्तर के कारणों तक पहुचना है तो हमें वातावरण की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करना होगा।

स्पष्ट है कि प्राणिशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों के दृष्टिकोण में यह परिवर्तन तभी हुआ जब उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि मानव-समाज और व्यक्तित्व पर वातावरण का भी प्रभाव पडता है। परन्तु कितना प्रभाव पडता है ? और क्या केवल वातावरण का ही प्रभाव पडता है या आनुवशिकता का भी ? और तब यह विवाद चला किसका प्रभाव अधिक पडता है ?

वातावरण और आनुवशिकता

इस विवाद ने आरम्भ में समाजशास्त्रियों को दो भागों में बाट दिया। वातावरणवादी इस पर बल देते थे कि मनुष्य के स्वभाव, व्यक्तित्व और विकास में केवल वातावरण का ही हाथ है। दूसरी ओर आनुवशिकता के पक्षपातियों की भी कमी नहीं थी। इस विवाद का अन्त करने के लिए कितने ही परीक्षण किये गये हैं, जिनमें से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं।

कुछ परीक्षण कुछ परीक्षण जिनसे वातावरण के प्रभाव को न्यून प्रमाणित करने की चेष्टा की गई, नीग्रो और गोरे अमेरिकन सिपाहियों पर किये गये। पहले विश्व-युद्ध के उपरान्त नीग्रो सिपाहियों की मानसिक उम्र जाची गई और उसका औसत १० ४ निकला। इसी तरह के गोरे सैनिकों की मानसिक उम्र १३ ४ आई। इससे यह प्रमाणित करने की चेष्टा की गई कि नीग्रो जन्मत ही अल्पबुद्धि होते हैं। उसके बाद किये गए ऐसे अध्ययनों में, दो को छोडकर सभी इसी ओर सकेत करते हैं। परन्तु १९२३ में क्लार्क के लॉस ऐंजल्स स्कूल के बच्चों पर परीक्षण का फल और ज० पटरसन और लेनियर के १९२९ के अध्ययन के फल बतलाते हैं कि गोरे और नीग्रो बच्चों की योग्यता और बुद्धि में कोई अन्तर नहीं है।

पुराने परीक्षणों की आलोचना फिर भी हमें यह ध्यान रखना होगा कि क्या बुद्धि परीक्षाए बुद्धि मापक हैं या ज्ञान मापक ? दूसरा प्रश्न यह है कि जो परीक्षाए गोरी सभ्यता के प्रभाव में बुद्धि का माप करने के लिए रखी गई हैं क्या वह नीग्रो जाति की सभ्यता और उनके वातावरण के अनुकूल है ? या वे गोरों को वैसे ही एक अवाछित रियायत नहीं देतीं ? तीसरी समस्या यह निर्णय करने की है कि यह अन्तर कहीं इस कारण तो नहीं कि गोरे बच्चों का घरेलू वातावरण बहुत उन्नत है और नीग्रो बच्चों को न वे सुविधाएं हैं और न ही उनका पोषण ठीक ढग से होता है। वे बच्चे जो प्रतिदिन अभाव और इच्छाओं को कुचल देने वाले

व्यक्तित्व के विकास को दबा देने वाले, वातावरण में पलते हैं, कैसे उन गोरे बच्चों से मुकाबला करेंगे ?

नीग्रो जाति के मन्दबुद्धि होने और आनुवंशिक तौर पर पिछड़ा होने का कारण उनकी वंशावली या नस्ल नहीं है। इसकी पुष्टि तो इसी से होती है कि नीग्रो नीग्रो में भी तो कुछ अन्तर है। अमरिका के दक्षिणवासी नीग्रो से उत्तरवासी नीग्रो की बुद्धि परीक्षण के परिणाम में सात अर्कों का अन्तर है। उत्तरवासी अधिक बुद्धिमान है। इससे स्पष्ट है कि श्रेष्ठ वातावरण श्रेष्ठ व्यक्तियों का विकास करता है। हमारे अतीत और वर्तमान का वातावरण हमारे व्यक्तित्व और जीवन के प्रत्येक भाग को आंदोलित करता है।

शारीरिक विशेषताएं और वातावरण

पहले कहा जा चुका है कि बहुत-सी शारीरिक विशेषताएं आनुवंशिकता की देन होती हैं। पर वातावरण भी शारीरिक विकास पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। उदाहरणतः वे जापानी और यहूदी बच्चे, जो अमेरिका में पले व बड़े होकर अपने सिर की बनावट में अपने पूर्वजों से भिन्न हो गए। जापानियों की तो ऊंचाई तक औसतन दो इंच अधिक हो गई। अतः यह कहना कि केवल आनुवंशिकता ही शरीर को विशेषता देती है, भ्रान्तिमूलक है।

प्रो० ए० ग्रीनफील्ड के शब्दों में, 'गर्भ धारण के समय से लेकर यौवन तक, ऊंचाई का विकास करने वाले वाहकाणुओं के कार्य पर अगणित प्रेरणाएं अपना प्रभाव छोड़ती हैं। मां का स्वास्थ्य, ग्रंथि रोग, खान-पान की आदतें, जलवायु, जीवन व्यतीत करने की परिस्थितियां, पेशे, शारीरिक अभ्यास, चलने और सोने की रीतियां, सभी तो शारीरिक ढांचे को प्रभावित करते हैं।'

क्या पेशेवार-परीक्षण से समस्या हल होती है ?

योग्यता, ज्ञान और बुद्धि में पेशेवार जो भेद और अन्तर होते हैं, वह क्या आनुवंशिकता से निर्धारित होते हैं ? इसका निर्णय करने के लिए हमें कुछ महत्वपूर्ण परीक्षणों पर विचार करना होगा।

कुछ नये परीक्षण

पोषण गृहों (Foster Homes) में पल बच्चे -फ्रीमन ने ६७१ बच्चों को जो अपने जन्म के घर से पृथक दूसरे घरों में पल रहे थे, अध्ययन करके परिणाम निकाला कि इन दूसरे घरों का वातावरण बच्चों के व्यक्तित्व के विकास को बहुत कुछ निर्धारित करता है। जो बच्चे अपने जीवन के उषाकाल में ही जल्दी अधिक अच्छे घरों में प्रविष्ट किए गए थे, वे उन बच्चों की तुलना में, जो वैसे ही घरों में देर में प्रविष्ट किए गए अधिक बुद्धिमान थे। छब्बीस ऐसे बच्चों में से जिनके माता पिता मदंबी थे केवल चार ही मदंबी बने। अन्य सभी का समुचित

विकास हुआ । यह उदाहरण इसलिए महत्त्वपूर्ण है कि यह वातावरण के प्रभाव का सजीव उदाहरण है ।

२० प्रतिशत वातावरण और ८० प्रतिशत आनुवंशिकता परन्तु इसकी तुलना में मिस बर्क्स का निष्कर्ष यह है कि बच्चों के विकास में घरेलू वातावरण का प्रभाव २० प्रतिशत होता है जब कि आनुवंशिकता का प्रभाव आसानी से ७५ या ८० प्रतिशत है । उनके परीक्षण भी ऐसे बच्चों पर हुए जिनको पितृगृह से अलग अच्छे गृहों में पोषित किया गया । मिस बर्क्स के अनुसार सबसे अच्छा घर बच्चे के बौद्धिक भागफल (Intelligence Quotient) को १०० नम्बर से २० नम्बर अधिक बढ़ा सकता है और बुरे-से-बुरा घर २० नम्बर कम कर देता है । इस प्रकार वे मानती हैं कि अच्छे-से-अच्छे और बुरे-से-बुरे वातावरण में रखने से बच्चे के बौद्धिक भागफल में ४० प्रतिशत का अन्तर हो सकता है । साधारणतः तो बौद्धिक भागफलों में इससे अधिक अन्तर नहीं होता । अच्छे बच्चे लगभग १२० और मंदधी ७० बौद्धिक भागफल रखते हैं । क्या इससे यह नहीं समझा जा सकता कि यह अन्तर केवल वातावरण की देन है । इसके अतिरिक्त यह तो अमेरिकन अच्छे और बुरे वातावरण की तुलना है बिल्कुल अच्छे और बिल्कुल बुरे की नहीं । इन परिस्थितियों में हम मिस बर्क्स के परिणामों को स्वीकार नहीं कर सकते ।

लगभग इन्हीं प्रणालियों पर एक और अध्ययन श्रीमती मेरी स्काडक और एच एम स्कील्ज ने लोवा शहर में किए । १५० नाजायज बच्चे छः महीने की अवस्था में पोषण गृहों में रख दिए गए और समय-समय पर उनकी परीक्षा ली गई । उनके बुद्धि-परीक्षा के फलों को उनके माता और पिता के फलों से मिलाया गया । उससे यह निष्कर्ष निकला कि साधारण अर्थों में जो बुद्धिमत्ता समझी जाती है वह वातावरण के परिवर्तन से बहुत प्रभावित होती है, इतनी प्रभावित होती है जितना कि पहले कभी अनुमान नहीं किया गया था ।

परन्तु यहाँ भी हमें शीघ्रता से एकतरफा निर्णय नहीं करना होगा । इन परीक्षणों से भी मनोरंजक और विचित्र परीक्षण दो प्रकार के हुए हैं —वह बच्चे जो एक समान जुड़वा सन्तान थे, अलग रखे गए और वह बच्चे जिनकी आनुवंशिकता एक न थी पर पाले एक साथ गए । ऐसे बच्चे जब अलग वातावरण में पले तो वर्षों पश्चात् न तो उनमें कोई मानसिक या प्रावृत्तिक या स्वाभाविक एकता देखी गई, न ही वह एक दूसरे को पहचान सके ।

एक वातावरण में एक जुड़वाँ बच्चे दो ऐसी बहनें, अलग-अलग पलीं । एक ने अच्छे घर और कालिज की शिक्षा में पोषण पाया और दूसरी निर्धन घराने में पली और अशिक्षित रही । एक का बौद्धिक भागफल ११६ था जब कि दूसरी

का केवल ९२। इससे सिद्ध होता है कि ऐसे बच्चों में भी वातावरण अन्तर ला देता है।

आनुवंशिकता और वातावरण की सरल सी परीक्षा अनाथालय में पले बच्चों और घर में पले भाई-बहनों से भी हो जाती है। न ही एक प्रकार का वातावरण, और न ही एक प्रकार की आनुवंशिकता उनके व्यवहारों और विकास को एक-सा कर पाता है, फिर भी यह मानना होगा कि आनुवंशिकता का प्रभाव होता है। इस बारे में दो मत उपस्थित किए जा रहे हैं। पहला मत प्रो० वुडवर्थ का है, जिन्होंने एक चार्ट के द्वारा अपने मत की पुष्टि की है।

बौद्धिक भागफलों में औसत अन्तर	
एकसम जुड़वाँ भाइयों में	५
जोड़े भाइयों में	९
असम्बन्धित व्यक्तियों में	१५

स्पष्ट है कि पहले उदाहरण में आनुवंशिकता के कारण ही इतना कम अन्तर है जो एक ही व्यक्ति की दो बार परीक्षा करने पर भी आ जाता है। दूसरे उदाहरण में जो अन्तर है वह वातावरण की तुलनात्मक समानता का परिणाम है। तीसरे में न वातावरण समान है, न आनुवंशिकता। यहाँ यह भी ध्यान रखना होगा कि एक वातावरण कहना वास्तव में उचित नहीं है। उचित इसलिए नहीं कि कोई भी दो व्यक्ति पूर्णतः एक जैसा वातावरण रख ही नहीं सकते। एक जैसी परिस्थिति पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के लिए पृथक्-पृथक् वातावरण उपस्थित करती है।

आनुवंशिकता, वातावरण के अनुपात का निश्चय कठिन दूसरा मत तीन बड़े विज्ञानवेत्ताओं प्राणिशास्त्री न्यूमैन मनोवैज्ञानिक फ्रीमन और गणनाशास्त्री हाल्जिगर ने सर्वसम्मति से दिया है। अपने दस वर्षों की खोज का सार उन्होंने इस प्रकार दिया है

"यदि आज से दस वर्ष पूर्व, अपने अनुसंधानों के आरम्भ में हमें आनुवंशिकता वातावरण समस्या का समाधान करने की कोई आशा थी भी, या यह आशा थी कि हम इन पर आधारित छोटी समस्याओं का हल मालूम कर लेंगे और कोई सीधा-सा फार्मूला निकाल लेंगे, तो हमारी यह आशा निराशा में परिणत हो गई है। जितना ही अधिक कोई उन पेचीदगियों को सुलझाने की चेष्टा करता है जो आनुवंशिकता और वातावरण के विवाद में निहित हैं उनमें जो इकट्ठी मिलकर व्यक्ति के विकास का निर्धारण करती हैं, उतना ही अधिक उसको यह विश्वास हो जाता है कि यह कोई एक समस्या नहीं है बल्कि समस्याओं का समूह है और उन बड़ी समस्याओं और उन छोटी

समस्याओं का कोई साधारण हल नहीं है । हमें प्रो० जनिंग्ज के इस विचार से पूर्ण सहानुभूति है कि जो कुछ आनुवंशिकता कर सकती है, वह वातावरण भी कर सकता है ।

पाँच जुड़वा बहनों पर परीक्षण

एक समान जुड़वाँ बच्चों की कहानी के बारे में अन्तिम बात कहकर हम आगे बढ़ेंगे । निषिक्त अंड (Fertilised Ovum) के पाँच भागों में विभक्त होने से जो पाँच बहनें डायोनी कुल में उत्पन्न हुईं, उनकी प्रवृत्तियों और व्यवहारों पर खोज की गई। उनकी सामाजिक सफलता, सामाजिक लोकप्रियता और सामाजिक प्रवृत्ति की परीक्षा करके उनको अंक दिए गए, वह क्रमशः इस प्रकार है —

एनेट	१३	८	२७
सेसिल	१३	१२	१८
एमिली	०९	१०	०६
मेरी	०९	०७	०४
यूनी	१८	१६	१०

इससे यह ज्ञात होता है कि उनकी भिन्न प्रवृत्तियों में १००, २००, ६०० प्रतिशत तक के महान् अन्तर हैं ।

उपर्युक्त उदाहरण से भी वातावरण की महत्ता को समझा जा सकता है । यहाँ तक तो ठीक है कि वह जुड़वाँ बच्चे जो एक ही साथ पाले जाते हैं, उन जुड़वा बच्चों की अपेक्षा जो भिन्न परिस्थितियों में पाले जाते हैं एक दूसरे से कहीं अधिक समान होते हैं । इसके अतिरिक्त एक समान जुड़वा बच्चों में जो अन्तर हो जाते हैं, वह भिन्न प्रकार के वातावरण के कारण होते हैं । यदि वह कोष जो विभक्त होने पर दो जुड़वा सन्तानों को जन्म देता है विभाजित होने में समय ले तो बच्चों में अधिक भिन्नता होगी और उन बच्चों पर वातावरण की भिन्नता का और अधिक प्रभाव पड़ेगा ।

वातावरण और मानव प्रकृति

इस विषय में यहाँ संक्षेप में केवल यह कह देना ही पर्याप्त होगा कि सभी मनुष्य अपने-अपने वातावरण के ही परिणाम दिखाई देते हैं । हमारी जड़ें हमारे अतीत में हैं । मानव जाति आज संस्कृति के विकसित रूप की स्वामिनी है और प्रत्येक पीढ़ी एक अतीव गौरवशाली सम्पत्तिशाली विरासत लेकर अपनी प्रगति के साथ उस सांस्कृतिक सम्पत्ति को अपने सक्रिय प्रयोग द्वारा और भी समृद्ध करती है । परन्तु मानव जाति के ही कुछ अंग यदि इस सांस्कृतिक मानवीय वातावरण से दूर रख जाएँ, तो क्या वहाँ भी वे अपनी आनुवंशिकता या अपनी सहज प्रवृत्ति के कारण उतना ही विकास कर सकेंगे जितना कि समाज में पले बच्चे करते हैं ?

मानव-संसर्ग से पृथक विजन पोषित बच्चे (Feral Children)
अबुल फज़ल ने अपने 'आईने अकबरी' में बादशाह अकबर और राजा बीरबल की एक कहानी का जिक्र किया है। यह जानने के लिए कि आदि धर्म और ईश्वरदत्त भाषा कौन सी है, दस बच्चों को जन्म से ही आबादी से दूर, एक महल में रखा गया जहां उनका खाना पहुंचाने का सुचारु प्रबंध था, परन्तु वे न किसी को देख सकते थे न मिल सकते थे। दस वर्ष बाद ईश्वरीय वाणी सुनने के लिए जब वे दरबार में लाए गए तो सिवाए अ ए, गें के उनकी कोई भाषा न थी।

इसी प्रकार की एक खोज १९२७ में इलाहाबाद जिले में प्राप्त भेड़िया बच्चे की है, जिसका विवरण इस प्रकार है। दस वर्ष का एक छोटा बालक प्रयाग से कोई ७५ मील दूर मियावना की बस्ती के चरवाहों को प्राप्त हुआ था। ८ या वच्चा भेड़िये की माद में रह रहा था, और माद की अवस्था से ज्ञात होता था कि पर्याप्त समय से वह यहीं रह रहा है। न तो यह लड़का चल सकता था, न बोल सकता था। इसका भोजन का तरीका जानवरों के समान था। वह पानी को जीभ से चाटता था और घास खाता था भौंकता था और अपने को काट तक लेता था।

इसकी अवस्था करीब सात से बारह साल तक की थी। यह भेड़िया के साथ ही पला प्रतीत होता था। वह मांस का छोड़ घास की ओर लपकता था। वह खड़ा हो सकता था और कुछ चल भी सकता था, पर कभी कभी घुटना के बल घसिटना चाहता था।

उसके घुटने सख्त हो गए थे जिनसे ज्ञात होता था कि उसे बार-बार धरती पर घसीटा गया है। उसकी हथेलियों में भी गांठें पड़ी हुई थीं। डाक्टरों के अनुसार वह वर्षों तक जड़ों और फलों पर पाला गया था। उस लड़के को भूख लगती थी तो उसे दौरे पड़ते थे, और समय समय पर वह भयानक हो उठता था। एक मानसिक चिकित्सालय में ले जाए जाने से पहले उसने दो पुलिस के सिपाहियों पर आक्रमण भी किया। अपनी बोली के एक-मात्र साधन के रूप में एक विशेष प्रकार के भौंकने को वह बार-बार काम में लाता था।

इसी प्रकार के और विवरण अन्य अवसरों पर भी दिए हैं। १९५३ में एक ऐसा ही लड़का जिसका नाम रामू था, लखनऊ के हस्पताल में लाया गया था।

वातावरण की प्रमुखता ऐसे सभी विवरणों से सिद्ध होता है कि मनुष्य और उसकी आज की प्रगति कोई शारीरिक या मानसिक देन नहीं बल्कि सांस्कृतिक देन है। इसीलिए समाजशास्त्र के विद्यार्थियों को सदैव संस्कृति और वातावरण पर ध्यान रखना पड़ता है। हमें वंशावलियों पर निर्भर न रहकर ऐतिहासिक रूप में सांस्कृतिक विकास और उन्नति को जानना होगा। मनुष्य आज क्या है, इसका उत्तर देने के लिए उस समाज अर्थात वातावरण का भी अध्ययन करना होगा जो

उसे पशु से मानव बनाता है।

आनुवंशिकता और वातावरण सहवर्ती

परन्तु इस दीर्घ विवाद के पश्चात् आवश्यक है कि हम अपने निष्कर्षों की ओर समग्र रूप में दृष्टिपात करें। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए शारीरिक और मानसिक गुणों और दुर्बलताओं के लिए आनुवंशिकता और वातावरण दोनों महत्त्वपूर्ण हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। मनुष्य का प्रत्येक श्वास प्रत्येक व्यवहार दोनों के अन्तःसम्बन्ध की उत्पत्ति है। दोनों एक दूसरे के परिणाम के लिए अनिवार्य हैं। इनके अलग-अलग प्रभाव का निर्णय तो तब किया जाए यदि दोनों को एक दूसरे से मुक्त और पृथक् किया जा सके। जब दोनों ही मानव विकास के अनिवार्य अंग हैं तो कौन अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह कैसे कहा जा सकता है?

रज और वीर्य के सम्मिलन के पश्चात् ही कोष में आनुवंशिकता के साधन वाहकाणुओं (genes) पर सिंचित (fertilised) स्त्री बीज के शेष भाग का प्रभाव पड़ता है। दोनों में क्रिया और प्रतिक्रिया होती है। दूसरी ओर नौ महीने की गर्भावधि में माता के गर्भ में जो वातावरण स्थिति और स्वास्थ्य इत्यादि होता है वह भी तो वाहकाणुओं के विकास को प्रभावित करता है। ज्यों ज्यों भ्रूण (Embryo) अपने कोषों की सख्या को बढ़ाता जाता है त्यों-त्यों उसके भिन्न-भिन्न भागों में एक दूसरे का प्रभाव अधिक तीव्र होता जाता है।

जन्म के पश्चात् बच्चे का वातावरण वेग से बढ़ जाता है। फलतः वातावरण का वाहकाणुओं, जो अब शारीरिक ढाँचे में होते हैं पर प्रभाव और वाहकाणुओं के समूह को लिए हुए शरीर का वातावरण पर प्रभाव और भी गम्भीर और महत्त्वपूर्ण होता जाता है। इस प्रकार ये दोनों एक दूसरे में इस भाँति समा जाते हैं कि विकास की इस दीर्घ योजना में से दोनों का अलग अलग अध्ययन करना केवल एक भयानक भूल है।

अनुल्लंघनीय आनुवंशिकता कम-से कम कुछ अर्थों में तो वाहकाणु शरीर और मन को ऐसी शक्तियाँ प्रदान करते हैं जिनका विकसना या मुरझाना वातावरण के उपयुक्त होने या न होने पर आधारित है। जब कि एक ही प्रकार के वंशसूत्रों और वाहकाणुओं को लेकर ही अलग-अलग वातावरण अगणित कोटि के व्यक्तित्वों का विकास कर सकते हैं, तब भी आनुवंशिक सम्पद् कुछ ऐसी सीमाएँ अवश्य निर्धारित कर देती है जिनका उल्लंघन कोई भी वातावरण नहीं कर सकता। नीग्रो वाहकाणुओं का एक समूह कहीं भी परिस्थितियों में एक चीनी की शारीरिक विशेषताएँ नहीं दे सकता और अवश्य कुछ ऐसी जन्मजात दुर्बलताएँ होती हैं जिनका निदान कैसा भी बलशाली वातावरण नहीं कर सकता।

आनुवंशिकता को वातावरण से पृथक करना समीचीन नहीं हमारे समाज में जो नाना प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं उनका अध्ययन हमें यह नहीं बता पाएगा कि दोनों में से कौन अधिक प्रभावोत्पादक है। यदि कभी किसी नए तत्व का प्रवेश एक जटिल परिस्थिति को पूर्णत बदल देता है, तो इसे उस नए तत्व का ही प्रभाव या महत्व मान लेना सहज भले ही प्रतीत हो वस्तुस्थिति के विरुद्ध होगा। रक्त की रासायनिक बनावट में थोड़ा-सा अन्तर उसी पदार्थ को विष में परिणत कर सकता है परन्तु उस विष बनाने का श्रेय उस अन्तर को न होकर उस पदार्थ के भिन्न भिन्न पदार्थों को है जिनके नए मेल से विष के गुणों का जन्म हुआ। इसी प्रकार कोई भी सामाजिक तत्त्व अकेला सामाजिक परिस्थिति की विशिष्टता का वर्णन नहीं कर सकता। बल्कि उसके प्रभाव से दूसरे सामाजिक सम्बन्धों का रूप कैसे बदला और उनके तज्जनित परिवर्तन से सारी परिस्थिति कैसे बनी, इसका ज्ञान ही उस परिस्थिति के लक्षण बता सकता है।

जीवन के किसी भी एक व्यवहार विचार या अनुभव को बिल्कुल अलग से देखना बहुत कठिन है। इसीलिए जीवन के इन अनिवार्य तत्वों इन घटनाओं को *अलग-अलग कैसे देखा जा सकता है?*

संक्षेप में कहें तो, 'आनुवंशिकता एक ऐसी शक्ति है जो एक वातावरण द्वारा वास्तविकता में विकसित कर दी जाती है।' जीवन के सभी गुण आनुवंशिकता में हैं, पर उन गुणों का प्रस्फुटन, उनकी अभिव्यक्ति, वातावरण पर निर्भर है। वातावरण के बड़े परिवर्तन निम्न कोटि की शक्तियों वाले मनुष्यों पर बहुत न्यून प्रभाव डालेंगे जब कि ऐसे छोटे अन्तर भी अधिक मेधावी व्यक्तियों के लिए कभी-कभी क्रान्तिकारी होंगे। शारीरिक दृष्टि से मनुष्य कमजोर और नाजुक प्राणी है। अत उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने वातावरण पर नियन्त्रण करे। विविध प्रकार के साधनों द्वारा मनुष्य आदि काल से अपने वातावरण को अधिक सुखद बनाने में, उसे मानवीय आवरण पहनाने में, लगा रहा है। उसकी शारीरिक बनावट और मानसिक विशेषताएं उसे इस कार्य में मदद पहुंचाती हैं। यही मानव की अपनी *परिस्थितियों को बदलते रहने की, अपने अनुकूल बनाने के प्रयत्न की कहानी,* संस्कृति की कहानी है।

व्यक्तित्व के विकास में वातावरण और आनुवंशिकता का समन्वय

संस्कृति की इस कहानी में व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व कैसे विकसित होता है इसके लिए आनुवंशिकता कैसे जीवन-पर्यन्त इसे प्रभावित करती है, वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है और कैसे व्यक्तित्व दोनों तत्वों का एक संगम है इन तीनों तथ्यों को विस्तार से समझना आवश्यक है।

परिपक्वता के साथ-साथ आनुवंशिकता का प्रभाव व्यक्ति के शरीर के कोष

उसकी बढती हुई अवस्था के साथ साथ बढ़ते ह । एक दो सप्ताह तक यह आखो से पूरा काम नही ले पाता, चार महीने की अवस्था तक उसे अपने चारों ओर के वातावरण की अभिज्ञता प्राप्त नही होती । प्रजनन (Gonad) ग्रथिया के सक्रिय स्राव के लिए भी कितने ही वष की अवस्था अनिवाय है। पच्चीस वष की अवस्था तक साधारणत ग्रथिया अपना परिपक्व रूप धारण करती हैं। इस प्रकार समय समय पर आनुवशिकता मनष्य को नए-नए साधन देती है और नाना प्रकार स प्रभावित करती हैं ।

ये सभी प्रभाव यक्तित्व के विकास में महत्वपूण होते ही ह। साथ-साथ आनुवशिकता द्वारा निधारित ग्रथिया के स्राव मनुष्य के शारीरिक विकास, मानसिक विकास, वातावरण की क्रिया और प्रतिक्रिया पर बहुत प्रबल प्रभाव डालते हैं। इस प्रकार या तो आनुवशिकता जन्म से भी पहले निर्णीत होती ह परन्तु यह जीवन में बहुत दूर तक इस परिपक्वता क प्रभाव के कारण अपनी शक्ति को फलाये रहती ह। यह भी कह देना यहा अनुपयुक्त न होगा कि परिपक्वता भी परिस्थितियों और वातावरण के साथ साथ चलती ह। इसे न तो वातावरण से अलग किया जा सकता ह, न परिस्थिति से। इतना फिर भी कहा जा सकता है कि जो गुण या विशेषता जन्म क समय अधिक विकसित होगी, वह आनुवशिकता के प्रभाव का फल होगी ।

नाड़ी संस्थान (Nervous System) ग्रथिया (Glands) और व्यक्तित्व

बच्चे के शरीर की सम्पत्ति कुछ यन नही होती। परन्तु हम केवल उसी से परिचय प्राप्त करेंगे जिसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध व्यक्ति के विकास से है उसकी मानसिक क्रियाओ और व्यवहारो से ह और सवदनात्मक क्रियाओ (Emotional activities) से ह। किसी भी एक काय में समस्त शरीर अपना योग द सकता हैं। उदाहरण के लिए वसे तो फेफड़े ही वायु को शरीर के भीतर खींचने, सास लेने का कार्य करते ह फिर भी इनकी उचित क्रिया चुल्लिका (Thyroid) ग्रथि की अवस्था से प्रभावित होती ह। इसी प्रकार सास लेने के साधना का मनोवज्ञानिक क्रियाओ से भी सम्बन्ध है। परन्तु इस बात के बावजूद भी कि सारा शरीर श्वासोच्छवास की क्रिया में सम्मिलित होता ह, उसके कुछ भाग दूसरे भागा की अपेक्षा अधिक सचेष्ट योग देते ह। मानसिक और सवेदनात्मक व्यवहार के लिए सबसे महत्वपूर्ण आनुवशिक साधन नाडी सस्थान और ग्रथि स्राव (secretions) ह।

नाडी-सस्थान नाडी-सस्थान नाडियों का एक ऐसा जाल ह, जो उद्दीपकों (Stimuli) द्वारा क्रियान्वित, उत्तेजित या प्रेरित हो सकता ह। यह प्रकाश रग, वाणी गध सरदी और गरमी इत्यादि की प्रेरणाए अनुभव करता ह और उनके

दिये जाने लगे। जिम्मी को उसके पालने में ही रखा जाता रहा और कभी-कभी परीक्षण के लिए हिलाया-डुलाया जाता। आरम्भ के कुछ मास तक उसे साधारण बच्चे की तरह रखा गया। परन्तु बाद में उसके सचेष्ट के समान व्यवहार साधारण बच्चों से कम पाए गए। दोनों को एक जैसा भोजन दिये जाने पर भी अपनी क्रियाओं के कारण जौनी अधिक खाता था। इसके अतिरिक्त, उसे भोजन करने को स्वयं प्रोत्साहित किया जाता था, जब कि जिम्मी को धाया भोजन कराती थी। सातवें मास से, जब उसने तैरना सीखा, तो जौनी की ऊंचाई और भार तेजी से बढ़ने लगे, और परीक्षण के अन्त तक वह अपने भाई से लम्बा भी था और भारी भी। परन्तु बाद में जिम्मी भी जौनी जितना ही विकास कर गया।

स्पष्ट है कि हालांकि विकास का आधार परिपक्वता थी, फिर भी उस पर वातावरण का प्रभाव पड़ा। जैसे पहले कहा जा चुका है स्राव व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं और वातावरण भी। यह दोनों अन्तःसम्बन्धित हैं। वातावरण का चालकों की तृप्ति, संवेदनों की तृप्ति और परिपक्वता पर महत्वपूर्ण प्रभाव है। इसी कारण हम व्यक्तित्व को इन दोनों तत्वों का संगम कह सकते हैं।

छठा अध्याय

परिस्थिति-शास्त्र और भौगोलिक वातावरण

ECOLOGY AND GEOGRAPHICAL ENVIRONMENT

व्यक्ति का परिस्थिति से सम्बन्ध

मनुष्य अपनी बुनियादी आवश्यकताओं, सुरक्षा, नए अनुभवों की जिज्ञासा या शारीरिक आवश्यकताओं, भूख मलत्याग निद्रा, थकान, काम वासना आदि को पूरा करने के लिए अपने बाह्य वातावरण पर निर्भर रहता है। वह अपने वातावरण से प्रेरित होकर प्रतिक्रिया करता है इसलिए मनुष्य पर वातावरण का बहुत प्रभाव पडता है। यहां तक कि व्यक्तित्व को व्यक्ति की वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया तक कह दिया गया है।

यह वातावरण बाह्य भी है और आन्तरिक भी। ऐसा भी है जो मनुष्य की प्रतिक्रिया से प्रभावित हो और ऐसा भी जो मनुष्य को प्रभावित कर सके। हमारी भौगोलिक प्राकृतिक परिस्थिति और सीमाए, आनुवशिकता (Heredity) और सामाजिक विरासत वातावरण (Environment) के मुख्य अग है। व्यक्तित्व के विकास पर आनुवशिकता का कितना प्रभाव है और वातावरण का कितना, इसका विवेचन पीछे किया जा चुका है। हमारी सामाजिक विरासत मानवो के सामाजिक सम्बन्धो द्वारा, जिनसे सस्कृति और सभ्यता का जन्म हुआ है, मानव समूहो और समुदायो मे सम्बन्धित है। व्यक्तित्व के विकास पर इसका इतना अधिक प्रभाव है कि अल्प व्यक्तिगत अन्तर को छोडकर एक ही सस्कृति की सतानो में बहुत समानता होती है। पर हमारी भौगोलिक परिस्थिति व प्राकृतिक वातावरण का भी हम पर थोडा प्रभाव होता है। इस प्रभाव को तीन भागो में बाटा जा सकता है। भौगोलिक परिस्थिति प्रादेशिक परिस्थिति और जनसख्या। तीनों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध भी है।

स्टानर ने अमेरिकन समुदाय के बारे में लिखते हुए परिस्थितिशास्त्र के महत्त्व पर इस प्रकार प्रकाश डाला है "समुदायो के उदय और विकास में परिस्थिति (Ecology) का महत्त्व स्पष्ट है। किसी भी स्थान के भूमितल की बनावट, यातायात के साधन, उद्योग धन्धों के प्रकार और समूची आर्थिक व्यवस्था समुदाय की सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करते है और उसके भविष्य के विकास की सीमा निर्धारित कर देते हैं।

सेमुअल स्मिथ ने परिस्थिति शास्त्र (Ecology) के बारे में लिखा है ' परिस्थितिशास्त्र मनुष्य का उसके सांस्कृतिक और संस्थात्मक वातावरण से पृथक प्राकृतिक वातावरण में अध्ययन करता है। एक ही स्थान पर इकट्ठे रहने वाले मनुष्यों में जो प्रतियोगिता या सहयोग की भावनाएं अनिवार्यतः जन्म लेती और विकास पाती हैं, उनके परिणाम-स्वरूप परिस्थिति-शास्त्र का भी विकास होता है।

परिस्थिति के प्रभाव को हम पांच भागों में बांट सकते हैं —

१ भूतल की बनावट के कारण होने वाले प्रभाव।
२ जलवायु का प्रभाव।
३ प्राकृतिक पदार्थों के कारण प्रभाव।
४ प्रादेशिक प्रभाव।
५ जनसंख्या के कारण प्रभाव।

इनमें से पहले तीन प्रभाव भौगोलिक वातावरण के अन्तगत आते हैं। हम आगे विस्तार से उनकी विवेचना करेंगे।

भौगोलिक वातावरण और सामाजिक जीवन

बहुत प्राचीन काल से यह विश्वास चला आ रहा है कि मानव समाज का स्वभाव व्यवहार सामाजिक संगठन सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक स्थान बहुत अंशों में उसके भौगोलिक वातावरण द्वारा निर्धारित होता है। विभिन्न समयों में विभिन्न विचारकों और विद्वानों ने इस मत की पुष्टि की है और उसके पक्ष में सही और गलत प्रमाण पेश किए हैं।

मध्यकाल में सूर्गो और मांटेस्क्यू उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में लामार्क बकल, लाप्ले, दिमोलिन रैटजल, हंटिंगटन बेवरिज, मूर इनमें विशेष प्रसिद्ध हुए हैं। इन सकडों विचारकों ने जिन्हें कि भूगोलवादी कहा जाता है मानव समाज के विभिन्न क्षेत्रों में भौगोलिक वातावरण के निर्णायक प्रभाव की ओर संकेत किया है। इनके विचारों में जहां कुछ समानताएं हैं वहां विस्तृत विभिन्नताएं भी विद्यमान हैं।

अगर इन सब लेखकों को समग्र रूप में देखा जाय तो मानव शरीर और मन का कोई ऐसा गुण नहीं, समूह या सामाजिक संगठन का कोई ऐसा रूप या स्वभाव नहीं जिसकी कि भौगोलिक कारणों द्वारा विवेचना न की जा सके। पृथ्वी पर जनसंख्या के वितरण, नस्ली विभिन्नताएं आर्थिक, राजनतिक और सामाजिक संगठन की विशेषताएं, राष्ट्रों का उत्थान और पतन धार्मिक विचार और विश्वास परिवार और विवाह के प्रकार, स्वास्थ्य प्रजनन, शक्ति, बुद्धि अपराध आत्महत्या सांस्कृतिक सफलता, प्रतिभाशाली व्यक्तियों की संख्या, साहित्य कविता, कला और सभ्यता के गुण आर्थिक और सामाजिक जीवन का विकास, संक्षेप में, सभी सामाजिक तथ्यों

और घटनाओं को उन्होंने भौगोलिक कारणों में ढूंढा है ।

उन सब असंख्य मतों की समालोचना संभव नहीं है। हम यहां पर केवल उन प्रमुख लेखकों के विचारों की संक्षिप्त विवेचना करेंगे जो कि आधुनिक हैं और जिन्होंने वैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक जीवन पर भौगोलिक वातावरण के प्रभाव को समझाने की चेष्टा की है ।

भौगोलिक कारकों (Factors) की परिभाषा

इससे पहले कि हम समाज पर भौगोलिक वातावरण के विभिन्न प्रभावों का अध्ययन करें यह आवश्यक है कि हम भौगोलिक वातावरण के अर्थों को निश्चित कर लें।

भौगोलिक वातावरण में वह सब सांसारिक अवस्थाएं और घटनाएं सम्मिलित हैं जिनका मनुष्य के क्रिया-कलाप से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिन्हें न तो मनुष्य ने पैदा किया है और जो मनुष्य की उपस्थिति और क्रिया से स्वतन्त्र अपने आप सहज रूप से परिवर्तित होती हैं। दूसरे शब्दों में यदि हम मनुष्य के अथवा किसी सामाजिक समूह के वातावरण को लें और उसमें से उन सब साधनों को निकाल दें जिन्हें कि मनुष्य ने बनाया या परिवर्तित किया है, हमारे पास मोटे तौर पर जो बच जाता है वही भौगोलिक वातावरण है । प्राकृतिक जलवायु, तापक्रम, जमीन, भूतल की बनावट, जल का वितरण और उसकी दिशाएं, प्राकृतिक पशु पक्षी और पेड़-पौधे ऋतुओं और भौगोलिक, भौतिक प्रक्रियाओं में प्राकृतिक परिवर्तन, गुरुत्वाकर्षण, भूकम्प, तूफान, समुद्र, जहां तक यह मनुष्य के बिना प्रयत्न के रहते और बदलते हैं ऐसी ही वस्तुएं और घटनाएं हैं ।

इसके विपरीत, वह समस्त अवस्थाएं और घटनाएं जिनकी उपस्थिति और परिवर्तन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में किसी भी प्रकार मनुष्य की उपस्थिति और क्रिया का परिणाम है मानवीय सामाजिक साधन हैं, भौगोलिक वातावरण नहीं हैं । बोये हुए खेत लगाए हुए जंगल या बगीचे, कृत्रिम नहरें या कूलें, भूमितल के कृत्रिम रूपान्तरण अथवा कृत्रिम जलवायु ऐसी सब वस्तुएं भौगोलिक वातावरण से अलग हैं और उन्हें हम सही अर्थों में प्राकृतिक साधन नहीं कह सकते ।

भौगोलिक प्रभाव की पूर्व स्थापनाओं (Propositions) का स्वरूप

भौगोलिक तत्वों का प्रभाव कभी भी विभिन्न घटनाओं पर प्रत्यक्ष एक सा और निश्चित नहीं है। कुछ क्षेत्रों में तो यह घनिष्ठ और प्रत्यक्ष है जब कि दूसरों में नहीं। इस सम्बन्ध में लाप्ले की विचारधारा के समर्थक ब्रून्ह्यूनस का मत ध्यान देने योग्य है । उसके अनुसार मानव व्यवहार के वह रूप और वह घटनाएं जो कि मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित हैं, उदाहरणार्थ भोजन,

सोने के लिए साया, कपड़े और अन्य कुछ आवश्यकताए, अन्य सामाजिक घटनाओं और क्रियाओं की तुलनाओं में भौगोलिक अवस्था से ज्यादा प्रत्यक्ष प्रभावित हैं। इस तरह वह उन छ बातों का उल्लेख करता है जिनका कि भौगोलिक साधनों से अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह छ क्षेत्र हैं मनुष्यों के निवास-स्थान, (बस्तियां घरों का प्रकार और बनावट), सड़कों की दिशा और बनावट पौधों की पैदाइश और पशुओं का पालन, खनिज धातुओं का उपयोग और वनस्पति और पशुओं का विनाश। इन छ तत्वों से बाहर जो भी हैं उनके साथ भौगोलिक कारकों का अगर कोई सह-सम्बन्ध (correlation) है भी तो वह बहुत कम है। परिवार, राजनैतिक, सामाजिक सगठन, धर्म कानून, साहित्य विज्ञान ऐसे ही क्षेत्र हैं।

पर उन क्षेत्रों में, जिनमें कि यह सह सम्बन्ध दिखाई भी देता है, यह बहुत कम ही निश्चित और कठोर रूप में है। इस प्रकार कारकों का निर्णयवाद (determinism) सदा ही सापेक्षिक (relative) है। इस प्रकार भौगोलिक सह-सम्बन्ध अधिकांश स्थितियों में कार्य कारण (casual) न होकर आकस्मिक (accidental) हैं।

भौगोलिक कारकों की यह अकठोरता (non rigidity) या सापेक्षता (relativity) विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। पहले तो जहां कि भौगोलिक कारक अमुक-अमुक सामाजिक घटना की ओर निर्देश करते हैं (जैसे कि खनिज उद्योग अथवा किसी प्रदेश विशेष में मनुष्यों का बसना), वह घटना हो भी सकती है और नहीं भी। इस प्रकार भौगोलिक सम्भावना का यह अर्थ नहीं कि यह घटना इस क्षेत्र में वस्तुत घटेगी ही। उदाहरण के लिए, प्रचुर प्राकृतिक साधनों के होते हुए भी अभौगोलिक कारकों से वहां पर खनिज उद्योग का विकास नहीं पाया जा सकता। इस प्रकार भौगोलिक प्रभाव अपने कठोर (rigid) रूप में सर्वथा रह हो जाता है। भौगोलिक निर्णयवाद की यही सापेक्षता हमें वहां दिखाई देती है जहां कि वह इस ओर सकेत करता है कि अमुक स्थान पर ऐसा नहीं हो सकता। जैसे कि रेगिस्तान या शुष्क प्रदेशों में पौधे नहीं उगाये जा सकते। लेकिन हम जानते हैं कि कृत्रिम सिंचाई के साधनों ने इसे सम्भव बना दिया है। भौगोलिक घटनाओं की अकठोरता का यह अन्य उदाहरण है।

दूसरे भौगोलिक निर्णयवाद की अकठोरता एक ही भौगोलिक क्षेत्र में बहुत और विभिन्न सामाजिक रूपों की सम्भावना के रूप में प्रकट होती है। निवास-स्थान की तरह भौगोलिक अवस्थाएं सापेक्ष रूप में यह तो निर्णय कर सकती हैं कि अमुक स्थान रहने या घर बनाने के लायक है, लेकिन वहां रहने वाला समाज एक आरण्यक कबीले (Primitive tribe) अथवा जटिल सभ्य समाज का रूप धारण

करेगा, उसका घर एक झोपडा, पिरेमिड, महल या स्काईस्क्रेपर होगा, इनका निणय भौगोलिक कारक नही करेंगे। वहा पर क्या होगा, भौगोलिक कारको पर अधिक निभर न हो अभौगोलिक कारको पर ज्यादा निभर होगा। इसी विचार को वला ने इन शब्दो में व्यक्त किया है कि "भौगोलिक कारका का प्रभाव स्वीकारात्मक (Positive) न होकर निषेधा मक (Negative) है। वह एक घटना में वाधा पहुचा सकने ह, परन्तु वह उसके रूप को निश्चित नही कर सकते।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भौगोलिक और सामाजिक घटनाओ के वीच सह-सम्ब ध (Correlations) स्थापित करने का काय भौगोलिक निणयवाद की अकठोरता और अप्रत्यक्षता के कारण वहुत कठिन हो जाता है। एक भौगोलिक साधन दूसरे भौगोलिक साधन के प्रभाव को समाप्त कर अथवा अभौगोलिक साधन सारे भौगोलिक साधना के प्रभाव को समाप्त कर इस काय को और भी कठिन बना देते हैं। फिर सभ्यता का स्वरूप जितना जटिल भौगोलिक अवस्थाआ और सामाजिक घटनाओ के वीच का सह सम्बन्ध उतना ही अधिक अनिश्चित, अमूत और अदृश्य होता जाता ह। इसका यह अथ नही कि ऐसे समाजा में भौगोलिक साधन अपना काय वद कर देते हैं इसका अथ इतना ही ह कि भौगोलिक प्रभाव उनके प्रभाव को वहुत कुछ समाप्त कर देते हैं। इसलिए उनको देखना समझना और उनसे कोई परिणाम निकालना अधिकाधिक कठिन हो जाता है। इन्ही कारणा से हम यह कह सकते ह कि ऐसे सह-सम्बन्ध स्थापित करने के सभी प्रयत्न अधिक-से-अधिक केवल एक कामचलाऊ पूव कल्पना (hypothesis) ही कहे जा सकते हैं जिन्हें कि कुछ समाजा और कालो पर लागू किया जा सकता है और वह कभी भी सभी समाजों पर सही उतरने का दावा नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त, तथाकथित वहुत-से सह सम्बन्ध केवल भ्रान्त हो सकते ह।

आगे हम विभिन्न लेखको द्वारा पेश किए गए कुछ प्रमुख सह सम्बन्धो (correlations)पर विचार करेंगे। हम ब्रूह्न्स के छ आवश्यक तथ्या से शुरू करेंगे, क्योंकि वह अधिक निश्चित और विशेष हो सकते हैं।

१ भौगोलिक अवस्थाए और पृथ्वी पर मानव जनसख्या का वितरण

यह स्पष्ट सा ही लगता ह कि वह भौगोलिक क्षेत्र जो कि जलवायु जमीन भूतल की वनावट जल क वितरण पशु पक्षी और पेड पौधो की दृष्टि से मनुष्य के रहने और उसकी प्राथमिक आवश्यकताओ को पूण करने के लिए अधिक उपयुक्त ह उन प्रदेशा की तुलना म जो इस दृष्टि से कम सुविधाजनक ह अधिक घिनके वसेंगे।

यह पूव स्थापना (proposition) वाहर से स्पष्ट और स्वत सिद्ध दिखाइ देती ह क्योंकि कौन भौगोलिक अवस्थाए सुविधाजनक ह यह अभी खोज का विषय ह।

इसके अलावा यह अवस्थाएं जो कि एक आरण्यक (primitive) समाज के लिए सुविधाजनक हैं। एक औद्योगिक समाज के लिए सर्वथा असुविधाजनक हो सकती है। भौगोलिक वातावरण जहां एक दृष्टि से उदाहरण के लिए जलवायु में सुविधाजनक हो सकता है, किन्तु दूसरी दृष्टि से वही, उदाहरण के लिए पानी धातुओं या उपजाऊ जमीन के अभाव में असुविधाजनक हो सकता है। इस प्रकार भूगोलवादियों की इस प्रकार की प्रस्थापनाएं अधिक-से-अधिक बहुत ही सीमित, स्थानीय और अस्थायी महत्व का दावा कर सकती हैं।

यह कहा जाता है कि बावजूद मनुष्यों के एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण और विभिन्न स्थानों के जनसंख्या के घनत्व के अन्तर के, वह मानव समूहों का सामान्य वितरण एक विशेष सापेक्ष, निश्चित और आश्चर्यजनक स्थिरता प्रदर्शित करता है। साइबेरिया के टुण्ड्रा, सहारा के हमादा, या अमेजन के जंगल जनशून्य हैं। यही बात ध्रुव प्रदेशों और ऐसे ही असुविधाजनक स्थानों पर लागू होती है। वान मायर ने इस प्रकार तापक्रम, वर्षा और ऊंचाई के आधार पर इसका सह-सम्बन्ध (correlation) सिद्ध किया है। किन्तु इसके विपरीत, दूसरे तथ्य इस बात को सिद्ध कर सकते हैं कि उक्त तथ्यों से प्रदर्शित सह-सम्बन्ध किसी भी मायने में सार्वभौम या स्थायी हैं। हम नहीं कह सकते कि प्रत्येक स्थान पर ५० से ५५ डिग्री तापक्रम ४० से ५० इंच वर्षा तथा लगभग ३३० फीट से नीची ऊंचाई वाले स्थान ही, जैसा कि वान मायर ने अपनी तालिकाओं में दिखाया है; सबसे ज्यादा घिनके बसे होते हैं।

विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों के विभिन्न मिश्रणों द्वारा तथा अभौगोलिक कारकों के हस्तक्षेप से, बसने और न बसने योग्य स्थानों की सीमाएं, विभिन्न समाजों, समयों और स्थानों में सर्वोपयुक्त बिन्दु का स्थान बराबर बदलते जा रहे हैं। अब अनेक ऐसे स्थान जो कि पहले जनशून्य थे बस रहे हैं तथा अन्य ऐसे स्थान जहां किसी समय घनी आबादियां थीं, उजड़ गये हैं। यद्यपि उन स्थानों पर किसी भी प्रकार का कोई भौगोलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। सभ्य मनुष्य के पुरुषार्थ से अनेक पहले न रहने योग्य स्थान रहने योग्य हो गये हैं। इस प्रकार निवास-योग्य और निवास अयोग्य क्षेत्रों की सीमाएं बराबर बदल रही हैं। इस विषय में भौगोलिक निर्णयवाद सर्वथा सापेक्ष (relative) और कठोर (non rigid) है।

२ भौगोलिक अवस्थाएं और घरों, सड़कों और यातायात के साधनों का प्रकार

यह जाहिर है कि मनुष्यों के निवास या घरों का प्रकार अन्य किसी सामाजिक तत्व की तुलना में भौगोलिक अवस्थाओं पर सबसे अधिक निर्भर होना चाहिए। अनेक कच्चे माल (लकड़ी, पत्थर ईंट, छाल घास इत्यादि) में अपनी प्रबल

और डिजाइन या स्थापत्य के प्रकार में वह भौगोलिक अवस्थाओ से प्रभावित होने चाहिए। उन स्थानो पर जहा कि जगलो की वहुतायत है, लकडी के घरा की अधिकता होनी चाहिए। जहा लकडी की कमा ह वहा अय सहज उपलब्ध वस्तुओ का प्रयाग होना चाहिए। यह ही वहुत कुछ स्थापत्य क प्रकार शक्ल और घर के लिए स्थान क चुनाव के बारे में सही ह।

कुछ हद तक यह धारणा तथ्यो द्वारा पुष्ट होती ह। किन्तु पुन उनका प्रभाव वहुत मामूली ह। भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त भिन्न स्थानो म भी हमें प्राय घरा का अत्यन्त समानता मिलती ह। इसका ज्वलत उदाहरण आज हमें अपने देश म ही मिल सकता ह जिसमें उत्तर दक्षिण, पूव, पश्चिम सभी प्रदेशा म, जहा की भौगोलिक अवस्थाए अत्यन्त भिन्न ह, एक-से मकान देखने में आत ह। दश के विभिन्न भागो म जो अन्तर विद्यमान भी ह वह भी किसी कद्र उन अन्तरो से अधिक नही ह जा कि हमें एक शहर या गाव के पडौस और विभिन्न वस्तियो म नजर आते हैं। इसके विपरीत हम एक सी भौगोलिक परिस्थितिया के मकानो की तुलना कर यह दख मकने ह कि उनमें कितने अन्तर मौजूद ह। अमरीका और रूस क स्टेपीज घास के मदानो न्यूयाक और अल्जीरिया क समुद्रतट के मकाना की तुलना कर हम यह जान सकते ह कि इन समान भौगोलिक परिस्थितिया में वसे हुए स्थाना में कितना अन्तर ह।

यह वात केवल आधुनिक सभ्य समाजा तक ही सीमित नही वल्कि आरण्यक (primitive) लागा पर भी लागू होती ह। उदाहरण के लिए उत्तरी अमरीका के होपी और नवाजो रड इडियन एक लम्बे अरसे से ऐरीजोना प्रान्त के एक ही उत्तर-पश्चिमी भाग में रहते आये हैं। उन्हें एक-सा ही इमारत वनाने का सामान उपलब्ध ह। वावजूद इसके होपी मुडेरदार रेतीले-पत्थर के घर वनाते ह जिनकी कोठरी चौकोर होती है जब कि नवाजो क घर मिट्टी से छाय हुए गोल और चोबदार छत वाले होते ह। इन्हीं परिवतना में एक ही स्थान पर हान वाले गृह निर्माण में होन वाले परिवतन जाड लीजिए। हम देखेंगे कि भौगोलिक अवस्था में विना किसी परिवतन के हुए प्राय चालीस पचास सालो में हा एक ही स्थान का घर वनान का लोकप्रिय तरीका वदल जाता ह। स्वय हम अपने किसी गाव या शहर में हुए घरा की वनावट के परिवतन से इसका अन्दाज लगा सकते है।

इससे स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में भौगोलिक निणयवाद सवथा सापेक्ष और सीमित ह। इसके प्रभाव अनेक वार अय तथ्यो के कारण सवथा मिट जाते हैं। अत भौगोलिक कारणा से इस प्रश्न का समाधान सवथा भ्रान्त और निराशाजनक ह। यही वात सडका की वनावट और यातायात के साधना पर भी लागू हाती ह।

मात्रा और गुणों में भीषण अन्तर पाये जाते है। यह अन्तर प्राय विभिन्न भौगोलिक वातावरण में रहने वाले लोगों में पाये जाने वाले खान पान के अन्तरों से भी ज्यादा उग्र होते है। इसके अतिरिक्त, एक ही समाज के विभिन्न वर्गों के खान पान के अन्तरों को भौगोलिक कारणों द्वारा नहीं समझाया जा सकता। फिर एक ही समाज के वर्ग विशेष का खान पान भी तो निरंतर बदलता रहता है। हमारे यहां ही पिछले बीस सालों में चीनी, चाय और वनस्पति घी के उपभोग में असाधारण वृद्धि और प्रसार हुआ है। उससे पहले तो इन्हें बहुत-से लोग जानते भी न थे। इन नई प्रवृत्तियों और अन्तरों का भौगोलिक वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं है।

५ भौगोलिक अवस्थाएं और आर्थिक जीवन और संगठन

(क) भौगोलिक अवस्था और सम्पत्ति आर्थिक घटनाओं पर भौगोलिक प्रभावों के बारे में अनेक सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। इनमें से एक वर्ग का यह कहना है कि किसी समाज में पैदा की हुई और मौजूद सम्पत्ति विशेषकर सामाजिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्थाओं में प्राय पूर्णत भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा निश्चित होती हैं। प्रमुख भूगोलवादी बकल के शब्दों में, 'उन सब प्रभावों में जो कि जलवायु और जमीन किन्हीं लोगों पर डालते हैं, सम्पत्ति का संचय सबसे प्रारम्भिक और बहुत अंशों में सबसे महत्वपूर्ण है और प्रारम्भिक अवस्थाओं में सम्पत्ति का इतिहास पूर्णत जमीन और जलवायु पर निर्भर है।"

इसमें सन्देह नहीं कि उक्त कथन में आंशिक सत्य है। किंतु यह कथन आधुनिक जटिल समाजों की तो बात ही क्या, बहुत से आरण्यक कबीलों पर भी लागू नहीं होता। एक तो सम्पत्ति अपने आप में कोई जड़ या अगतिशील वस्तु नहीं है। यह परिवर्तनशील है और सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती है। भौगोलिक वातावरण के कौन पदार्थ अधिक मूल्यवान होंगे यह उन पदार्थों पर निर्भर न होकर, समाज के स्वरूप पर निर्भर करता है। खनिज तेल कोयले या लोहे की खानों का एक ऐसे समाज के लिए कोई उपयोग नहीं है जो कि इनसे फायदा उठाना ही नहीं जानता। एक ऐसा प्रदेश जो कि इन पदार्थों से भरपूर है एक शिकारी या कृषक कबीले के लिए बहुत ही अनुपयुक्त है। पर यही प्रदेश एक औद्योगिक समाज के लिए बहुत उपयुक्त है। इस तरह एक ही भौगोलिक वातावरण उन लोगों के लिए बहुत ही उपयोगी हो सकता है जो कि उसका उपयोग करना चाहते है और उन लोगों के लिए बिलकुल बेकार हो सकता है जो कि उसका उपयोग करना नहीं जानते। इसके विपरीत, बिलकुल भिन्न भौगोलिक परिस्थितियों का विभिन्न लोगों के लिए एक-सा मूल्य हो सकता है। इससे यह स्पष्ट है कि भौगोलिक वातावरण अपने आप में कोई ऐसी चीज नहीं है जो कि सभी समाजों सभी परिस्थितियों में मूल्यवान हो। इस कारण बकल के वक्तव्य में

ला देते हैं। अत जटिल समाजा में तो खास तौर से भौगोलिक वातावरण और औद्यागिक क्रियाओं के बीच किसी प्रकार में घनिष्ठ सह सम्बन्ध की सम्भावना नहीं की जा सकता।

(ग) भौगोलिक अवस्था व्यावसायिक चक्र (Business Cycles) और आर्थिक जीवन की गति (Rhythm)

भूगोलवादियो का एक तीसरा वग है जिसने भौगोलिक अवस्था और समृद्धि और निर्धनता क अवधि क्रम (periodic) के उतार चढ़ावा के बीच सह-सम्बन्ध (Correlation) स्थापित करने की कोशिश की है। प्लेटो प्राय कहा करता था, भूचाल और बाढ़ो-जसी विराट् भौगोलिक प्रक्रियाए अनेक समाजा में सम्यताओ की समृद्धि व पतन का कारण हुई हैं। अनेक उन्नीसवी और बीसवी शताब्दी के लेखका ने आर्थिक चक्रा और परिवर्तित भौगोलिक परिस्थितियो के बीच काय कारण सम्बन्ध स्थापित किया है। स्टेनली जेवन्स की आर्थिक चक्रों के सूय क धब्बों का (Sun spot) सिद्धान्त, डब्ल्यू एच शॉ का मौसमी परिवतन और गेंहू की पैदावार म निश्चित अवधि क्रम (Periodicity) का सह-सम्बन्ध, और ब्रुक्नर का मौसमी परिवतन और आर्थिक जीवन के उतार चढ़ाव से सम्बन्ध का सिद्धान्त, बेवरिज का आर्थिक मन्दी और कम वर्षा का सिद्धान्त तथा हटिंगटन और मूर का आर्थिक चक्र का सिद्धान्त इसक मुख्य उदाहरण ह। उक्त सिद्धान्ता में बेवरिज और मूर के सिद्धान्त सबस अधिक वज्ञानिक कहे जा सकते हैं। अत हम मुख्यत इन पर ही विचार करेंगे।

मूर के अनसार सयुक्त राज्य अमरिका तथा शायद अन्य महाद्वीपा में वर्षा की मात्रा तेतीस और आठ साल क चक्रा में से गुजरती ह जो कि फसलों की पैदावार पर उसके द्वारा उसकी कीमतों पर तदनरूप प्रभाव डालती है। बेवरिज का सिद्धान्त मूर से मिलता-जुलता है। बेवरिज ने पश्चिमी और केन्द्रीय योरोप की १५०० से १८६९ ई० के गेंहू की कीमता व आकडा का अध्ययन कर यह निष्कष निकाला कि इस अवधि क्रम की मुख्य अवधि (Periodicity) ३० ६ साल ह। अथवा इसका रूप १५ साल एक ओर तथा १५ साल दूसरी ओर रहता है। इसमें बहुत सामान्य परिवतन होते रहते हैं। हटिंगटन का सिद्धान्त इससे पर्याप्त भिन्न है। उसक अनुसार आर्थिक जीवन में परिवर्तन इतने ज्यादा फसला की पदावार से नहीं होते जितने कि जलवायु द्वारा मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावो द्वारा। उसक अनुसार जलवायु के परिवर्तन स्वास्थ्य और उसके द्वारा मनुष्य की शारीरिक और मानसिक कार्य-क्षमताओं को प्रभावित करते हैं।

अब हम अति सक्षेप म इन सिद्धान्तों की समालोचना करेंगे। इसमें सदह नही कि भूचाल या बाढ़ जैसे कि १९३६ का बिहार का भूचाल या १९५१ में

पंजाब की भीषण बाढ़ आर्थिक जीवन को एक बड़े समय के लिए विशृंखल या छिन्न-भिन्न कर देते हैं। किन्तु इस प्रकार के परिवर्तन बहुत ही कम और अल्पकालीन होते हैं और समाज के लम्बे जीवन पर उनका विशेष असर नहीं पड़ता।

फसल की पैदावार पर भौगोलिक अवस्था के असर और उसके जरिये कृषि प्रधान देशों में व्यावसायिक चक्र के उतार-चढ़ाव से इन्कार नहीं किया जा सकता। यद्यपि इस क्षेत्र में मानव नियंत्रण सीमित है फिर भी कृषि विज्ञान, मानवीय श्रम, व्यापार का विस्तार इत्यादि, अभौगोलिक तत्व इसे बहुत प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त किसी विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में भौगोलिक परिस्थितियां प्रायः कभी भी समान नहीं होतीं। यदि वह कहीं पर प्रतिकूल तो कहीं अनुकूल होती है और इस प्रकार एक दूसरे के असर को समाप्त कर देती है। अपने ही देश के उदाहरण में इस तथ्य को भली भांति समझा जा सकता है। इस तरह अगर एक प्रदेश में फसल खराब भी हो जाये तो दूसरा प्रदेश उसकी कसर को पूरा कर देता है। इस प्रकार आर्थिक अवस्था में पर्याप्त सतुलन बना रहता है।

विभिन्न लेखकों ने निश्चित अवधि क्रम (Periodicity) बताये हैं। उन्होंने २, ३, ४, ५, ७, ११, १५ और इसी तरह अन्य कई अवधियां गिनाई हैं। इसका तो अर्थ हुआ कि व्यवहार में अवधि (Periods) नाम की कोई चीज ही नहीं है। इसी प्रकार प्रसिद्ध ऋतुशास्त्री वाल्टर ब्रियेण्ट ने बेवरिज के मत की समालोचना करते हुए लिखा था कि न तो सूरज के धब्बों का ही और न ही मौसम के परिवर्तन का कोई निश्चित अवधि क्रम है। हंटिंगटन के मौसम के सिद्धांत में स्वास्थ्य और कार्यक्षमता पर अनुचित जोर दिया गया है।

हम यह कह सकते हैं आर्थिक क्षेत्र में, जहां कि भौगोलिक अवस्थाओं के प्रत्यक्ष प्रभाव की आशा की जा सकती थी न तो उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है, न ही निर्णायक और न ही वह कठोर और निश्चित सह सम्बन्ध स्थापित करने में सफल है। न ही वह इतना सामान्य है जो कि विभिन्न सामाजिक समूहों या एक ही सामाजिक समूह में विभिन्न कालों में घटने वाले परिवर्तनों को समझा सकें पर जैसा कि भौगोलिक तत्वों के प्रभाव को अनुचित महत्व प्रदान करना अनुचित है वहां उनके प्रभाव से एकदम इन्कार करना भी उतना ही गलत है।

६ भौगोलिक वातावरण और नस्ल (Race)

बकल ने घोषणा की कि मनुष्य जाति में विद्यमान नस्ली अंतर पूर्ण रूप से या मुख्यतः भौगोलिक अवस्थाओं का परिणाम है। यद्यपि आज इतने उग्र रूप में उसके मत का कोई समर्थक मिलना कठिन है, फिर भी नरम रूप में उसके अनेक समर्थक आज भी मौजूद हैं। इसमें डॉ० सम्पिल उल्लेखनीय हैं। उसने अपनी पुस्तक 'रटजल की मानव भूगोल पद्धति के आधार पर भौगोलिक वातावरण का प्रभाव,' (१९११) में

मनुष्य के समस्त शारीरिक लक्षणों के लिए भौगोलिक वातावरण को जिम्मेदार ठहराया है। ऐलन रिजवे, कीथ और अन्य लेखकों ने भी कुछ और सीमित रूप में इस मत का समर्थन किया है। इनमें से अधिकांश लेखकों के मत में मनुष्य जाति एक ही स्थान में पैदा हुई और बाद में विभिन्न स्थानों पर फैल गई, जहाँ विभिन्न वातावरणों के प्रभाव ने उनमें वर्तमान नस्ली विभिन्नताएं पैदा कर दीं। यह कल्पना केवल एक अनुमान है। इसके विपरीत अन्य लेखकों ने मनुष्य जाति के विभिन्न स्थानों में पैदा होने की कल्पना प्रस्तुत की है। अतः इस पर आधारित सिद्धान्त का कोई वैज्ञानिक महत्व नहीं हो सकता।

यह एक अकाट्य सत्य है कि नस्ली विशेषताएं वंशानुगत (Inherited) गुण हैं। इसलिए नस्ली विभिन्नताओं को प्रत्यक्ष भौगोलिक अवस्था का प्रभाव बताना भूल है। अधिक से अधिक हम इसके पक्ष में यह कह सकते हैं कि इसका आधार बहुत ही अनिश्चित है।

और फिर सभी गम्भीर सिद्धान्त जो कि भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा नस्ली परिवर्तन को स्वीकार करते हैं यह मानते हैं कि भौगोलिक अवस्था के प्रत्यक्ष प्रभाव से नस्ली परिवर्तन होने के लिए हजारों साल की जरूरत पड़ती है इसलिए ऐतिहासिक काल के अल्पकालीन परिवर्तनों में तो इस तथ्य का कोई भी महत्व नहीं है।

कुछ लेखकों ने खान पान की विभिन्नता द्वारा नस्ली विभिन्नताओं को बताने की कोशिश की है। इसमें सन्देह नहीं कि विशेष विटामिन से पूर्ण या शून्य खाने और पीने के पदार्थ ग्रंथियों (Glands) पर प्रभाव डाल शारीरिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। किन्तु हम देखते हैं कि विभिन्न नस्लों में खाने पीने की वस्तुओं में विटामिन के यह अन्तर अत्यन्त गौण हैं और यदि हैं भी तो यह एक ही नस्ल के विभिन्न वर्गों में भी किसी कदर कम नहीं हैं। यही नहीं अधिकांश भूगोल वादी खान पान को भौगोलिक परिस्थितियों का सीधा परिणाम मानते हैं जब कि हम देखते हैं यह सह-सम्बन्ध आरण्यक समाजों के लिए भी पूर्णतया सही नहीं है और जटिल समाजों में तो यह सम्बन्ध बहुत ही गौण है।

नस्ल के निर्णय के भौगोलिक सिद्धान्त भी इस सम्बन्ध में किये गए अध्ययन की पुष्टि नहीं करते। फिर निष्क्रमण और मिश्रण द्वारा विभिन्न नस्ली वर्ग जो कि शुरू में एक भौगोलिक वातावरण का परिणाम क्यों न रहे हों संसार के विभिन्न भागों में फैल गए हैं और अब उनमें कोई ऐसे सह-सम्बन्ध नहीं ढूंढे जा सकते। नस्ली वर्गीकरण का चाहे कोई भी आधार हो यह एक निश्चित तथ्य है कि आजकल प्राचीन काल से ही प्रत्येक नस्ली समूह बिल्कुल भिन्न प्रकार के क्षेत्रों में फैले गए और रह रहे हैं। प्रो० डिक्सन के अनुसार, जिन्होंने इन सम्बन्ध में सूक्ष्म अध्ययन

प्राचीन काल म, अतीत में भी, ऐसा वाल नहीं खोज सक्ते जब कि एक विशेष नस्ली वग एक विशेष भौगोलिक परिस्थिति में रहता हो। और हम अभी तक ऐसा एक भी उदाहरण खोजने में असमथ रहे ह जहा कि भौगोलिक वातावरण ने नस्ली विशेषताओ को बदला हो। हम अमरीका के नीग्रो और उसके अफ्रीकावासी बाधव में कोई शारीरिक भेद नही खोज पाये हैं। उनमें जो भी परिवर्तन घटे हैं वह गैर-नस्ली तत्वा का परिणाम ह और उनका श्रेय भौगोलिक परिस्थितिया को नही दिया जा सक्ता। भौगोलिक वातावरण केवल अप्रत्यक्ष रूप स प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection) द्वारा नस्ली बनावट पर प्रभाव डाल सकता है।

७ भौगोलिक अवस्था और स्वास्थ्य

पिछले पृष्ठो में हमने उन छ प्रमुख तथ्यो की समालोचना की है, जिनकी भूगोल पर निर्भरता सापेक्षत अधिक प्रबल है। अब हम मानव स्वास्थ्य, शक्ति, व्यवहार और मनोविज्ञान के उन तथ्यो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे जो कि अधिक जटिल ह।

हटिंगटन ने 'सभ्यता और जलवायु विश्व शक्ति और विकासवाद और नस्लो के गुण' नाम की अपनी प्रमुख समाजशास्त्रीय रचनाओ में यह सिद्ध करने की कोशिश की ह कि सभ्यता पर प्रभाव डालने वाले तत्वो में जलवायु सबसे प्रमुख हैं। इस तथ्य को उसने जलवायु और शक्ति और श्रम की काय-क्षमता, जलवायु और मानसिक क्रियाओ और अन्तत जलवायु और सभ्यता के गुण और उत्थान-पतन के बीच सह-सम्बन्ध (Correlations) स्थापित कर सिद्ध करने की कोशिश की ह। हम सक्षेप म जलवायु और स्वास्थ्य, शक्ति और मानसिक प्रक्रियाओं सम्बन्धी उसके कुछ गौण सह सम्बन्धो पर विचार करेंगे।

यह एक बहुत प्राचीन धारणा है कि जलवायु स्वास्थ्य को प्रभावित करता है। जहा तक अति उग्र और प्रचण्ड जलवायु का सम्बन्ध ह, इस कथन की सत्यता से इन्कार नहीं किया जा सकता। किन्तु इस सामान्य रूप में यह अर्थहीन और अस्पष्ट है। क्या जलवायु मानव स्वास्थ्य को तापक्रम, या नमी, या उनके परिवर्तन या अन्य किसी तत्व द्वारा निर्धारित करता है? सब दृष्टियो से मानव स्वास्थ्य के लिए सबसे उपयुक्त जलवायु कौन-सा है? क्या यह उपयुक्ततम जलवायु सभी मानव प्राणियो के लिए एक-सा ही है अथवा यह मनुष्य मनुष्य या समूह समूह के लिए बदलता रहता है?

हटिंगटन से बहुत पहले जर्मन विद्वान् मोसर ने इस सम्बन्ध में तीन नियम प्रस्तुत किये थे। मृत्यु दर और तापक्रम की वक्ररेखाएं (Curves) साथ साथ चलती ह औसत कम तापक्रम और अधिक-मृत्यु का सीधा सम्बन्ध ह। जाड़े में

९ जलवायु और मानसिक कार्य-क्षमता

हंटिंगटन के शब्दों में "मानसिक कार्य में जहां शारीरिक कार्य से समानता है वहां मनोरंजक भिन्नताएं भी हैं।" मानसिक कार्य के लिए उपयुक्ततम बाह्य तापक्रम ३९ फा० है जब कि शारीरिक कार्य के लिए वह ६४ फा० है। जब तापक्रम बहुत अधिक गिर जाता है, शारीरिक कार्य की तुलना में मानसिक कार्य को अधिक हानि पहुंचती है। हल्की सी गर्मी से इसे उत्तेजना मिलती है, किन्तु हवा में जल्दी गर्मी आ जाने से पुनः इसे हानि पहुंचती है। विभिन्न मौसमों में प्राप्त विभिन्न विद्यार्थियों की परीक्षा के अंकों को उक्त निष्कर्ष का आधार बनाया गया है। इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि परीक्षा परिणाम पर अनेक अभौगोलिक तत्वों का प्रभाव भी पड़ता है, जिन्हें ध्यान में रखना जरूरी था।

इ० जी० डेक्सटर के बच्चों की भूल और उनकी जांच की योग्यता के अध्ययन के परिणाम हंटिंगटन से भिन्न निकले हैं। उसके अनुसार सबसे उपयुक्ततम तापक्रम ३९° न होकर ५८ फा० है। नमी हवा खुले और बरसाती मौसम के सम्बन्ध में भी डेक्सटर के परिणाम हंटिंगटन से भिन्न आये हैं। जोड़ने के कार्य और याददाश्त पर मौसम के प्रभाव पर ल्हूमन और पेडरसन द्वारा किये गए परीक्षणों के परिणाम भी हंटिंगटन से भिन्न आये हैं। थार्नडाइक, मकाल, बास और बैटी लेगन पर न्यूयार्क कमीशन इस नतीजे पर पहुंचे कि मानसिक कार्य पर तापक्रम नमी और कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

विभिन्न अन्वेषणों से यह स्पष्ट है कि या तो जलवायु के साधनों का मानसिक कार्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता या अगर पड़ता भी है तो वह बहुत भिन्न और विरोधी है। उनका हंटिंगटन के परिणामों से मेल नहीं बैठता। हंटिंगटन के तथ्यों में स्वयं कुछ आपसी विरोध है। परिणामों की भिन्नता हमें किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचने का आधार प्रदान नहीं करती। सभ्यताओं के जन्म विकास और पतन पर तो इससे कोई प्रकाश नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त विभिन्न मौसमों को मानसिक कार्य क्षमता के हेर-फेर का आधार बनाया गया है, जब कि हम जानते हैं कि मानसिक क्षमता में हमें उससे भी ज्यादा मासिक, साप्ताहिक और दैनिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अतः मौसमी परिवर्तन को किसी भी प्रकार मानसिक कार्य-क्षमता पर भौगोलिक परिस्थितियों के निर्णायक प्रभाव के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।

१० जलवायु और आत्महत्याएं

दिख्यूरे, कन्नर, बोदियो, मोरसली, डेक्सटर, वान मायर इत्यादि अनेक यूरोपीय लेखकों ने कुछ योरोपीय और गैर-योरोपीय देशों में होने वाली आत्महत्याओं

में एक निश्चित मौसमी उतार चढाव पाया ह। गर्मी के मौसम में योरुप में सबसे ज्यादा आत्महत्याए होती हैं। इसमें भी सबस अधिक मई, जून में होती ह, इसके वाद वसत ऋतु का नम्बर आता है, और उसके बाद पतझड का। जाडा में सबसे कम आत्महत्याए होती ह। इन अध्ययनो से यह भी जाहिर हुआ है कि आत्म हत्याओ में साप्ताहिक और दैनिक अवधि क्रम (Periodicities) भी ह। इसके अतिरिक्त उन्होने यह भी दिखाया ह कि योरोप में अक्षाश रेखा (Latitude) क अनुसार आत्महत्याओ के वितरण में भी एक नियमितता पायी जाती ह। उदाहरण के लिए ३६ अक्षाश रखा से ५५ अक्षाश रेखा तक आत्महत्याओं की सख्या वरावर बढती चली गई ह। ५५ अक्षाश रेखा के वाद यह पुन कम हो गई है। उक्त तथ्यो से अनेक अन्वेषक इस नतीजे पर पहुचे ह कि आत्महत्याओ पर भौगोलिक वातावरण का प्रत्यक्ष प्रभाव ह।

सवप्रथम दुर्खाइम और वाद में क्रोसे और जवात ने अच्छी तरह पडताल कर यह परिणाम निकाला कि आत्महत्याओ पर जलवायु इत्यादि का प्रभाव यदि कुछ ह भी तो वह अत्यन्त गौण और परोक्ष ह। भौगोलिक उपकल्पना न तो एक ही दश में विभिन्न वर्षों में आत्महत्याओ के वदलते अनुपात और न ही गावो या शहरों, विवाहितों अविवाहितो तलाकशुदा लोगो या एक ही समाज में उसकी अचानक वद्धि और ह्रास, या उसक दनिक साप्ताहिक, मासिक या मौसमी अतर पर कोई प्रकाश डालती ह। दुर्खाइम ने वहुत स्पष्टता से इस वात को दर्शाया ह कि आत्महत्याओ क लिए जलवायु उत्तरदायी नही, बल्कि समाज के सदस्यों के पृथक्करण (Isolation) में वृद्धि और ह्रास ह। यह और अन्य सामाजिक तत्व आत्महत्याओ के मौसमी और अन्य हेर फेर को निर्धारित करते ह। अत हम कह सकते ह कि जलवायु और आत्महत्याओं का सह सम्बन्ध भ्रान्त ह।

(१) जलवायु और पागलपन (Insanity)

एफिनवल नावरी, हटिंगटन डक्सटर और वाट इत्यादि अनेक लेखकों ने जलवायु और पागलपन या सामान्य मानसिक रोगो की वृद्धि और ह्रास के वीच सह-सम्बन्ध (Correlation) स्थापित करने की कोशिश की ह। इनमें से कुछ का कहना है कि आत्महत्याओ और मानसिक रोगो में स्वय घनिष्ठ सह सम्बन्ध है।

दुर्खाइम के अध्ययन के वाद हम निश्चयपूर्वक यह कह सकते हैं कि यदि इनके वीच ऐसा कोई सह-सम्बन्ध है भी, तो वह सवथा नगण्य है। यह तथ्य इस वात से पुष्ट होता है कि न तो विभिन्न समाजो में ही और न एक ही समाज में विभिन्न वर्षों विभिन्न पेशेवार धार्मिक या नस्ली वर्गों या स्त्री-पुरुषों में, जो

मौसमों में खाद्य-पूर्ति अधिक होती है, उनमें ही यौन क्रिया बढ़ जाती है। अत इस क्षेत्र में जलवायु का यदि कोई प्रभाव है भी तो वह बहुत ही परोक्ष है। आधुनिक समाजो में तो यह प्रभाव अन्य अभौगोलिक तत्वों द्वारा बहुत कुछ समाप्त ही हो जाता है।

१४ भौगोलिक वातावरण और धर्म, कला तथा साहित्य

हम यह आशा कर सकते हैं कि भौगोलिक वातावरण मनुष्य की कल्पना-रमय कृतियों—कला, साहित्य, सगीत, चित्रकारी, स्थापत्य और क्रियाओं में प्रति विम्बित और प्रकट हो। सापेक्षत आदिम जातियों के लिए, जो कि बहुत काल से एक सीमित भौगोलिक वातावरण में बधी हुई है, कुछ अशा में यह सत्य भी है। पर यह अश नगण्य है। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि कला, साहित्य या विश्वास पर हम उनके भौगोलिक वातावरण का रग ही देख सकते हैं उन्हें उसका निर्णायक नहीं मान सकते।

ह्वाइटवेक ने 'भौगोलिक वातावरण का धार्मिक विश्वास पर प्रभाव' शीर्षक अपने सक्षिप्त लेख में इस स्थानीय रग (Colour) की अच्छी विवेचना की है। उसने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि लोगो की यह सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वह उन प्राकृतिक शक्तियों या जीवों को अच्छे देवताओं का प्रतीक मानें जो कि उन्हें लाभ पहुचाते हैं। इसके विपरीत, उन शक्तियों या जीवों का आसुर या शत्रु देवता मानें जो कि उन्हें हानि पहुचाते हैं। इसीलिए भारत में वृक्ष या साप नार्वे में वर्फ के टीले या पहाड, राक्षस-देवता माने गये। एक अरबी कबीले के लिए स्वर्ग एक शिकार का समृद्ध स्थान है एव अन्य के लिए नखलिस्तान, पौधों, खजूरो और पानी से भरपूर है। ह्वाइटबेक ने यह भी बताया कि किस प्रकार जब जनसख्या एक भौगोलिक वातावरण को छोड़कर दूसरे भौगोलिक वातावरण में चली जाती है उसके देवता भी बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए, जब आर्यों ने भारत में प्रवेश ही किया था उनका प्रमुख देवता द्यू (आकाश) था लेकिन शीघ्र ही भारत में वर्षा के महत्व को देखते हुए उसका स्थान इन्द्र (वर्षा के देवता) ने ले लिया और द्यू देवता का स्थान नीचा हो गया।

इसी प्रकार विभिन्न जन-समूहो के प्रारम्भिक इतिहास में उनकी जन-श्रुति, गीतों, कविता और साहित्यिक कृतियों में इस प्रकार अनेक सह-सम्बन्ध ढूढ़े जा सकते हैं। विभिन्न दृश्य पेड़-पौधे फल-फूल, जीव-जन्तु किसी साहित्य की पृष्ठ-भूमि बनाते हैं। वेद, महाभारत रघुवश इलियड ओडेसी उमरखय्याम की रुबाइयों पर हमें उनके भौगोलिक वातावरण की स्पष्ट छाप दिखाई देती है। अनेक लेखकों ने वास्तुकला (भवन निर्माण), चित्रकला सगीत इत्यादि मानवीय कृतियों पर भी निर्णायक भौगोलिक प्रभाव सिद्ध करने की चेष्टा की है। उदाहरण

के लिए, एक लेखक ने भारतीय और अरब वास्तु-कला को भौगोलिक परिस्थितियों से समझाने की कोशिश की ह। उसके अनुसार 'भारत ऊचे पहाड़ों, विस्तृत मदानो दुर्भेद्य जगलो का देश ह अत भारतीय कला में विशालता, स्थूलता और विस्तार पर अधिक जोर था। जिस तरह भारतीय जगलो में असख्य फूल-पत्तिया से सारी भूमि ढकी रहती है उसी तरह भारतीय मन्दिरो में कोई चप्पा अलकरण से खाली नही रहता। इसके विपरीत, अरब एक विशाल रेगिस्तान है, जिसमें मीलो तक कोई वनस्पति नही दिखाई देती। अत अरब कला की विशेषता बड़े-बड़े भवन ऊची मीनारें साफ और सादी दीवारें थीं।'

कला की कृतियों साहित्य और धम पर भौगोलिक वातावरण के स्थानीय रग को हम स्वीकार कर सकते ह। किन्तु हमें यह नही भूलना चाहिए कि पर्याप्त प्रारम्भिक अवस्था में भी यह सम्बन्ध कठोर और सार्वभौम नहीं है और जसे ही हम बाद के अधिक गतिशील और जटिल समाजो की ओर बढते है तो यह मह सम्बन्ध और भी अनिश्चित और अस्पष्ट होता जाता है। अधिकाश लेखको ने इस क्षेत्र में भूगोल के प्रभाव को बहुत बढा चढाकर पेश किया है। उस तथ्य की पुष्टि इस बात से होती ह कि हमें अनेक बार बिल्कुल भिन्न जलवायु और भौगोलिक वातावरण के समाजो के विश्वासो प्रतीको पुराणो कहानियो भवन निर्माण के तरीको और सगीत इत्यादि में पर्याप्त समानता मिलती है, और इसके विपरीत एक-सी जलवायु और भौगोलिक वातावरण वाले समाजों में बिल्कुल भिन्न विश्वास, अभिरुचि और साहित्य और कला के पृथक मानदड पाये गये ह। हम ईसाई बौद्ध इस्लाम या अन्य किसी महान् धम की ओर दृष्टि डालें तो उनके अनयायी हमें भिन्न भौगोलिक वातावरणो और जलवायु में मिल जायेंगे। बावजूद भौगोलिक असमानता के उनके विश्वासो में समानता है। यदि असमानताए है भी तो वह भौगोलिक वातावरण का परिणाम न होकर सामाजिक समूहो की सास्कृतिक भिन्नता का परिणाम ह। यदि हम पुराणों (Mythology) के गतिशील इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होगा कि किस प्रकार एक-से पुराण भिन्न भौगोलिक अवस्थाओ में फैल गये है। फ्रेजर और मकजी ने इस तथ्य को विस्तार से अपनी रचनाओ में दर्शाया ह।

उक्त विवेचना से रिजव जसे लेखको का यह कथन कि 'सामाजिक सस्थाए और धार्मिक विचार भौगोलिक वातावरण की कृति ह सवथा भ्रान्त ठहरता है। हम यह भी जानते है कि किस प्रकार एक ही स्थान के लोग थोडे समय में ही एक धर्म को छोड, दूसरा धम स्वीकार कर लेते है। भारत में विभिन्न धर्मों के उत्थान-पतन का इतिहास इसका सुन्दर उदाहरण ह। इस्लाम और बौद्ध धम का प्रसार इस दृष्टि से देखने योग्य है। यह सब परिवतन बिना किसी भौगोलिक

परिवर्तन से ही सम्भव हुए हैं। अतः एवरक्रोम्बी का यह कहना कि एशिया और अफ्रीका में इस्लाम उन प्रदेशों में फैला जहाँ कि औसत वार्षिक वर्षा १० इंच से कम थी या रेनां की एकेश्वरवाद और रेगिस्तानों के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा तथ्यों की कसौटी पर सही नहीं उतरते।

१४ भौगोलिक अवस्थाएं और सामाजिक तथा राजनैतिक संगठन

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार लाप्ले और मोंटेस्क्यू इत्यादि अनेक लेखकों ने परिवार के विभिन्न रूपों को भौगोलिक वातावरण द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। अनेक लेखक इससे भी आगे बढ़ गये हैं और उन्होंने समाज के विस्तार, उसके संगठन के स्वरूप, उसके शान्तिमय या युद्धप्रिय चरित्र, उसकी जनता के *आशावादिता* और निराशावादिता, प्रगतिशीलता और प्रतिगामिता, स्वाधीनता प्रियता या दासता इत्यादि अनेक गुणों को भी भौगोलिक वातावरण द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। इनमें रिटर, रटजल और उनके अनुयायी मुख्य हैं।

भौगोलिक वातावरण और विवाह और परिवार के विभिन्न रूपों के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न सफल नहीं हुए हैं। हम जलवायु, समुद्रतल से ऊंचाई, अक्षांश या देशान्तर, भौगोलिक वातावरण किसी भी तत्त्व से एक विवाह, बहुपतित्व, बहुपत्नित्व, अन्तर्विवाह (Endogamy) या बहिर्विवाह (Exogamy) के विभिन्न नियमों के साथ सह-सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करें, हम देखेंगे कि यह एक असम्भव कार्य है। यह सभी प्रकार विभिन्न और विपरीत भौगोलिक अवस्थाओं में पाये जाते हैं। इस सम्बन्ध में परिवार के विकास पर अधिकारी फ्रेंच विद्वान् मजरेला के शब्द स्मरणीय हैं—"यह विभिन्न संस्थाएं भौगोलिक वातावरण पर आश्रित नहीं हैं, क्योंकि यह भौगोलिक दृष्टि से सर्वथा भिन्न लोगों में पाई जाती हैं। यह तथ्य इस बात से और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है जब कि हम देखते हैं कि एक समाज में स्वयं बिना किसी भौगोलिक परिवर्तन के वहां परिवार की संस्था के रूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाता है। यही नहीं, एक ही भौगोलिक क्षेत्र में हमें अनेक प्रकार की पारिवारिक संस्थाएं साथ साथ देखने को मिलती हैं। हम अपने ही यहां अनेक क्षेत्रों की विभिन्न जातियों और वर्गों में परिवार संस्था के विभिन्न रूप एक साथ देख सकते हैं।

परिवार के अतिरिक्त विभिन्न लेखकों ने भौगोलिक वातावरण और अनेक सामाजिक घटनाओं के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की है।

(क) राज्य का आकार रटजल, सेम्पल और जाम इत्यादि लेखकों के अनुसार भौगोलिक अवस्थाएं राजनैतिक, नस्ली, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक सीमाओं का निर्धारित करती हैं। पहाड़ों या समुद्रों से विभक्त क्षेत्र पृथक् राजनैतिक नस्ली और सांस्कृतिक समूहों को जन्म देते हैं जब कि मैदानों में बड़ा साम्राज्यवादी राज्यों का

निर्माण करती है। नस्ल, भाषा और संस्कृति के क्षेत्र में भी ऐसे सह सम्बन्धो का दावा किया गया है। इनके समथन में चुने हुए उदाहरण पेश किये गये ह।

कुछ महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य ही उक्त दावे को भ्रान्त सिद्ध करने के लिए काफी ह। हम सब जानते हैं न तो यूराल, न हिमालय न कारपेथियन और न अन्य किन्ही पहाडो ने रूसी चीना आस्ट्रियन या स्विस लोगो को पहाडो के दोनो ओर बढने से रोका, न ही पहाडों और समुद्रो ने अमरीका और इगलड के साम्राज्यो के रास्ते में कोई अडचन पदा की। प्राचीन समय में रोम, मिस्र, असीरिया, चीन, तुर्की और फारस तथा अलक्जेंडर और चगेज खा के साम्राज्य इसी तरह फैले। इसके विपरीत, ऐसे प्रदेशो में जो कि प्राकृतिक दृष्टि से बटे हुए नही ह और राजनतिक एकता के लिए अनुकूल लगते हैं हम अनेक राष्ट्रो को देख सकते है। योरोप इसका जीता जागता उदाहरण है। हजार या सौ साला में तो भौगोलिक परिस्थितिया म कोई परिवतन नही आता लेकिन राजनैतिक सीमाओ में थोडे समय में ही अनेक बार आमूल चूल परिवतन घटित हो जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि भौगोलिक वातावरण और राजनतिक सीमाओ के बीच किसी प्रकार का निश्चित सह-सम्बन्ध नहीं ह। यदि ह भी, तो यह स्थायी और सावभौम नही ह।

(ख) राजनतिक सगठन का आकार और सामाजिक गुण रेटजल ने राजनतिक सगठन के आकार और विभिन्न छोटे या बडे राज्यो के सामाजिक गुणो म सह-सम्बन्ध स्थापित करने की भी कोशिश की है। उसके अनुसार उन राज्यो की जनता जिनकी विस्तृत सीमाए ह विस्तार सन्य प्रवृत्ति आशावाद, तरुणाई और प्रगति की भावना से पूर्ण होगी। ऐसे राज्यो में छोटी इकाइयो की तुलना में कम सामाजिक और नस्ली सघष होग। इसके विपरीत छोटी राजनतिक इकाइयो की जनसख्या अधिक निराशावादी, निष्क्रिय और निर्जीव होगी और शीघ्र ही राष्ट्रीय भावना का ग्रहण कर लेगी तथा वह स्थानीयता की भावना से ग्रसित होगी।

जिसे थोडा भी इतिहास का ज्ञान ह उसे सिद्धान्त की भूलें दख सकता ह। एशिया के अधिकाश देश घनी आबादी और विस्तृत सीमाओ के दश ह। क्या उनमें से किसी को स्वीडन स्विटजरलैंड इत्यादि छोटे देशो से अधिक आशावान और उदार कहा जा सकता ह? वास्तव में तथ्य रेटजल के सिद्धान्त का कदम कदम पर विरोध करते ह।

(ग) राजनतिक सगठन का स्वरूप और भौगोलिक दशा अनेक लेखको ने भौगोलिक अवस्था और राजनतिक सगठन के स्वरूप के बीच सह सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न की ह। इनमें मान्टेस्क्यू मुख्य ह। उसके अनुसार प्राचीन मिस्र असीरिया फारस ग्रीस और रोम के राजनतिक सगठन का

स्वरूप उन देशों की भौगोलिक अवस्था ने निर्धारित किया था। उदाहरण के लिए, मिस्र की केन्द्रीय निरकुश शासन व्यवस्था के लिए नील नदी का मैदान और उसका अनिश्चित बहाव और बाढ़ें जिम्मेदार थी। कमजोर प्रदेशों के अधिकारों की रक्षा तथा नील नदी के पानी के वितरण की व्यवस्था को चलाने के लिए एक केन्द्रीय सरकार की जरूरत थी, जो कि उस पर नियन्त्रण कर सके। नील नदी ने मिस्र के प्राकृतिक ढाँचे को ही नही, बल्कि राजनतिक ढाँचे को भी निर्धारित किया। इन्ही कारणों से मनूजी ने वहा पर जाति प्रथा के विकास को समझाया है। इसी प्रकार दजला और फरात का अनियमित बहाव और बाढ़ें असीरिया और चल्डिया में एक निरकुश शासन के हाथ में केन्द्रीय राजनतिक सत्ता के जन्म का कारण थीं।

मत्यूजी की विवेचना स्वयं विरोधों से पूर्ण है उसकी तर्क-प्रणाली दोषयुक्त है। विभिन्न देशों में निरकुश राजनतिक शासन की व्याख्या के लिए उसने भिन्न कारणों का सहारा लिया है। मिस्र और कल्डिया में उनका कारण नदियों के मैदान और बाढ़ें थी। फारस में नदियां न थी अत वहा के निरकुश राजतन्त्र के लिए वहा के पहाड़ों और रेगिस्तान को जिम्मेदार ठहराया गया।

इतिहास और भूगोल का एक संक्षिप्त अध्ययन हमें यह बताने के लिए काफी है कि समान प्रकार की शासन-व्यवस्थाएं—निरकुश राजतन्त्र, प्रजातन्त्र इत्यादि विभिन्न और एक सी भौगोलिक अवस्थाओं में पायी जा सकती हैं। एक ही भौगोलिक वातावरण में एस्कीमो और माओरी कबीलों में कुलीन (Aristocratic) और सामन्त (Feudal) पद्धति है, जब कि पापुआ में कोई मुखिया भी नही होता और उनमें सामुदायिक साझेदारी मौजूद है।

जब कि हम एक ही भौगोलिक क्षेत्र में राजनतिक शासन के विकास का अध्ययन करते हैं, तब तो हमें यह सह-सम्बन्ध और भी बेढ़ंगा और बेमानी नजर आता है। एथेन्स, रोम या किसी भी योरोपीय देश या स्वयं भारत के इतिहास के सामान्य अध्ययन से हम यह जान सकते हैं कि बिना किसी प्रकार के भौगोलिक परिवर्तन के किस प्रकार वहा की राजनतिक व्यवस्था में परिवर्तन आते रहे हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भौगोलिक अवस्था और राजनतिक व्यवस्था के बीच हम किसी प्रकार का महत्वपूर्ण सह-सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते।

(घ) भूमध्यरेखा की ओर से हटना (Equitorial Drift) और सभ्यता का उत्तराभिमुख रुझान (Northward Trend) सामाजिक और राजनतिक सगठन पर भौगोलिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करते हुए भूमध्यरेखा की ओर से हटने तथा सभ्यता के उत्तराभिमुख रुझान के दो सिद्धान्तों पर भी सक्षेप में विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

आधुनिक युग में भूमध्यरेखा की ओर से सभ्यता के हटने के सिद्धान्त का

प्रथम प्रमुख प्रणता मौंटेस्क्यू था। बाद में वाड ने इस मत का सबसे सूक्ष्म और विस्तृत प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त का सार है कि निचले गर्म मैदानों में रहने वाले लोगों को सुदूर उत्तर में अधिक ऊंचाई पर कठोर जलवायु में पली हुई जातियों ने पददलित किया है। इस मत की पुष्टि में भारत पर आर्यों की, चीन पर मगोलों और मन्चुओं की तथा ग्रीस और रोम पर जगली वारवेरियन लोगों की विजय के प्रमाण दिये गये हैं।

उक्त सिद्धान्त के विरोध में अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जहां कि दक्षिण में बसे लोगों ने उत्तर के लोगों को बुरी तरह हराया है। प्राचीन मिस्र और सुमेर का राजनैतिक सगठन दक्षिण से ही शुरू हुआ। अरबों ने मक्का और मदीना से कहीं उत्तर में बसे लोगों को जीता। भारत में ही दक्षिण के अनेक राज्यों ने बड़ी वीरता का परिचय दिया और अपने साम्राज्यों का विस्तार किया। विजयनगर और मराठों का उदय इसके अच्छे उदाहरण थे। विभिन्न देशों के इतिहास से ऐसे असख्य उदाहरण दिये जा सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि शक्ति और विजय सदा ही उत्तरवासियों के हाथ में नहीं रही है।

उष्ण (Tropical) और समशीतोष्ण जलवायु (Sub tropical Climate) का प्रभाव भूमध्यरेखा से सभ्यता के हटने के सिद्धान्त का ही एक अंश यह बहुस्वीकृत और बहुप्रचलित सिद्धान्त है कि उष्ण और समशीतोष्ण जलवायु नपुसक निकम्मे और निर्वीर्य लोगों को जन्म देती है जिसके परिणामस्वरूप वह लोग उत्तरवासियों द्वारा शासित होते हैं।

उष्ण और समशीतोष्ण जलवायु के प्रदेश ४०° से ४५ उत्तरी और दक्षिणी अक्षांश रेखाओं (Latitudes) के बीच अवस्थित हैं। यही वह प्रदेश है जिन्होंने प्राचीन काल में सर्वश्रेष्ठ और उन्नत सभ्यताओं को जन्म दिया है। यह ठीक है कि वर्तमान युग में इस प्रदेश के रहने वाले सभ्यता की दौड़ में पीछे रह गए। लेकिन एशिया भारत, चीन और अफ्रीका के देश पुन नई करवट ले रहे हैं। इस पुनर्जागरण का जलवायु से कोई सम्बन्ध नहीं है। अत हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उष्ण और समशीतोष्ण जलवायु की हीनता का सिद्धान्त भ्रामक है।

सभ्यता का उत्तराभिमुख अभियान (Northward Course) १८८३ में फ्रेंच लेखक मौज्यूल और १९२० में अमरीकन लेखक गिलफिलिन ने कुछ भिन्न रूप में सभ्यता के उत्तराभिमुख अभियान के सिद्धान्त को इन शब्दों में व्यक्त किया है

विश्व सभ्यता का नेतृत्व अभिन्न रूप से जलवायु के साथ जुड़ा हुआ है और सभ्यता की प्रगति के साथ साथ यह ठंडे देशों के हाथ में आता गया है और जब विद्यमान सभ्यता का पतन हुआ है नेतृत्व दक्षिण की ओर चला गया है। इस सिद्धान्त की पुष्टि में कहा जाता है कि सभ्यता मिश्र और सुमेर जैसे गर्म देशों में

प्राप्त हुई पर उसके बाद उसका नेतृत्व बेबीलोन, ग्रीस, फिनिशिया और असीरिया के हाथ में आगया। इस प्रकार वह उत्तर की ओर बढ़ता गया। इनमें चार बार दक्षिण के लोगों के हाथ में नेतृत्व आया लेकिन यह चारों ही काल उन सभ्यताओं के पतन के काल थे। प्राचीन इतिहास से इसी प्रकार के कई उदाहरण इसके पक्ष में दिये गये हैं।

उक्त सिद्धान्त की समालोचना करते हुए सोरोकिन ने ठीक ही लिखा है कि इस बात में सन्देह है कि ऐसा समय आने वाला है जब कि लाप और ऐस्किमो दुनिया का नेतृत्व करेंगे। वास्तव में यह सिद्धान्त केवल कल्पना पर आधारित है और इस एकतरफा मत को ऐतिहासिक तथ्यों से पुष्ट किया गया है। जहां हम इतिहास में से ऐसी घटनाएं निकाल सकते हैं जिनसे इसे पुष्ट किया जा सकता है, वहां ऐसी घटनाओं की कमी नहीं जो कि उसे काटती हैं। यदि हम केवल भौतिक विज्ञान की उन्नति की दृष्टि से देखें तो अवश्य कह सकते हैं कि पिछली दो सदियों में नेतृत्व केन्द्रीय या उत्तरी योरोप के लोगों के हाथ में रहा है, लेकिन इससे पहले यह अरब, एशिया, अफ्रीका और शायद अमरीका के हाथ में था। धर्म के क्षेत्र में तो योरोप कभी भी नेता नहीं रहा। ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, हिन्दू, कन्फूशियस, सभी प्रधान धर्म योरोप से बाहर पैदा हुए। दर्शन और आचारशास्त्र के क्षेत्र में योरोप कभी भी मिस्र और एशिया का मुकाबिला नहीं कर सकता।

भौगोलिक अवस्था और प्रधान राजनैतिक और सामाजिक संगठनों के सह सम्बन्धों की इस विवेचना से यह स्पष्ट है कि इनके बीच कोई सह सम्बन्ध हो सकता है किन्तु यह सम्बन्ध इतना अनिश्चित है कि इसकी उपस्थिति पर सन्देह होता है और हम इसे कभी भी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध नहीं कर सकते।

१६ जलवायु और प्रतिभा (Genius) और सभ्यता का विकास

अनेक लेखकों ने जलवायु और प्रतिभाशाली व्यक्ति और सभ्यता के विकास के बीच सह सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न किये हैं। इनमें हटिंगटन की विवेचना सबसे महत्वपूर्ण है। यह विवेचना मूलतः उसकी तीन उपकल्पनाओं का सम्मिलित परिणाम है। यह उपकल्पनाएं हैं: जलवायु स्वास्थ्य को निर्धारित करता है, यह मानसिक और शारीरिक कार्यक्षमता को निर्धारित करती है और जलवायु में समय के साथ निरन्तर परिवर्तन आता रहता है।

हटिंगटन की पहली दो उपकल्पनाओं की समालोचना हम पीछे कर चुके हैं। अपनी सभ्यता और जलवायु पुस्तक में हटिंगटन ने ऐतिहासिक काल में होने वाले जलवायु के उतार चढ़ाव (Climatic Pulsations) को अपने सिद्धान्त का बुनियादी आधार बनाया है। ऋतु सम्बन्धी लेखों (Metrological Records) के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ है कि ऐतिहासिक काल में जलवायु में काफ़ी

महत्वपूर्ण परिवतन नही हुआ ह । जलवायु के अधिकारी विशेषज्ञा की राय में हटिंगटन का जलवायु के जाचन का तरीका बिल्कुल अविश्वमनीय ह । वास्तव में हटिंगटन ने विभिन्न सभ्यताओ के उत्थान और पतन का समझाने क लिए अपनी सुविधा के अनुसार जलवायु के परिवतन पदा करा दिये ह । उनका कोई प्रामाणिक और वैज्ञानिक आधार जुटाने में वह असफल रहा है ।

इसी प्रकार उसने किसी भौगोलिक क्षेत्र के प्रतिभाशाली व्यक्तियो की सख्या को जबरदस्ती वहा की जलवायु के साथ बाध दिया है । अपने कथन को पुष्ट करने क लिए उसने विभिन्न क्षेत्रा में १६०० ई० के बाद के प्रतिभाशाली व्यक्तिया की सख्या के आकडे पदा किये ह । यह तरीका सवथा मनमाना और अपनी पूर्व धारणा को सिद्ध करने की महूलियत को ध्यान म रख कर अपनाया गया ह । क्योकि अगर कही १६०० ई० के बजाय उसने १०० या २०० ई० पू० का समय लिया होता तो उस समय प्रतिभाशाली लोगा की बहुसख्या एशिया और भूमध्यसागर के आस पास के प्रदेशा म मिलती और इग्लड बाल्टिक सागर के निकट तथा उत्तरी योरोप क दश जहा कि आजकल प्रतिभाशाली व्यक्तिया की सबसे अधिक सख्या है उस समय सबसे नीच ठ रत । उस समय केन्द्रीय और उत्तरी योरोप की जनसख्या जगली अवस्था म थी जब कि रोम, यूनान, अफरीका भारत और चीन में शानदार सभ्यताए मौजूद थी । यही नही यदि हटिंगटन १८४० ई० के आधार पर अपना मान चित्र बनाता तो जापान जसे देशा को उसमें काफी ऊचा स्थान मिलता । हटिंगटन यह बताने म असमथ ह कि क्या और कसे एक प्रदेश के लोग अपा में कभी श्रेष्ठ लोगा का सभ्यता की दौड में पीछे छोड जाते हैं और फिर स्वय पिछड जात ह ।

हम यह भी जानते ह कि एक ही भौगोलिक वातावरण में रहने वाल लोगा क विभिन्न सामाजिक वर्ग (Classes) भिन्न अनुपात में प्रतिभाशाली व्यक्ति पदा करते ह । इससे स्पष्ट ह कि उनकी सख्या और अनुपात को हम भौगालिक कारणों में नही खोज सकते ।

उपसहार विभिन्न सामाजिक सस्थाओ और सामाजिक प्रक्रियाओ पर भौगोलिक वातावरण के निर्णायक प्रभाव की वकालत करने वाले अनेक लखका के सिद्धान्तो की समालोचना स हम इस निष्कष पर पहुचते हैं कि इन्होने अनक मनोरजक और उत्तेजक सिद्धान्त प्रस्तुत किये ह तथा अनेक आंशिक रूप म सत्य सह-सम्बन्धा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है । सामाजिक तथ्या और घटनाओ के विश्लेषण में उनकी विवचना आवश्यक ह । कोई भी ऐसी विवेचना बिना उनकी समालोचना के अपूर्ण है ।

प्रादेशिक प्रभाव (Regional Influences)

एक स्थान का जलवायु उसक उद्योग धधे, उसके प्रादेशिक स्थान सभी

उसके सामाजिक जीवन को प्रभावित करते हैं। नगर और ग्राम अपने उद्योग-धंधे बहुत कुछ इस आधार पर भी बनाते हैं कि उनके चारों ओर किस प्रकार का उत्पादन होता है। इन उद्योग धंधों का प्रभाव सामाजिक सम्बन्धों पर होना अनिवार्य है। इसी प्रकार कोई स्थान दूसरे नगरों से कितनी दूर और किन साधनों से सम्बन्धित है यह तथ्य भी अपना प्रभाव डालते हैं।

मान लीजिए कि एक स्थान अधिकतर ग्रामों और छोटे कस्बों से घिरा हुआ है। वह स्थान अपनी महत्त्वाकांक्षा सामाजिक संस्थाओं के विस्तार, सामाजिक अन्तःक्रियाओं के वेग की दृष्टि से उस स्थान की अपेक्षा हीन रहेगा जो एक बड़े नगर के समीप है या दो तीन बड़े नगरों के बीच में है और उनसे प्रभावित होता है। वह स्थान जहां यातायात के साधनों की सुगमता के कारण अधिक लोग आते जाते रहते हैं सांस्कृतिक और सामाजिक प्रक्रियाओं में अधिक प्रगतिशील होगा।

ऐसे नगर जो औद्योगिक और व्यापारिक दृष्टि से हीन अवस्था में होने पर भी नदियों के किनारे होने से या प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण, या तीर्थ-स्थान होने के कारण महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं एक नई प्रकार की सामाजिक व्यवस्था को रच लेते हैं। नगर का केन्द्रीय व्यापार क्या है, वह तीर्थ है या धर्मस्थान, व्यापार का केन्द्र है या उद्योग का केन्द्र, जहाजों या रेलों का विश्राम स्थल है या सेना की छावनी, इस प्रकार के नगरों में से किसी के पास है यह तथ्य नगर के सामाजिक जीवन और उसकी जनसंख्या, जनता के जीवन-यापन के भिन्न भिन्न रूपों को निर्धारित कर देते हैं।

एक नगर या ग्राम के भीतर के अलग अलग अंगों और भागों का विभाजन किस तरह पर है, नगर का केन्द्रीय स्थल क्या है, वह व्यापार का केन्द्र है या सामाजिक जीवन का केन्द्र भी है, गरीब मुहल्ले केन्द्र से कितनी दूर हैं यह अन्य तथ्य हैं जो अलग-अलग भागों में रहने वालों के जीवन पर अपना प्रभाव डालते हैं।

हम देखते हैं कि निम्नलिखित तथ्य अलग-अलग रूप में प्रभावकारी होते हैं।

१ प्रदेश में नगर या ग्राम का स्थान तुलनात्मक भौगोलिक अवस्था।

२ ग्राम या नगर और समीप के प्रदेशों के बाह्य सम्बन्ध।

३ ग्राम या नगर के जीवन की केन्द्रीय क्रिया।

४ अलग-अलग भागों का अन्तःसम्बन्ध।

४ जनसंख्या के स्वरूप पर पड़ोस और पेशे का प्रभाव

पहले यह चर्चा की जा चुकी है कि किसी स्थान का प्रादेशिक महत्त्व कितना प्रभावशाली है। आसनसोल का नगर इसलिए इतना बढ़ सका है क्योंकि वह खानों से भरपूर क्षेत्र के केन्द्र में है और रेलों का केन्द्र स्थान है हरिद्वार इसलिए कि वह तीर्थ स्थान है और मालवा इसलिए क्योंकि वह शिमले जाने का एक ही मार्ग है।

आसनसोल में बड़े व्यापारी, एजेण्ट दलाल, रेल कर्मचारियों आदि का ही प्रभुत्व है। लखनऊ शिक्षा और शासन का केन्द्र है इसलिए वहां औद्योगिक नगरों के से चाल और गन्दी बस्तियां नहीं हैं। हरिद्वार में तीर्थ-स्थान होने के कारण पुजारियों पण्डों और भिखारियों का निवास है। एक केन्द्रीय नगर कहां और किस पड़ोस में बसा है, इससे उसके पेशे इत्यादि पर और इसी कारण उसकी जनसंख्या के प्रकार पर प्रभाव पड़ता है।

हम पहले यह चर्चा कर आए हैं कि भौगोलिक अवस्था प्राकृतिक पदार्थों का सामीप्य और उपलब्धि, और पड़ोस से सम्बन्ध केन्द्रीय क्रिया व्यापार इत्यादि को कितने प्रबल रूप में निर्धारित करते हैं। यह केन्द्रीय क्रिया कितने ही प्रकार की हो सकती है। जैसे १ बड़े उद्योग २ बड़ा व्यापार या मंडी, ३ छोटे उद्योग धंधे ४ केवल पड़ोस के गांवों पर आधारित मंडी, ५ केवल शासन प्रबन्ध का केन्द्र या पुलिस सेना इत्यादि का स्थान, ६ कृषि पर आधारित गांव ७ पशुपालन करनेवाले गांव। उदाहरण के लिए विभिन्न प्रकार के नगरों में वहां की परिस्थिति का स्थानीय संबंधों पर प्राय निम्नलिखित प्रभाव और रूप होगा।

बड़े औद्योगिक नगर इनमें बहुत अधिक सम्पन्न परिवार अधिकतर नगर के बाहर अलग मुहल्लों में ऊंचे प्रासादों में रहेंगे और श्रमिक वर्ग के लोग किराये पर शहर के कोने के मुहल्लों, चालों, गन्दी बस्तियों की कोठरियों में, ऐसे घरों में जो मरम्मत की कमी, गंदगी और स्थान की कमी से पहचाने जा सकते हैं रहेंगे। नगर के बीच में प्राय उच्च व मध्य वर्ग के नौकरी पेशा लोग रहेंगे। बड़ा नगर सम्पन्नता का केन्द्र होने के कारण वहां जन-सेवा के साधन अच्छे स्कूल, कालेज चिकित्सालय, पार्क पुस्तकालय होंगे पर साथ ही सिनेमा, वेश्यागृह और शराब की दूकानें बहुतायत से होंगी। दिन भर के श्रम से थके हुए गरीब और असंतुष्ट लोग अपनी वासना को तृप्त व गम गलत करने के लिए इन साधनों का उपयोग करेंगे।

बड़ी व्यापारी मंडी इनमें साधारणत गरीबों की यह दयनीय अवस्था और इतनी बड़ी संख्या नहीं होगी, और नगर दूर तक फैलने के बजाय व्यापार-केन्द्र को केन्द्र मानकर तंग बसा होगा। मध्यम वर्ग के लोगों की अधिकता के कारण वातावरण कुछ अधिक गम्भीर होगा। परन्तु हम अनेक बड़े नगरों में व्यापार और उद्योग धंधे इकट्ठे पाते हैं। वहां अधिकतर औद्योगिक नगर की ही विशेषताएं उपलब्ध होंगी। छोटे उद्योग-धंधे वाले नगर में समीप के ग्रामों के श्रमिक होंगे परन्तु उनके बड़े मुहल्ले न होकर वह अधिकतर पास के गांवों में ही रात को जाकर विश्राम किया करेंगे। न ही वहां गगनचुम्बी प्रासाद होंगे न ही अधिक सिनेमाघर या वेश्याघर होंगे। बहुत छोटे धंधे करने वाले कारीगर पूरे परिवारों में रहेंगे और एक-एक परिवार एक-एक आर्थिक इकाई के रूप में रहेगा। ऐसे नगर में न तो प्राय: सामाजिक

सम्बन्धों की अतृप्ति, परिवार की छिन्नता और नैतिक आधारों की कमी होगी, न ही इनसे सम्बन्धित समस्याएँ जन्म लेंगी।

छोटे व्यापार केन्द्र इनमें निम्न मध्यम वर्ग बड़े व्यापारी और काश्तकार के बीच का दुकानदार बड़े कारखानेदार और खुदरा ग्राहक के बीच का दुकानदार वर्ग रहेगा। यह वर्ग न केवल कम प्रगतिशील होगा, अपितु अपने विचार और दृष्टिकोण में नगर की अपेक्षा ग्राम की ओर अधिक झुकाव रखेगा। यह अपने व्यापार के कारण ग्रामवासियों के सीधे सम्पर्क में रहेगा। यह छोटे व्यापारिक केन्द्र औद्योगिक नगरों से नैतिक स्तर में अधिक उन्नत होंगे। इनमें सामाजिक नियन्त्रण की अधिक दृढ़ता होगी, सामाजिक एकता की ओर झुकाव होगा और सिनेमा, शराब और वेश्याओं की कमी होगी।

सरकारी नगर जिन नगरों में सरकारी कार्यालय होंगे, या सेना का निवास-स्थान होगा, उनका सारा जीवन इन्हीं के चारों ओर केन्द्रित होगा। सरकारी कर्मचारियों को छोड़कर छोटे-बड़े दुकानदार या ठेकेदार ही अधिक रहेंगे। बड़े कर्मचारियों के क्लब छोटे कर्मचारियों व क्लर्कों के लिए शायद सस्ते होटल, स्कूल इत्यादि का प्रबन्ध रहेगा।

सारांश यह है कि किसी नगर का सारा जीवन एक केन्द्रीय व्यवसाय द्वारा प्रभावित होगा। उसी व्यवसाय में लगे हुए या उसी के सहकारी और सहयोगी काम धन्धों के लोगों की अधिकता उसी से प्रभावित जीवन परिपाटी, नैतिक आधार, सामाजिक संस्थाएं, महत्त्वपूर्ण सामाजिक सेवाएं, उस स्थान की विशेषताएं होंगी।

बड़े औद्योगिक नगर में नैतिक स्वतन्त्रता, पतन अपराधवृत्ति बड़े व्यापारिक नगर में अधिक सांस्कृतिक सामाजिक आधार मूल्य मान्यताएं छोटे औद्योगिक नगर में अल्प रूप में नागरिक अवस्था (यदि वह बड़े नगर का ही छोटा रूप है) या ग्राम के साथ की अवस्था (यदि वहां हाथ से या बहुत छोटी मशीनों से काम होता है) होगी। छोटे व्यापारिक नगर में सुगठित सामाजिक नियन्त्रण व पारिवारिक नियन्त्रण होंगे। छोटे नगरों में बच्चों की अपराध की ओर वह प्रवृत्ति जो औद्योगिक नगर में होती है, न होगी, न ही अवरुद्ध, असन्तुष्ट भावों के सामूहिक विस्फोट और सहज अभिव्यक्ति के कारण झगड़े और प्रदर्शन होंगे, न ही वेश्यागृह शराब खाने और सिनेमाओं की बहुतायत होगी, न ही भीड़ भाड़ के कारण जीवन में अशान्ति और न ही सामाजिक सम्बन्धों की तृप्ति के लिए राजनैतिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भरमार होगी जो कि किसी केन्द्रीय व्यापार पर निर्भर एक बड़े औद्योगिक और व्यापारिक नगर के लक्षण हैं।

नगर का परिस्थितिशास्त्र (Ecology)

किसी नगर का नमूना उसके उद्योगों, संस्थाओं और सामाजिक श्रेणियों

में श्रेष्ठ स्थिति की प्राप्ति के लिए ई प्रतियोगिता का परिणाम होता है। विभिन्न प्रकार के व्यवसाय उत्तम स्थानों के लिए आपस में प्रतियोगिता करते है। किसी व्यवसाय की स्थिति इस बात से निर्धारित होती है कि वह कितना किराया दे सकता है। जमीन की कीमतें किसी नगर के परिस्थितिशास्त्र की कुंजी है। किसी भी बृहत् नगर में जमीन की अधिकतम कीमत के दो क्षेत्र होते है। केन्द्रीय व्यापार क्षेत्र और केन्द्रीय बैंकिंग क्षेत्र। इन क्षेत्रों को प्रभुत्व के केन्द्र कहा जाता है, क्योंकि यह अन्य क्षेत्रों की स्थिति को प्रभावित करते है। नगर के केन्द्रीय व्यापार में किसी भी प्रकार का परिवर्तन उसके इर्द गिर्द के क्षेत्र में हेर-फेर उत्पन्न करता है। नागरीय परिस्थितिशास्त्र को हम भारतवर्ष के एक मुख्य शहर का उदाहरण देकर समझा सकते है।

कलकत्ते का परिस्थितिशास्त्र हम सुविधा के लिए कलकत्ते के परिस्थितिशास्त्र को चार समकेन्द्रिक वृत्तों (Concentric Circles) द्वारा जो कि किसी पेड़ के वृत्तों से मिलते-जुलते है दर्शा सकते है।

(१) नगर के मध्य में व्यापार का केन्द्र है जो कि सबसे पहले छोटे वृत्त से दर्शाया जा सकता है। इस क्षेत्र में बड़े-बड़े व्यापारिक-प्रतिष्ठान है, जो बहुत ऊंचे किराये दे सकते हैं। इसी क्षेत्र में बड़े-बड़े बैंक और राज्य सरकार के केन्द्रीय दफ्तर है। केन्द्रीय क्षेत्र के निकट अथवा उसके अन्दर ही विभिन्न प्रकार के छोटे उद्योग उदाहरण के लिए चीनियों का जूता और खिलौना उद्योग, इसी क्षेत्र में अवस्थित है। इसी क्षेत्र में और इसके आस पास छोटे-बड़े होटल और भोजनालय हैं। यही थोक व्यापार का केन्द्र है। किराये अधिक होने के कारण कारखाने वाले इस क्षेत्र में नहीं आते। अखबारों के दफ्तर और मनोरंजन के स्थान इस क्षेत्र में अथवा इस क्षेत्र से लगे हुए है। इस क्षेत्र में ऐसे निवासों का भी समावेश है जिनमें धनी लोग रहते हैं क्योंकि वह कई पुश्तों से यहीं पर रहते चले आ रहे है, पर जैसे-जैसे नगर का व्यापारिक भाग बढ़ता है, इन घरों पर बड़ा दबाव पड़ रहा है और वह आहिस्ता-आहिस्ता इन्हें दूसरों को किराये पर चढ़ाकर बाहरी कोठी बंगलों में चले जाते है।

(२) मध्य वृत्त के बाहर का दूसरा वृत्त मारवाड़ी, बंगाली चीनी ऐंग्लो इंडियन इत्यादि विभिन्न समुदायों की घनी बस्तियों और खुदरा बाजारों से घिरा हुआ है जो कि बड़ी गन्दी और खराब अवस्था में हैं। एक समय यह क्षेत्र मुख्यतः रिहाइश के ही काम में आता था पर अब यहां अनेक छोटे छोटे व्यापार और उद्योग धंधे स्थापित हो गये है। और ऐसी प्रवृत्ति है कि यह क्षेत्र एक समय बाद व्यापारिक वृत्त द्वारा ग्रस लिया जायेगा। यह अब न तो पूर्णतः निवास-क्षेत्र ही है और न पूर्णतः व्यापार-क्षेत्र ही रहा है। अतः इसे मध्य सीमा-क्षेत्र कह सकते हैं।

आने वाले परिवर्तनों की प्रतीक्षा में इमारतें बहुत कुछ उपेक्षित अवस्था में पड़ी हुई हैं। यहां पर गन्दी बस्तियां या स्लम्स भी हैं जो कि निर्धनता, अपराध, व्यभिचार और रोगों की पोषण भूमि हैं। इन गन्दी बस्तियों में ही या उनको ढकते हुए विभिन्न साम्प्रदायिक या सांस्कृतिक समूहों की पृथक्-पृथक् बस्तियां हैं। इसी क्षेत्र में अधिकतर बाहरी विद्यार्थियों और अविवाहित कर्मचारियों के, जो कि प्रायः अपने मित्रों और सम्बन्धियों से दूर रहते हैं, बोर्डिंग हाउस हैं। दूसरे वृत्त का पश्चिमी-दक्षिणी भाग विशिष्ट सरकारी नीति के कारण बड़े मकानों के रूप में गैर आबाद और खाली रह गया है वरना यदि ऐसी रोक न होती तो यह भी उसी तरह भर गया होता जैसे कि वृत्त की और सारी दिशायें भर गई हैं।

(३) इस संक्रमण क्षेत्र के बाहर तीसरे वृत्त का क्षेत्र छोटे पैमाने पर केन्द्रीय क्षेत्र और उसके अंगों की भांति लगता है। इसमें एक ओर कुशल श्रमिकों की बस्तियां हैं और उनकी आवश्यकतायें पूरी करने के लिए छोटे स्थानीय बाजार हैं और यहीं पर अधिकांश मध्य वित्त लोग भी बसे हुए हैं।

(४) इसके बाद चौथा वृत्त, जहां पर अन्त में ये बाहरी गांवों से मिलता है, यहां इसका रूप बहुत विचित्र है। यह स्थान अंशतः खेतों व उद्यानों के लिये और अंशतः खुले विकास के लिए होता है। एक बड़े भाग में अधिक धनी लोग अपनी कोठियां और बंगले बनाकर रहते हैं। इनमें से बहुत से लोग ऐसे हैं जो कि पहले नगर केन्द्र में रहते थे, पर अब यहां आ बसे हैं। इनमें से अधिकांश निवासियों के पास अपनी कारें हैं। इस बाहरी निवास-क्षेत्र में एक परिवारीय छोटे निवास भी हैं। यहां यातायात के साधनों की सुविधायें पहुंच गई हैं। विस्तृत खुला क्षेत्र होने के कारण बगीचा, हवाई अड्डा और श्मशानों के लिए भी यह प्रदेश उपयुक्त है।

यह बाहरी वृत्त कम किराया होने के कारण बड़े-बड़े कारखानों की स्थापना के अनुकूल है। इन्हीं कारखानों के पास मजदूरों की गंदी बस्तियां खड़ी हो गई हैं। मजदूरों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए खुदरा बाजार, मनोरंजन के स्थान और खाने-पीने की दुकानें भी यहां पर खुल गई हैं।

ग्राम का परिस्थितिशास्त्र

गांवों में पारिस्थितिक, अर्थात् स्थान की दूरी से उत्पन्न सम्बन्धों (Spatial Relationships) का रूप शहरों से काफी भिन्न है। पर स्वयं हर एक गांव के पारिस्थितिक या स्थानिक सम्बन्धों का रूप एक-सा नहीं है। बहुत-से प्रभाव और कारण हैं जो कि किसी ग्राम विशेष के परिस्थितिशास्त्र को प्रभावित करते हैं। गांव की जनसंख्या, उस जनसंख्या के तत्व, उनके आपसी अन्तःसम्बन्ध, उसकी आय के मुख्य साधन, नगरों से उसकी दूरी और उनका प्रभाव, सामाजिक जीवन का संगठन, नेतृत्व, दूसरे स्थानों से सम्बन्ध अनेक कारण उसे प्रभावित करते हैं। भारत

में जाति-प्रथा, जातियो का पेशे से सम्बन्ध, जाति-सगठन, एक किसान परिवार का अनेक-विभिन्न जातियो के विभिन्न काम करने वाले परिवारो से एक प्रकार का निश्चित और वशानुगत सम्बन्ध, गावो के परिस्थितिशास्त्र, वहां के स्थानिक सम्बन्धो पर गहरा प्रभाव डालते ह। पर जहा विभिन्न प्रकार के गांवो की परिस्थिति में कुछ में असमानताए ह, वहा उनमें एक प्रकार की मौलिक एकता भी विद्यमान है।

सामान्यत गावो की आवादी थोडी होने के कारण, वहा पर समुदाय के सदस्य एक दूसरे स अच्छी तरह परिचित होते ह। समुदाय क छोटा होने के कारण यहा पर उस समुदाय के प्रति एक निष्ठा की भावना जोर पकडता है, जो विस्तृत शहरो में सम्भव नही है। सामान्यत गाव या गावो के प्रमुख वग कुछ खानदानो से मिलकर बने होते ह। इस प्रकार गावो के सामुदायिक जीवन में रिश्तेदारी के सम्बन्धो की प्रधानता रहती ह। इसके विपरीत, शहरो में विभिन्न जातियो के लोग एक ही काम करते पाये जाते ह। और फिर उनके काम करने का रूप ऐसा होता है जहा पर बडी सख्या में यह लोग मिलते ह। इस प्रकार वहां एक दूसरे से असम्बन्धित एक दूसरे मे कहीं दूर बस्तियो या मोहल्लों में बसे हुए लोगों में एक आर्थिक और पेशेगत एकता या निष्ठा पैदा होती ह। नगरों में जमीन की अत्यधिक कीमतें होने के कारण, उनका प्रभाव वहा की बस्तियों पर पडता है। एक स्थान विशष में विशेष वर्ग क लोग रहते या व्यापार करते ह। गांवो का गृह व्यवस्था पर ऐसा कोई प्रभाव नही पडता। इसक अलावा वहां गावों के विभिन्न भागों या पट्टियो म विभिन्न खानदानो या जातियो के लोग रहते हैं। इस प्रकार गाव के पडोसी सम्बन्धों म खानदान या जाति की प्रधानता रहती है।

यही नही वहिर्विवाह (Exogamy) के नियम भी गावो के पारिस्थितिक सम्बन्धो को प्रभावित करते ह। जिन गांवो में, एक ही जाति में, परे अपन गाव से बाहर विवाह की प्रथा है, उन गावो का एक साथ अनेक गावों से निकट सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। इस प्रकार उसके पारिस्थितिक सम्बन्धों का क्षितिज विकास होता ह। पर जिन प्रदेशो में एक ही गाव में विवाह का नियम है वहां यह सम्बन्ध बहुत सीमित रहते हैं। इसक विपरीत गावों में जजमानी और लागदार प्रथा जिसके अनुसार एक विशेष जाति के परिवार अनेक जातियों के परिवार विशेष से आर्थिक दृष्टि से सयुक्त होते हैं, गाव के जीवन में एक ऊर्ध्वाधर (Vertical) एकता का सूत्रपात कर वहा के पारिस्थितिक सम्बन्धों को एक नया रूप देते हैं जो कि शहरो से पर्याप्त भिन्न होता है।

इसके अलावा गावो में शहरों की तुलना में आर्थिक असमानता बहुत कम होती ह। इसलिए गाव वालों क पारिस्थितिक सम्बन्धों में आर्थिक तत्व का पर्याप्त अभाव पाया जाता ह। इसक विपरीत, गांव का परिस्थितिशास्त्र सामुदायिक,

जातिगत और खानदानी भावना के विकास के लिए बहुत अनुकूल है। गावों और शहरों की बनावट वहा के निवासियों के स्थानिक सम्बधो पर सीधा प्रभाव डालती है।

जनसख्या का प्रभाव

जनसख्या के अधिक होने का एक बडा प्रभाव सामाजिक सम्बन्धो की असाधारण वृद्धि, प्रगति की चाल का तेज हो जाना, अधिक सुचारु श्रम विभाजन, अधिक सुविधाए, सेवाओ का समुचित प्रबध, नियत्रण और आधिक्य होना है। यह सब परिवर्तन मानव समाज के जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध रखते है। सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक जीवन की घनिष्टता, बहुलता, बहुमुखता न केवल मनुष्य की बुद्धि को प्रखर और ज्ञान को समृद्ध करती है, बल्कि एक सुविकसित परम्परा का विकास करती है। यह सर्वविदित है कि नगर ने सास्कृतिक प्रगति की गति को तीव्र कर दिया है।

मानव समाज के कौन से अग अधिक प्रगतिशील, विकसित और सम्पन्न होगे, इसे समझने के लिए हमें यह भी जानना होगा कि मानव-समाज के किन भागो में जनसख्या अधिक है और उसका कारण क्या है। ऐसे कितने ही क्षेत्र और देश है जहा जनसख्या बहुत कम है। ऐसे भी कितने ही प्रदेश है जहा यह बहुत अधिक है। दक्षिणी और पूर्वी एशिया, पश्चिमी मध्य और दक्षिणी योरोप मुख्यतया बहुजनसख्यक प्रदेश है। ससार की आधी से भी अधिक आबादी भारत चीन जापान, हिन्देशिया, हिन्दचीन पाकिस्तान और बर्मा में बसी हुई है।

जनसख्या किसी क्षेत्र की जनसख्या का उसके समाज की अवस्था और सामाजिक सम्बन्धो पर अनिवार्य प्रभाव पडता है। समाज शास्त्रियों और विशेषकर अर्थशास्त्रियो में इस बात को लेकर बहुत समय से बहस चल रही है, किसी समाज के लिए कितनी जनसख्या का होना उपयुक्त है। जनसख्या की समस्या पर सर्वप्रथम वैज्ञानिक रूप से विचार करने वाले अग्रेज पादरी माल्थस ने १७०८ में इस विषय पर एक पुस्तक प्रकाशित की जिसमें उसने यह बताया कि जब कि खाद्य पूर्ति क्रमश १, २, ३ के गणितिक क्रम (Arithmatic Progression) में बढती है, जनसख्या २, ४ ८, के ज्यामितिक (Geometric) क्रम से बढती है। इस जनसख्या की वृद्धि रोकने के दो ही उपाय हैं—प्राकृतिक या निरोधक। कृत्रिम निरोध के अभाव में महामारियां ही ऐसा प्राकृतिक साधन हैं जो कि खाद्य-पूर्ति और जनसख्या के बीच एक सतुलन स्थापित करती हैं। इस प्रकार माल्थस ने जनसख्या की वृद्धि का एक भयानक चित्र उपस्थित किया। वास्तव में जनसख्या वृद्धि का यह ज्यामितिक सिद्धान्त भ्रान्त है। पिछले डेढ सौ सालो ने माल्थस की भयकर भविष्यवाणियो को बहुत अर्शों में मिथ्या सिद्ध किया है। नये अन्वेषणो ने यह भी सिद्ध किया है कि जनसख्या की वृद्धि सदा ही विपदा, कष्ट, निर्धनता और

महामारी का सूचक नहीं होती। अनक अवस्थाओ में उसकी वृद्धि हितकर भी सिद्ध होती है। अत केवल जनसख्या की वृद्धि या ह्रास से हम किसी समाज का समृद्धि या निधनता का अदाज नही लगा सकते।

एक अन्य अग्रेज अथशास्त्री कनन ने जनसख्या के एक अधिक वज्ञानिक और उपयुक्त सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसे सर्वोत्तम जनसख्या का सिद्धान्त (Theory of Optimum Population) कहते हैं। इसके अनुसार किसी समाज के लिए वही जनसख्या सर्वोपयुक्त ह जिस पर कि उसकी प्रति व्यक्ति औसत आय अधिकतम होती है। यह सर्वोपयुक्त सीमा कोई स्थिर चीज नही है। यन्त्रा और काय-क्षमता की वृद्धि से इसमें अतर आते रहते हैं। फिर भी हम इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि एक निश्चित आर्थिक साधना और उनके उपभोग की एक निश्चित क्षमता की अवस्था में कौन-सी जनसख्या अधिक उपयुक्त ह।

वैज्ञानिक आविष्कारा का प्रभाव

यह तो स्पष्ट ही है कि लाग वही बस जाते ह, जहा जलवायु अच्छा हो, भूमि उपजाऊ हा व जीवनोपयोगी दूसरे साधन सुलभ व समीप हा पानी पृथ्वी के समीप मिल सक और दूसर समुदाया से मिल सकने के साधन पर्याप्त हा। आधुनिक समाज में बिजली, उद्योग और सभ्यता के दूसरे उपकरणा का विचार भी अधिक होता है, क्योंकि इन्ही को लकर मनुष्य प्रकृति को अपनी प्रगति में सहयोगिनी बना सकता ह। पाल लैंडिस का कहना ह कि दक्षिणी डाकोटा समुदाया में व्यापार केन्द्रो का विकास अधिक वर्षा रेल मार्गों के विस्तार और आर्थिक सम्पन्नता के समय में हुआ। जब अवनति आई तो उसके कारण भूमि के मूल्य का गिरना आरम्भ हुआ। अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ने की सम्भावना हो गई और मोटर गाडी क प्रचलन क कारण बहुत छोटे व्यापार केन्द्र नष्ट हा गए।

नए आविष्कारो का प्रगति न अमेरिका में नगरा की जनसख्या बढ़ा दी ह और हमारे देश में चू कि वह प्रगति मन्द है, इसलिए यहा नगरा की जनसख्या-वृद्धि की प्रगति भी पर्याप्त मन्द ह। फिर भी भारत में नागरिक जनसख्या का अनपात बराबर बढ़ता जा रहा है।

नगरा की सामाजिक और आर्थिक सुविधाओं औद्योगिक विकास और ग्राम उद्योगा क विनाश जमीन पर जनसख्या के दबाव, गावा में रोजगार की कमी ने युवका को बडी सख्या में नगरो में ला फेंका है। १९४१ से १९५१ के बीच यहा नगरो की जनसख्या में ५४ प्रतिशत वृद्धि हुई है। यहा की १७ प्रतिशत जनता अब नगरों में रहती ह।

परिस्थिति न केवल बाह्य रूप में एक स्थान की जनसख्या उसके आचरण और व्यवहार, जीवन-यापन की विधि, उसके प्रसार और विकास-केन्द्र इत्यादि का

निधारण करती है, बल्कि इन सीमाओं में भी समुदायों को अलग-अलग करती हैं। एक नई बस्ती की जनसंख्या में युवकों और वृद्धों, स्त्रियों और पुरुषों की संख्या का अनुपात एक पुरानी बस्ती से भिन्न होगी। और इसी प्रकार एक व्यापारी बस्ती में मजदूर बस्ती से भिन्नता होगी। एक नगर के इस प्रकार के अलग अलग भागों की ऐसी व्यवस्था का पता लगाने के लिए जनसंख्या-पिरामिड बनाए जाते हैं। इनमें यह दिखाया जाता है कि अलग अलग अवस्थाओं के व्यक्ति कितनी प्रतिशत संख्या में अलग अलग क्षेत्रों में रहते हैं। इससे सामाजिक सम्बन्धों को समझने में पर्याप्त मदद मिलती है।

नगर विकास के सिद्धान्त

किसी नगर के किसी खास भाग में ही व्यापारी और दूसरे में मजदूर क्या रहते हैं और क्यों उनमें इतने अन्तर हैं, इन प्रश्नों ने नगर विकास की विभिन्न कल्पनाओं को जन्म दिया है। आगे हम तीन प्रमुख कल्पनाओं का जिक्र करेंगे।

यदि ... समकेन्द्र सिद्धान्त (Concentric Theory of City Growth) नगर के उस भाग में जहाँ सबसे अधिक चहल-पहल, चलना फिरना है, अर्थात जहाँ सबसे अधिक सड़कें और गलियाँ मिलती हैं और स्वभावतः अधिकतम संख्या में ग्राहक आते हैं, व्यापार केन्द्रित होता है। यहाँ दुकानों में सभी नाना सामग्रियाँ ग्राहकों को लुभाने की चेष्टा करती हैं। थोड़ी ही दूरी पर थिएटर, क्लब, होटल आदि होते हैं। कारखाने वगैरह सड़क, रेल-मार्ग या नदी के तट के साथ-साथ होते हैं।

... ज्यों ज्यों व्यापारिक भाग फैलता है, निवासस्थान और मुहल्ले केन्द्र से दूर होते जाते हैं। परन्तु यह क्रिया कितने ही वर्षों में पूर्ण होती है। इसलिए कारखाने, स्टोर और घर एक ही जगह रहने दिए जाते हैं। ऐसे क्षेत्र में स्वभावतः वातावरण अधिक गन्दा, शोर वाला, कोलाहलपूर्ण हो जाता है, और मकान गिरी हालत में इस प्रतीक्षा में रहने दिए जाते हैं कि व्यापार गृहों के काम आएँ। अधिक सम्पन्न परिवार नगर के दूर के भागों में बस जाते हैं, परन्तु जो रुपये की कमी या किसी दूसरे सामाजिक कारण से स्थान परिवर्तन नहीं कर सकते, वहीं रह जाते हैं। इन लोगों के मुहल्ले जिन्हें संक्रमण क्षेत्र (Zones in Transition) कहा जाता है और जो व्यापारिक बाजारों और रहने के मुहल्लों को एक दूसरे से अलग करते हैं, अपने कोई विशिष्ट गुण नहीं रखते, और कभी-कभी अपना सामाजिक एकता के कारण गन्दी बस्तियाँ या चाल (Slum) कहलाने लगते हैं। किशोर अपराध प्रवृत्ति (Juvenile Delinquency), व्यभिचार, निर्धनता, व्यक्तिगत असन्तुलन, और विघटन इन टूटे गिरते मकानों में पलते हैं। नगर के केन्द्र से कुछ बहुत दूर न होने पर भी यह एक खास दिशा में फैलते जाते हैं और औद्योगिक क्षेत्र के

समाप तक चले जाते ह ।

नगर समुदायो का अध्ययन करते हुए बर्जेस ने देखा कि भिन्न भिन्न सामाजिक क्षेत्र एक ही केन्द्र वाले अलग-अलग वृत्तो का रूप धारण करते हैं। सबसे छोटा वृत्त व्यापारिक क्षेत्र होता ह, जिसको सक्रमण क्षेत्र जो व्यापारिक, रहने वाले महल्ला इत्यादि का मिश्रण होता ह, घेरे रहता ह। इसके परे रहने के मुहल्ले होते है। पहले सस्ते और फिर अधिक किराये और कीमत वाले। सबसे वाहर वाला वृत्त नई वस्तियों का समूह होता ह।

मारिस डेनी का सिद्धान्त मारिस डेनी के मतानुसार नागरिक विकास और ह्रास के बारे में भविष्यवाणी करना असम्भव ह और इसलिए उसकी किसी एक खास प्रणाली या ढग से व्याख्या कर देना उचित नही है। साधारणतया, एक केन्द्रीय व्यापारिक क्षेत्र, बनावट म वृत्त स अधिक आयताकार या वर्गाकार रूप में और व्यापारिक भूमि का प्रयाग अर्धव्यासाकार सडको से वाहर फैलता हुआ कुछ विशिष्ट स्थानो पर एकत्रित हो, निम्न प्रकार के उपकेन्द्रो का निर्माण करते है (१) जल या रेल यातायात साधनो के समीप स्थित उद्योग (२) औद्योगिक और परिवहन (transport) क्षेत्रो के समीप निम्न स्तर के घर (३) अलग जगहो पर द्वितीय या प्रथम दर्जे के मकान।

विलियम बेली का सिद्धान्त विलियम बेली के मत से एक नगर एक गाव के रूप में आरम्भ होता ह जो मोटे तौर पर वर्गाकार होता ह, फिर वाहर की ओर फैलता ह और एक अमीवा की तरह विस्तृत होकर चौकोर कस्बा बनता हुआ एक तिकोने राज नगर (Metropolis) के रूप में विकसित होता है और अन्त में अपने लम्बे हाथ बाहर फेंकता ह जिनको गन्दी वस्तियाँ (Slums) कहते ह।

यह विभिन्न मत कम-से-कम यह तो स्वीकार करते ही हैं कि नगर के विकास में प्राकृतिक और कृत्रिम सभी साधन पूरा-पूरा भाग लेते हैं और जनसमूह के केन्द्रीकरण इत्यादि की क्रियाओ को प्रभावित करते ह। इसी अर्थ में मनुष्य के रहन सहन के ढग पर भी अपना प्रभाव डालते ह। दूर की गन्दी वस्तियों में रहने वाले लोगो में अपराध प्रवृत्ति अधिक होगी केन्द्र में बडे लोग अधिक सम्पन्न होगे यह सब तो आखिर इसी से निर्धारित होता है।

प्रश्न उठता ह कि व कौन सी प्रक्रियाएं हैं जो नगरों क्षेत्रो इत्यादि में जनसमूह की सख्या को कम या अधिक करती ह और परिस्थितिशास्त्र के मत्रो का काम करती ह। उनका अध्ययन ही हमें परिस्थिति और मानव समाज सम्बन्ध के समीप ले जायगा।

पारिस्थितिक प्रक्रियाएं (Ecological Processes)

चाहे प्राकृतिक साधनो या पदार्थों की उपलब्धि के कारण, चाहे आने-जाने की सुगमता के कारण या और किसी कारण को लेकर जनसंख्या कितने ही स्थानो पर अधिक हो जाती है, कितने ही स्थानो पर कम। किन किन प्रक्रियाओ मे यह कमी या अधिकता होती है यह परिस्थितिशास्त्र को समझने के लिए आवश्यक है।

जनसंख्या की चर्चा करते समय हम व्यापार के कारण जन-समूह के एक केन्द्र की ओर आकर्षित होने के क्रम को देख चुके हैं। जब एक ही केन्द्र पर आबादी का दबाव अधिक हो जाता है, तो उसकी विपरीत प्रक्रिया प्रारम्भ होने लगती है जिसे हम विकेन्द्रीकरण कह सकते हैं। अब केन्द्र से कुछ दूरी पर छोटी-छोटी आबादियाँ बनने लगती है। इसी प्रकार अन्य प्रक्रियाएं भी काम करती हैं। मैंकेन्जी के अनुसार हम इन प्रक्रियाओ का विवरण संक्षेप में नीचे दे रहे हैं।

(१) एकत्रीकरण (Concentration) जिन स्थानों में प्रकृति या मानव स्रष्टा ने मनुष्य के निवासोचित व्यवस्थाओ का प्रबन्ध कर दिया हो और मानव के लिए आवश्यक सेवाओ को जुटा दिया हो उन स्थानो में मनुष्य समूहों का एकत्र हो जाना स्वाभाविक ही है।

(२) केन्द्रीकरण (Centralisation) ऐसे केन्द्रीय स्थानों पर जहां सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक अन्त क्रियाओं का वेग अधिक हो मनुष्य वृद्धि हो जाते हैं।

(३) विकेन्द्रीकरण (Decentralisation) केन्द्र स्थान मे स्थानाभाव, भीड और तंगी के कारण केन्द्र की बाहरी सीमाओ पर जहां भूमि की कीमत कम हो और स्थान पर्याप्त और खुला हो, मनुष्य छोटी-छोटी बस्तियां बना लेते है।

(४) पृथक्करण (Isolation) एक ही प्रकार के आर्थिक और सामाजिक हितो और प्रकारो वाले जनसमूह अलग-अलग विशिष्ट प्रदेशो में बस जाते है जहां प्रत्येक सामूहिक इकाई अपना एक ही आर्थिक कार्य और प्रतियोगी क्षमता रखती है। परन्तु यह पृथक्करण तभी हो सकता है जब ऐसे समूहो को व्यापारिक और औद्योगिक सुविधाएं प्राप्त हो।

(५) आक्रमण (Aggression): एक पृथक जनसमूह के निवास-स्थान में भिन्न प्रकार की सामाजिक संस्थाओ वाले समूह का पैर जमाते जाना आक्रमणात्मक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में भूमि के उपयोग में अन्तर आ जाता है या जनसमूह का प्रकार बदल जाता है।

(६) संक्रमण (Succession) एक जनसमूह के दूसरे जनसमूह के स्थान पर आक्रमण के परिणामस्वरूप जनसमूह का प्रकार बदल जाता है तो नया समूह

पुराने समूह की जगह उसके उत्तराधिकारी के रूप में ले लेता ह। भूमि के उपयोग की प्रणाली के परिवतन के परिणाम को भी यही नाम दिया जाता ह। इस दष्टि से यह आक्रमण की पूर्ति का परिणाम मात्र ह।

(७) दनीकरण (Routinization) इन छ क्रियाओ के साथ एक सातवी क्रिया भी जोडी जाती ह। जिसका अथ है नगर की जनता का काम-धधे क स्थान से प्रतिदिन रहने की जगह आना जाना, या छोटे व्यापार के प्रदेश या मनोरजन के स्थान पर आना जाना या सामान को नगर के एक भाग मे दूसरे भाग कारखान से दुकान आदि पर ले जाना इत्यादि। यह क्रिया एक दनिक काय का रूप धारण कर लेती ह।

यह सब प्रक्रियाए क्रमश परिस्थिति के साधन बनकर नगरो क विकास और विनाश का कारण बनती ह और मानव समाज का प्रभावित करती ह। सस्कृति और सभ्यता के विकास में इसलिए इनका महत्व हैं और यह परिस्थिति और सस्कृति में एक सम्बध स्थापित करती ह। यह प्रक्रियाए कवल बाह्य परिस्थिति का ही प्रभाव नही हैं, सभ्यता क उपादान भी इनको प्रबल और प्रभावित करते हैं। यह नही भूलना चाहिए कि अन्त में मनुष्य के अपने कम इन प्रक्रियाओ को न कवल प्रभावित करते ह बल्कि कई बार नियन्त्रित भी करते ह। नए आविष्कारो ने जहां इनकी गति तेज कर दी ह वहां इन्हें मानव ज्ञान और प्रयत्न का दास भी बना दिया ह।

सातवाँ अध्याय

ग्राम और नगर समुदाय

RURAL AND URBAN COMMUNITY

ग्राम और समाज

अनाज के उपजाने का ज्ञान होने पर मानव जाति के आदिवासी परिवार कुटुम्ब और कबीला ने जो भोजन की खोज में शिकार या पशुओं के चारे के लिए इधर उधर मारे फिरते थे, एक जगह स्थिर होकर बसने की ठानी और कृषि को अपना प्रमुख उद्यम बनाया। इस प्रकार गावों की बुनियाद पड़ी। कृषि ने मनुष्य के भोजन की चिंता को बहुत कम कर दिया और उसे पर्याप्त अवकाश प्रदान किया। अपेक्षतया समृद्ध जीवन और अवकाश ने पर्याप्त सामाजिक उन्नति का अवसर प्रदान किया। इस प्रकार मनुष्य की सबसे पहली सभ्यताओं का जन्म समृद्ध कृषि क्षेत्रों में हुआ। इसलिए हम कह सकते हैं कि गावों का विकास मानव जाति के विकास में दूसरी महत्वपूर्ण मंजिल थी।

सामान्यतः ग्राम समाजों में सुदूर प्रदेशों और देशों से व्यापार का प्रारम्भ नहीं हुआ। इसलिए बहुत समय तक आत्मनिर्भरता ग्राम जीवन का प्रमुख लक्षण रही। गावों का जीवन बहुत सरल आवश्यकताएं बहुत सीमित और जनसंख्या बहुत ही कम होती है। यह सीमित जनसंख्या अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने का प्रयत्न करती है। गावों के रहने वाले सब लोगों का जीवन उसके अन्य सदस्यों पर अत्यधिक निर्भर होता है। वह प्रायः रोज ही एक दूसरे से मिलते हैं और सबों को भली भांति पहचानते हैं। इस प्रकार उनमें अधिक एकता की भावना और आत्मीयता होती है। वह एक दूसरे को बहुत प्रबलता से प्रेरित करते हैं। इन अर्थों में ग्राम एक पृथक और छोटा समुदाय है। यह ऐसा समुदाय है जो न केवल समान हितों की रक्षा करता है बल्कि सदा साहचर्य के कारण वह अपने सदस्यों के व्यवहार को बहुत प्रभावित करता है। इसलिए हम उसे एक प्राथमिक समूह (Primary Group) कह सकते हैं।

इसके अतिरिक्त, कृषि पर निर्भरता ग्राम जीवन की अन्य प्रमुख विशेषता है। कृषि पर यह निर्भरता उनके रहन सहन के स्तर उसके परिवार, शिक्षा स्वास्थ्य, मनोरंजन, विचारधारा, विश्वास मनोवृत्ति, सब पर एक विशेष प्रभाव डालती

है और इस प्रकार उसके रहने वालों को जंगलों और नगरों के रहने वालों से अलग करती है।

ग्रामों के प्रकार

कृषि के जन्म और विस्तार के साथ संसार के विभिन्न भागों में विभिन्न प्रकार के गांवों का उदय हुआ। इसमें भौगोलिक परिस्थितियों का भी बड़ा हाथ था। इसके अलावा प्रारम्भिक गांवों में टेक्निकल आर्थिक और सामाजिक विकास के साथ तथा अन्य समाजों से सम्पर्क और संघात के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के परिवर्तन घटित होते रहे।

गांवों का इतिहास हमें बताता है कि किस प्रकार विभिन्न देशों और कालों में विभिन्न प्रकार के गांवों का विकास हुआ। अंग्रेजी सक्सन ग्राम, जर्मन मार्क, रूसी मीर, सामन्तवादी योरोप के गांव, स्वयं भारत में ही कबायली, जमींदारी, महलवारी और रैयतवाड़ी गांव और आज के आधुनिक ग्राम जिनका कि संसार की आर्थिक व्यवस्था से पर्याप्त सीधा सम्पर्क है इसके मुख्य उदाहरण हैं। समाजशास्त्र में विभिन्न प्रकार के गांवों के जन्म, विकास और परिवर्तन का अध्ययन अत्यन्त महत्व रखता है।

गांवों के वर्गीकरण के कुछ मापदण्ड

प्रमुख समाजशास्त्रियों ने गांवों के वर्गीकरण के अनेक मापदण्ड प्रस्तुत किए हैं, इनमें से कुछ का हम आगे जिक्र करेंगे।

(१) निवास के स्थायित्व के आधार पर हरोल्ड पीक ने खानाबदोश (Nomadic) अवस्था से स्थायी रूप से गांवों में बसने के विकास के परिवर्तन काल को ध्यान में रखते हुए गांवों को तीन श्रेणियों में बांटा है (क) निष्क्रमणार्थी (Migratory) कृषक गांव जहां पर कि लोग कुछ ही महीनों के लिए एक निश्चित स्थान पर रहते हैं (ख) अर्ध-स्थायी (Semi permanent) गांव जहां पर कि जनसंख्या कुछ सालों तक निवास करती है और फिर जमीन की उपजाऊ शक्ति समाप्त हो जाने पर उन्हें छोड़कर चली जाती है (ग) स्थायी (Permanent) कृषक गांव जहां कि बसे हुए मानव समूह पुश्तों या अनेक बार सदियों तक एक ही स्थान पर रहते हैं।

(२) घरों के विस्तार के आधार पर कुछ लेखकों ने समूह-रूप या केन्द्रित (Grouped or Nucleated) और बिखरे हुए (Dispersed) दो प्रकार के गांव माने हैं। एक समूह रूप या केन्द्रित गांव में किसान एक ही स्थान में इकट्ठे होकर रहते हैं और गांव से बाहर जाकर खेतों पर काम करते हैं। बिखरे हुए या विकेन्द्रित (Non nucleated) गांव में किसान एक दूसरे से दूर खेतों के बीच ही अपना-अपना घर बनाकर रहते हैं। इस प्रकार उनके घर बिखरे हुए होते

हैं और उनके सामाजिक सम्बन्धों का स्वरूप भी भिन्न होता है।

(३) सामाजिक विभेदीकरण (Differentiation), स्तरीकरण (Stratification) श्रम की गतिशीलता (Mobility) और जमीन के स्वामित्व के आधार पर इस मापदण्ड के अनुसार गांवो को छ मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है। वह है (१) वह गांव जहां पर किसानों का जमीन पर सांझा स्वामित्व (Joint Ownership) है (२) वह गांव जिनमें कि लगान देकर साझे म जमीन जोतने वाले शिकमी काश्तकार (Joint Tenants) रहते हैं, (३) वह गांव जिनमें अधिकांश किसान जमीन के व्यक्तिगत रूप से मालिक है, लेकिन जिनमें शिकमी काश्तकार और मजदूर भी हैं (४) वह गांव जिनमें एकान्तत व्यक्तिगत रूप से खेती करने वाले शिकमी काश्तकार रहते हैं (५) वह गांव जिनमें किसी एक बड़े जमींदार के नौकर खेती करते है और (६) वह गांव जिन पर किसी सार्वजनिक संस्था राज्य या मठ का स्वामित्व है और जहां उसके नौकर या मजदूर रहते है।

उक्त तीनों आधारों पर ही गांवों का वर्गीकरण उपयोगी है। इससे हमें विभिन्न प्रकार के गांवों के ढांचे, सामाजिक सम्बन्धो संघर्षों, समस्याओं तथा उनके जन्म और विकास को समझने में सहायता मिलती है।

गांवों के अध्ययन में प्रादेशिक दृष्टिकोण (Regional Approach)

ग्राम समुदाय के विश्लेपण में उसके स्थानिक संगठन (Spatial Organisation) की जानकारी बहुत जरूरी है। वह कौन-से कारण हैं जो कि विभिन्न प्रकार के गांवों का विकास करते है, जो बहुत से गांवो के समूह को मिला कर एक प्रदेश का निर्माण करते है, जो एक कृषक क्षेत्र को एक संस्कृति, भाषा या राजनैतिक क्षेत्र में विभक्त करते है और किस प्रकार प्रदेश एक प्रान्त (Province) में रूपान्तरित होते हैं, इन सभी प्रश्नों का ग्राम समुदाय के अध्ययन में विशेष महत्व है।

प्रादेशिक विभिन्नता के कारण वह कौन से कारण हैं जो कि प्रादेशिक भिन्नता की सृष्टि करते है, उनकी क्या प्रक्रिया है समाजशास्त्रियों ने इसे समझाने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार वह कारण जिन्होंने कि गांव के संगठन या ढांचे के प्रतिमान (Structural Pattern) को निश्चित किया है, प्रादेशिक या उससे बड़ी इकाइयों का निर्माण किया है और उन इकाइयों के साथ गांव के अन्तःसम्बन्धों को निर्धारित किया है, निम्न तीन श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं।

(१) प्राकृतिक अवस्थाएं जिनमें कि भूमि की बनावट जमीन का उपजाऊपन, पानी के साधन इत्यादि सम्मिलित हैं, (२) कृषि अर्थ-व्यवस्था की अवस्था (Stage) अर्थात् वह खानाबदोश है, या स्थायी रूप से भरण-पोषण करने की क्षमता रखते है या बाहरी व्यापार के लिए चीजें उत्पन्न करते हैं, (३) सामाजिक

अवस्था का रूप, अर्थात् सुरक्षा की आवश्यकताओं सम्पत्ति की व्यवस्था का वहाँ क्या रूप ह।

ग्रामवासियों का आर्थिक जीवन

आर्थिक उत्पादन किसी समाज की बुनियादी क्रिया ह। उत्पादन की रीति और उत्पादन के सामाजिक सम्बन्ध सामाजिक ढाचे मनोविज्ञान और विचारधारा में महत्वपूर्ण पाट अदा करते ह।

कृषि ग्राम जीवन का आधार ग्राम समुदाय मुख्यत कृषि पर निभर ह। कृषि उत्पादन का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से ह। जमीन गावों में उत्पादन का बुनियादी साधन ह। जमीन प्रकृति का अश है जिसे कि मानव श्रम आर्थिक रूप से उपयोगी बनाता है। जमीन और श्रम के सहयोग से ग्रामवासी अनेक प्रकार के अनाज कपास जूट गन्ना, तम्बाकू इत्यादि पदाथ पदा करते ह। खाद्य-पदार्थ मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनिवाय हैं। कृषि क अखाद्य पदाथ उद्योगों के लिए कच्चा माल जुटाते ह। नगर के उद्योग केवल इस कच्चे माल को पक्के माल क रूप में रूपान्तरित करते ह। कृषि और उद्योग का यह बुनियादी अन्तर गाव और शहरों की जनता की सामाजिक सस्थाओं, मनोविज्ञान और विचारधारा को निर्धारित करने में बडा हाथ रखता ह।

इसक अलावा उत्पादन का स्तर और विभिन्न वर्गों में उसके वितरण की रीति सम्पूर्ण समाज और विभिन्न वर्गों की समद्धि और उनक सामाजिक सम्बन्धों को प्रभावित करत ह। उदाहरण क लिए कृषि क उत्पादन क पिछड़े हुए तरीके और परिणामत अल्प उत्पादन तथा विशष प्रकार के भूमि-सम्बन्ध गाव की जनता में कृषि क उत्पादन क वितरण की रीति को निर्धारित करते हैं। साथ ही वह बहुत अर्थों में हमारे समाज के श्रेणी बद्ध (Hierarchic) सगठन उसकी विशिष्ट सामाजिक सस्थाओं को समझने में सहायक होत ह। वह रिवाजों रूढ़िया और कल्पनाओं का भी बहुत प्रभावित करत हैं।

जजमानी और लागदार-व्यवस्था

भारत के प्राय सभी प्रान्तों में ग्रामवासियों के विभिन्न वर्गों के आर्थिक सम्बन्ध एक निश्चित रीति द्वारा निर्धारित होत ह। यह प्रथा उत्तर भारत म प्राय जजमानी और लागदार व्यवस्था के नाम से प्रसिद्ध ह। इस प्रथा क अन्तगत किसानों के आर्थिक और धार्मिक कृत्यों में काम आने वाले गर काश्तकार वर्गों क परिवार उनस पर्याप्त स्थायी रूप स सयुक्त होत हैं। उदाहरण क लिए एक किसान परिवार प्राय किसी एक ब्राह्मण, बढ़ई, लुहार, कुम्हार धोबी धीवर या कहार नाई भगी परिवार से सयुक्त होता ह। मुसलमानों म ब्राह्मण का स्थान इमाम ल लेता ह। इसक अलावा उन्हें मस्जिद में पानी

धगरह देने के लिए एक मौअजिन और मय्यत होने पर मुर्दे को नहलाने के लिए एक शख्स की भी जरूरत पड़ती है। ब्राह्मण और इमाम को छोड़कर यह अधिकांश, मवब कमीन कहलाते है। इन्हें लागदार भी कहा जाता है, क्योंकि इनका एक परिवार किसान से लगाव होता है। इनकी कुल संख्या निश्चित नहीं है। हमने ऊपर प्रमुख लागदार वर्गों का उल्लेख किया है। इन लागदारों का निश्चित किसान परिवारों के साथ एक पुश्तैनी आर्थिक-सामाजिक सम्बन्ध होता है। यह लागदार जिन परिवारों को अपनी सेवायें प्रदान करते हैं, वह उनके यजमान या जजमान कहलाते हैं। जन्म, विवाह, मृत्यु, त्योहार इत्यादि विशेष अवसरों पर तथा रोजमर्रा यह लागदार अपने जजमानों को अपनी सेवायें प्रदान करते हैं। इन सेवाओं का पुरस्कार श्रम या पूजा के मूल्य या प्रतियोगिता से निर्धारित न होकर रिवाज, या यह कहें तो शायद गलत न होगा, कि आवश्यकताओं द्वारा निर्धारित होता है। एक किसान परिवार फसल उठने के बाद अपनी उपज का एक निश्चित मात्रा अपने लागदार को दे देता है। इसके अलावा खुशी, त्योहार या किन्हीं कमीनों को वह गमी के मौके पर कुछ निश्चित अनाज मपथ या कुछ नकद रकम भी देता है।

गैर-खाश्तकार काम करने वाले को अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए एक दूसरे से इस प्रकार के सम्बन्ध रखने पड़ते है। प्राय उनका आधार अपनी सेवाओं का एक दूसरे को मुफ्त आदान प्रदान होता है। जहां ऐसा नहीं होता, वहा वह भी एक दूसरे को अनाज की एक निश्चित मात्रा देते हैं।

ऊपर हमने लागदार परिवारों के जजमान परिवारों से पुश्तैनी सम्बन्धों तथा उनके निश्चित पुरस्कारों का उल्लेख किया है। लेकिन यह सम्बन्ध सर्वथा कठोर नहीं हैं। एक लागदार अपने जजमान से निश्चित पुरस्कार न पाने या असन्तुष्ट होने की दशा में उसका काम छोड़ सकता है। लेकिन पुरान खानदानी सम्बन्धों का ध्यान में रखते हुए या कहीं-कहीं जमींदार के भय से भी वह प्राय ऐसा नहीं करता। इसी तरह एक जजमान अपने लागदार से असन्तुष्ट होने पर उसे छोड़ सकता है, पर उसके लिए ऐसा करना प्राय आसान नहीं होता। एक ही तरह का काम करने वालों में एक प्रकार का यह मूक समझौता होता है कि वह एक दूसरे के जजमानों को जो कि एक प्रकार के स्थायी ग्राहक कहे जा सकते हैं स्वीकार न करें। इसके लिए पहले काम करने वाले की मंजूरी जरूरी होती है।

इसके अलावा निर्धारित सेवाओं के लिए दी जाने वाली अनाज की मात्रा में भी परिवर्तन होते रहते हैं। इसके निर्धारण की प्रक्रिया अनेक अंशों में सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining) से मिलती-जुलती है। किसान और उनके लागदार मिलकर लाग या लागदारों का पुरस्कार निश्चित करते हैं। लेकिन

यह पुरस्कार प्राय एक पर्याप्त लम्बे समय के लिए निश्चित हो जाते ह। १० १५ साला तक अक्सर इनमें कोई परिवतन नही आते। दोनो पक्ष एक दूसरे से कम काम या कम पुरस्कार की शिकायत करते हुए भी इन्हें निभाने की कोशिश करते ह।

हमारे यहा गावो में अभी भी जाति बहुत अशा में किसी के पेशे और पद को निर्धारित करती है। इस प्रकार जजमान और लागदार प्रथा एक प्रकार से विभिन्न जातियो को एक दूसरे से आर्थिक सामाजिक और धार्मिक रूप से सयुक्त करता ह। जहा एक ओर खान पान, रोटी बेटी के सम्बन्धा की दूरी एक जाति को दूसरी जाति म पृथक कर विभिन्न जातियों में एक क्ष तिज (Horizental) एकता उत्पन्न करती ह, वहा दूसरी ओर जजमानो और लागदारा के सम्बन्ध उनमें एक ऊर्ध्वाधर (Vertical) एकता को जन्म देते हैं। यह एकता उनमें परस्पर भाई चारे निष्ठा और सक्रिय सहयोग की भावना को दृढ़ करती है।

दो तीन हजार की बड़ी आबादी के गाव में तो जजमान और लागदार प्राय एक ही गाँव क रहने वाले होते है। वहा एक लागदार के जजमाना की इतनी सख्या होती ह जो कि उसे पर्याप्त व्यस्त रख सकती या सारे समय के लिए काम जुटा सकती हैं। छोटे गावो में ऐसा नही हो पाता। अत वहा क लागदारा या काम करने वाला के जजमान अनेक आस-पास के छोटे-छोटे गावा में फले होते हैं। इस प्रकार ४०० ५०० व्यक्तियो की आबादी के चार पाच गांव मिलकर एक आर्थिक इकाई का निर्माण करते ह। इनमें कई बार ऐसा भी होता है कि एक छोटे गाव के कुछ लागदारा का काम तो गाव से ही चल जा सकता है, जब कि दूसरो को कई गावा म काम करना पडता ह।

पश्चिमी उत्तर प्रदेश में ७५० की जनसख्या वाले एक छोटे गाव में, जहा कि लेखक न १९५५ में इस सम्बन्ध में गवेषणा की थी विद्यमान अवस्था का उदाहरण लेकर हम इसको अच्छी तरह समझ सकते ह। यह गांव एक बडे कस्बे से लगभग दस मील दूर हैं। डेढ़ मील क फासले पर चीनी का एक बडा कारखाना है। इस कारखान के लिए गन्ना पदा करना यहा के किसानों का मुख्य उद्यम ह। गाव की लगभग आधी जनसख्या मुसलमान है।

ब्राह्मण गाव म सिर्फ एक ब्राह्मण परिवार ह जो कि चमार और भगिया को छोड़कर यहां क सारे हिन्दू परिवारो का लागदार हैं। मुसलमान भी अपने यहा हिन्दू महमान आने पर उसे बुला लेते हैं। लेकिन केवल हिन्दू किसान परिवार ही उस एक बधा हुआ फसली भुगतान करते ह, जब कि दस्तकार इत्यादि वग कवल विशेष अवसरा पर ही उसे कुछ देते हैं। इस ब्राह्मण को आजकल एक हल चलाने वाला किसान हर छमाही १० सेर अनाज देता ह। खरीफ में फसल कटने समय

उसे किसानो के खेत से पूली के रूप में भी कुछ अनाज मिल जाता है। इसकी मात्रा अनिश्चित है। चीनी का कारखाना खुलने से पहले कोल्हू उद्घाटन के लिए उसे बुलाया जाता था और करीब २ सेर गुड भी दिया जाता था।

इमाम मुसलमानो का एक इमाम है जो कि मस्जिद में नमाज पढ़वाता, बच्चों को कुरान सिखाता और मजहबी कामो को अंजाम देता है। काश्तकार परिवार उस को हल पर छमाही में १० सेर अनाज देते है। इसके अलावा ईद के मौके पर वह १ २ रु० नकद इनाम भी देते हैं। गर काश्तकार उसे अनाज के रूप में कोई बंधा हुआ भुगतान—फसलाना नहीं देते।

मोअज्जिन मोअज्जिन को मुसलमान काश्तकार खरीफ की फसल में एक हल पर ६½ सेर अनाज और २½ अनाज की पूली तथा रबी में ३½ सेर अनाज और २½ उडद की दाल की पूली का गैंरा देते है। इसके अलावा उसे हर शुक्रवार को और रमजान के महीने में हर परिवार से रोज एक रोटी मिलती है। दो दुकानदार उसे हर छमाही ५ सेर अनाज देते है। गरकाश्तकारो से वह कुछ नही लेता।

शख मौत हो जाने पर मुर्दे को नहलाने के लिए हर मुसलमान को शख की जरूरत पडती है। काश्तकार लोग १०० मन पर १० सेर के हिसाब से उसे हर छमाही अनाज देते हैं। गरकाश्तकार परिवार हर छमाही ५ सेर अनाज देते हैं। मय्यत पर उसे कपडों और अनाज का अलग मेहनताना मिलता है।

बढ़ई लुहार गाव में दो हिंदू और एक मुसल्मान बढ़ई परिवार है। मुसलमान बढ़ई लुहार का भी काम करता है। दो हिंदू लुहार हैं जो कि किसानो का काम करते हैं। मुसलमान बढई एक साल से आया है। उससे पहले हिंदू बढई और लुहार ही आधे आधे हिंदुओ और मुसल्मान किसानो का काम करते थे। उनके पास काम ज्यादा था और वह लापरवाही भी बरतते थे अत मुसल्मान दूसरे गाँव से एक लुहार को ले आये जो बढ़ई का भी काम करता है। अब सारे मुसल्मान किसान उसी से काम कराते हैं। बढई और लुहार को फी हल पर १५ सेर छमाही अनाज और जाड़ो में ५ सेर गुड, खरीफ की फसल में एक गठरी भूसा और रबी में एक गठरी चरी मिलती है। अधिकांश गरकाश्तकारो से वह बिना कुछ लिये दिये प्राय सेवाओं के पारस्परिक आदान के आधार पर उनका काम करते है। इनमें से ब्राह्मण इमाम, जोगी धीवर, सक्का, भगी नाई तो उनसे निश्चित अनाज लेते हैं पर बढ़ई-लुहार उनसे कुछ नही पाते।

कुम्हार दो कुम्हार परिवार गाव के आधे-आधे घरो की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं। इसके अलावा वह पास के दो गावो में भी बरतन देते हैं क्योंकि उन गावो में कोई कुम्हार परिवार नहीं है। कुम्हार को किसानो से अपनी सेवा के

लिए हर छमाही १०० मन की उपज पर १ मन के हिसाब से अनाज मिलता है। उसका यह भुगतान 'सरोनिया' कहलाता है। इसके अलावा उसे जाडे में फी हल पर २½ सेर गुड और एक-एक गठरी भूसे और चरी की मिलती है। खरीफ की फसल कटते समय उसे पूली की शक्ल में गरा मिलता है जिसमें से लगभग ५ सेर अनाज निकलता है। ब्राह्मण इमाम और जोगी को वह मुफ्त बरतन देता है। बढई, लुहार, नाई, तेली और भंगी के साथ उसका पारस्परिक सेवाओं का आदान प्रदान चलता है। चमार उसे कार्तिकी और चती मावस पर जब कि वह बरतन लेते हैं, ५ ५ सेर अनाज देते हैं। झीवर जो यहा पर सब्जिया उगाने का काम करता है उसे मुफ्त में सब्जी दे देता है। सक्के की स्त्रिया खाट के बान बटने का काम करती है। वह उसे बदल में बान दे देती हैं।

नाई इस गाव में दो मुसलमान नाई हैं जो सगे भाई है। यह ऊ ची जाति के जमींदार हिन्दुओं तथा सभी मुसल्मानों का काम करते हैं। यह अलग-अलग रहते हैं। इन्होंने अपने जजमानों को आपस में बाट लिया है। किसान लोग उसे हर छमाही ७½ सेर फी हल के हिसाब से अनाज देते है। इसके अलावा उसे खरीफ की फसल कटते समय पूली के रूप में मुट्ठी मिलती है जिसमें से १-१½ सेर अनाज निकलता है। इसके अलावा उसे कोई-कोई किसान २½ सेर गुड भी देते हैं। हर एक किसान उसे एक-एक गठरी भूसे और चरी भी देता है खलिहान उठते समय भी उसे १-२ सेर अनाज दे दिया जाता है। इस भुगतान को पैर कहते है। खेत बोने के समय जब वह बलो की पू छ के बाल काटने जाता है उसे दो बलों पर करीब १० छटाक अनाज मिल जाता है। दो-तीन किसान परिवारों ने ५ या १० सेर अनाज बाध दिया है। वह हल के हिसाब से नही देते। उन गैर काश्तकारों से बदले में जो इसे सेवाए देते हैं उनका परस्पर आदान प्रदान का व्यवहार है। किन्तु जो बदल में उन्हें कोई सेवा नही देते उनसे फी सिर के हिसाब १० से ५ सेर छमाही का अनाज बधा हुआ है। यह नाई, चमार और भगियों का काम नही करते।

चमार और भगियों का एक अलग नाई है जो कि दूसरे गाव से आकर हर हफ्ते बाल काटता है। इसे यह लोग छमाही में तीन सेर अनाज देते हैं। कुछ लोग कस्बे में जाकर भी बाल कटा आते है।

इस गाव में धोबी नहीं है। पास के दो गांवों के दो धोबी यहा के परिवारों का काम करते है। अधिकांश परिवार धोबी से अपने कपडे नहीं धुलाते। किसान परिवार प्राय छमाही में ७½ सेर से १५ सेर तक अनाज देते है।

झींवर और सक्का गांवो में हाथ के नल आजाने से झींवर और सक्के के काम को बहुत धक्का पहुचा है। हिन्दुओं ने तो झींवर का बिल्कुल छोड दिया है। सक्के से अवश्य कुछ मुसल्मान पानी भरवाते है। दो भाई सक्के का काम करते है।

उन्होंने घरों को आपस में बांट लिया है। दो वक्त एक-एक मटका जिसमें दो घड़े पानी आता है, भरने पर उन्हें हर छमाही ७½ सेर अनाज और हर दूसरे दिन एक रोटी मिलती है। गैर काश्तकारों, जिनमें कि आपसी सेवा का विनिमय नहीं है का काम भी इसी दर पर होता है।

भंगी गांव में भंगियों के पांच परिवार हैं। इन्हें अनेक पुश्तों से सेवा के लिए अलग अलग परिवार मिले हुए हैं। यह लोग किसानों के यहां मवेशियों के पशुओं का गोबर उठाकर गांव के बाहर उनके खाद के गड्ढा (कुरड़ियों) में डालने का तथा अन्य लोगों के यहां से कूड़ा उठाने का काम करते हैं। चमार अपना काम स्वयं करते हैं। किसानों से इन्हें १०० मन उपज पर १ मन अनाज मिलता है। उनका यह भुगतान 'सरोनिया' कहलाता है। इसके अलावा उन्हें अपने हर परिवार से रोज १ रोटी भी मिलती है। जिन परिवारों में टट्टियां हैं, उनसे हर छमाही और १० सेर *अनाज मिलता है। गैर काश्तकारों में यह केवल कुम्हार की ही सेवा कर रहे हैं। यह* इन्हें बर्तन मुफ्त देता है, यह उसका काम मुफ्त करते हैं। एक नौकरी-पेशा परिवार से उन्होंने १ रु० महीना तय किया हुआ है।

यह संक्षिप्त विवरण सामान्य भारतीय गांवों के आर्थिक जीवन और उनकी विनिमय व्यवस्था, उनके विभिन्न वर्गों की आर्थिक निर्भरता का परिचय देने के लिए पर्याप्त है।

परिवर्तन और भविष्य गांवों में मुद्रा के प्रसार, व्यापारिक दृष्टि से खेती के विस्तार ने सेवाओं को रुपये में मापने की प्रवृत्ति पैदा की है। इस प्रवृत्ति से जजमानी और लागदार प्रथा को काफी धक्का लगा है। इसके अलावा नये यांत्रिक *साधनों या वस्तुओं ने अनेक लागदार वर्गों की सेवाओं को अनावश्यक बना दिया है।* हाथ के नलों ने सक्के और भीवर को समाप्त कर दिया है। बाजार के तेल ने तेली के रोजगार को ठप्प कर दिया है। व्यक्तिवादी विचारधाराओं और क्रमशः घटती भाईचारे की भावनाओं ने जजमानों और लागदारों के आपसी सौहार्द और सहानुभूति पर कुठाराघात किया है। उनमें आपसी तनाव बढ़ गये हैं और पुराने स्नेहसम्बन्ध शिथिल हो गये हैं।

बावजूद इन सब परिवर्तनों के, जजमानी और लागदार प्रथा गांवों में अभी भी पर्याप्त प्रबल है। उसके शीघ्र समाप्त होने के कोई चिन्ह नजर नहीं आते। किसानों को फसल पर अनाज में भुगतान नहीं अखरता। लागदारों को भी एक साथ खाद्य सामग्री एक बड़ी मात्रा में मिल जाती है और वह एक प्रकार की सुरक्षा अनुभव करते हैं। दोनों ओर असन्तोष होते हुए भी वह उसे छोड़ने में सुविधा अनुभव नहीं करते।

उत्पादन का उद्देश्य

एक ग्राम समुदाय में उत्पादन का उद्देश्य बहुत महत्व रखता है। एक समाजशास्त्री के लिए यह जानना आवश्यक है कि गाव का उत्पादन स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए होता है या दूर बाजारों में मुनाफा कमाने के लिए। इसी से हम गाव की आत्म निर्भरता या पृथक्करण का अदाज कर सकते हैं।

उदाहरण के लिए अग्रेजो के आने से पहले भारत के गावो की जनता मुख्यत स्थानीय आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वस्तुओ का उत्पादन करती थी। लेकिन अग्रेजी राज्य ने इस आवश्यकता पूर्ति या गुजारे की अर्थ व्यवस्था (Subsistence Economy) को बाजार की अर्थ-व्यवस्था (Market Economy) में रूपान्तरित कर दिया। इसके अनेक कारण थे। अग्रेजी सरकार ने जमीदारी और रयतवाडी प्रथा का सूत्रपात कर जमीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व को स्थापित किया। जमीन का लगान अब नकद की शक्ल में लिया जाने लगा। यह लगान किसान की आमदनी का एक बडा हिस्सा होता था। अनेक बार उसकी अदायगी के लिए उसे कर्ज लेना पड़ता था। इस तरह उसकी ऋणग्रस्तता बढ़ी। उधर शहरी उद्योगो के लिए बडी मात्रा में कच्चे माल की माग हुई। नकद रुपये के लिए अपने माल को बेचने की आवश्यकता ने भारत के गावो को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बाजारो से सयुक्त कर दिया।

साम्यवाद और समाजवाद के आन्दोलनो ने उत्पादन की एक और नयी कल्पना को जन्म दिया है। इसके अनुसार उत्पादक समुदाय की आवश्यकताओ को ध्यान में रखते हुए एक पूर्व नियोजित योजना के अनुसार उत्पादन करते है। उत्पादन का निर्णय स्वय अलग अलग व्यक्ति न कर उनकी एक प्रतिनिधि सस्था करती है। इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य गांवों के उत्पादन में व्यक्तिगत प्रतियोगिता का अत करना है। इसके अन्तर्गत वस्तुओ की कीमतें और माग पहले से ही निश्चित होने के कारण उत्पादन का जोखिम और आय की अनिश्चितता बहुत अश में समाप्त हो जाती है।

उत्पादन की प्रणाली

कृषि उत्पादन में प्रयोग आने वाले साधनो का भी किसी ग्राम समुदाय के जीवन-स्तर और सामाजिक सम्बन्धो को प्रभावित करने में बडा हाथ होता है। कृषि का इतिहास हमें यह बताता है कि विभिन्न कालो में कृषि के विभिन्न साधन प्रयोग में लाये गये है। क्रमानिक उन्नति के साथ इनमें निरतर सुधार और प्रगति होती रही है। कृषि के यन्त्रों के विकास को हम मुख्यत तीन अवस्थाओ में बांट सकते है। यह तीन अवस्थाए हैं (१) कुदाल से खेत (Hoe Culture), (२) हल

से खेती (३) ट्रैक्टर, रासायनिक खादों (Fertilisers) इत्यादि उन्नत साधनों से खेती।

खेती की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य लकड़ी या किसी धातु की नोकीली कुदाल से खेती के लिए जमीन तयार करता था। हल के आविष्कार और पशुओं के पालन की क्षमता ने एक किसान की काय क्षमता में असाधारण वृद्धि की। ट्रैक्टर जैसे शक्ति द्वारा चलाये जाने वाले यन्त्रों तथा रासायनिक खादों के प्रयोग ने किसान की काय-क्षमता और जमीन की उत्पादन-क्षमता को और भी अधिक बढ़ा दिया और इस प्रकार पर्याप्त मात्रा में अपनी आवश्यकताओं से अधिक अन्न या अन्य कच्चे माल का उत्पादन सम्भव हुआ। ट्रैक्टर के आगमन ने कृषि में खींचने वाले पशुओं की आवश्यकता को भी समाप्त कर दिया।

उत्पादन की प्रणाली केवल उत्पादन की मात्रा को ही प्रभावित नहीं करती, वह समाज के सदस्यों में श्रम विभाजन को भी निर्धारित करती है। यह उत्पादन क्रिया से सम्बन्धित कार्यों (Functions) और पेशों को भी निश्चित करती है। कृषि की उत्पादन प्रणाली के परिवतन के साथ ग्राम समुदाय के पेशों और पेशेगत सम्बन्धों का रूप भी परिवर्तित हो जाता है। यही नहीं उत्पादन के नये साधन ग्राम अर्थ व्यवस्था के विस्तार को भी सीधा प्रभावित करते हैं। जब तक उत्पादन के यन्त्र सरल थे, स्थानीय श्रमिक ही उन्हें तयार कर सकते थे। अब कीमती और उन्नत यन्त्रों को बड़े शहरों से मगाना आवश्यक हो गया।

भूमि सम्बन्ध (Land Relations)

एक ही उत्पादन प्रणाली में सम्पत्ति सम्बन्धों के भिन्न रूप गांव के आर्थिक जीवन का अध्ययन करते समय उसकी उत्पादन प्रणाली के अतगत जमीन और उसकी मिल्कियत के सम्बन्धों को समझना निहायत जरूरी है। जब कि उत्पादन की प्रणाली श्रम विभाजन और उसके द्वारा काम करने वाले वर्गों की संख्या और उनके अनुपात को निश्चित करती है, वह सदा एक-से सम्पत्ति-सम्बन्धों को जन्म नहीं देती। उदाहरण के लिए हलों की खेती को हम दास प्रथा, सामन्तवादी व्यवस्था और रैयतवादी अनेक भिन्न व्यवस्थाओं के बीच देख सकते हैं। इसी प्रकार ट्रैक्टर की खेती व्यक्तिगत पूंजीवादी प्रतियोगी बाजार व्यवस्था और सामूहिक या सहकारी कृषि व्यवस्था के अतगत देखी जा सकती है। रूस व अमरीका में ट्रैक्टरों और रासायनिक खादों द्वारा खेती बिल्कुल विपरीत सम्पत्ति सम्बन्धों के अतगत की जा रही है।

जमीन के काश्तकार में विभिन्न सम्बन्ध विभिन्न रूप से गाँव के सामाजिक सगठन और जीवन धारा को प्रभावित करते हैं। इन सम्पत्ति सम्बन्धों के प्रभाव को हम निम्न छः प्रमुख क्षेत्रों में देख सकते हैं

(१) विभिन्न सामाजिक आर्थिक वर्गों की आय जमीन के सम्बन्धो का रूप कुल कृषि से प्राप्त सम्पत्ति में उसके उत्पादन से सम्बन्धित वर्गों के हिस्से को निश्चित करता है। उदाहरण के लिए, जमीदारी व्यवस्था के अंतर्गत जमीदार को बिना कुछ किए हुए भी एक काश्तकार की तुलना में कहीं अधिक आमदनी हो जाती है। आमदनी की यह अत्यन्त असमानता जमीन के जमीदारी प्रकार के भूमि-सम्बन्धों का परिणाम होती है। एक विशिष्ट प्रकार के भूमि-सम्बन्ध एक विशेष प्रकार के कृषि विकास की बुनियाद रखते हैं। जमींदारी भूमि सम्बन्ध आर्थिक असमानता को उग्र करते है। इस प्रकार जब कि उत्पादन की प्रणाली कुल सम्पत्ति की मात्रा निश्चित करती है, भूमि सम्बन्ध विभिन्न उत्पादक वर्गों में आय के वितरण को निश्चित करते है।

(२) एकतत्वीयता या बहुतत्वीयता (Homogeneity or Heterogeneity) का निर्धारण भूमि सम्बन्ध ही किसी ग्राम समुदाय में वहा की जनसंख्या के विभिन्न वर्गों के एकतत्वीयता एकता या बहुतत्वीयता—पार्थक्य को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, एक जमीदारी क्षेत्र में ग्राम समुदाय मुख्यत जमीदारों, काश्तकारों, शिकमी काश्तकारो और शिकमी-दर-शिकमी काश्तकारों में विभक्त होता है। एक रयतवाडी क्षेत्र में मुख्यत स्वयं काश्त करनेवाले किसान और भूमिहीन मजदूरो का निवास होता है। बड़े पैमाने की पूंजीवादी कृषि में काश्तकार पूंजीपति मैनेजर, टैक्नीशियन और मजदूर वर्ग ग्राम समुदाय का निर्माण करते है।

(३) राजनैतिक और सांस्कृतिक जीवन पर प्रभुत्व भूमि सम्बन्ध केवल विभिन्न वर्गों के प्रकार और आय को ही निश्चित नहीं करते, बल्कि वह उनकी आय द्वारा गांव के राजनैतिक और सामाजिक जीवन पर उनके पारस्परिक प्रभुत्व या प्रभाव को भी निर्धारित करते हैं। जमींदारी प्रथा के अंतर्गत जमीदारो की संख्या थोड़ी होने पर भी गांव पर उनका राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रभाव प्रबल होता है।

(४) सामाजिक शांति और स्थिरता भूमि-सम्बन्ध ही बहुत अंशों में ग्राम समुदाय की शांति और स्थिरता को प्रभावित करते हैं। एक समुदाय में भूमिहीन, अत्यन्त छोटे और असाधारण बड़े जमीदारों की उपस्थिति विभिन्न वर्गों में द्वेष और घृणा की सृष्टि करती है। यह द्वेष और घृणा अनेक बार क्रान्तिकारी भूमि आन्दोलनो को जन्म देते है। फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति में वहां के कृषि-दासो का अपने सामन्तों के विरुद्ध विद्रोह, रूसी क्रान्ति में वहा के कृषि दासों का कुलकों के विरुद्ध उठ खड़ा होना, इसके प्रमुख उदाहरण हैं। स्वयं भारत में ही जनता को अन्यायपूर्ण लगनेवाले भूमि सम्बन्धों ने ग्राम समुदाय की एकता को भंग कर वहां

विभिन्न वर्गों में पर्याप्त सघष और कटुता की सृष्टि की है।

शिक्षा के अवसर आज के समाज में प्राय सम्पत्ति शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य साधन है। भूमि-सम्बन्ध ग्राम समुदाय के विभिन्न वर्गों की आय का निर्धारित कर एक तरह उन वर्गों में शिक्षा और आगे बढ़ने के अवसरों को भी निर्धारित कर देते हैं। इस प्रकार भूमि-सम्बन्ध बहुत अशों में अपने सदस्यों के बौद्धिक और दार्शनिक विकास को भी निश्चित करते हैं। हम स्वय इस तथ्य को अच्छी तरह अनुभव करते हैं कि भारत के गावों में शिक्षा केवल कुछ उच्चतम समृद्ध वर्गों का ही एकाधिकार है। वही उसे प्राप्त करने के साधन जुटा सकते हैं।

रहन-सहन का स्तर

एक ग्राम समुदाय के रहन-सहन का दर्जा उसके विभिन्न वर्गों की आय से निर्धारित होता है। ग्राम समुदाय का मुख्य आधार कृषि है। अत कृषि की अवस्था ग्राम समुदाय को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। सम्पत्ति की कुल मात्रा पर उत्पादन प्रणाली का प्रभाव पड़ता है और स्वय विभिन्न वर्गों की आय भूमि-सम्बन्धों से निर्धारित होती है। किन्तु एक ऐसे ग्राम समुदाय में जहां के विभिन्न वर्गों की आय में भीषण असमानताए विद्यमान हो, निम्नतम वर्ग की आय एक पर्याप्त समान आय वाले ग्राम समुदाय से अधिक हो सकती है। इसका कारण यहा पर सम्पत्ति की अधिकता है, जो कि उत्पादन प्रणाली और जनसंख्या के अनुपात का परिणाम है।

निम्न रहन-सहन का स्तर और कम असमानता सोरोकिन, जिमरमन स्मिथ इत्यादि समाजशास्त्री ग्रामो की जनता के रहन सहन के दर्जे की समस्या पर गम्भीर विचार कर इस परिणाम पर पहुचे है कि नगर की जनसख्या की तुलना मे ग्राम की जनसख्या का रहन सहन का स्तर प्राय सदा ही नीचा रहता है। इसका मुख्य कारण ग्राम की व्यक्तिगत कम औसत आय है। इसके अलावा इस सम्बन्ध में एक और तथ्य दृष्टव्य है कि गांवो की जनसख्या के विभिन्न वर्गों जमीदारो, काश्तकारो मजदूरों दस्तकारों बटाई पर खेती करने वालों के रहन सहन में नगरों के विभिन्न वर्गों की तुलना में कम असमानता और अधिक एक-तरवीयता पाई जाती है।

गैर आर्थिक कारण यद्यपि आय विभिन्न वर्गों की उपस्थिति तथा उनके रहन सहन के दर्जे को निश्चित करने के लिए मुख्यत उत्तरदायी है किन्तु अनेक सामाजिक कारण भी उसे प्रभावित करते हैं। भारत में जाति प्रथा का इसमें महत्वपूर्ण हाथ है। इसके अतिरिक्त सभ्यता का स्तर भी बहुत अशो में गावों के रहन-सहन के स्तर को प्रभावित करता है। हम जानते हैं कि—हमारे गांवों में पुस्तकालय रेडियो, सिनेमा डाकघर इत्यादि सुविधाए अभी तक नही पहुच सकी है।

अत रहन-सहन का स्तर इनसे प्रभावित नही होता। पर फिर भी शहरो क सम्पर्क में आने से गावा के रहन-सहन के स्तर पर निश्चित प्रभाव पडता है। ग्रामवासिया की रुचियो और प्रयोग की वस्तुओ में शहरी तत्वो का समावेश होने लगता ह।

ग्रामजीवन के अध्ययन में नगरी समुदाय का गावों में रहन-सहन के स्तर पर प्रभाव और सघात का अध्ययन एक समाजशास्त्री के लिए महत्वपूण है। गावो का रहन-सहन का स्तर कोई अपरिवर्तनशील चीज नही ह। उसमें निरन्तर परिवतन आते रहते हैं।

ग्राम-परिवार

गांवों में परिवार का महत्व ग्राम सस्थाओ में परिवार सवसे अधिक महत्व-पूण ह। वह उमका मुख्य आधार है। यह ग्रामवासिया के आर्थिक और सास्कृतिक जीवन और व्यक्तिगत आकाक्षाओ और रुचियो चरित्र और शिक्षा का प्रमुख स्रोत है। कुछ विचारका के अनुसार हमें गाव क सारे सगठन पर परिवार की छाप दिखाई देती ह। परिवार उसमें सव व्याप्त ह।

ग्राम समुदाय के सगठन कार्यो विकास और अन्य सस्थाओं से उसक अन्त सम्बन्धो के सिलसिलेवार अध्ययन के लिए गावो में परिवार सस्था का अध्ययन अनिवाय ह।

कृषक ग्राम परिवार के मुख्य लक्षण

पितृसत्ताक सयुक्त परिवार (Patriarchal Joint Family) अधिकाश विकसित ग्राम समाज में जो कि हलो की खेती पर आश्रित ह पितृसत्ताक सयुक्त परिवार परिवार का प्रमुख और प्रचलित रूप ह। प्रमुख ग्राम-समाजशास्त्रियो ने इस प्रकार के परिवारो की निम्न प्रधान विशेषताए गिनाई ह

(१) अधिक एक-तत्वीयता (Homogeneity) एक शहरी परिवार की तुलना में ग्राम परिवार अधिक एकतत्वीय स्थिर और एकीकृत होता है। यहा पर पति पत्नी माता पिता और वच्चो के सम्बन्ध और बन्धन अधिक दृढ़ होत ह। भारतीय गावो म पारिवारिक जीवन की ओर दृष्टिपात करने से इस तथ्य का भली भाति समझा जा सकता ह। यद्यपि नये प्रभाव गाव में सयुक्त परिवार प्रथा को क्रमश विघटित कर रहे ह पर फिर भी परिवार के सदस्या पर इसका प्रबल प्रभाव है। गांव के सयुक्त परिवार में कवल एक केन्द्रीय परिवार के सदस्य ही साथ नही रहते बल्कि अनेक वार दूर क सम्बन्धी भी उसके सदस्य होत ह।

(२) घर का समुदाय ग्राम परिवार के प्राय सभी सदस्य कृषि या दस्तकारी के काय में एक साथ अपना-अपना सक्रिय सहयोग देते ह स्त्री पुरुषो में उम्र के आधार पर श्रम का विभाजन पाया जाता है। एक साथ रहने, खाने और काम करने के कारण परिवार के सदस्यो में एकता की भावना दृढ़ होती ह और उनमें

एक-सी अभिरुचियों और विचारों का विकास होता है।

(३) अधिक अनुशासन और अन्त निर्भरता नगर के परिवार की तुलना में ग्राम परिवार में अधिक अनुशासन पाया जाता है। चूंकि वहां पर प्रायः सार्वजनिक शिक्षा और मनोरंजन की व्यवस्था नहीं होती, ग्राम परिवार इन आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करने का प्रयत्न करता है। यही उनके स्कूल, क्लब और चिकित्सालय के कार्य सम्पन्न करता है।

(४) पारिवारिक अहं (Ego) का विकास ग्राम परिवार के सदस्यों की अत्यधिक अन्त निर्भरता उसके सदस्यों को एक दूसरे के ऊपर अधिक निर्भर बनाती है। वह परिवारों के सदस्यों को एक घनिष्ट सूत्र में बांधती है और उनमें एकता और सहयोग की भावना को दृढ़ करती है। इस प्रकार परिवार में सामूहिक चेतना की सृष्टि होती है और व्यक्तिवादी धारणाओं को स्थान नहीं मिलता। गांव में अगर परिवार का कोई सदस्य कोई बुरा काम करता है तो उससे सारे परिवार की बदनामी होती है। अगर उनमें से कोई अच्छा काम करता है तो उससे सारे परिवार का नाम ऊंचा होता है। इसलिए गांव वाले अपने खानदान की इज्जत रखने के लिए सब कुछ करने को तैयार होते हैं।

(५) पिता की प्रमुखता चूंकि ग्राम परिवार अधिक एकीकृत और अनुशासित होता है, अतः घर के बड़े का उसके सदस्यों पर प्रबल शासन होता है। वह घर के विभिन्न सदस्यों के बीच काम बांटता है। लड़के, लड़कियों, भतीजे, भतीजियों का विवाह तय करता है। धार्मिक कार्यों का संचालन करता है छोटों को खेती या दस्तकारी के काम की शिक्षा देता है और महत्वपूर्ण निर्णय करता है। उसे परिवार में असाधारण और सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होती है। एक लेखक के शब्दों में गांवों में "एक परिवार के मुखिया को शासक, पुरोहित, शिक्षक और व्यवस्थापक के अधिकार प्राप्त होते हैं।"

(६) विभिन्न कार्यों में अधिक घनिष्ठ सहयोग ग्राम परिवार के सदस्य घर के कार्य में घनिष्ठ या संयुक्त होने के कारण अपना अधिकांश समय एक दूसरे के निकट बिताते हैं। इसके विपरीत, नगरी परिवार विभिन्न कामों में लगे होने के कारण अधिकांश समय एक दूसरे से दूर ही बिताते हैं। यहां तक कि उनके मनोरंजन के केन्द्र भी घर से बाहर होते हैं। अतः उनके लिए घर केवल एक सोने का स्थान-मात्र रह जाता है।

(७) शीघ्र विवाह और उनकी अधिक दर प्रायः ग्राम समुदाय के सदस्य नगरों की तुलना में कम उम्र में विवाह कर लेते हैं और वहां विवाहों की संख्या भी अधिक होती है। नगरों में अधिक उम्र तक अविवाहित रहने की प्रवृत्ति है।

(८) परिवार सामाजिक दायित्व की इकाई चूंकि परिवार ही ग्राम-समुदाय

की प्रमुख इकाई है, अत वही सब प्रमुख आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक कृत्यो को सम्पन्न करती है। वहा एक व्यक्ति का मूल्य उसके परिवार से आंका जाता है।

(९) **परिवार सामाजिक व्यवहार का मापदंड** गावो के सारे नैतिक नियम, धार्मिक शिक्षाए और सामाजिक विधान उन सब बातो की निन्दा करते हैं जो कि परिवार की एकता को हानि पहुंचाते ह। वह पत्नी और बच्चों को पूर्ण आज्ञा पालन की शिक्षा देते ह।

(१०) **राजनतिक सगठन पर परिवार की छाप** प्राय गावो का राजनतिक सगठन भी उन सिद्धान्ता पर आधारित हैं जो कि एक ग्राम परिवार का निर्माण करते ह। उनकी राजनैतिक विचारधारा राजा और प्रजा के सम्बन्धो को पिता और पुत्र क सम्बन्ध का रूप देती ह। गाव का मुखिया एक पिता के समान ह जिसे एक घर के सदस्यो की भाति सब मूक सहमति से स्वीकार करत हैं और उसकी आज्ञा का पालन अपना परम कर्त्तव्य समझते ह। गाव के मुखिया के समस्त अधिकार उसे एक बडे परिवार के मुखिया का दर्जा प्रदान करते ह। गाव के मुखिया का कर्तव्य है कि गाव के विभिन्न सदस्या की अपनी सतान की भाति रक्षा कर।

(११) **सहकारी सम्बन्ध** ग्राम समुदाय के सदस्यो के आपसी सम्बन्ध मुख्यत सहकारी (Co operative) होते ह जब कि शहरो में उसका रूप प्रधानत एक ठेका (Contractual) होता ह। प्रमुख समाजशास्त्रियो की राय में इसका कारण ग्राम और नगरी परिवार की भिन्नता है। सोरोकिन और जिमरमैन के शब्दो में एक ग्राम परिवार म परिवार के सदस्य की एकता सहज और जैविक (Organic) होती है। वह साथ रहने, साथ काम करने साथ अनुभव करने साथ विश्वास करने स स्वत फूट पडती हैं। उसके सदस्यो के बीच ठेके का रूप लिए सम्बन्ध बिल्कुल बेमौजू और परिवार की भावना के विरुद्ध होगे इसलिए कोई आश्चर्य नही ठेके की किस्म के सम्बन्ध परिवार प्रधान (Familistic) समाजो में बहुत कम विकसित हुए ह। इसके विपरीत, नगरो के परिवारो की भिन्न रुचिया और व्यक्तिवादी मनोवृत्ति होती है और वहा ग्राम परिवार की तुलना में सहज सहयोग का अभाव होता ह।

(१२) **परिवार उत्पादन (Production), उपभोग (Consumption) और विनिमय (Exchange) की इकाई** ग्राम समुदाय के आर्थिक सगठन पर भी ग्राम परिवार की छाप होती ह। उत्पादन और उपभोग पर परिवार का प्रभुत्व रहता ह। बाजार अविकसित होता ह। नकद क्रय-विक्रय का स्थान मुख्यत वस्तुओ और सेवाओ की अदल बदल लेते हैं। समस्त आर्थिक सम्बन्धो में एक पारिवारिक भावना व्याप्त रहती है। भारत म जजमान लागदार सम्बन्ध इसका एक

अच्छा उदाहरण है। एक जजमान के लागदार आदेश रूप में अपने का एक वृहत् परिवार का सदस्य समझते है। उनके एक दूसरे को पुकारने तक की रीति इसकी पुष्टि करती है। वे चाचा चाची, ताऊ-ताई इत्यादि नामा से सम्बोधित करते है। एक दूसरे के दुख-दर्द खुशी और गमी में वह सदा शरीक होते हैं। इसके विपरीत, नगर की अर्थ व्यवस्था प्रधानत बाजारी अर्थ-व्यवस्था होती है। परिणामत नगर समुदाय के सदस्यो के सम्बन्धो में आर्थिक दृष्टिकोण, प्रतियोगिता और ठगें की प्रधानता रहती है।

(१३) पारिवारिक धर्म और पूर्वज पूजा (Ancestor Worship) की प्रभुता ग्राम समुदाय की विचारधारा और संस्कृति में भी परिवारकी भावना व्यक्त होती है। उन पर परिवारकी परम्परा का प्रभुत्व होता है। धार्मिक कृत्यो और अन्य रस्मों का मुख्य उद्देश्य परिवार की समृद्धि और कल्याण होता है। भारत के अनेक भागा में कुलदेवता की पूजा उसका अच्छा उदाहरण है। इसके अतिरिक्त, ग्राम समाजों में पूर्वज-पूजा का सर्वत्र प्रचलन है। यहा तक कि देवी और देवताओ के आपसी सम्बन्ध भी परिवारयुक्त है। वह आपस में एक दूसरे से माता पिता भाई-बहन इत्यादि रूप में सम्बंधित मान जाते है।

(१४) परम्परा की प्रभुता उक्त सब धारणा के कारण ग्राम-समुदाय नगर समुदाय की तुलना में कम गतिशील होता है और वहा पर परम्परा सामाजिक व्यवहार के समस्त क्षेत्रो पर शासन करती है। इस परम्परा में बहुत धीमे परिवर्तन होते हैं।

भारत में ग्राम परिवार

औद्योगिक क्रान्ति और प्रतियोगी बाजार की अर्थ-व्यवस्था के आगमण और प्रवेश से पहले परिवारवाद (Familism) भारत के ग्राम समुदायो का प्राण था। आधुनिक उद्योगा के विकास ने गावों की आवश्यकता पूर्ति की अर्थ व्यवस्था को (Subsistence Economy) समाप्त कर पूंजीवादी प्रतियोगी अर्थ-व्यवस्था की बुनियाद डाली। इस रूपान्तरण और नगरों के अन्य प्रभावो ने ग्राम परिवार में विघटन की सृष्टि की और वह क्रमश अपने पुरान पारिवारिक गुणा को खोने लगा। पाश्चात्य देशो की तुलना में अभी भी यहा के गावो में नगरों प्रभावो का प्रवेश बहुत कम हुआ है। फिर भी गांवो में रोजगार की कमी और शहरो में आर्थिक उन्नति के नये अवसरों ने संयुक्त परिवार के अनेक सदस्यों को नगरो में आने को प्रेरित किया है। इस प्रवृत्ति ने संयुक्त परिवार विभक्त होने में सहायता पहुचाई है। इसके अलावा नगर से आने वाला व्यक्तिवादी मनोवृत्ति ने इस प्रवृत्ति को और भी बढ़ावा दिया है।

आधुनिक उद्योगो के विकास ने ग्राम परिवार के बहुत-से आर्थिक कृत्यो को

भी समाप्त कर दिया है। पहले गांव की स्त्रियां अपने कपड़ों के लिए सूत कात या बुन लेती थीं। लेकिन मिल के सस्ते कपड़े से इसको बहुत धक्का पहुंचा है। इस प्रकार परिवार के सदस्यों के सम्मिलित श्रम का क्षेत्र बराबर सीमित और संकीर्ण होता जा रहा है।

स्कूलों और हस्पतालों और अन्य सरकारी संस्थाओं के रूप में गांवों में राज्य का हस्तक्षेप बराबर बढ़ता जा रहा है। शिक्षा और चिकित्सा अब परिवार के हाथ में निकलकर बाह्य संस्थाओं के हाथ में चली जा रही हैं। बीमारी की चिकित्सा में घर के बूढ़े-बूढ़ियों के घरेलू नुस्खों का स्थान अब डाक्टर के रूप में एक गैर आदमी लेता जा रहा है। सरकारी न्याय संस्थाओं ने पंचायत के प्रभुत्व को कम या समाप्त कर दिया है। जाति कानूनों का स्थान सरकारी कानूनों ने ले लिया है। संक्षेप में ग्राम परिवार के कृत्यों और प्रभुता में निरन्तर कमी आती जा रही है, उसकी एकता क्षीण हो रही है।

ग्राम्य धर्म

ग्राम्य धर्म ग्राम समुदाय के व्यवहार और सामाजिक सम्बन्धों को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण पार्ट अदा करता है। अतः ग्राम-जीवन के अध्ययन में इसका प्रमुख स्थान है।

धर्म की प्रभुता प्रायः सभी ग्राम-समुदायों का अध्ययन कर समाजशास्त्री इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि नगरों की तुलना में ग्रामों में धर्म की ओर अधिक रुझान होता है। कृषि पर निर्भरता जिसकी सफलता बहुत कुछ प्रकृति की कृपा पर आश्रित है, तथा प्राकृतिक शक्तियों के वास्तविक रूप का अज्ञान और वैज्ञानिक संस्कृति का अभाव गांवों में अधिक धार्मिकता के मुख्य कारण हैं। प्रायः जीववाद (Animism), जादू-टोना, भूत प्रेत, देवी-देवता उनके धर्म का प्रधान अंग है। इसकी तुलना में नगर का धर्म प्रायः अधिक परिष्कृत, चिंतनशील और अन्तर्मुखी है। ग्राम्य धर्म बहिर्मुखी और कर्मकांड प्रधान है।

ग्रामवासियों की धार्मिक वृत्ति मुख्यतः उनके बौद्धिक भावात्मक और व्यावहारिक जीवन को शासित करती है। धर्म उनके समस्त जीवन और कार्यों में व्याप्त है। परिवार, जाति, सामाजिक जीवन, आर्थिक कृत्य, और यहां तक कि मनोरंजन पर भी धर्म का रंग चढ़ा रहता है। धार्मिक कल्पनाएं ही उनकी नैतिक मान्यताओं को निर्धारित करती है। चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, संगीत कला, लोक गीतों इत्यादि का रूप और विषयवस्तु, सामाजिक और आर्थिक त्योहारों, सब ही पर धर्म का प्रभुत्व दिखाई देता है।

प्राग् औद्योगिक अर्थ व्यवस्था में तो धर्म का गांवों के सामाजिक जीवन पर एकछत्र राज्य था। यहां तक कि शरीरशास्त्र, चिकित्सा विज्ञान, ज्योतिष, गणित,

कृषि शास्त्र समाज शास्त्र आचार शास्त्र इत्यादि लौकिक विज्ञानों पर भी उन्हीं का प्रभुत्व था और वह भी धार्मिक रंग में रंगे हुए थे और उन पर पुरोहित वर्ग का एकाधिकार था।

आवश्यकता-पूर्ति की अर्थ-व्यवस्था के अंतर्गत सभी क्षेत्रों में गांव का नेतृत्व भी पुरोहित वर्ग के हाथ में था। सामाजिक रूढ़ियां धार्मिक विश्वासों का परिणाम थीं। धार्मिक नेता और संस्थाएं उनकी संरक्षक थीं।

नई प्रवृत्तियां औद्योगिक क्रान्ति, नगर के प्रभावों लौकिक कार्यों राज्य के बढ़ते हस्तक्षेप, ऐहिक (Secular) शिक्षा के बढ़ते प्रसार और नये राजनैतिक नेतृत्व गांवों में धर्म के प्रभाव को क्रमशः क्षीण करते जा रहे हैं। इस प्रकार ग्राम जीवन पर धार्मिक नेताओं की प्रभुता और शासन धीरे धीरे समाप्त हो रहे हैं। बावजूद इसके धर्म अभी भी ग्रामवासियों के आचरण पर पर्याप्त प्रबल प्रभाव डालता है और नगरों की तुलना में वह यहां पर अभी भी बहुत शक्तिशाली है और रहेगा।

ग्राम्य धर्म बनाम नगरी धर्म

प्राकृतिक शक्तियों पेड़-पौधों, पशु पक्षियों की पूजा, जादू टोना बहुदेव वाद (Polytheism) पुराण (Mythology) भूत प्रेत इत्यादि जैसे भोंडे और स्थूल विश्वास प्राय ग्राम्य धर्म का अंग होते हैं। इसके विपरीत नगर के धर्म और विश्वास का रूप प्राय सूक्ष्म सुन्दर, बौद्धिक और गंभीर होता है। यह आदर्शवादी विचारकों के गूढ़ चिन्तन का परिणाम होता है। नगर का धर्म चरम सत्य का स्वभाव मानवमान का प्रारम्भ इत्यादि गंभीर समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न करता है।

जब कि ग्राम्य धर्म का रुझान कठोरता और स्थूलता की ओर होता है नगर धर्म अमूर्त सूक्ष्मताओं की ओर प्रवृत्त होता है। जबकि ग्रामवासी बहुदेवी देवताओं की मनौती करते हैं, नगर के शिक्षित वर्ग संसार के आदर्शवादी दृष्टिकोण की ओर झुकते हैं। यही नहीं नगरों में तर्कप्रधान बुद्धिवाद और दार्शनिक भौतिकवाद जैसे आंदोलन भी जन्म लेते और फलते हैं, जब कि गांवों में इनका कोई स्थान नहीं है।

इस सम्बन्ध में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ग्राम्य या नगरी धर्म कोई सर्वथा निश्चित स्थायी और अपरिवर्तनीय वस्तु नहीं है। बावजूद भिन्नता के उनमें अनेक समानताएं भी ढूंढ़ी जा सकती हैं। फिर भी नगरवासियों की तुलना में ग्रामवासियों की धार्मिकता और धार्मिक विश्वासों में प्राय पर्याप्त अन्तर रहता है। ग्राम और नगर समुदायों के संगठन और जीवन के अन्तर उसके लिए प्रधान रूप से उत्तरदायी कहे जा सकते हैं। अन्तत, नगरी और लौकिक प्रभाव ग्राम्य धर्म में

निरन्तर परिवर्तन उपस्थित करते रहते हैं।

ग्राम्य समुदाय की सौन्दर्यात्मक संस्कृति (Aesthetic Culture)

सौन्दर्यात्मक कृतिया और कार्य (Aesthetic Activities) किसी समाज की संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग हैं। कला के क्षेत्र में वह यहा के निवासियों के आदर्श, आकाक्षा स्वप्न मूल्यों और धारणाओं तथा साहित्य के रूप में यह उनके प्राकृतिक और सामाजिक ज्ञान को अभिव्यक्त करती है।

रेखाचित्र, चित्रकला, मूर्तिकला, नक्काशी, पच्चीकारी, सूक्ष्म दस्तकारी, जनवार्त्ता (Folklore) किस्से, कहावतें, पहेलियां, कविता, संगीत, नृत्य और अभिनय एक ग्राम सौन्दर्यात्मक संस्कृति के प्रधान अंग हैं।

ग्राम सौन्दर्यात्मक संस्कृति के प्रधान लक्षण

प्रमुख समाजशास्त्रियों ने आवश्यकतापूर्ति प्रधान (Subsistence) सौन्दर्यात्मक संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषताओं की खोजने का प्रयास किया है। उन्होंने उसके निम्न प्रधान लक्षण बताए हैं

(१) जीवन से कला की आत्मीयता सोरोकिन के शब्दों में ऐसे समाजों में 'कलाएं धर्म जादू टोने, बौद्धिक प्रयत्नों और अन्य कार्यों से पृथक न थी। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यहां तक कि कृषि कार्य में भी इनका प्रवेश था और यह धर्म और अन्य सांस्कृतिक क्रियाओं का अभिन्न अंग थी।

(२) कलात्मक कृत्यों में जनता का सामूहिक योगदान आधुनिक समाजों की तरह आवश्यकतापूर्ति प्रधान ग्राम समाजों में कलाकारों और जनता के बीच कठोर विभाजन न था। यहां पर समूह के सारे ही सदस्य उसमें भाग लेते थे। वह श्रोता भी थे और अभिनेता भी कलाकार भी और दर्शक भी वहां पर कोरा कलाकार वर्ग न था। कलात्मक कृतियों में इस सामूहिक योगदान को आज भी शहरी सभ्यता से कम प्रभावित गावों में देखा जा सकता है। लोक नृत्यों लोक-गीतों और त्यौहारों के अवसर पर इसकी सुन्दर अभिव्यक्ति होती है।

(३) परिवार प्रधान (Familistic) कला जैसा कि हमें पीछे जिक्र कर चुके हैं कि ग्राम्य जीवन के प्रत्येक पहलू पर परिवार की छाप है। उसकी कला भी उससे मुक्त नहीं है। परिवार के सदस्यों का जन्म, विवाह, रोग, मृत्यु ग्राम्यकला के मुख्य विषय है। उसकी अभिव्यक्ति विषयवस्तु, उपमाओं, प्रतीकों पर पारिवारिकता व्याप्त है।

(४) कला की सरलता सामान्य भौतिक संस्कृति के निम्न स्तर के कारण ग्राम्य कला की टैक्नीक और साधन सरल थे। वह गाव की दस्तकारी से बने होते थे अथवा स्वयं परिवार के लोग मिलकर उन्हें तैयार कर लेते थे। उदाहरण के लिए, ढोल नगाड़ा, ढोलक, बांसुरी खजरी इकतारा, खड़ताल, थाली गागर लोटे और

घड जसी वस्तुए उनके प्रधान वाद्य यन्त्र थे। आधुनिक हारमोनियम पियानो ज
जटिल साधनो का निर्माण और प्रयोग प्राचीन ग्राम समाजो में सभव न था। यहां
साधनो की सरलता अन्यत्र भी देखी जा सकती थी।

(५) कृषि की जीवन प्रक्रियाए कला की नश्वर विषयवस्तु ग्राम समुदायों की
कला में कृषि की छाप सर्वत्र दिखाई देती ह। उनके सगीत, लोकगात, नृत्य,
कहानियो पहेलियो, अभिनय पर उसका प्रबल प्रभाव था। यद्यपि वास्तुकला (भवन
निमाण) मूर्ति कला, और डिजाइनों और सजावट पर यह प्रभाव उतना प्रत्यक्ष
न था। चू कि कला जीवन पर आधारित थी, अत उस पर जीवन की छाप स्वा-
भाविक थी। उदाहरण के लिए, ग्राम समाजा के गीतों नृत्यो और अभिनय में हमें
हल चलान फसल बोने निराने, काटने, उडाने, गाहने, पानी भरन धान कूटन
इत्यादि कार्यो का प्रधानरूप से चित्रण मिलता ह। इसके अलावा परिवार धम
जादू कला के अन्य मुख्य विषय थे। स्थानीय पड पौधो फल-फूलों, जीव-जन्तुओ
पशु-पक्षियो का उसमें कलात्मक चित्रण था। ज्यामितिक डिजाइना में कृषि से
सम्बन्धित जादू-टोने के गोपनीय अर्थों का समावश था। इसकी कला पर दनिक
जीवन का प्रबल प्रभाव था।

(६) कलाकृतियों का सामूहिक सजन और सामूहिक अभिव्यक्ति जब
कि नगरो में गीत, चित्र, कहानिया व्यक्ति विशेष की कृति के रूप में प्रकट होती ह,
ग्रामो में उसका रूप सामूहिक था। उनका श्रेय किसी एक व्यक्ति को प्राप्त न था,
वह सारे समुदाय क सम्मिलित प्रयत्नो का परिणाम थी, उनके पीछ पुश्तो क प्रयत्न
छिप हुए थे। अनामता (Anonymity) ग्राम कलाकारो की प्रमुख
विशषता थी। इसक अतिरिक्त ग्राम्य कला में पीढियो के जीवन के अनुभव सचित
थे। इसीलिए नगर की कला अधिक सयुक्त और स्थायी कही जा सकती है।

(७) व्यापार वृत्ति का अभाव आवश्यकतापूर्ति प्रधान समाजा में वस्तुए
बिक्री की चाजें नहीं होती। अत वहा पर कलाकार भी नगरो की तरह बचन के
लिए कला का कृतियों का निर्माण या प्रदशन नही करते। गावा क कलाकार
ग्राम समुदाय या परिवार के उपभोग और आनन्द के लिए उनका निर्माण और
प्रदर्शन करते हैं। ग्राम की कला में मुनाफा वृत्ति का अभाव है। बहुत अशो में
उसे स्वान्त सुखाय या कला कला क लिए उचित की अभिव्यक्ति कहा जा सकता
है। कला ही ग्राम कला का प्रधान उद्देश्य ह।

ग्राम-कला का रूपान्तरण

ऊपर हमने जिस ग्राम कला का जिक्र किया है, वह बहुत कुछ आत्मनिर्भर
नगरो और उद्योगीकरण के प्रभावा से दूर, व्यापारिक दृष्टि से अविकसित ग्रामो
की कला कही जा सकती ह। लेकिन ग्राम समुदाय क समस्त पहलुओ की भांति

इस पर भी निरंतर बाह्य प्रभाव काम कर रहे ह जो कि इसके इस आदर्श रूप को परिवर्तित करते रहते ह।उक्त अवस्था हमें प्राचीन किस्म के गाव में ही मिल सकती है। अत ग्राम की कला का अध्ययन करते समय उसके परिवतनों को ध्यान में रखना जरूरी ह।

हम स्वय आज अपन गावा में देख सकते ह कि किस प्रकार सिनेमा सगीत और राग लोकगीतो और स्थानीय रागा का स्थान लेते जारहे है। सिनेमा ग्रामो फोन, रेडियो और नगरा के सपक ने जीवन के अन्य क्षेत्रो के साथ-साथ कला का भी प्रभावित किया है। यह प्रभाव गावो की सौन्दर्यात्मक (Aesthetic) सस्कृति के क्रमिक नगरीकरण म देखा जा सकता ह।

भारतीय ग्रामो म जाति-व्यवस्था (Caste System)

जातियो म विभाजन भारतीय ग्राम के सगठन की एक अनुपम विशेषता ह। यहा पर जाति ही मुख्यत किसी व्यक्ति के सामाजिक दर्जे (Status) और काय (Function) उसक उन्नति के अवसरो उसकी योग्यता और अयोग्यताओ को निर्धारित करती ह। यहां तक कि जाति भेद गावा के विभिन्न वर्गों के पारिवारिक और सामाजिक जीवन, खान पान कपडो, रहने के स्थानो, घर के डिजाइनों, सामाजिक सम्बन्धो और आर्थिक स्थिति को अत्यधिक रूप स निश्चित करते ह। भूमि के स्वामित्व पर भी जाति का प्रभाव देखा जा सकता ह। गावा के शासन के कार्य भी प्राय जाति क आधार पर बटे होते ह। बहुत अशो में जाति ही अपने समूह क सदस्यो क धार्मिक और लौकिक कृत्या को निर्धारित करती है। जाति पर आधारित विभिन्न सामाजिक वर्गों ने एक निश्चित मनोवृत्ति को जन्म दिया ह और सामाजिक दूरी (Social distance) तथा ऊ च-नीच के सम्बन्धा का सूक्ष्म विकास किया है। हाल ही में गावो में वालिग मताधिकार और प्रजातन्त्र क प्रवश ने जाति भावना को और भी अधिक दृढ कर दिया है। इस लिए भारताय ग्राम जीवन का कोई भी अध्ययन बिना जाति व्यवस्था के सगठन को समझ हुए सवथा अधूरा है।

आधुनिक यातायात और सवादवहन के साधना, केन्द्रीय शासन, उद्योगीकरण और गावा में वालिग मताधिकार, प्रजातत्र और सामुदायिक योजनाओं के प्रवश ने ग्राम-जीवन का अत्यन्त प्रभावित किया है। अनेक जातियो को अपन पुरान ग्राम छोडने पर मजबूर होना पडा हैं निम्न और शोषित जातियों को ऊ चा उठन का मौका मिला है नये-नये सघर्षों की सृष्टि हुई है। इससे यह स्पष्ट ह कि जाति-व्यवस्था कोई अपरिवतनीय सस्था नही ह। उसमें निरतर परिवतन आ रहे ह। ग्राम जीवन का अध्ययन करते समय उन परिवतना को ध्यान में रखना आवश्यक ह। फिर भी जाति प्रथा गावा में अभी पर्याप्त सुदृढ ह और शीघ्र ही इसको

समाप्ति के कोई आसार नजर नहीं आते। इस सम्बन्ध में यह तथ्य आजकल विशेष रूप से ध्यान रखने योग्य है कि ग्राम विशेष में किसी जाति के पास कितनी जमीन और उसके सदस्यों की कितनी संख्या है, यह तथ्य वहां की अधिकारी सत्ता (Authority) और सामाजिक सम्बन्धों को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

परिवर्तित ग्राम-समुदाय

अन्य सब वस्तुओं की भांति ग्राम-समुदाय भी अपने प्रारम्भ से ही निरंतर परिवर्तित हो रहा है। उसकी यन्त्र विद्या (Technology) अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक संस्थाएं, उसकी विचारधाराएं कला और धर्म में सदा रूपान्तरण होता रहा है। इस रूपान्तरण की रफ्तार कभी हल्की तो कभी तेज रही है। यह परिवर्तन प्राकृतिक और कृत्रिम दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। अकाल, बाढ़ें इत्यादि प्राकृतिक घटनाएं अनेक बार ग्रामों के सामाजिक जीवन में भीषण विशृंखलता उत्पन्न कर देती है। पर सामाजिक रूपान्तरण में मनुष्य की संस्कृति के विकास का हाथ मुख्य है। यह सांस्कृतिक विकास कई बार स्वतः ही कुछ ऐसे संरचनात्मक और कार्यात्मक परिवर्तनों को जन्म देता है कि बिना किसी विशेष योजना और प्रयत्न के सामाजिक परिवर्तन हो जाते हैं। किन्तु इस प्रकार के परिवर्तन प्रायः सामाजिक विघटन की सृष्टि करते हैं। अनेक बार यह परिवर्तन एक सुनिश्चित योजना का परिणाम होते हैं। आज के युग में आयोजित (Planned) परिवर्तनों का महत्व विशेष रूप से बढ़ गया है। उदाहरण के लिए भारत में सामुदायिक योजनाओं (Community Project) के विस्तार द्वारा होने वाले परिवर्तनों को हम बहुत अंशों में आयोजित परिवर्तन कह सकते हैं।

ग्राम-समुदाय के सामाजिक जीवन और सामाजिक सम्बन्धों में यान्त्रिक (Technological) परिवर्तनों का प्रमुख हाथ रहा है। कुदाल (Hoe) की कृषि से ट्रैक्टर की कृषि तक के परिवर्तनों ने उसमें क्रांतिकारी रूपान्तरण उपस्थित किया है। इसके अलावा, राज्य द्वारा केन्द्रीय कानून बनाकर ग्रामों के सामाजिक सम्बन्धों और ढांचे में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो जाते हैं। उदाहरण के लिए भारतीय गांवों में वालिग मताधिकार और पंचायत राज्य का प्रवेश गांवों के अपने निर्णय का परिणाम न होकर केन्द्रीय कानून का परिणाम है। इन परिवर्तनों को हम अनिवार्य (Compulsory) परिवर्तनों का नाम दे सकते हैं।

बाहर के लोगों द्वारा गांवों में जाकर लोगों को किसी नये कार्य को करने या नयी रीति को अपनाने को कहना समझाने का तरीका (Persuasive) है। किसी नया विधि या कार्य को करके उसकी सफलता को प्रदर्शित करने का एक अन्य प्रदर्शनात्मक तरीका (Demonstrative method) है। आज की सामुदायिक योजनाओं के कार्यकर्ता सामाजिक परिवर्तन लाने में इन दोनों तरीकों का विशेष रूप से प्रयुक्त कर रहे हैं।

इसके अलावा बायकाट, हडताल, क्रांति इत्यादि साधनों से भी गावो में रूपान्तरण उपस्थित होते हैं। इन तरीकों को सामाजिक दबाव (Social Pressure) का नाम दिया जाता है। अन्त में, बाह्य प्रभावों का सम्पर्क (Contact) तथा लौकिक सार्वजनिक शिक्षा का प्रसार गाव में सामाजिक परिवर्तन लाने के प्रभावशाली साधन हैं।

ग्राम-समुदाय का अध्ययन करते समय इन समस्त परिवर्तनों का ध्यान में रखना जरूरी है।

ग्राम और नगरी जीवन के प्रमुख अंतर

समाजशास्त्रियों ने ग्राम-समुदाय को नगरी समुदाय से पृथक करने के लिए विशेष मानदण्ड निर्धारित किये हैं। जनसंख्या के तत्व, सांस्कृतिक विरासत, भौतिक सम्पत्ति की मात्रा, सामाजिक संगठन और जीवन की सरलता और जटिलता सामाजिक सम्पर्कों की अल्पता और अधिकता इनमें से प्रमुख हैं।

ग्राम समुदाय को नगरी समुदाय से अलग करने में निम्न मापदण्ड मुख्य हैं

१ पेशों (Occupation) में अन्तर।
२ वातावरण (Environment) के अन्तर।
३ समुदायों के आकार (Size) के अन्तर।
४ जनसंख्या के घनत्व (Density) के अन्तर।
५ जनसंख्या की एकतत्वीयता (Homogeneity) और बहुतत्वीयता (Heterogeneity) के अन्तर।
६ सामाजिक गतिशीलता (Mobility) के अन्तर।
७ निष्क्रमण या परिव्रजन (Migration) की दिशा के अन्तर।
८ सामाजिक विभेदीकरण (Differentiation) और सामाजिक स्तरीकरण (Stratification) के अन्तर।
९ सामाजिक अन्तर्क्रिया (Interaction) की पद्धति के अन्तर।

सोरोकिन और जिमरमैन ने ग्राम और नगरी समुदाय के प्रमुख अन्तरों को निम्न प्रकार व्यक्त किया है

१ पेशे गावो में अधिकांश परिवार खेती करते हैं और वहां पर गैरकृषकों की संख्या बहुत कम होती है। इसके विपरीत नगरों के निवासी मुख्यत- पक्के माल के बनाने, व्यापार, शासन सेवाओं इत्यादि विभिन्न कार्यों में लगे होते हैं।

२ वातावरण गांवों में मानव सामाजिक वातावरण पर प्रकृति की प्रभुता होती है और ग्रामवासियों का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध होता है। इसके विपरीत नगर प्रकृति से पर्याप्त दूर होते हैं। यहां पर प्राकृतिक वातावरण की तुलना में मानव द्वारा निर्मित वातावरण की प्रभुता ताजी हवा की कमी, पत्थर और लोहे की

बहुतायत होती है।

३ समुदाय का आकार ग्राम-समुदाय का आकार छोटा होता है। खुले हुए खेत और छोटे समुदाय गावो की विशेषता है। थोडी जनसख्या और कृषि का अभिन्न सह-सम्बन्ध है। इसके विपरीत एक देश और एक समय में गावो की तुलना में नगरों की जनसख्या का आकार बहुत बडा होता है। दूसरे शब्दो में अधिक जन सख्या और नगरों म एक निश्चित सह-सम्बन्ध (Correlation) है।

४ जनसख्या का घनत्व गावो में जनसख्या का घनत्व नगरो की तुलना में बहुत कम होता है। सामान्यत गावो और घनत्व में सह सम्बन्ध है। इसके विपरीत, गावो की तुलना में नगरो की जनसख्या का घनत्व अत्यधिक होता है। नगरों के विकास और जनसख्या के घनत्व की वृद्धि में एक निश्चित सह-सम्बन्ध पाया जाता है।

५ जनसख्या की एकतत्वीयता और बहुतत्वीयता गावों की जनसख्या नगरो की तुलना में नस्ली और सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक एकतत्वीय होती है। इसके विपरीत, नगरों की जनसख्या अधिक बहुतत्वीय होता है। नगरो के विकास और बहुतत्वीयता की वृद्धि में एक निश्चित सह सम्बन्ध पाया जाता है।

६ सामाजिक विभेदीकरण और स्तरीकरण गावो में शहरो की तुलना में कम विभेदीकरण और स्तरीकरण होता है। श्रम विभाजन सरल होने के कारण बहुत थोडे पेशेगत वर्ग होते है। इसके विपरीत, नगरों में सूक्ष्म श्रम विभाजन और नाना प्रकार के अनेक नये उद्योगो की वृद्धि नये-नये वर्गों को जन्म देती है। अत यहा पर विभेदीकरण और स्तरीकरण अत्यधिक होता है। नगरों के विकास और विभेदीकरण और स्तरीकरण की वृद्धि में निश्चित सह-सम्बन्ध है।

७ गतिशीलता गावो में नगरों की तुलना में स्थान और पेशा का परिवर्तन बहुत कम होता है। यदि निष्क्रमण होता भी है तो गाव वाले शहरो की ओर जाते है। नगरो के विकास और गतिशीलता में सीधा सह-सम्बन्ध है। यहां पेशेगत गतिशीलता नगरो की तुलना में अधिक होती है। लोग सरलता और शीघ्रता से एक काम छोड कर दूसरा काम अपना लेते है। केवल भीषण सकट की ही अवस्था में नगरवासी गावो की ओर निष्क्रमण करते है।

८ अन्त क्रिया की पद्धति गावो में प्रति व्यक्ति के सम्पर्कों की सख्या नगरों की तुलना में कम होती है। उसके सदस्यों की अन्त क्रिया का क्षेत्र भी सीमित होता है। उनके अधिकांश सम्पर्क प्राथमिक समूहो तक सीमित रहते है। वहा व्यक्तिगत और अपेक्षया स्थाई सम्बन्धो की प्रधानता रहती है और सम्बन्धों की सरलता और सचाई पाई जाती है। 'यहा मनुष्य मानव प्राणी के रूप में अन्त क्रिया करता है।" इसके विपरीत नगरा में सम्पर्कों की संख्या अत्यधिक होती है। यहा प्रति

व्यक्ति की अन्त क्रिया क्षेत्र विस्तृत होता है और उसके सम्पर्कों में माध्यमिक (Secondary) सम्पर्कों की प्रधानता रहती है। यहा पर आपसी व्यवहार में अधिक तकल्लुफ, बहुमुखता दिखावटी और रूढ शिष्टाचार पाया जाता है। यहा पर मनुष्य मनुष्य के प्रति 'सख्या' या उसके 'पते' के रूप में अन्त क्रिया करता है।

नगरों का विकास

दस्तकारी और व्यापार की वृद्धि से नगरों का उदय सामुदायिक जीवन के विकास में नगरा का उदय काफी बाद की घटना है। जिस प्रकार कृषि के प्रारम्भ होने के साथ ग्रामा का बसना शुरू हुआ, उसी प्रकार उद्योग खाद्य वस्तुओं तथा पक्के माल को ले जाने की सुविधाओ के बढने परिणामत व्यापार की उन्नति और वृद्धि के साथ नगरा का उदय हुआ। नगर दस्तकारी की वस्तुआ के निर्माण और क्रय विक्रय तथा खाद्य पदार्थों के क्रय-विक्रय के केन्द्र बने। इस प्रकार उन स्थानो पर जहां यातायात की सुविधाए थी, वस्तुआ की पर्याप्त माग थी, अथवा आस पास कच्चे माल के मिलने की पर्याप्त सुविधाए थी, अथवा जहाँ राजधानिया थी छोटे-बड़े नगर बन गये। वह स्थान और बन्दरगाह जहाँ से कि माल देश देशान्तरो को भेजा जाता था, बडे व्यापारिक नगरो के रूप में विकसित हो गये। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की वस्तुए बनाने वाले उत्पादन केन्द्र औद्योगिक नगरो के रूप में विकसित हो गये। कुछ स्थाना ने धार्मिक पवित्रता, परिणामत वहा पर बडी सख्या में लोगा के आने जाने के कारण, नगरो का रूप धारण कर लिया।

उद्योगीकरण (Industrialisation) नगरों की वृद्धि और विस्तार औद्योगिक क्रान्ति से पहले नगर प्राय छोटे होते थे। औद्योगिक क्रान्ति ने उत्पादन के तरीके में आमूलचूल परिवर्तन कर बड़े पमाने के उत्पादन की नीव डाली। इस बड़े पमाने के उत्पादन के लिए बडी राशि में पूजी की आवश्यकता थी और साथ ही इसके अन्तगत एक ही उत्पादन-सस्थान में एक साथ बहुत बडी सख्या में मजदूरा का काम करना अनिवार्य हो गया। किसी स्थान पर प्राप्त सुविधाआ के कारण एक मुख्य उद्योग की स्थापना हुई और उस एक मुख्य उद्योग के स्थापित होने पर अनेक पूरक और सहायक गौण उद्योगा की स्थापना हुई। इन उद्योगो के क्रय विक्रय की माग को पूरा करने के लिए विभिन्न और निरतर बढ़ने वाली व्यापारिक यातायात और सवादवहन की सुविधाआ की आवश्यकता उत्पन्न हुई और समय बीतने पर छोटे छोटे औद्योगिक नगर अन्ततोगत्वा बृहत नगरा में परिवर्तित हो गये। इस प्रकार उद्योगीकरण ने नगरा की वृद्धि और विस्तार में पर्याप्त योगदान दिया। वास्तव में उद्योगीकरण और नगरीकरण एक समानान्तर प्रक्रिया बन गये।

भारत में नगरों का विकास शिल्पकला और दस्तकारी के पर्याप्त विकास के साथ भारत में नगरों की स्थापना शुरू हुई। मौर्य युग में हमे पाटलिपुत्र, उज्जैन, ताम्रपर्णी इत्यादि नगरों का वर्णन मिलता है। सारे मध्यकाल में देश भर में विभिन्न छोटे-बड़े नगर विद्यमान थे। यह नगर मुख्यतः शिल्प और व्यापार के केन्द्र थे और इन्हीं में प्राय राजधानिया थी। अंग्रेजी शासन की स्थापना के फलस्वरूप, देशी राज्यों और दस्तकारी के नष्ट होने के बाद, इनमें से अधिकाश नगरों का प्राचीन वैभव नष्ट हो गया। उनके स्थान पर नये औद्योगिक नगरों का विकास प्रारम्भ हुआ। कलकत्ता बम्बई, अहमदाबाद मद्रास, टाटा नगर, कानपुर इनमें से प्रमुख हैं। यो तो भारत में उद्योगीकरण प्रारम्भ हुए आज प्राय एक शताब्दी हो चुकी है, लेकिन यह देश अभी भी मुख्यत खेती पर निर्भर है और इसकी ८३ प्रतिशत जनता गावों में रहती है। बावजूद उद्योगीकरण की मन्द प्रगति के, पिछले तीस सालों में नगरों की जनसख्या में असाधारण वृद्धि हुई है। पिछले दस वर्षों में तो इस वृद्धि ने बहुत ही उग्र रूप धारण कर लिया है। १९४१ और १९५१ के बीच हमारे नगरों की जनसख्या में ५४ प्रतिशत वृद्धि हुई है। भारत की लगभग १७ प्रतिशत जनता शहरों में रहती है। नगर वासियों की सख्या की असाधारण वृद्धि ने आज नगरों में अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को उत्पन्न कर दिया है। देश निर्माण की किसी भी योजना में इनका समाधान होना आवश्यक है। उद्योगीकरण और नगरीकरण की ओर कदम उठ चुका है, उसकी प्रगति को नहीं रोका जा सकता। अत यह आवश्यक है कि हम उसके समुचित नियन्त्रण का प्रयत्न करें।

उद्योगीकरण और नगरो के विकास से] उत्पन्न समस्या का समाधान करने से पहले उसकी प्रमुख विशेषताओं और सामाजिक-आर्थिक जीवन पर उसके प्रभावों को जानना जरूरी है।

नगर की विशेषता

नागरिक-जीवन ग्राम-जीवन से पर्याप्त पृथक् नगरों के जीवन में ग्राम जीवन से पर्याप्त मौलिक मतभेद है। यो तो मध्यकालीन और आधुनिक नगरों के जीवन में भी पर्याप्त अन्तर है, पर तत्त्वत आधुनिक नगरों ने मध्यकालीन नागरिक जीवन की कुछ विशेषताओं को तीव्रतर कर दिया है। सक्षेप में, उद्योग और व्यापार नागरिक जीवन की मुख्य धुरी हैं। नगरों के निवासी अपनी भोजन की आवश्यकताओं के लिए गांवों पर निर्भर होते हैं। गावों के विपरीत, वह बहुत बड़ी सख्या में एक स्थान पर एकत्रित होकर रहते हैं। उनकी जीविका का साधन, रहन-सहन का स्तर स्वास्थ्य, ज्ञान, विश्वास, धारणाए, व्यवहार, सामाजिक सगठन और जीवन गांवों [से पर्याप्त पृथक होता है। परिणामत] उनकी समस्याएं

भी पर्याप्त भिन्न होती हैं। इसलिए उनका पृथक रूप में अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

समुदायों का समुदाय सदस्यों की सख्या बहुत सीमित तथा उनके आपस में घनिष्ठतया सम्बद्ध और आबद्ध होने के कारण, ग्राम एक समुदाय और प्राथमिक समूह है इसके विपरीत, सदस्यो की अत्यधिक सख्या तथा आपस में उनकी अल्प घनिष्ठता तथा आत्मीयता के अभाव में, नगर विभिन्न समुदायो का एक समुदाय है। नागरिक समूह एक बहुत ही ढीला-ढाला समूह है।

उद्योगीकरण और नगरीकरण के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

आज हम जिस नागरिक जीवन का अध्ययन करते ह, वह उस नागरिक जीवन का ह जो कि एक औद्योगिक समाज में विद्यमान ह। कृषि प्रधान देशो में ग्रामा और उद्योग प्रधान देशो में नगरों का प्रभुत्व रहता है। अत उद्योगीकरण और नागरिक जीवन के प्रभावो का साथ-साथ अध्ययन अप्रासगिक न होगा।

उद्योगीकरण और तज्जनित नगरो की वृद्धि और विकास ने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया ह। विभिन्न देशों में उद्योगीकरण और नगरों का प्रसार विभिन्न परिस्थितियो में और विभिन्न रीतियों से हुआ ह। ऐसी स्थिति में यह सवथा स्वाभाविक है कि उनके जीवन में कुछ पार्थक्य दृष्टिगोचर हो, फिर भी औद्योगिक और नागरिक जीवन के कुछ तत्त्व तो ऐसे ह, जिन्हें कि सार्वभौम या स्थायी कहा जा सकता है। इसके विपरीत, कुछ ऐसे तथ्य हैं जिन्हें पारिस्थितिक सक्रमणकालीन अथवा समाज के ढाचे विशेष से सम्बद्ध कहा जा सकता है। आगे हम दोनो प्रकार के तथ्यो का जिक्र करेंगे।

१ आर्थिक विशृंखलता, सकट और बेकारी उद्योगीकरण ने उत्पादन के साधनो में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित किए। जिस काम के लिए पहले सैकड़ों आदमियो की जरूरत पड़ती थी उसे अब कुछ व्यक्तियो द्वारा सुधरे-यन्त्रो और मशीनो की सहायता से अल्प समय में पूरा करना सभव हुआ। परिणामत जो लोग हाथ के उद्योगो में लगे हुए थे वह मशीन के माल की प्रतियोगिता के सामने न ठहर सके और उनमें से अधिकाश बेकार हो गये। उनमें से थोड़े ही लोग तत्काल नए उद्योगों में खप सके और उन्हें एक लम्बे समय तक भीषण आर्थिक कष्टों का सामना करना पड़ा। इसके अतिरिक्त, अनियन्त्रित पूजीवादी व्यवस्था में उद्योगो और उत्पादन का सचालन बाजार की माग के अनुमान और मुनाफे की प्रवृत्ति द्वारा परिचालित होता ह। जिस समय भी पूजीपति मुनाफे की दर में कमी अथवा घाटे की समावना देखते हैं उत्पादन रुक जाता है। इस प्रकार समय समय पर भीषण आर्थिक सकट और मन्दियो की सृष्टि होती है। परिणाम

स्वरूप, उद्योग प्रधान नगरी सभ्यता में उसके सदस्यों को पर्याप्त आर्थिक अनिश्चितता और अस्थिरता का जीवन यापन करना पड़ता है। किन्तु हमें यहां पर यह स्मरण रखना चाहिए कि यह अवस्था उद्योगीकरण का अनिवार्य अंग नहीं है। उत्पादन में मुनाफे की वृत्ति की समाप्ति और आर्थिक आयोजन द्वारा इसे बहुत अंशों में समाप्त किया जा सकता है।

२ **आर्थिक पर निर्भरता और विशेषीकरण** गांव मूलत स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर थे। गांव के सदस्य अपनी आवश्यकता की समस्त वस्तुएं स्वयं तैयार कर लेते थे। इसके विपरीत, नगर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य प्रदेशों पर आश्रित होते हैं। आर्थिक परावलम्बन उनका प्रमुख लक्षण है। वहां पर श्रमिकों के बीच सूक्ष्म श्रम विभाजन होता है। उद्योगीकरण ने इस प्रवृत्ति को और भी अधिक प्रोत्साहित कर दिया है। यह अत्यधिक पर निर्भरता और विशेषीकरण, आर्थिक यन्त्र में किसी प्रकार का व्याघात उत्पन्न होने पर विस्तृत कठिनाइयों को जन्म देते हैं। किसी उद्योग-विशेष पर निर्भरता उस उद्योग की वस्तुओं की मांग अथवा उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन होने पर उससे सम्बन्धित व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति को गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

३ **क्रय विक्रय की प्रधानता** ग्रामों में जनता के अधिक स्वावलम्बी होने, उपहारों का अत्यधिक रिवाज होने तथा सेवाओं के पारिश्रमिक के रूप में अनाज का प्रयोग, क्रय-विक्रय को बहुत ही सीमित रखते हैं। इसके विपरीत, नगरों में छोटी-से-छोटी वस्तु के लिए मुद्रा में उसकी कीमत चुकानी पड़ती है। वहां उपभोग की वस्तुएं दूरस्थ प्रदेशों से आती हैं। इस प्रकार उत्पादकों और उपभोक्ताओं में सीधा सम्बन्ध न होने के कारण एक ही वस्तु को अनेकानेक मध्यस्थों के हाथों से गुजरना पड़ता है। जनसंख्या का एक बड़ा अनुपात केवल क्रय विक्रय का ही कार्य करता है। क्रय विक्रय के लिए विभिन्न संस्थाओं का उदय और विकास होता है। इस प्रकार उद्योगीकरण और नगरों के अन्तर्गत आर्थिक जीवन में क्रय विक्रय की प्रधानता होती है। यह क्रय विक्रय की प्रधानता ही उद्योग और नगर प्रधान समाजों में अनेक बार भीषण आर्थिक संकट का कारण बन जाती है। क्रय विक्रय संस्थाओं के कार्यों में तनिक-सा भी व्याघात भयंकर आर्थिक विशृंखलता को जन्म दे सकता है। विनिमय दर का नियमन और बैंकों की ऋण व्यवस्था क्रय विक्रय को अत्यन्त प्रभावित करती है अत इनका सुचारु रूप से संचालन उद्योग प्रधान नगरी सभ्यता की एक मुख्य समस्या है।

४ **उत्पादन-यन्त्रों पर मजदूरों के स्वामित्व की समाप्ति और नियन्त्रण की पृथकता** उद्योगीकरण और नगरों के विकास ने बड़े पैमाने पर उत्पादन को जन्म दिया। नये उन्नत उत्पादन-साधनों को अपनाने के लिए बृहत् पूंजी और उन्हें चलाने के

लिये बडी सख्या में मजदूरो को एक ही स्थान पर काम करने की आवश्यकता थी। इन नये और कीमती उत्पादन-यन्त्रो का स्वामी बनना साधारण मजदूरो के बूते के बाहर था। केवल पूजीपति ही उन्हें लगा सकते थे। उन्होंने इन्हें लगाया और मजदूर रोजी पर उनके नीचे काम करने लगे। इससे पहले, जब तक कि उत्पादन प्रणाली सरल और उसके यन्त्र सस्ते थे, उत्पादन यन्त्रों का वह स्वय ही मालिक था। किन्तु बडी मशीनो के आगमन ने स्थिति को बिल्कुल बदल दिया। इनके आने से उत्पादन के यन्त्रो का स्वामित्व श्रमकरो के हाथ से निकल गया। आगे चलकर एक नई घटना घटी। शुरू में तो पूजीपति स्वामी ही स्वय उद्योगो के वास्तविक सचालन और नियन्त्रणकर्ता थे लेकिन बाद में उद्योगो के सचालन का कार्य बहुत ही विशिष्ट हो गया और उसके लिए विशेष योग्यता प्राप्त सचालको— मनेजरो की आवश्यकता पडी। इस प्रकार उद्योगो का वास्तविक सचालन पूजीपतियो अथवा नये उद्योग के स्वामियो के हाथो से भी निकल कर अन्ततोगत्वा वेतनप्राप्त मनेजरो के हाथ म चला गया।

५ अधिक सम्पत्ति का उत्पादन भाप या बिजली स परिचालित नये उत्पादन यन्त्र पुराने हाथ के सरल यन्त्रो की तुलना में कही अधिक श्रेष्ठ थे। उनके उपयोग ने जहा एक ओर पर्याप्त सामाजिक अव्यवस्था पदा की वहाँ दूसरी ओर उनके प्रयोग न बड पमाने पर सम्पत्ति का उत्पादन सभव बनाया। सक्षेप में, उन्होने, जनता के लिए वस्तुओ के उत्पादन की नीव डाली। बडे पमाने पर वस्तुए बनने के कारण उनकी प्रति वस्तु लागत अत्यन्त नगण्य हो गई और जो वस्तुए या सेवाए पहले केवल कुछ चुने हुए व्यक्तियो को उपलब्ध थी वह सवसाधारण को मिलने लगी। जनता क रहन सहन के स्तर में उन्नति हुई। उनकी गरीबी दूर हुई और समृद्धि का सूत्रपात आ। यही कारण है कि कृषि और ग्रामबहुल देशो की तुलना में उद्योग प्रधान और नगरबहुल देश आज कहा अधिक सम्पन्न और समृद्ध ह।

सम्पत्ति का अधिक असमान वितरण गावों में सम्पत्ति का उत्पादन भी कम था और उसकी असमानता भी कम थी। इसके विपरीत उद्योगीकरण ने जहा नगरो की कुल सम्पत्ति में वृद्धि की, वहा उसन वितरण की असमानता को भी बढाया। मुनाफ द्वारा परिचालित औद्योगिक व्यवस्थाओ में तो यह असमानताए असाधारण अनुपात में बढ गइ। समाज द्वारा परिचालित और नियन्त्रित औद्योगिक व्यवस्थाओं में अवश्य उसे कम करने के प्रयत्न हुए। जैसे-जैसे मजदूरो क रहन सहन का दर्जा ऊचा उठ रहा ह उनमें शिक्षा का प्रसार हो रहा है, राजनैतिक चेतना बढ़ती जा रही ह, और सरकारी यन्त्र पर उनका प्रभाव बढ़ता जा रहा है। ऐसे कानून बन रह हैं जिससे कि पहले की तुलना में आर्थिक असमानता निरतर

कम होती जा रही है। परिस्थितियों की वर्तमान प्रवृत्ति असमानता को कम करने की ओर ही है।

७ निवास-स्थानों की कमी उद्योगीकरण और नगरों के बड़ी तेजी से विस्तार ने जनता के रहने की समस्या को बड़े उग्र रूप में उपस्थित किया है। गावों में जीविका उपार्जन की कठिनाई और उद्योगीकरण ने ग्रामों से नगरों की ओर जनसंख्या के अभियान की गति को बहुत तेज कर दिया है। परिणामतः, बड़ी संख्या में जनता ग्रामों से नगरों की ओर निष्क्रमण कर रही है। नगरों की बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में वहाँ पर निवास-स्थानों का कम बढ़ना गंभीर सामाजिक समस्या है। निवास-स्थानों के बनाने में पर्याप्त समय और धन की आवश्यकता होती है। इसलिए नगरों की जनसंख्या की वृद्धि, परिणामत मकानों की माग की तुलना में उनकी पूर्ति सदा अपर्याप्त रहती है। भारत में ही १९४१ से १९५१ तक नगरों की जनसंख्या में ५४ प्रतिशत की वृद्धि हुई जब कि मकानों में कठिनाई से १० प्रतिशत हुई होगी। वातावरण आरोग्य समिति के अनुसार फिलहाल हमारे नगरों में लगभग १९ लाख घरों की कमी है। इसमें, पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों के लिए अपेक्षित १० लाख घरों का समावेश नहीं है।

नगरों में निवास स्थान की कमी गंभीर सामाजिक और नैतिक समस्याओं को जन्म देती है। निवास-स्थान के अभाव में प्रायः कई व्यक्तियों स्त्री-पुरुषों और बच्चों को एक तंग जगह में साथ-साथ सोना पड़ता है, जिसका उनके स्वास्थ्य और चरित्र पर हानिकर प्रभाव पड़ता है।

८ अधिक शिक्षा उद्योगीकरण और नगरों के विकास ने आर्थिक सम्पत्ति में वृद्धि कर शिक्षा के विस्तार को भी परोक्ष रूप से प्रभावित किया है। ग्रामों की तुलना में नगरों में शिक्षा की विस्तृत सुविधाएं है। पर्याप्त संख्या में छात्र और अध्यापक तथा अन्य आवश्यक सुविधाएं प्राप्त होने के कारण वहा पर उच्च और विशेष शिक्षा प्रदान करना भी संभव है। इसीलिए उच्च और टैक्नीकल शिक्षा के केन्द्र नगरों में ही स्थापित हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त नगरवासी ग्रामवासियों की तुलना में अधिक सम्पन्न हैं और अपने बच्चों को स्कूलों और कालिजों में भेज सकते हैं। इन्हीं सब बातों का परिणाम है कि नगरों में शिक्षा का अधिक प्रसार है। निस्सदेह उद्योगीकरण और नगरों के विकास ने सामान्यत शिक्षा को प्रोत्साहित किया है।

९ निकृष्ट स्वास्थ्य तथा श्रेष्ठ और विस्तृत चिकित्सा-सुविधाएं गावों की तुलना में सामान्यत शहरों में खुली हवा और रोशनी की पर्याप्त कमी रहती है। कारखानों का धुआं, तापक्रम, कोलाहल, निवास-स्थानों की कमी, गदी मजदूर बस्तियां नगरवासियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव छोड़ती है। शहरों के अति

गतिशील और तेज जीवन, यहा के लोगा में बढ़नी और अतृप्त वासनाओं ने, विशषत मानसिक रोगियो की सख्या में असाधारण वृद्धि की ह। न्यूरासिस—स्नायु रोग औद्योगिक और नागरिक सभ्यता की एक विशेष देन हैं। स्वास्थ्य के लिए हानिकर उक्त कारणा के बावजूद पिछले पचास सालो से शहरो के वाता वरण को स्वच्छ करने वहा पर गदी बस्तियो को समाप्त करने तथा सफाई की सुविधाए जुटाने की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई हैं। इसके अतिरिक्त नगरो में रोगा की चिकित्सा और निवारण की विस्तृत सुविधाए प्राप्त हैं। नगरो की समृद्ध आर्थिक अवस्था बहुत अशा में इसके लिए उत्तरदायी ह।

१० **पारिवारिक नियन्त्रण का अभाव** उत्पादन, शिक्षा और मनोरजन की इकाई और सस्था के रूप में नगरा में परिवार समाप्त हो चुका हैं। वह केवल श्रम और प्रजनन की इकाई के रूप में वहा जीवित हैं। जीविका उपाजन के लिए परिवार के विभिन्न सदस्य पृथक कारखाना या दफ्तरों में काम करते ह। उन्ह सारा दिन घर से बाहर रहना पडता हैं। शिक्षा के लिए स्कूल हैं मनोरजन का स्थान सिनेमा इत्यादि बाह्य सस्थाओ ने ले लिया ह। इसके अतिरिक्त सामाजिक और राज नैतिक कार्यों के लिए विभिन्न सस्थाए और दल ह। परिवार क व्यक्ति इनके सदस्य बनत ह और इनके प्रभाव में आत ह। इस प्रकार एक तरह सिर्फ सोने भर के लिए परिवार के सदस्य घर पर इकट्ठे होते ह। इन सब प्रवत्तियो का यह अनिवाय परिणाम ह कि व्यक्ति क ऊपर से परिवार का नियत्रण बहुत कुछ उठ चुका हैं। परिवार क बजाय, व्यक्ति के व्यवहार पर अन्य बाह्य प्रभावो का प्रभाव अधिक प्रबल हैं और वही उसका नियत्रण करते ह।

११ **उच्चतर विवाह आयु और अल्प विवाह** शिक्षा के प्रसार द्वारा नई आकांक्षाओ के जागृत होने तथा पुरानी परम्पराओ की प्रभाव नष्ट होने के कारण, नगरोमें सामान्यत लोग अधिक उम्र में विवाह करते हैं। इसके अतिरिक्त, नागरिक परिस्थितियो ने परिवार के पूर्व महत्त्व और अनिवार्यता को काफी कम कर दिया ह तथा उससे प्राप्त सतोष और सुविधाओं में अनेक नये साधन और स्थानापन्न प्रस्तुत कर दिये हैं। इन सबका यह परिणाम हैं कि विवाह के प्रति लोगा का पहले जसा अनुराग और आकर्षण नहीं रह गया ह। विवाह को अधिक समय तक स्थगित करना या कुछ स्थितिया में सवथा उससे बचना औद्योगिक और नागरिक समाज की एक विशेषता हैं।

१२ **एकाकी और छोटे परिवार.** सयुक्त परिवार हमारे ग्राम जीवन क एक विशषता थी। किन्तु आर्थिक कठिनाइयो और व्यक्तिवादी स्वाधीनता की विचारधाराओ ने उनके टूटने की स्थिति उत्पन्न की। अनेक ग्रामवासी अपने सयुक्त परिवारो से पृथक हो अपनी पत्नी और बच्चा को नगर में ले गये। इसके

अनिश्चित नगर की परिस्थितियों में तो संयुक्त परिवार असंभव है। परिणामतः, एकाकी परिवारों का ही आधिपत्य है। पर जहां नगरों का जीवन एकाकी परिवारों के पक्ष में है वहां वह छोटे परिवारों के भी अनुकूल है। नगरों में पारिवारिक भावना के ह्रास, शिक्षा के प्रसार और रहन सहन के स्तर में उन्नति तथा गर्भ निरोध (Birth Control) के बढ़ते ज्ञान और सुविधाओं के फलस्वरूप, माता पिता अधिक संतान की उत्पत्ति के विरुद्ध होते हैं। इन्हीं कारणों से ग्रामों की तुलना में नगरों में जन्मदर पर्याप्त कम होती है और परिवार छोटे होते हैं।

१३ पुरुषों की अधिकता स्त्रियों की संख्या की तुलना में पुरुषों की अधिकता, नागरिक जीवन की एक अन्य विशेषता है। भारत में तो यह स्थिति कुछ नगरों में बहुत ही उग्र है। हमारे औद्योगिक नगरों के अधिकांश मजदूर अभी भी गांवों और कृषि से सम्बन्धित हैं। निवास-स्थान की कमी और अन्य आर्थिक कठिनाइयां उन्हें अपने स्त्री और बच्चों को नगरों में लाने और बसाने के मार्ग में अन्य बाधाएं हैं। इसी का परिणाम है कि कुछ नगरों में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से दुगुनी है। इस स्थिति का नगरों की नैतिकता पर विशेष प्रभाव पड़ा है। पारिवारिक जीवन के अभाव में मजदूर व्यभिचार की ओर अग्रसर होते हैं। स्त्रियों की अल्प संख्या नगरों में चारित्र्य शैथिल्य का प्रमुख कारण बनती है।

१४ नारी का ऊंचा स्थान शिक्षा की सुविधाओं और निरंतर बढ़ती आर्थिक स्वाधीनता और स्वाधीन विचारों ने नगरों में स्त्रियों की स्थिति को उन्नत करने में पर्याप्त योग प्रदान किया है। ग्रामों की तुलना में यहां पर सामान्यतः स्त्रियों का स्थान ऊंचा है।

१५ सामुदायिक घनिष्ठता का विनाश और सहयोग भावना का अभाव ग्राम एक छोटा समुदाय था जिसके सदस्य एक दूसरे से परिचित तथा सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से घनिष्ठतया सम्बन्धित थे। उनके विचारों में समता थी। परिणामतः उनमें घनिष्ठ सौहार्द स्नेह आत्मीयता और सहयोग की भावना विद्यमान थी। उद्योगीकरण और नगरों के विकास ने उस सामुदायिक एकता और सहयोग की भावना को नष्ट कर दिया। नगर के निवासी एक समुदाय के न हो, अनेक समुदायों के सदस्य हैं जिनकी विभिन्न और विरोधी विचारधाराएं और मार्ग हैं। इसका स्वाभाविक परिणाम, वहां पर सहयोग के स्थान पर सदैव संघर्ष और प्रतियोगिता की संभावना और उपस्थिति है। सामुदायिक एकता के नष्ट होने से वहां पर सामाजिक विघटन की स्थिति विद्यमान है।

१६ विचारों की विविधता उद्योगीकरण और तज्जनित नागरिक विकास ने

वहा के आर्थिक-सामाजिक जीवन और उनके सम्बन्धो में क्रान्तिकारी परिवतन कर वहा के निवासियो के विचारों में भीपण परिवतन उपस्थित किये । परम्परागत समाज का ढाचा नष्ट हो जाने से उसकी चिन्तनप्रणाली, उसके मूल्या, मान्यताओं और आदर्शों क प्रति नगरवालो की आस्था नष्ट हो गई ह । नये सकट, समस्याओ और परिस्थितिया से मुक्ति दिलाने के लिए नई नई विचारधाराए, कायक्रम और नारे उनके सम्मुख उपस्थित किये जाते ह । पारिवारिक नियन्त्रण और सामुदायिक एकता समाप्त हो रही ह । इन सबका यह परिणाम ह कि नगरवासिया के विचारो में एक विचित्र अराजकता विद्यमान ह । कुछ अशो तक और कुछ सीमाओ में तो विचारो में विभिन्नता एक स्वस्थ लक्षण है, किन्तु जब यह विभिन्नता सामाजिक सहयोग को नष्ट करने का कारण बन जाय, तब चिन्ताजनक हो जाती ह ।

१७ जातिभेद और वगभेद की कमी भारत का ग्राम समाज मुख्यत जाति भेद और वर्गभेद पर आधारित था । उद्योगीकरण और नागरिक जीवन ने जाति-भेद और वगभेद की बहुत सी कठोरताओ को कम कर दिया । विभिन्न जाति और धम क लोगो क साथ साथ रेलो और मोटरा में यात्रा, काम करने तथा रहने ने छूत-छात और खान पान क बहुत से बधना को नरम कर दिया है । इसके अतिरिक्त, नगरो में विभिन्न जातिया क लडके-लडकियों की साथ साथ शिक्षा तथा जातिभेद के विरुद्ध नये आन्दोलना न ऊच नीच की भावना को नष्ट करने में बडा योग दिया ह । अन्त में आर्थिक मजबूरिया ने जाति-व्यवस्था को नष्ट करने में अपनी प्रबल चोट की ह । एक पेशे से दूसरे पेशे के बीच गतिशीलता और निष्क्रमण पर्याप्त बढ़ गया है और कुछ अपवादो को छोड, प्रत्येक जाति और सम्प्रदाय के सदस्य आज नगरा में प्राय सभी पेशो और धधो में पाये जाते हैं । इसके अति-रिक्त, उन्नत रहन सहन ने अधिकाधिक नागरिको को शिक्षा की सुविधाए प्रदान कर वग भेद के अन्तर को भी पर्याप्त कम कर दिया ह ।

१८ धम का घटता प्रभाव ग्राम जीवन आविष्कारो और विज्ञान की कमी के कारण पर्याप्त रहस्यमय था । अत प्रकृति के रहस्यों और घटनाओ को सुलझाने में धम प्रमुख साधन था । नगरा में आर्थिक जीवन, घटनाओं और सामाजिक प्रश्ना को परीक्षण और तर्क से सुलझाने का प्रयत्न हुआ । रूढि का स्थान प्रयोग और विश्वास का स्थान परीक्षा ने लिया । किन्तु अभी भी ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जो वितर्क-परीक्षा के नीचे नहीं आ पाये हैं और वहा धार्मिक विश्वास का जोर है । सक्षेप में नगरो में धम का क्षेत्र निरतर सकुचित होता जा रहा है और उसका प्रभाव घटता जा रहा ह । इसका एक प्रधान कारण नगरा में गैर धार्मिक और वाह्य ऐहिक (Secular) प्रभावा की प्रधानता है ।

१९. राज्य शक्ति का केन्द्रीकरण और व्यक्ति के महत्त्व का ह्रास उद्योगी-

करण ने उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से श्रमिकों को पृथक कर, यातायात और सवादवहन के साधनों के विपुल विस्तार तथा शिक्षा और रेडियो, सिनमा और समाचार पत्रों के प्रसार तथा नये अविष्कारों ने राज्य को जनता के आर्थिक सामाजिक, यहा तक कि मानसिक क्रियाओं को, अधिकाधिक नियन्त्रित करने की क्षमता प्रदान की है। उद्योगीकरण और नगरों के विकास के बिना यह सभव न था। औद्योगिक देशों में राज्य द्वारा शक्ति का केन्द्रीकरण बहुत सरल हो गया है। यह शक्ति का केन्द्रीकरण विशेषत युद्ध के विनाशात्मक अस्त्र शस्त्रों के केन्द्रीकरण में व्यक्त हुआ है। इस प्रकार जिन देशों में राजनतिक दलों ने उद्योगीकरण से उत्पन्न परिस्थितियो और सामाजिक नियत्रण के आविष्कारों और टेकनीकों से लाभ उठाकर राज्य की शक्ति को केन्द्रित करने का प्रयत्न किया है वहा पर व्यक्ति का महत्व और मूल्य प्राय नष्ट हो गया है। अत्यधिक केन्द्रीकरण से रक्षा और व्यक्ति की स्वाधीनता का सरक्षण आज के औद्योगिक समाज की एक गम्भीर समस्या है। किन्तु जब कि एक ओर हम उद्योगीकरण और नगर-जीवन द्वारा उत्पन्न निकटता और निभरता का प्रयोग शक्ति के केन्द्रीकरण में कर सकते हैं, वहा दूसरी ओर हम उसे विकेन्द्रित भी कर सकते है। अत उद्योगीकरण के साथ स्थानीय और प्रादेशिक इकाइयों तथा जनता को विस्तृत अधिकार प्रदान कर केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति का प्रतिकार किया जा सकता है।

२० जीवन की तेज गति और सस्कृति की अत्यधिक गतिशीलता ग्राम्य-जीवन मन्द गति से चलता है। इसके विपरीत, नगरों में जीवन की गति बहुत तेज है। हर व्यक्ति बहुत व्यस्त और व्यग्र है। हर ओर विनाय दौड धूप और चपलता नजर आती है। ऐसा लगता है कि जस मनुष्य और मशीन में होड है। किसी को कारखाने पहुचने की जल्दी है तो किसी को दफ्तर का काम निपटाने की फिक्र है। हर काम के लिए समय की पाबन्दी है। समय की कमी है और मिनट मिनट का मोल है। इस अत्यधिक सक्रियता और गति का प्रभाव मनुष्य के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर अच्छा नहीं पडता। इसीलिए नगरों में पर्याप्त अधिक लोग अत्यधिक श्रम थकान और स्नायु रोगों से पीडित पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, औद्योगिक समाज और नगरों में, विशेषत भौतिक क्षेत्र म, निरन्तर वृद्धि और उन्नति होते रहने के कारण सस्कृति म बहुत शीघ्र और निरन्तर परिवर्तन आते रहते हैं। इस प्रकार उनके सदस्यों के जीवन क्रम और विचारों में अत्यधिक अस्थिरता और गतिशीलता रहती है। परिणामत, वहाँ सामाजिक विघटन के बीज सदव विद्यमान रहते हैं।

२१ प्रकृति से पार्थक्य और बच्चों के लिए खेल कूद के स्थान की कमी

उद्योगीकरण और नगरा के विकास ने यहा की जनता को प्रकृति से बहुत दूर फेंक दिया हैं। सूर्योदय और सध्या, चादनी और चैत की दुपहरी, बसन्त और हेमन्त के दृश्यों से नगरवासी वचित रहते ह। इसी प्रकार वनस्पति, पशु-पक्षिया स भी उनका सम्पर्क नहीं होता। नगरा में स्थान की भीषण कमी होती हैं, जिसस बच्चा को खुली हवा में स्वच्छन्द प्रकृति से आत्मीयता स्थापित करने का अवसर नही मिलता। मोटर ट्राम साइकिल इत्यादि गाडियो के डर से बच्चे स्वच्छन्द खेल-कूद और दौड धूप नही कर सकते। परिणामत, उनके व्यक्तित्व क विकास में रुकावट पडती हैं। नगर का जीवन मुक्त व्यक्तित्व और प्राकृतिक सौन्दर्यानुभूति के विकास में सहायक नही होता।

२२ व्यापारिक मनोरजन उद्योगीकरण और नगरो के विकास ने मनोरजन को धर्म परिवार और समुदाय से पृथक कर अनियन्त्रित अवस्था में व्यापारिक सस्थाओ अथवा नियन्त्रित अवस्था में सरकार के हाथा में द दिया हैं। इस प्रकार अस्वास्थ्यकर, अश्लील सस्ते या प्रचारात्मक मनोरजन की सभावनाए बढ गई ह। स्वस्थ, सामाजिक और सृजनात्मक मनोरजन का विकास आज के औद्योगिक समाज की एक गभीर समस्या बन गई हैं।

२३ असतुष्ट व्यक्तियों की वद्धि और जनता का भोगवादी दृष्टिकोण अत्यधिक उपभोग के साधन जुटा व्यक्तिया की इच्छाओ और आकाक्षाओ में असाधारण वृद्धि कर तथा रूढ़ि और परम्परा में विश्वास न हाने के कारण उद्योगीकरण तथा तज्जनित नगरो के द्रुत विकास और उससे उत्पन्न अव्यवस्थाओ ने नगरा में निराश और जीवन से असतुष्ट व्यक्तिया की सख्या में विपुल वृद्धि कर दी हैं। इसके अतिरिक्त अधिक उपभोग ने और अधिक उपभोग प्रवृत्ति को जागृत किया हैं। फशना के प्रतिदिन होने वाले परिवर्तनो में यह प्रवृत्ति अच्छी तरह व्यक्त हुई ह। जब कि गावा की जनता सामान्यत सतुष्ट और भाग्यवादी ह, नगरो की जनता अधिक असतुष्ट और भोगवादी हैं।

२४ अधिक अपराध की प्रवृत्ति उद्योगीकरण और तज्जनित नगरों के विकास न प्राचीन परम्पराओं को नष्ट कर दिया हैं तथा व्यक्तिगत व्यवहार के नियत्रण क पुराने साधना परिवार धर्म रिवाज इत्यादि के प्रभाव को बहुत कम कर दिया ह। इसके अतिरिक्त नगरा में व्यक्ति किसी एक घनिष्ठ समुदाय का सदस्य न हाने कठिनाई में पडने पर अन्य लोगों द्वारा सहायता न पाने, अधिक प्रलोभना क हाने, आसानी से न पकडे जाने और पहचाने जान तथा अपन लागा के सामने अपमानित होने क भय के अभाव तथा अपराध को छुपाने की सुविधा होने के कारण सरलतया अपराध की ओर अग्रसर होता ह। ग्राम और नगरा म हुए विभिन्न प्रकार के अपराध के आकडे इस बात को सिद्ध करते हैं कि नगरा में ग्रामा

की तुलना म अधिक अपराध होते ह। अपराधा का उन्मूलन नगरो की एक प्रमुख सामाजिक समस्या ह।

२५ भीड़ व्यवहार (Crowd Behaviour) की बढ़ती सभावनाए उद्योगीकरण और नगरा के विकास ने बहुत बड़ी सख्या में जनसमूहा को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है। नगर में रहने वाले विभिन्न वर्गों में आपसी एकता की अनुभूति बहुत कम होती है। इसक अतिरिक्त नगर के जीवन ने बड़ी सख्या में एसे व्यक्तियो को पदा कर दिया ह जो कि अपने जीवन से पर्याप्त असतुष्ट और निराश ह। उनके व्यक्तित्व का विघटन हो चुका ह। ऐसी स्थिति में जब कि उन पर परम्परागत नियत्रण की सस्थाओं का प्रभुत्व समाप्त हो चुका ह, उन्हें किसी भी समय वर्तमान अवस्था से मुक्ति की आशा दिला उत्तेजित किया जा सकता है। नये आविष्कारों के फलस्वरूप विकसित प्रचार के नये और प्रभावपूर्ण साधनों के प्रयाग न अवसरवादी नताओ और प्रचारको का काय और भी सरल कर दिया ह। माइक्रोफोन, रेडियो, टलीविजन और समाचार पत्रा और सिनमा की सहायता स आजकल आसानी से जनता को एक भीड की भाति भड़काया जा सकता ह। इस प्रकार आज के उद्योग प्रधान नागरिक समाज में भीड-व्यवहार की सभावनाए बहुत बढ़ गई ह। समाज सुधारको के लिए यह एक गंभीर स्थिति ह जिसका कि उन्हें प्रतिकार करना है।

उक्त विवेचन स स्पष्ट है कि उद्योगीकरण और नगरा के विकास न हमार जीवन के विभिन्न पहलुओं को गभीर रूप से प्रभावित किया ह। जहां उसने समाज का आर्थिक उन्नति की दिशा में आगे बढ़ाया ह, शिक्षा का विस्तार किया है चिकित्सा-सुविधाओ को उन्नत किया है, अन्धविश्वासा को नष्ट किया है, वहा उसने अनेक भीषण सामाजिक समस्याओ की सृष्टि की है।

सातवां अध्याय

समूह और सामूहिक व्यवहार

GROUP AND COLLECTIVE BEHAVIOUR

मनुष्य सामाजिक प्राणी जब हम कहते हैं कि व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं की प्रतिक्रिया द्वारा एक व्यक्तित्व का निर्माण करता है तो हम जिन प्रेरणाओं की ओर निर्देश करते हैं वह या तो व्यक्ति की आन्तरिक प्रेरणायें हैं उसके शरीर की मांगें और या वाह्य प्रेरणायें हैं। वाह्य प्रेरणाओं में भी वह प्रेरणाएं जो दूसरे मनुष्यों द्वारा या दूसरे मनुष्यों के संसर्ग के प्रभाव द्वारा प्राप्त होती हैं, सामाजिक प्रेरणाएं कहलाती हैं परन्तु जो भौतिक पदार्थों से प्राप्त होती हैं वे सामाजिक नहीं हैं। हम अपनी आन्तरिक शारीरिक प्रेरणाओं की प्रतिक्रिया समाज के आश्रय में और समाज की सहायता से करते हैं। हम उन व्यवहारों को अपनाते हैं जो हमने परिवार में मित्रों में सभाओं में सीखे हैं। भोजन करने सोने, मल त्याग करने ऐन्द्रियिक तृप्ति करने आदि सभी चेष्टाओं में हम दूसरों से सीखे हुए दूसरों द्वारा बताए गए साधनों की सहायता से प्रतिदिन इन प्रेरणाओं की प्रतिक्रिया करते हैं। प्राकृतिक या भौतिक वस्तुओं और घटनाओं, उदाहरणार्थ जंगल में हिंसक पशुओं की उपस्थिति अथवा मार्ग में वर्षा प्रारम्भ होने या गिर पड़ने के प्रति हमारी प्रतिक्रियाएं भी, समाज में सीखे हुए व्यवहारों द्वारा निर्धारित होती हैं।

व्यक्तित्व के विकास में समाज का कितना हाथ है यह अपने प्रतिदिन के व्यवहार से समझ लेना कठिन नहीं है। तब यह सामाजिक व्यवहार क्या है, कब हम समूहों में कुछ सीखते हैं कैसे दूसरे लोगों का आश्रय लेकर जीवन व्यतीत करते हैं और कैसे हमारे विचारों, भावनाओं, आकांक्षाओं और आदर्शों पर सामूहिक जीवन का प्रभाव पड़ता है— इन सबकी व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है।

सामाजिकता सहज प्रवृत्ति (Instinct) नहीं मनुष्य समाज में क्यों रहता है? क्या जैसा कि मैक्डूगल ने कहा है मनुष्य के मन में सामाजिकता की कोई सहज प्रवृत्ति है जो उसे दूसरे लोगों से मित्रता बढ़ाने और मेल जोल करने पर बाध्य करती है? हम देखते हैं कि छोटे बच्चे उन्हीं से अधिक हिल जाते हैं जो उनके भरण-पोषण में सहायक होते हैं। दो महीने के छोटे बच्चे केवल अपने माता-पिता को देखकर ही मुस्कराते हैं, क्योंकि उनकी शारीरिक आवश्यकताओं को वे पूरा

करते हैं। वे दूसरे छोटे बच्चों या पशुओं को देखकर नहीं मुस्कराते। छोटे बच्चों की संगति की वे उपेक्षा करते हैं। यही नहीं, यह भी देखा गया है कि वे ऐसी संगति को नहीं चाहते, और इसीलिए किसी खिलौने इत्यादि वस्तु को बीच में रखकर ही उनमें सामूहिक व्यवहार बढ़ाया जा सकता है। इससे स्पष्ट है कि इसका कारण खिलौना या खिलौना के प्रति प्रतिक्रिया ही है, दूसरे बच्चों के प्रति प्रतिक्रिया नहीं।

मानव शिशु की असहायावस्था से सामाजिकता का उदय यदि सामाजिक व्यवहार का कारण कोई मानुषिक सहज प्रवृत्ति नहीं है, तो फिर शिशु इतना सामाजिक व्यवहार क्यों दिखाई देता है? इसका कारण शिशु का असहाय होना है और हमारे शरीर की मांगों—चालकों (Drives) का केवल समाज में ही पूरे हो सकना है। क्योंकि शैशव से ही शिशु दूसरे मनुष्यों को अपनी सहायता करते देखता है, इसलिए वह उनके प्रति प्रतिक्रिया प्रदर्शित करता है, और यही सामाजिकता का आधार है। जंगलों में मिले विजन पोषित (Feral) बच्चों के व्यवहार के अध्ययन से यह सिद्ध हो चुका है कि वे 'सामाजिक नहीं थे। मनुष्य के प्रति सामाजिक व्यवहार न करने पर भी वे अपने को पालने वाले पशुओं के प्रति सामाजिक' थे। बत्तखों के बच्चों तक का यह व्यवहार है कि यदि उनको भोजन देने की जिम्मेदारी मनुष्य सभाल ले, तो वे बत्तखों के पीछे न दौड़कर, मनुष्य के पीछे दौड़ते हैं। हमारे सामाजिक व्यवहार का कारण भी ऐसा ही है।

सामाजिक व्यवहार के साधन

अन्तःक्रिया (Inter action) और सामीप्य जब भी दो मनुष्यों का सम्पर्क होता है, वे एक दूसरे को अन्तःप्रेरित करते हैं। परन्तु यदि उनका अन्त उद्दीपन (Inter stimulation) केवल एक दूसरे को देख लेने तक ही सीमित है, तो सामाजिक व्यवहार का विकास नहीं होगा। उसके लिए दोनों मनुष्यों में कुछ समानता का होना आवश्यक है एक भाषा भाषी होना एक हित लिए होना, एक क्रिया में रत होना—इनमें से किसी एक गुण का होना आवश्यक है ताकि उनका सम्बन्ध क्रियाशून्य न हो, बल्कि उनमें अन्त उद्दीपन और अन्त क्रिया हो सके।

अन्त क्रिया उद्दीपन प्रतिक्रिया उद्दीपन की इकाई सामीप्य और अन्त क्रिया यह दोनों सामाजिक व्यवहार के लिए आवश्यक हैं। यह अन्त क्रिया, एकांगी नहीं होती। आलपार्ट ने इसे उद्दीपन प्रतिक्रिया की शृंखला बताया है, परन्तु यह उद्दीपन प्रतिक्रिया की ऐसी इकाई है, जिसमें उद्दीप्त की प्रतिक्रिया से उद्दीपक को प्रेरणा मिलती है और प्रेरक द्वारा उसका उत्तर प्रेरित के लिए दूसरा उद्दीपन बन आता है। उदाहरणस्वरूप दो व्यक्ति मिले, एक ने दूसरे से कुछ प्रश्न किया,

दूसरे के लिए यह उद्दीपन था। उसने उसका उत्तर दिया पहले के लिए यह उत्तर उद्दीपन बना। उसका कार्य फिर दूसरे को उद्दीपन बना। पहले ने प्रश्न पूछा था, तो उसका उद्दीपन भी यह था कि उसने दूसरे को देखा था। इसी उद्दीपन-प्रतिक्रिया उद्दीपन का श्रृंखला को बाइस ने अन्त क्रिया कहा है—ऐसी अन्त क्रिया जिसमें प्रेरणा और प्रतिक्रिया का भेद मिट जाता है।

हमारे अध्ययन का आधार व्यक्ति नहीं, समष्टि जब हम व्यक्तित्व को *प्रेरणाओं की प्रतिक्रिया कहते हैं, तो हमें उद्दीपन प्रतिक्रिया के अर्थ को स्पष्टतया* समझ लेना होगा। व्यक्तित्व अब अन्त क्रियाओं का फल समझा जायेगा। यह अन्त क्रिया कुछ विशेष अवस्थाओं और परिस्थितियों में होगी, जिनमें व्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति भी सम्मिलित होंगे या दूसरों द्वारा प्रभावित अथवा रचित विषय उपस्थित होंगे। इस लिहाज से हर एक अवस्था सामाजिक होगी और व्यक्तित्व सामाजिक अवस्था का अंग होगा।

ऐसी अन्त क्रियात्मक अवस्थाओं का अध्ययन ही व्यक्ति का और व्यक्तियों का समाज का और सामाजिक व्यवहार का अध्ययन है। अत हमारे अध्ययन का विषय व्यक्ति न होकर, यह अन्त क्रियात्मक अवस्थाएं सामाजिक अवस्थाएं होंगी। हमारे अध्ययन का विषय समाज होगा। यह सामाजिक अवस्थाएं एक दूसरे पर इस तरह आती हैं कि समस्त परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए इनके घटना-क्रम का अध्ययन करना होता है।

सामाजिक अन्त क्रिया के साधन और शर्तें

यह पहले ही कहा जा चुका है कि सामीप्य सामाजिक व्यवहार की पहली शर्त है। पर उसके लिए केवल यही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ (१) एक भाषा, (२) एक-दूसरे के प्रति समवस्थापन (Accommodation), (३) जिन बातों में समवस्थापन न हो पाए उनमें अन्त सम्बन्ध करने की इच्छा और (४) उद्देश्य की एकता भी आवश्यक है। उदाहरणार्थ यदि ऐसे दो व्यक्ति मिलते हैं, जो एक दूसरे की भाषा नहीं समझते, तो उनका सम्बन्ध *अल्पकालीन ही* होगा और उनमें सामाजिक अन्त क्रिया का विकास नहीं हो पाएगा। इसी प्रकार यदि दो व्यक्ति एक भाषा भाषी होने पर भी, एक-दूसरे से बोलना न चाहें परस्पर मुंह फेरे रहें तो यह सामूहिक व्यवहार होने पर भी उनके सम्बन्ध विकसित न होंगे। इसी प्रकार और कितनी ही बातों में समानता होने पर भी, यदि दो व्यक्ति धर्मभेद या वर्गभेद के कारण एक दूसरे से पृथक रहें और इन बातों में परस्पर कुछ समवस्थापन करना ही न चाहें तो भी यही परिणाम होगा।

मनोवैज्ञानिक और शारीरिक अवस्थाओं का प्रभाव, इसी के साथ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि समूह के सदस्यों की शारीरिक और मानसिक अवस्था

गया है। यदि एक समूह के सभी सदस्य नशे में है, तो कोई उत्तेजक घटना वह सामूहिक व्यवहार विकसित नहीं कर सकेगी, जो साधारणत विकसित होना चाहिए। यदि उनमें से कोई सदस्य शोकग्रस्त हो, तो शायद वह सामूहिक व्यवहार में भाग नहीं लेगा, और चार शोकग्रस्त मित्र किसी मेले में जाकर सामूहिक अन्त क्रिया का अग नहीं बन पाएगे।

सामाजिक अन्त क्रिया के दो तत्त्व—सदस्यता और नेतृत्व किसी भी अन्त-क्रियात्मक अवस्था का हम दो दृष्टिकोणो से विश्लेषण कर सकते हैं व्यक्तियो पर उसका प्रभाव क्या होगा और अवस्था का प्रकार क्या होगा। इसके लिए दो बातो का ज्ञान आवश्यक है

(१) अन्त क्रियात्मक अवस्था का उदय कैसे हुआ और उसके सदस्य कौन हैं? इनका निर्धारण पहले से ही जनरीति और सांस्कृतिक प्रकार द्वारा हो चुका होता है या अकस्मात् होता है?

(२) अन्त क्रियात्मक अवस्था का नेतृत्व, क्या संस्कृति द्वारा या परीक्षण और सुधार की चेष्टा द्वारा या अकस्मात् निर्धारित हुआ है?

यदि समूह का उदय, सदस्यता और नेतृत्व पहले से ही निर्धारित है, तो ऐसे समूहो का जन्म होगा जो अपने कुछ नियमो और जनरीतियो द्वारा नियन्त्रित होगे, इनमें राजनैतिक, धार्मिक और व्यापारिक समूहो का समावेश होगा। परन्तु यदि सदस्यता निर्धारण आकस्मिक है तो सामूहिक व्यवहार भी आकस्मिक होंगे और ऐसे समूह भीड़ और उत्तेजित भीड़ की कोटि में आयेंगे।

समूहों के भेद

संस्कृति द्वारा निर्धारित समूह और आकस्मिक समूह इस प्रकार हम देखते है कि समूहो के दो बड़े प्रकार हैं, एक वह जो एक उद्देश्य एक रीति और एक नेतृत्व को लेकर और सदस्यता के नियम बनाकर चलते है, और दूसरे वह जो आकस्मिक होते हैं। इसी प्रकार समूहो के और भी कई अलग-अलग भेद किए गए हैं।

समूह (Group) एक समूह एक से अधिक व्यक्तियो का वह सम्मिलन है जिसके सदस्य अन्त उद्दीप्त (Inter-stimulated) हो और उनमें सामाजिक अन्त क्रिया (Inter action) होती हो। यही समूह व्यक्ति के व्यवहार शिक्षा, प्रेरणा, इत्यादि को प्रभावित करते हैं। परिवार राजनैतिक दल क्लब पाठशाला, मित्र मण्डली यह सभी एक प्रकार के समूह हैं और कम या अधिक मात्रा में, हमारे व्यक्तित्वो पर प्रभाव डालते हैं।

प्राथमिक हितों की पूर्ति और स्थायित्व में अन्तर समूहों के अन्तर का कारण समूह भिन्न भिन्न प्रकार के होते है। औग्बर्न ने उनके अन्तर का आधार निम्न

तत्वो को बताया है (१) वे किन प्राथमिक हितो की पूर्ति करते हैं ? और (२) उनके स्थायित्व का परिमाण क्या है ? एल्वुड ने दो प्रकार के समूह बताए ह । वे समूह जो सस्कृति द्वारा स्वीकृत हैं और दूसरे वह समूह जिनको सस्कृति स्वीकार नही करती । चोरो के दल, क्रान्तिकारियो के दल, और अपराधियो के समूह दूसरी प्रकार क समूह हैं ।

प्राथमिक और माध्यमिक समूह (Primary and Secondary Groups) कूले ने भी समूहा को दो श्रेणियों में बांटा है, प्राथमिक और माध्यमिक । प्राथमिक समूह वह समूह है जिसमें हम रहते हैं और जिसके अन्य सदस्यो के हम प्रतिदिन सम्पर्क में आते रहते ह और जिससे हम अपने प्राथमिक हिता की पूर्ति के लिए जुड़े हुए ह । चूकि ऐसे समूह हमारी प्रेरणा के प्रधान साधन होते हैं, इसलिए हमारे जीवन और व्यक्तित्व पर उनका प्रभाव मुख्य होता है । परिवार एक ऐसा ही प्राथमिक समूह है । ग्राम मुहल्ला पाठशाला और बच्चो के हमजोली व खेल के साथी भी प्राथमिक समूह हैं । ऐसे समूहा में हम लोकनिन्दा से डरते हैं, आर साथ ही सम्मान की कामना करते हैं ।

राजनैतिक दल, धार्मिक दल क्लब और गोष्ठी माध्यमिक समूह हैं । हम किसी एक या अधिक हितो की प्राप्ति के लिए इन समूहो के अग बनते हैं । हमारे चरित्र पर इनका प्रभाव न्यून होता है क्योकि इनके सदस्यो में परस्पर साक्षात सम्बन्ध कम होता है ।

दोनों समूहों की तुलना जब मानव सस्कृति अधिक सरल थी, छोटे छोटे समुदाय थे तब प्राथमिक समूहा की प्रधानता थी और व्यक्ति के व्यक्तित्व पर समाज और समूह का प्रभाव अपरिमित था । पर सस्कृति की जटिलता और मानव सम्बन्धो की बहुलता न माध्यमिक समूहा को जन्म दिया और समाज में उनका प्राधान्य कर दिया है । माध्यमिक समूह का वास्तविक तत्व सम्पर्क की अस्थिरता के अनुभव में ह । वे समूह जो अपने सदस्यो को ऐसे सम्पर्क का अनुभव कराते हैं जिनमें घनिष्ठता का अभाव हो माध्यमिक समूह होते हैं । इसकी तुलना में प्राथमिक समूह में व्यक्तियो का पारस्परिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ व सौहार्दपूर्ण होता है । कूले के अनुसार वह "मानव स्वभाव के पोषण-गृह" होते ह । शिशु यहीं से न्याय महत्वाकाक्षा, प्यार, सहिष्णुता इत्यादि भावो को सीखकर 'मानव' बनते हैं । इनका वास्तविक सार घनिष्ठता और व्यक्तियो के विलयन में होता है ।

विशिष्ट (Disjunctive) और सीमान्तरित (Overlapping) समूह योगार्डस के मत में समूहों के विशिष्ट और सीमान्तरित दो भेद हैं । एक समय में एक व्यक्ति केवल एक ही विशिष्ट सामाजिक समूह का सदस्य होता ह पर इसके साथ ही वह कितने ही अन्य अलग अलग समूहों का सदस्य हो सकता है । एक विशेष

राष्ट्र का सदस्य होते हुए भी वह कई अन्तर्राष्ट्रीय समूहों का सदस्य हो सकता है। राष्ट्र एक विशिष्ट प्रकार के समूह हैं, और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं सीमान्तरित प्रकार के समूह हैं।

सामाजिक, छद्म-सामाजिक (Pseudo social) और असामाजिक (Asocial) समूह इसी प्रकार बोगार्डस ने विभिन्न समूहों को सामाजिक, छद्म सामाजिक और असामाजिक कहा है। यह नाम उसने उन समूहों के दूसरे समूहों के प्रति व्यवहार को देखकर दिये हैं। सामाजिक जीवन में अपना पूरा योग देनेवाले समूह सामाजिक समूह हैं। एक अलग ग्राम या अपने तक ही सीमित एक कल्ब एक असामाजिक समूह है। ऐसे समूह जो सामाजिक जीवन में भाग तो लेते हैं, परन्तु केवल स्वार्थ या अपने लाभ के लिए, वह छद्म सामाजिक कहलाते हैं। यह समूह दूसरे समूह के सहारे जीते हैं, अतः परजीवी हैं।

व्यक्तिगत और सार्वजनिक समूह (Private and Public Groups) गिडिंग्स ने समूहों को व्यक्तिगत समूह और सार्वजनिक समूह, इन दो वर्गों में बांटा है। ब्राह्मण जाति एक व्यक्तिगत समूह है, और विधानमण्डल व परिवार भी ऐसे ही समूह हैं। इन समूहों की सदस्यता कुछ विशिष्ट व्यक्तियों के लिए ही होती है। पर ऐसे समूह जिनके सभी लोग सदस्य बनकर सामूहिक जीवन में योग दे सकते हैं, सार्वजनिक समूह कहलाते हैं। प्रायः सभी अनियन्त्रित समूह जैसे कि भीड़ और जनता दूसरी कोटि में आते हैं। व्यक्तित्व पर व्यक्तिगत समूह का प्रभाव अधिक होता है।

दृश्य और अदृश्य समूह (Visible and Invisible Groups) चेपिन के अनुसार समूह के दृश्य और अदृश्य यह दो भेद हैं। दृश्य समूह वह समूह हैं जो अपना कार्यक्रम खुले रूप में करते हैं जैसे कि परिवार या विधान-सभा। अदृश्य समूह वह हैं जो गुप्त रहकर कार्य करते हैं जैसे कि चोरों, ठगों और क्रान्तिकारियों के समूह। अदृश्य समूह वर्तमान समाज के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं और वह विद्यमान सामाजिक प्रणालियों और व्यवस्थाओं को तोड़ना चाहते हैं और तोड़ते हैं।

अन्तःसमूह व बहिःसमूह (In-group and Out group) समनर ने समूहों को अन्तःसमूह और बहिःसमूह इन दो भागों में बांटा है। जो समूह हमारे अपने होते हैं, जिनके हम अंग होते हैं और जिनमें 'हम एक हैं' की भावना होती है अन्तःसमूह हैं। उन समूहों से हम अपने मत, आचरण, मूल्य और आदर्श ग्रहण करते हैं। इन समूहों से पृथक समूह बहिःसमूह हैं। हम उनको परायेपन और कभी कभी विरोध और उपेक्षा की भावना से देखते हैं। उनकी तुलना में अपने अन्तःसमूह को प्यार करना स्वाभाविक है और इसी को जाति अहंकार (Ethnocentricism) कहा गया है।

वहिःसमूह के प्रति उपेक्षा या विरोध अन्त समूह के साथ व्यक्ति के सात्मीकरण और स्नेह को बढा देता है। डयूश ने अपने एक अध्ययन से, जिसमें कि कुछ व्यक्तियो के सम्मुख अलग-अलग लिपि पद्धतिया रखी गई यह देखा कि सभी व्यक्तियो ने अपने समूह की पद्धति को ही पसन्द किया। यही सामान्य व्यवहार और अन्य परीक्षणो में भी देखा गया है। इसका कारण प्रत्येक व्यक्ति पर उसके अपने समूह का प्रबल प्रभाव होता है।

समूह और व्यक्तित्व (Group and Personality)

व्यक्तित्व सामूहिक प्रेरणाम्रा का प्रत्युत्तर (Response) मनुष्य के व्यक्तित्व के दो भाग कहे जा सकते है। एक भाग व्यक्ति की अपनी विशिष्टता है जो शारीरिक तत्वा आनुवशिकता (Heredity), ग्रन्थिस्रावा (Glandular Secretion) और स्वास्थ्य से निर्मित होता है। दूसरा भाग सामाजिक है जो कि जिन समूहो में हम जन्म लेते हैं जिनसे शिक्षा पोषण और प्रेरणा लेते है उनसे निर्मित होता है। उनके आदश हमारे आदश हो जाते है उनके मान्य व्यवहारो को हम सुझाव अनुकरण या भय के कारण अपना लेते हैं और उनसे अपनी शारीरिक और दूसरी मांगा की पूर्ति करते है। किसी न ठीक ही कहा है इन्ही द्वारा प्रस्तुत उद्दीपको की प्रतिक्रियाए हमारे व्यक्तित्व को बनाती है। इस तरह व्यक्तित्व का बहुत बडा भाग सामाजिक है।

सहवर्ती समाज और व्यक्तित्व निरन्तर प्रस्तुत होने रहने वाली सामाजिक स्थितियो के समूह का नाम सामूहिक जीवन है। हम इनमें से प्रत्येक सामाजिक स्थिति को अलग अलग रूप में देखते प्रभावित करते और उसमे प्रभावित होते है। इन सामाजिक स्थितियो को हम अपने मन में किस रूप में देखते हैं यह हमारे प्रत्युत्तर या व्यवहार को निर्धारित करता है। हमारा दृष्टिकोण हमारे पुराने अनुभव, ज्ञान और शिक्षा का प्रभाव है जो कि हमें अपनी पहली सामाजिक स्थितियो के प्रभाव से प्राप्त हुआ है। कूले के कथनानुसार समाज और व्यक्तित्व सहवर्ती हैं और आत्म चेतना और सामाजिक चेतना एक साथ ही उदित और एक साथ ही विकसित होती हैं। समूह के बिना दोनो में से किसी का भी विकास नहीं हो सकता।

सामूहिक मान्यताए और आदर्श व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण अग चूकि हम एक ऐसे सामूहिक जीवन में जन्म लेते हैं जो हमसे पहले ही विद्यमान होता है और जिसके अपने विकसित कानून जायज रिवाज रीतिया और मूल्य होते हैं, इसलिए हम पर आरम्भ से ही जब कि हम नितान्त असहाय होते हैं समूह का प्रभाव पडने लगता है। सोरोकिन के शब्दा में 'जन्म से लेकर चिता तक हम सगठित समूहो में सास लेते हैं पलते है और क्रियाओ और प्रतिक्रियाओं के निरन्तर घात प्रतिघात हमारे शरीर, मन, व्यक्तित्व और चरित्र का रूप-निर्धारण करते है।'

जिस प्रकार की रूढ़ियां समूह में प्रचलित होती हैं उसी प्रकार के प्रभाव हमारे व्यक्तित्व का अंग हो जाते हैं। अमेरिका के प्रतियोगितापूर्ण व्यक्तिवादी ढांचे में जन्म लेने और पलने वाले व्यक्तियों को सहयोग-संचालित अर्थ-व्यवस्था अस्वाभाविक प्रतीत होती है। जूनी कबीले में जन्म लेने वाले व्यक्ति सहयोग को अपने चरित्र का अंग बना लेते हैं और उन्हें क्वाक्वितुल लोगों का व्यवहार, जिसमें सामाजिक विषमता और व्यक्तिगत लाभ और स्पर्द्धा ही सामाजिक आदर्श हैं शायद अस्वाभाविक लगता है। इसीलिए एक व्यक्ति को समझने के लिए उसके समूह का विश्लेषण करना आवश्यक है। जो व्यक्ति सामूहिक मान्यताओं और नीतियों को अपने आचरण में आत्मसात् नहीं कर लेते, वे अपराधी और अनैतिक समझे जाते हैं और उनका व्यक्तित्व विघटित रहता है। पर वे ही लोग किसी दूसरी सामूहिक व्यवस्था में मान्य, अग्रगण्य और नेता भी माने जा सकते हैं। परिणामतः किसी भी सामूहिक मान्यता को एकदम बुरा कह देना गलत होगा। एक समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से तो सारे समूह के विकास को समझकर ही हमें उसके प्रसंग में अच्छे-बुरे का निर्णय देना ठीक होगा।

व्यक्तित्व का सामाजिक प्रतिष्ठा की इकाई के रूप में विकास—वारगस के अनुसार व्यक्तित्व का उदय 'अन्तःउद्दीपन द्वारा, जो सामूहिक और सामाजिक जीवन की विशेषता है, व्यक्तियों का निश्चित और सामाजिक प्रतिष्ठा की इकाइयों के रूप में विकसित होना है।' व्यक्तित्वों में अन्तर आनुवंशिकता, शारीरिक तत्त्वों और सामाजिक अवसरों और प्रेरणाओं की विभिन्नता के कारण होता है। इन प्रारम्भिक अन्तरों को उनका सामाजिक वातावरण अधिक विस्तृत कर देता है।

असाधारण बालक अनेक समूहों के अंग—अपनी सामाजिक प्रवृत्ति की मात्रा की दृष्टि से व्यक्ति बहुत भिन्न भिन्न होते हैं। कई व्यक्ति अनेक समूहों में भाग लेते हैं और कुछ का मेल जोल केवल एक दो समूहों तक ही सीमित रहता है। टरमन के अनुसार मेधावी बालक साधारण बालकों की अपेक्षा अधिक समूहों के अंग होते हैं। चेपिन ने अमेरिका के विश्वविद्यालयों के छात्रों का अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला है कि अच्छे विद्यार्थी और कालिज जीवन के नेता विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक समूहों में भाग लेते हैं। साधारणतया, करीब एक तिहाई विद्यार्थी शिक्षा के बाहर के कार्यों में विशेष दिलचस्पी नहीं लेते परन्तु मेधावी विद्यार्थियों का सात प्रतिशत भाग ही ऐसा होता है।

कुछ विद्वानों के अनुसार समूहों में भाग लेने की दृष्टि से व्यक्तियों में व्यक्त होने वाले इन अन्तरों का कारण आनुवंशिक होता है। पर अधिकतर बच्चों के अपने अनुभवों का इसमें बड़ा हाथ रहता है। आरम्भ से ही बच्चे का दबाया जाना घृणा पाना उपेक्षित होना अंगहीनता शारीरिक त्रुटि कुरूपता या पढ़ने में

अधिक रुचि, आदि यह सब कारण ऐसे अतर पैदा कर देते ह ।

समूह स्फूर्ति और उत्साह का वर्धक शिशु और बालक स ... व्यवहार करते हैं वह शायद अकेले में नही करते । समूह में दूसरो की उपस्थिति बच्च की प्रतिष्ठा पाने की भावना को जगाकर उसकी स्फूर्ति को बढा देती है । ट्रेविस के परीक्षण में पाच में से चार बच्चा न अकले में काम करने की अपेक्षा समूह में अधिक अच्छा काम किया । इसमें भी यदि समूह के दूसरे व्यक्ति उनका न देख और जाच रहे हा, बल्कि साथ मिलकर काम कर रहे हो, तो अकेले से भी अधिक अच्छा काम होता ह ।

सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)

लोक निन्दा या लोक सम्मान व्यक्तित्व के विकास और निर्धारण म सामूहिक निन्दा सामूहिक प्रेरणा और प्रतिष्ठा का बहुत बडा हाथ रहता है । दूसरे लाग हमारी प्रतिष्ठा करें हमारा सम्मान करें यह भाव हमें सामाजिकता और सामूहिक आदर्शों का पालन करने की आर अधिक प्रेरित करता ह । समूह की रीतियो को भग करने म निन्दा, अस्वीकृति और घृणा मिलेगी इसलिए हम ऐसी बात नही करते जिनको कि समूह बुरा मानता ह और क्याकि समूह हमें एक सुरक्षा की भावना देता ह इसलिए भी हम उसके विरोधी काय नहीं करते ।

संस्कृति और सामूहिक नियन्त्रण हमारी संस्कृति जिसमें हम जन्म लेते ह कुछ आदर्शों का स्वीकार करके प्रतिष्ठा देकर हमारे व्यक्तित्व को उन आदर्शों को अपने जीवन का लक्ष्य बनाने और अपने व्यवहार का मापदण्ड बनाने की प्रेरणा देती है । किस क्षेत्र में उन्नति करने पर हमें अधिक सम्मान प्राप्त होगा इसका निधारण सस्कृति या समूह द्वारा ही होता है ।

आज से तीन सौ वर्ष पहले जिस वैज्ञानिक दृष्टिकोण का अपनान पर ब्रूना को दण्ड दिया गया और गलिलियो पर मुकदमा चलाया गया उसी दृष्टिकोण को अपनाने वाले आइस्टाइन आज ससार क सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियो में गिने जाते हैं । हमारा समाज भी आज हमें ऐसे ही दृष्टिकोण को अपनाने की ओर अग्रसर करता ह । अपने ही देश में भिन्न भिन्न समयों में सस्कृति द्वारा अलग-अलग क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का सम्मान दिया गया ह । साधारण शिक्षित वर्ग सेना के बडे पदाधिकारियों का पहले जिस तुच्छता की दृष्टि से देखता था, आज उसके विपरीत, कहीं अधिक सम्मान की दृष्टि से देखने लगा ह आज वे स्वतन्त्रता क रक्षक समझ जाने लग ह ।

एक ही समय में अलग-अलग समूह अलग अलग आदर्शों का पालन करते हैं । व्यापारिक समाज में पैदा हुए बच्चों के आदर्श प्राय प्रेमचन्द और प्रसाद न होकर शायद बिडला और डालमिया होगे । परन्तु लेखकों के बच्चे इन आदर्श

पुरुषा की ओर कुछ उपेक्षा से ही देखेंगे, जब कि प्रेमचन्द या प्रसाद बनने की महत्त्वाकांक्षा उनके लिए अधिक स्वाभाविक होगी। जो बालिका अपने सौन्दर्य, हाव भाव स्वतन्त्र विचार और मोहक स्वर के कारण ही अपने ग्राम और परिवार की निन्दा का कारण बनती है वही अवसर प्राप्त होने पर तथाकथित सभ्य समाज में सम्मान की पात्री हो सकती है। प्रत्येक समाज में साधारणता से कुछ ऊँचे नैतिक स्तर के व्यक्ति माननीय समझे जाते हैं परन्तु असाधारण रूप से उन्नत नैतिकता वाले व्यक्ति सम्मान नहीं पाते।

नियम-पालन और व्यवस्था कायम रखने के लिए समूह व्यक्तियों पर जो प्रभाव डालता है वह सामाजिक नियन्त्रण है। यह नियन्त्रण अव्यवस्थित स्तर पर प्रयुक्त होता है। सामूहिक रूढ़िया आदर्शों और नैतिक मान्यताओं का अनुसरण कराने के लिए जनमत चर्चा और निन्दा का आश्रय लिया जाता है। गैम के अनुसार "सहानुभूति सामाजिकता, न्याय भावना और निन्दा अच्छी परिस्थितियों में स्वय ही एक सच्चा स्वाभाविक और अकृत्रिम वातावरण स्थापित करने में समर्थ होती हैं।" गांवों में यही सामान्य सामाजिक नियन्त्रण बहुत प्रभावी होता है।

यहा यह कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि समूह अपने सदस्यों का सामूहिक रूप में सबसे योग्य नियन्त्रक होता है। किसी बाहर के शासक या व्यवस्थापक से अधिक, अपने समूह में सम्मान की लालसा मनुष्यों को साधारण रीतियों का पालन करने की अपेक्षतया अधिक प्रेरणा देती है। बच्चों व सुधार गृहों के नये अनुभव भी इसी धारणा की पुष्टि करते हैं।

सामाजिक नियन्त्रण के कारण साधारणता की ओर झुकाव इस सामाजिक नियन्त्रण के परिणामस्वरूप असाधारणता की सीमा छूने वाले व्यक्तित्वों का विकास रुकता है और व्यक्तित्व साधारणता की ओर उन्मुख रहता है। परीक्षा के लिए एक समूह के सदस्यों की एक विषय पर अलग अलग धारणाएं लिख डाली गईं और उसके पश्चात् समूह में सबके सामने भी उन्हें अपना मत देना पड़ा, समूह में असाधारण मत बहुत न्यून हो गए। यह तो प्रति-दिन के अनुभव की बात है कि हम समूह में आम तौर से अपनी निम्न या बहुत आदर्शवादी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करते। इसीलिए मनुष्यमात्र के व्यक्तित्वों की एक मापक रेखा—एक ऐसी रेखा होती है—जो केन्द्र की ओर अधिक अग्रसर और अधिक उन्मुख होती है। इससे सिद्ध है कि सामूहिक दबाव के कारण हम सामान्यता और साधारणता की ओर अधिक झुकते हैं।

सामूहिक चेतना या आत्मा (Collective Consciousness or Soul) के सिद्धान्त भ्रान्तिपूर्ण पर हम सबका यह तात्पर्य नहीं है कि समाज

में कोई एक पृथक आत्मा है जैसा कि हीगल और वुट का मत है, या सामूहिक चेतना या इच्छा शक्ति जैसा कोई पृथक वस्तु है, जैसा कि मक्डूगल और दुरखाइम की धारणा है। समूह अलग-अलग व्यक्तियों के सम्मिलन से बना है। जैसे हार्मोनियम के अलग अलग स्वर मिलकर एक संगीत बनाते हैं उसी प्रकार अन्त क्रियात्मक अवस्था भी, जो सामूहिक व्यवहार का आधार है, एक निरन्तरता और प्रणालीगत रूप लिए होती है। परन्तु न तो हम संगीत को एक आत्मा और चेतनायुक्त इकाई मान लेते हैं जिसमें अलग अलग स्वरो का कोई अस्तित्व न हो, और न ही हम समाज को एक आत्मा समझकर व्यक्ति के अस्तित्व से इन्कार कर सकते है।

हमें यह नही भूलना चाहिए कि सम्पूर्ण सामूहिक व्यवहार व्यक्तियों के व्यवहारों द्वारा ही उदित होता है और यह व्यवहार प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र और विशिष्ट व्यक्तिगत रूप में करता है। हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि व्यक्ति एक वस्तु है एक सत्य है। सामूहिक शिक्षण, अभिग्रहण (Conditioning), सुझाव (Suggestion) अनुकरण (Imitation) दबाव इत्यादि जिन साधनों से वह अपना प्रभाव व्यक्ति पर डालता है, वे सभी साधन प्रत्येक व्यक्ति को उसके अपने विशेष व्यक्तित्व के अनुसार ही प्रभावित कर सकते हैं। समाज को किसी अवास्तविक, अलौकिक या रहस्यमयी सत्ता या चेतना से विभूषित करना समाज के अध्ययन को वैज्ञानिक अध्ययन के दायरे से दूर फेंक देना है। हमें तो उन वास्तविक प्रक्रियाओं का अध्ययन करना चाहिए जिनके द्वारा व्यक्ति समूह का अंग बन जाता है।

समाज और सहजप्रवृत्ति (Instinct)

मानव व्यवहारों में कुछ सामान्य प्राथमिक आधारभूत प्रवृत्तियां

सभी व्यक्तियों के सभी प्रकार के व्यवहारों को कुछ ऐसी प्राथमिक और आधारभूत इकाइयों में बाटा जा सकता है जो उन व्यवहारों के जन्म, विकास और प्रकार पर प्रकाश डाल सकें। सभी व्यक्ति कुछ समानता लिए हुए होते है और सभी घृणा प्रेम क्रोध काम वासना, भूख प्यास और निद्रा के वश होकर व्यवहार करते है। कुछ ऐसी इकाइयां जो सभी मनुष्यों में विद्यमान हों और जो सभी के व्यवहार का आधार हों उन्हें सार्वजनिक और सामान्य मानकर मानव व्यवहार के अध्ययन का आधार बनाया जा सकता है।

यह तो ठीक है कि सभी व्यक्तियों के शरीरों में कुछ ऐसे चालक होते है जिन्हें शरीर की आवश्यकताएं उद्दीप्त करती है। भूख निद्रा इत्यादि उनमें ही गिने जा सकते है। इसी प्रकार कुछ ऐसे उद्वेग (Emotions) भी है जैसे

क्रोध मोह, प्यार भय और लज्जा आदि, जो सभी व्यक्तियों के व्यवहार में दृष्टिगोचर होते हैं और उन्हें प्रभावित करते हैं। परंतु क्या यह भी शरीर की आवश्यकताओं की तरह बहुत बुनियादी और महत्वपूर्ण हैं ? क्या यह भी शरीर के साथ ही जन्म लेते हैं ? जिस प्रकार शिशु जन्म से ही भूख से पीड़ित होता है क्या वह घृणा से भी उसी प्रकार जन्म से ही उत्तेजित होता है ? क्या भूख और प्यास की तरह उद्वेग भी शरीर में कुछ अशांति, कुछ तनाव (Tension) की अवस्था को जन्म देकर अपनी शीघ्र तृप्ति के लिए व्यक्ति को उद्दीप्त करते हैं ?

सहजप्रवृत्ति जन्मजात होती है इस दृष्टिकोण से यह देखना आवश्यक प्रतीत होता है कि हमारे स्वभाव में कुछ ऐसी आधारभूत और बुनियादी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं कि नहीं जो जन्मजात हों, जो शरीर में पहले से ही विद्यमान हों और जो मानव व्यवहार को एक विशिष्ट निर्धारित उद्देश्य की ओर, जिससे कि उनकी तृप्ति हो सके ले जाए।

मक्डूगल, थॉर्नडाइक, विलियम जेम्स और तार्दे प्रभृति मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रवृत्तियों का अस्तित्व स्वीकार किया है, और इन्हें सहजप्रवृत्ति (Instincts) का नाम दिया है। परन्तु उनके क्या गुण हैं और संख्या में वह कितनी हैं, इन विषयों पर उनमें तीव्र मतभेद हैं। फिर भी हम अधिक मान्य धारणाओं को स्वीकार करके सहजप्रवृत्तियों का अध्ययन करेंगे। मक्डूगल ने इनकी संख्या बारह बताई है, थार्नडाइक ने आठ, फ्रायड ने केवल दो (विनाशात्मक और रचनात्मक), और विलियम जेम्स ने तो यहाँ तक कह दिया कि मानव में उतनी ही प्रवृत्तियाँ हैं जितनी कि पशुओं में हैं।

नस्ल की रक्षा के लिए उपयोगी सिद्ध हुए व्यवहार. मक्डूगल के अनुसार अधिक प्रचलित अर्थों में 'सहजप्रवृत्ति कुछ ऐसी विशेष जन्मजात प्रवृत्तियों का नाम है जो किसी एक जाति के सभी सदस्यों या प्राणियों में सामान्य रूप से विद्यमान होती हैं। कुछ ऐसी नस्ली विरासत या सहजप्रवृत्ति हैं जो प्राणियों की वातावरण के प्रति अनुकूलनासम्पादन (Adaptation) की प्रक्रिया में धीरे धीरे विकसित हो गई हैं और जो न तो उन प्राणियों की मानसिक रचना में सिद्ध की जा सकती हैं और न ही व्यक्तियों द्वारा केवल अपने जीवनकाल में सीखी जा सकती हैं। यह सहजप्रवृत्तियाँ मानव या किसी दूसरी प्राणिक जाति के मन में इसलिए अस्थिर हो गई क्योंकि ये ऐसे व्यवहार द्वारा विकसित हुईं, जिनके कारण प्राणी वातावरण के प्रति लाभदायक आचरण कर सका। इस रूप में सहजप्रवृत्ति प्राचीन काल से मनुष्य और वातावरण की अन्तःक्रिया में मनुष्य का साथ व सुरक्षा देने वाले व्यवहार की शेष चिह्न हैं। यह उपयोगी होने के कारण मन की शारीरिक और मानसिक विरासत में स्थापित हो गई हैं।

सहजप्रवृत्ति लक्ष्ययुक्त होती है प्रत्येक सहजप्रवृत्ति का एक लक्ष्य, एक ध्येय होता है। उस ध्येय की पूर्ति के लिए मानव शरीर में कुछ पूर्वनिर्धारित क्रियाओं की एक शृंखला स्थापित होती है। हम भूख लगने पर कुछ खाना चाहते हैं। भोजन या क्षुधातृप्ति क्षुधा की सहजप्रवृत्ति का ध्येय है। इस ध्येय या लक्ष्य की पूर्ति के लिए हाथ बढ़ाना, भोजन को मुँह में डालना, चबाना, यह क्रियाओं की कड़ियाँ हैं। कीड़ों के मन में तो यह सब बहुत विस्तार से स्वभावतः ही स्थापित होती है। पक्षियों में भी घोंसला बनाने की सहजप्रवृत्ति लक्ष्य प्राप्ति के लिए कुछ क्रियाओं की विस्तृत कड़ियों के रूप में काम करती है।

व्यक्तिगत अनुभव से अप्रभावित सहजप्रवृत्ति नस्ली विरासत के रूप में प्राप्त होती है और जन्म से शरीर में विद्यमान रहती है। इसे इस संसार में अपने अनुभव से सीखना नहीं पड़ता। इसका लक्ष्य भी पूर्वनिर्धारित होता है। यह तो हो सकता है कि लक्ष्य प्राप्ति के साधन के रूप में हम अपने अनुभव द्वारा भिन्न भिन्न मार्ग अपना लें, परन्तु लक्ष्य और लक्ष्य प्राप्ति की लालसा को हमारा अनुभव नहीं बदल सकता, प्रभावित भी नहीं कर सकता।

सहजप्रवृत्ति की तृप्ति सुखकर, अतृप्ति पीड़ाजनक यदि हम सहजप्रवृत्ति के लक्ष्य की प्राप्ति कर लेते हैं तो हमारे शरीर में जो तनाव, अशान्ति का कारण बनता है, वह दूर हो जाता है। अन्यथा वह तनाव कायम रहता है, और हम अतृप्ति के कारण पीड़ा का अनुभव करते हैं। जब हम किसी से क्रुद्ध होते हैं तो कितने बेचैन होते हैं। अपने शत्रु की पराजय देखकर अपने उद्देश्य में सफल होकर, हम कितने प्रसन्न होते हैं।

सहजप्रवृत्ति की परिभाषा जिन्सबर्ग के शब्दों में 'सहजप्रवृत्ति क्रिया की उन कड़ियों का नाम है जो जीवन के लिए उपयोगी होती हैं, जो जन्म से निर्धारित होती हैं और पूर्व अनुभव से स्वतन्त्र होती हैं।' मैक्डूगल के शब्दों में 'सहज-प्रवृत्ति एक आनुवंशिक सहजात मनःशारीरिक प्रवृत्ति है जो व्यक्ति को विशेष प्रकार के पदार्थों को प्रत्यक्ष करने और उनकी ओर ध्यान देने पर बाधित करती है, जो उसे उन पदार्थों को प्रत्यक्ष कर लेने पर एक विशेष गुण वाली उत्तेजित भावना को महसूस करने और उस भावना के अनुसार एक विशेष प्रणाली में क्रिया करने के लिए बाध्य करती है।'

सहजप्रवृत्ति और उत्क्षेप (Reflex) स्पेंसर के अनुसार सहजप्रवृत्ति अनेक उत्क्षेपों का समन्वय है। परन्तु उत्क्षेप शरीर के किसी एक भाग में ही उत्तेजित हो जाने वाली एक विशेष क्रिया को कहते हैं जिसका हमारे निर्णय व चिन्तन से सम्बन्ध नहीं होता। इसकी तुलना में सहजप्रवृत्ति सारे शरीर का व्यवहार होती है। यह एक विशेष क्रिया नहीं है, वह क्रियाओं की एक शृंखला को

जन्म देती है, मन में एक तनाव और एक अशान्ति पैदा कर देती है। जब कि उत्क्षेप केवल शारीरिक क्रिया है सहजप्रवृत्ति शारीरिक भी होती है और मानसिक भी।

सहजप्रवृत्ति के काम सहजप्रवृत्ति के काय का तीन अलग-अलग विभागों में विभाजन किया जाता है उनके (१) बोधात्मक (Cognitive), (२) क्रियात्मक (Conative), (३) रागात्मक (Affective) अलग-अलग काय है उद्दीपन (Stimuli) का प्रत्यक्षीकरण, उद्दीपन द्वारा उद्दीप्त भावना से प्रेरित कुछ क्रियाएं और लक्ष्य प्राप्ति पर तृप्ति और सुख की भावना, यह सहजप्रवृत्ति के अलग अलग रूप हैं। किसी सुन्दर फूल को तोड़ने या हमें बुरा प्रतीत होने वाले व्यक्ति को मारने के लिए दौड़ने की हमारी क्रिया इन्ही तीनों तत्वों को लेकर चलती है।

सहजप्रवृत्ति और बुद्धि इस सारी योजना में बुद्धि का क्या स्थान है? बुद्धि और सहजप्रवृत्ति का क्या सम्बन्ध हैं? हाबहाउस का कथन है कि उद्दीपक के प्रत्यक्षीकरण के उपरांत जो भावना उदित होती है, वह बुद्धि से सम्बद्ध होती है क्योंकि यह नियत नहीं होती और उसमें लचकीलापन व नमनीयता होती है।

हम यह कह चुके हैं कि सहजप्रवृत्ति लक्ष्ययुक्त है। लक्ष्य तो सदा ही निर्धारित रहता है, परन्तु उस तक पहुंचने के साधन पूर्णत पूर्वनिश्चित नहीं होते। बुद्धि उन साधनों को विकसित करती है। सहजप्रवृत्ति में जो अपरिवर्तनीयता रहती है बुद्धि अपने पूर्वसंचित अनुभव द्वारा उस कम करती है, लक्ष्य तक पहुंचने के मार्ग को परिष्कृत करती है। लक्ष्यनिर्धारण सहजप्रवृत्ति द्वारा होता है, पथप्रदर्शन बुद्धि द्वारा।

आरम्भ में अनुभवहीनता के कारण बुद्धि केवल तात्कालिक लक्ष्य को ही पहचान पाती है, पर ज्यों-ज्यों यह विकसित होती है अन्तिम लक्ष्य को समझने में भी समर्थ हो जाती है और पथप्रदर्शन करती है। इससे स्पष्ट है कि लक्ष्यप्राप्ति के साधन हमारे अनुभवों द्वारा निर्धारित होते हैं।

सहजप्रवृत्ति का प्रभाव मानव व्यवहार में सहजप्रवृत्ति का कितना प्रभाव है? मैक्डूगल ने इसे मानव व्यवहार का आधार बताया है। उनके कथनानुसार मानव एक ऐसा इंजन है जिसको चलाने के लिए सहजप्रवृत्ति नाम की अग्नि की आवश्यकता है। सहजप्रवृत्ति शरीर के व्यवहार का प्राणवान् करने वाली शक्ति है।

जिन्सबर्ग ने मैक्डूगल की धारणा का विरोध किया है। उसका कहना है कि प्रथम तो हम समाज में रहने के कारण अपने जीवन में कुछ ऐसे आदर्श या प्रेरक स्वीकार कर लेते हैं जो जन्मजात नहीं हो सकते दूसरे हमारा व्यक्तित्व

केवल शारीरिक या प्राणिक गुणों का परिणाम नहीं है। उस पर केवल कुछ सहजप्रवृत्तियों का ही नहीं बल्कि सामाजिक और भौगोलिक वातावरण का भी प्रभाव पड़ता है और व्यक्ति के अपने अनुभव भी उसे प्रभावित करते हैं। इसके अतिरिक्त, यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि हमारे व्यवहार के प्रेरक मिले जुले होते हैं, उनको पृथक पृथक सहजप्रवृत्तियों में विभाजित कर पाना और पहचान पाना असम्भव है। सामाजिक क्रियाओं का जो प्रभाव मानव व्यवहार पर पड़ता है वह भी मानव क्रियाओं को बहुत अधिक बदल देता है। अतः मक्डूगल की धारणा भ्रान्तिपूर्ण है और हमें मानव व्यवहार और स्वभाव में सहजप्रवृत्ति को अधिक महत्त्व न देना चाहिए।

व्यवहारवादियों (Behaviourists) की धारणा परन्तु मनोविज्ञान में एक और विचारधारा है जिसे व्यवहारवादी विचारधारा कहा जाता है। जे० बी० वाटसन इसके मुख्य समर्थक हैं। यह मानव व्यवहार और क्रिया को किसी सहज-प्रवृत्ति का परिणाम नहीं मानते। यह विचारधारा सहजप्रवृत्ति नाम की किसी वस्तु के अस्तित्व से ही असहमत है। इसके अनुसार मनुष्य जो भी व्यवहार करता है, उसका कारण समाज और वातावरण है। व्यक्ति तो केवल एक शरीर है, जिसमें नाड़ी संस्थान ग्रन्थि संस्थान और मस्तिष्क का समावेश है। यह सब अनुभव और क्रिया द्वारा परिवर्तित होते रहते हैं परन्तु प्रत्येक पहले परिवर्तन का प्रभाव अपने अन्दर सुरक्षित रखते हैं उसे विनष्ट नहीं होने देते। वातावरण और उसके प्रति अपनी प्रतिक्रिया द्वारा वह इन तीनों चीजों का विकास करते हैं और अभ्यास और शिक्षण द्वारा अपनी वृद्धि को बढ़ाते रहते हैं।

सहजप्रवृत्तियों के अस्तित्व और शक्ति पर मानवशास्त्रियों की खोज पिछले पचास वर्षों में मानवशास्त्रियों ने अपनी खोजों से कुछ ऐसे तथ्यों पर प्रकाश डाला है कि सहजप्रवृत्तियों को मानने वालों को अपनी धारणाओं को बदलना पड़ रहा है। रूथ बेनडिक्ट और मारगरेट मीड ने छः आरण्यक जातियों के कबीलों के अध्ययन से यह दर्शाया है कि कई ऐसी प्रवृत्तियां जिन्हें हम अपनी संस्कृति के प्रभाव के कारण सहज मानते हैं वह अन्य कबीलों में नहीं दिखाई देतीं।

मारगरेट मीड ने यौन व्यवहार के सम्बन्ध में अरापेश मुण्डुगुमर और शाम्बुली कबीलों का उदाहरण दिया है। अरापेश कबीले में स्त्री और पुरुष दोनों ही अपने यौनिक व्यवहार में बहुत कम उत्तेजित बहुत शान्त और उदासीन हैं जब कि मुण्डुगुमर कबीले में दोनों ही उग्र यौन-व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं यहां तक कि इस कबीले में बच्चे अनिच्छित और उपेक्षितों की भांति पाले जाते हैं और मां बच्चों की ओर ध्यान नहीं देतीं। शाम्बुली कबीले में, जो दोनों कबीलों से सौ मील के अन्दर-अन्दर ही वास करता है स्त्री यौन-व्यवहार में उग्र है, पुरुष सुस्त है।

शक्ति, सत्ता और सम्पत्ति की स्वामिनी भी स्त्री है।

इस सम्बन्ध में स्त्रियों में मातृत्व की 'सहजप्रवृत्ति (Maternal Instinct) का उदाहरण भी दिया जा सकता है। अंडमान में माता पिता अपने बच्चों को किसी दूसरे की गोद देकर सम्मान प्राप्त करते हैं। वहाँ छः वर्ष से अधिक का कोई बच्चा माता पिता के साथ नहीं रहता। प्राचीन काल में चीन में परिवार के सभी बच्चों का पालन पोषण सबसे बड़ी पत्नी करती थी, और वही उनके सम्मान और प्यार को प्राप्त करती थी। वास्तविक माताओं का बच्चों पर कोई अधिकार न होता था। इसी प्रकार न्यूगिनी के मेनास लोगों में माता की जगह पिता ही बच्चों का पालन पोषण करता है।

होपी और जूनी लोगों में घृणा की सहजप्रवृत्ति, स्पर्द्धा और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा की भावनाओं या प्रवृत्तियों का कोई चिह्न नहीं पाया जाता, जब कि क्वाकितुल लोगों और हमारी आधुनिक सभ्यता में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

इन तथ्यों से यह परिणाम निकलता है कि सहजप्रवृत्ति कोई निश्चित वस्तु नहीं है। वह हमारी सामाजिक व्यवस्था, संस्कृति और अनुभव द्वारा बदल जाती है, और अलग अलग रूप धारण कर लेती है।

समाज में सहजप्रवृत्ति

मैक्डूगल ट्रॉटर, तार्दे बेगहॉट और दूसरे विद्वानों ने व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का कारण अधिकतर 'सहजप्रवृत्ति' को बताया है। मैक्डूगल ने आत्मप्रकाश (Self assertion) और आत्म लघुता (Self abasement) की प्रवृत्ति को और तार्दे ने अनुकरण की सहजप्रवृत्ति को सामाजिक व्यवहार का आधार बताया है। ट्रॉटर ने सामाजिकता की 'सहजप्रवृत्ति' की कल्पना की है। इन तीनों सिद्धान्तों का विस्तार से अध्ययन करना सामाजिक व्यवहार का कारण समझने के लिए आवश्यक प्रतीत होता है।

मैक्डूगल का मत

सामाजिकता करुणाभाव का परिणाम मैक्डूगल के कथनानुसार सामाजिक जीवन का आधार करुणा की भावना है। यह भावना पितृत्व की भावना का प्रधान रूप है। वास्तव में आरम्भ में यह मातृत्व की भावना थी पर अन्य कई गुणों की तरह यह पुरुष को भी प्राप्त हो गई। जब हम किसी दूसरे व्यक्ति को अन्याय पीड़ित देखते हैं तो इसी करुणाभावना को उत्तेजना मिलती है और इस प्रकार यह परोपकार की भावना—पर-रक्षा की भावना को भी जन्म देती है। जब यह भावना अपनी तृप्ति के मार्ग में कोई बाधा देखती है तो अन्य सभी मौलिक भावनाओं (Impulses) की तरह प्रतिरोध और क्रोध की ओर प्रवृत्त होती है और इस प्रकार नैतिक विरोध और क्रोध का आधार बनती है।

-- ---मक्डूगल के मत की समालोचना मैक्डूगल के मत में निम्न दोष दर्शाये गये हैं सामाजिक व्यवहार का रक्त से कोई सम्बन्ध नही है । जब हम अन्याय के विरुद्ध लडते है, तो यह आवश्यक नही होता कि पीडित व्यक्ति हमारा रक्त सम्बन्धी हो । सामाजिकता की भावना को माता या पिता के प्यार से सम्बन्धित करने की कोई आवश्यकता नहीं । न ही यह आवश्यक है कि हम इस भावना को दूसरी भावनाओं पर आधारित करें । इसे भी हम एक अलग, स्वतन्त्र और बुनियादी नैसर्गिक भावना मान सकते है ।

सामाजिक जीवन का आधार दूसरों से अन्तःक्रिया (Interaction)

हमारे सारे सामाजिक व्यवहार के लक्ष्य दूसरे लोग होते है । सभी भावनाएं अपने लक्ष्य के रूप में दूसरे पदार्थों की ओर ही अग्रसर होती है । दूसरो के प्रति प्रतिक्रिया सामाजिकता का आधार है । शैंड के शब्दों में 'हमारी–प्रत्येक भावना में एक सबल निःस्वार्थता निहित है क्योंकि जिन उद्दीपकों से वह उद्दीप्त होती है उनमें से कई उद्दीपक दूसरे व्यक्तियों द्वारा प्रदत्त होते है, हमारे अपने द्वारा नही । एक पतगा अपने बच्चे के लिए परिश्रम करता है जब कि वह उसे कभी नही देख सकता । क्या यह स्नेहभावना के कारण है ? और फिर क्या ज्ञान और सौन्दर्य के प्रति प्रेम भी इसी के कारण होता है ?

हम सामाजिक मान्यताएं क्यों स्वीकार करते है मैक्डूगल का विचार है कि हम जो अपने समाज के नियमों का पालन करते हैं सामाजिक मान्यताओं को स्वीकार करते है और शक्ति के सम्मुख नतमस्तक होते हैं, उसका कारण यह है कि हम समाज से अपने लिए सम्मान चाहते है, दण्ड से डरते हैं और दूसरों की इच्छानुसार कार्य करके उनको प्रसन्न करना चाहते हैं । हमारी आत्म-सम्मान की भावना (Self regarding Sentiment) और निषेधात्मक आत्म भावना (Negative Self feeling) दोनों का सम्मिलन इस व्यवहार का आधार है । हमारी नैतिक प्रगति का कारण यह है कि हमारी आत्म-सम्मान की भावना अधिक विकसित हो जाती है और जिनके प्रति उनकी इच्छानुसार चलकर और उनको प्रसन्न करके हम सक्रिय सहानुभूति का प्रदान करते है वह भी ऊंचे स्तर के हो जाते हैं । और चूंकि हमारा आचरण देखने वाले परिष्कृत स्वभाव के है इसलिए हमारा आचरण भी परिष्कृत होता रहता है ।

इस धारणा में जिस सहजप्रवृत्ति को महत्त्व दिया गया है, वह एक नही, कई अलग अलग व्यवहार प्रणालियों का सामूहिक नाम है । अतः उसे एक सहज-प्रवृत्ति मानना कठिन है । हम दूसरो से डरते हैं हम दण्ड से डरते है हम दूसरों को प्रसन्न करना चाहते हैं और अपने को भी । क्या इन सबको एक ही नाम देकर कोई ठीक धारणा बनाना सभव है ? और यदि हम सामाजिक मान्यताओं को

इसीलिए मानते हैं, तो एक ऐसे समाज में, जिसमें सभी व्यक्ति हमारी तरह इन मान्यताओं को मानते ह, कुछ खास नीतियां या आदर्श ही क्यों मान्य होते हैं ? इसका क्या कारण ह ?

मैक्डूगल ने 'सामाजिक सहज प्रवृत्ति' का कार्य केवल यह बताया है कि लोग एक स्थान पर एकत्रित हो जाए। अगर इस नाम की कोई सहज प्रवृत्ति ह, तो उसका कार्य यह भी तो हो सकता है कि लोग सवदा इकट्ठे हों, समूहों में ही काम करें।

ट्रॉटर का मत

सामाजिक सहज प्रवृत्ति के कारण सामाजिक गठन ट्रॉटर ने सामाजिकता की सहजप्रवृत्ति को बहुत अधिक महत्व दिया ह। प्रत्येक व्यक्ति अपने साथियों के व्यवहार से प्रभावित होता ह, और सदा चाहता है कि वह अपने समूह में, अपने साथियों में रहे। सामाजिकता की सहजप्रवृत्ति के ही कारण हमारा यह व्यवहार ह और इसी के कारण समूह की ओर से या उसके सम्मान क साथ जो भी सुझाव हमें प्राप्त होता है, उसका हम पर बहुत प्रभाव पडता है। इसके ही कारण समूह क सदस्यों की मानसिक रचना में एक मौलिक परिवर्तन आ जाता है। इस सहजप्रवृत्ति की महत्ता इस बात में ह कि हम बिना सोचे समझे ही सामूहिक आदर्शों, मूल्यों और मान्यताओं को अपनी स्वीकृति दे दते ह। यद्यपि बहुत सी मान्यताए बिल्कुल युक्तिहीन होती हैं तथापि हमें और समूह के दूसरे सदस्यों को वह युक्तिसगत जचती हैं।

ट्रॉटर के अनुसार आदर्शों, रिवाजों विचारों और मूल्यों का प्रबल प्रभाव सामाजिकता की सहजप्रवृत्ति की देन ह। जिसे हम 'अन्तरात्मा (Conscience) कहते ह वह भी 'समाज की निन्दा से भय' का दूसरा नाम है। हमारी पूर्णता की लालसा आत्म विलयन और मुक्ति की जिज्ञासा, जो धर्म का आधार हैं कभी-कभी हमारे समाज से स्वतन्त्र न हो सकने और आत्मनिर्भर होने में असमर्थ होने के कारण, उत्पन्न होती हैं।

ट्रॉटर के मत की आलोचना ट्रॉटर के सिद्धान्त से यह बात स्पष्ट नहीं होती कि सुझाव के प्रभाव के कभी न्यून और कभी अधिक होने का क्या कारण है। कुछ लोग एक सुझाव को स्वीकार कर लेते ह, परन्तु उनके दूसरे साथी नहीं करते। ऐसा क्यों होता है ? यदि सबमें यह सहजप्रवृत्ति है, तो सभी को उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। इसी प्रकार इस समस्या पर भी प्रकाश नहीं पडता कि एक समूह में कुछ विशेष मान्यताए ही क्यों मान्य हुईं, दूसरी क्यों नहीं।

किसी एक कारण से सामाजिक व्यवहार की व्याख्या करना भ्रान्तिपूर्ण वास्तव में तो सामाजिक व्यवहार की किसी एक कारण से या एक सहजप्रवृत्ति

से ही व्याख्या करने की चेष्टा करना ही भ्रान्तिमूलक है। किसी एक प्राथमिक बुनियादी भावना, जैसे डर या सामाजिकता के विद्यमान होने पर भी, मानव व्यवहार पर प्रभाव डालने वाले कितने ही अन्य तत्त्व हैं। यह कहना कि युद्ध डर के परिणामस्वरूप होते हैं या आक्रमणकारी भावना के कारण होते हैं, किसी भी विशेष युद्ध के विषय में कोई ज्ञान प्रदान नहीं करता। युद्धों के अनेक कारण होते हैं। किसी एक युद्ध का इतिहास जानने के लिए तत्कालीन योद्धाओं का इतिहास, उनके रिवाज, उनके झगड़ों इत्यादि का जानना आवश्यक है।

प्रत्येक घटना अनेक कारणों के परिणामस्वरूप घटती है न कि किसी एक कारण से। हमारी भावनाएं हम में विद्यमान हैं पर हमारा व्यक्तित्व उन भावनाओं का सग्रह नहीं, उनके सात्मीकरण (Assimilation) का परिणाम होता है, क्योंकि उसका विशेष गुण है उसकी एकता, उसकी सम्पूर्णता, उसका सगठन। हमारी प्रत्येक प्रतिक्रिया किसी एक भावना या प्रवृत्ति का नहीं अपितु कई प्रवृत्तियों के सात्मीकरण का परिणाम होती है। दूसरे, हमारी भावनाओं पर हमारे पूर्व अनुभवों हमारे सम्पूर्ण ज्ञान और बुद्धि का बहुत प्रभाव होता है, उनसे हमारी भावनाओं की प्रबलता की मात्रा कम या अधिक हो जाती है उनका क्षेत्र और उनकी परिधि बढ जाती या छोटी हो जाती है, उनकी अभिव्यक्ति की प्रणालियां अनेक हो सकती हैं और उनको अलग-अलग ढंग में बदला जा सकता है। हमारी भावनाएं किस दिशा में अभिव्यक्त होंगी इसका निर्धारण सामाजिक मूल्यों संस्थाओं और रूढ़ियों पर अवलम्बित होता है।

किसी एक तत्त्व पर बल देकर सामाजिक व्यवहार की व्याख्या उस तत्त्व को तो प्रकाश में ले आती है, पर व्याख्या की दृष्टि से बहुत अधूरी है। सम्पत्ति-सग्रह के लिए सम्पत्ति-सग्रह की सहजप्रवृत्ति को मान लेने पर भी, क्या इसका कारण जानना कठिन नहीं है कि क्यों जूनी लोग सामूहिक सम्पत्ति की व्यवस्था को मानते हैं, जब कि उनके पड़ौसी क्वाकितुल उसे नहीं मानते।

बेगहाट का मत

अनुकरण (Imitation) सामाजिक व्यवहार का आधार बेगहाट ने १८७३ में अपनी पुस्तक 'भौतिकशास्त्र और राजनीति' में अपने मत का प्रतिपादन किया। उसने आदिम समाज में अनुकरण की महत्ता को देखकर उसे ही समाज का ढालने वाली शक्ति माना है। बेगहाट के मत से आज के समाज की प्रक्रियाओं में भी सबसे बुनियादी प्रक्रिया अनुकरण ही है। हम सब जो सामाजिक रीति रिवाज सीखते हैं और समाज के अग बन जाते हैं यह भी अनुकरण ही का प्रभाव होता है। हम अनुकरण करने को बाध्य होते हैं और न जानते हुए भी अनुकरण करते जाते हैं। अनुकरण समाज को स्थायी, और स्थिर रखने वाली

इसीलिए मानते हैं, तो एक ऐसे समाज में, जिसमें सभी व्यक्ति हमारी तरह इन मान्यताओं को मानते ह, कुछ खास नीतियां या आदर्श ही क्यों मान्य होते हैं ? इसका क्या कारण ह ?

मैक्डूगल ने 'सामाजिक सहज प्रवृत्ति' का कार्य केवल यह बताया है कि लोग एक स्थान पर एकत्रित हो जाएं। अगर इस नाम की कोई सहज प्रवृत्ति ह, तो उसका कार्य यह भी तो हो सकता है कि लोग सवदा इकट्ठे ही, समूहों में ही काम करें।

ट्रॉटर का मत

सामाजिक सहज प्रवृत्ति के कारण सामाजिक गठन टॉटर ने सामाजिकता की सहजप्रवृत्ति को बहुत अधिक महत्व दिया ह। प्रत्येक व्यक्ति अपने साथियों के व्यवहार से प्रभावित होता है, और सदा चाहता ह कि वह अपने समूह में अपने साथियों में रहे। सामाजिकता की सहजप्रवृत्ति के ही कारण हमारा यह व्यवहार है, और इसी के कारण समूह की ओर से या उसके सम्मान के साथ जो भी सुझाव हमें प्राप्त होता ह, उसका हम पर बहुत प्रभाव पड़ता ह। इसके ही कारण समूह के सदस्यों की मानसिक रचना में एक मौलिक परिवतन आ जाता है। इस सहजप्रवृत्ति की महत्ता इस बात में ह कि हम बिना सोचे-समझे ही सामूहिक आदर्शों, मूल्यों और मान्यताओं को अपनी स्वीकृति दे देते है। यद्यपि बहुत-सी मान्यताए बिल्कुल युक्तिहीन होती हैं, तथापि हमें और समूह के दूसरे सदस्यों को वह युक्तिसगत जचती हैं।

टॉटर के अनुसार आदर्शों, रिवाजों, विचारों और मूल्यों का प्रबल प्रभाव सामाजिकता की सहजप्रवृत्ति की देन ह। जिसे हम अन्तरात्मा (Conscience) कहते है, वह भी 'समाज की निन्दा से भय' का दूसरा नाम है। हमारी पूर्णता की लालसा, आत्म विलयन और मुक्ति की जिज्ञासा जो धर्म का आधार हैं कभी-कभी हमारे समाज मे स्वतन्त्र न हो सकने और आत्मनिर्भर होने में असमर्थ होने के कारण, उत्पन्न होती ह।

ट्रॉटर के मत की आलोचना टॉटर के सिद्धान्त से यह बात स्पष्ट नहीं होती कि सुझाव के प्रभाव के कभी न्यून और कभी अधिक होने का क्या कारण है। कुछ लोग एक सुझाव को स्वीकार कर लेते है, परन्तु उनके दूसरे साथी नहीं करते। ऐसा क्या होता है ? यदि सबमें यह सहजप्रवृत्ति ह, तो सभी को उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए। इसी प्रकार इस समस्या पर भी प्रकाश नही पड़ता कि एक समूह में कुछ विशेष मान्यताए ही क्यों मान्य हुईं, दूसरी क्यों नहीं।

किसी एक कारण से सामाजिक व्यवहार की व्याख्या करना भ्रान्तिपूर्ण वास्तव में तो सामाजिक व्यवहार की किसी एक कारण से या एक सहजप्रवृत्ति

से ही व्याख्या करने की चेष्टा करना ही भ्रान्तिमूलक ह। किसी एक प्राथमिक बुनियादी भावना, जसे डर या सामाजिकता के विद्यमान होने पर भी, मानव व्यवहार पर प्रभाव डालने वाले कितने ही अय तत्त्व हैं। यह कहना कि युद्ध डर के परिणामस्वरूप होते ह या आक्रमणकारी भावना के कारण होते हैं किसी भी विशेष युद्ध के विषय में कोई ज्ञान प्रदान नही करता। युद्धो के अनेक कारण होते ह। किसी एक युद्ध का इतिहास जानने के लिए, तत्कालीन योद्धाओ का इतिहास, उनक रिवाज, उनके झगडे इत्यादि का जानना आवश्यक हैं।

प्रत्येक घटना अनेक कारणो के परिणामस्वरूप घटती हैं न कि किसी एक कारण से। हमारी भावनाए हम में विद्यमान ह, पर हमारा व्यक्तित्व उन भावनाओ का सग्रह नही, उनके सात्मीकरण (Assimilation) का परिणाम होता है, क्याकि उसका विशेष गुण है उसकी एकता उसकी सम्पूर्णता उसका सगठन। हमारी प्रत्येक प्रतिक्रिया किसी एक भावना या प्रवृत्ति का नही, अपितु कई प्रवृत्तियो के सात्मीकरण का परिणाम होती ह। दूसरे हमारी भावनाओं पर हमारे पूव अनुभवो हमारे सम्पूण ज्ञान और बुद्धि का बहुत प्रभाव होता है उनसे हमारी भावनाओ की प्रबलता की मात्रा कम या अधिक हो जाती ह, उनका क्षेत्र और उनकी परिधि बढ़ जाती या छोटी हो जाती हैं, उनकी अभिव्यक्ति की प्रणालिया अनेक हो सकती हैं, और उनको अलग-अलग ढगो से बदला जा सकता ह। हमारी भावनाए किस दिशा में अभिव्यक्त होगी, इसका निर्धारण सामाजिक मूल्यो सस्थाओं और रूढियों पर अवलम्बित होता हैं।

किसी एक तत्त्व पर बल देकर सामाजिक व्यवहार की व्याख्या उस तत्त्व को तो प्रकाश में ले आती ह पर व्याख्या की दृष्टि से बहुत अधूरी हैं। सम्पत्ति-सग्रह के लिए सम्पत्ति-सग्रह की सहजप्रवत्ति को मान लेने पर भी, क्या इसका कारण जानना कठिन नही हैं कि क्यों जूनी लोग सामूहिक सम्पत्ति की व्यवस्था को मानते ह, जब कि उनके पडोसी क्वाकितुल उसे नही मानत।

बेगहाट का मत

अनुकरण (Imitation) सामाजिक व्यवहार का आधार बेगहाट ने १८७३ में अपनी पुस्तक भौतिकशास्त्र और राजनीति में अपने मत का प्रतिपादन किया। उसने आदिम समाज में अनुकरण की महत्ता को देखकर उसे ही समाज को ढालने वाली शक्ति माना ह। बेगहाट के मत से आज के समाज की प्रक्रियाओ में भी सबसे बुनियादी प्रक्रिया अनुकरण ही हैं। हम सब जो सामाजिक रीति रिवाज सीखत ह और समाज के अग बन जाते ह यह भी अनुकरण ही का प्रभाव होता हैं। हम अनुकरण करने को बाध्य होते हैं और न जानते हुए भी अनुकरण करते जाते हे। अनुकरण समाज को स्थायी, और स्थिर रखने वाली

चलित हैं। समाज में प्रगति या परिवतन अचानक होता है। अकस्मात ही किसी नई चीज का उदय हो जाने पर सभी उसका अनुकरण करने लगते हैं और उसे स्वीकार कर लेते हैं।

वगहॉट के विचार में अनुकरण की इतनी अधिक शक्ति है कि अगर अनुकरण की चेष्टा असफल रहे, तो हमें दुःख होता है। अनुकरण हमें समाज के प्रचलित रिवाजों को मानने को बाध्य करता है। प्रगति का कारण उसने एक और प्रवृत्ति को माना है जिसे उसने वाद विवाद की प्रवृत्ति कहा है।

तार्द का मत

पुनरावृत्ति (Repetition), विरोध (Opposition) और अनुकूलन (Adaptation) का अविरल चक्र तार्द ने और बाद में वाल्डविन ने भी अनुकरण की सत्ता को मनोवैज्ञानिक तरीके से बहुत महत्त्वपूर्ण बताया है। उसके अनुसार सामाजिक प्रक्रिया सदस्यों की मानसिक अन्तःक्रिया के समूह का नाम है। इस मानसिक अन्तःक्रिया के तीन रूप हैं पुनरावृत्ति, विरोध और अनुकूलन।

उक्त तीनों के सापेक्ष महत्त्व के विषय में तार्द का मत है कि "इन तीनों प्रक्रियाओं का एक ऐसा वृत्तीय क्रम है जो अविरल आगे ही आगे बढ़ते रहने की क्षमता रखता है। अनुकरणात्मक पुनरावृत्ति (Imitative Repetition) के द्वारा ही एक आविष्कार, जो कि बुनियादी सामाजिक अनुकूलन (Adaptation) है, प्रसारित और दृढ़तर होता है। अपनी ही एक अनुकरण करने वाली किरण (Imitative Ray) के किसी दूसरे आविष्कार की अनुकरण करने वाली किरण के साथ मिलन के द्वारा ही, वह आविष्कार या तो नए संघर्षों को जन्म देने की चेष्टा करता है और या किसी नए और अधिक जटिल आविष्कार को जन्म देता है जो स्वयं अपनी अनुकरण करने वाली किरणों का उसी तरह प्रसार करता है। और इस प्रकार यह चक्र अविरल गति से चलता और बढ़ता रहता है। "यदि उक्त तीनों तत्त्वों की तुलना की जाय तो पहले और तीसरे तत्त्व (पुनरावृत्ति और अनुकूलन) दूसरे तत्त्व (विरोध) से अधिक ऊँचे, अधिक गहरे, अधिक महत्वपूर्ण और शायद अधिक स्थायी होते हैं। दूसरे तत्त्व (विरोध) का महत्त्व केवल इतना ही है कि वह विरोधी शक्तियों में ऐसे तनाव को उत्तेजित करता है जो आविष्कारक प्रतिभा का उदय करने के योग्य हो।'

प्रगति का आधार आविष्कार (Invention) अनुरूपता का आधार अनुकरण उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अनुकरण समाज का आवश्यक गुण है जो एक आविष्कार को प्रसारित करता है। प्रगति का स्रोत आविष्कार है अर्थात् ऐसे विचारों और व्यवहारों को स्वीकार कर लेना जिनमें नवीन और विशेष गुण हों। अनुकरण समाज में समानता, अनुरूपता सहयोग और सहकारिता को

जन्म देता ह। सामाजिक प्रक्रिया एकरूपता व समान गुणा को विकसित करती हैं। इसके प्रभाव के कारण व्यक्तियों के मस्तिष्क पहले की अपेक्षा अधिक समान हो जाते ह, उनमें एक ही प्रकार के विचारो का उदय होता जाता है।

कुछ सामाजिक अवस्थाए, जैसे अधिक जनसख्या और समाज में एकतत्वीयता की उपस्थिति, आविष्कार के लिए अनुकूल होती हैं। अनुकरण भी सामाजिक अन्त क्रिया के तीव्र वेग से प्रबल हो जाता है।

अनुकरण को प्रभावित करने वाले तत्व दो प्रकार के सामाजिक तत्त्व जिन्हे तार्दे ने तकसगत (Logical) और तर्कातीत (Extra Logical) कहा ह अनुकरण और आविष्कार को प्रभावित करते है। कोई भी नया आविष्कार जो तत्कालीन प्रचलित और मान्य धारणाओं के विरुद्ध हो मान्य नही होता और उसका अनुकरण नही किया जाता। यह तकसगत तत्त्व के प्रभाव का उदाहरण है।

तीन तर्कातीत (Extra logical) तत्त्व तर्कातीत तत्त्व तीन ह (१) सिद्धान्ता और मता का प्रसार कमकाड की तुलना में अधिक शीघ्रता से होता है। कानूनी धारणाए कानूनी पद्धतियो की अपेक्षा शीघ्र प्रचलित और प्रसारित होती हैं, (२) आविष्कारक की प्रतिष्ठा और सम्मान से अनुकरण की गति बढ़ जाती है, बड़ नगरा सफल व्यक्तियो और उच्च वर्गों या सस्कृतिया द्वारा स्वीकृत या व्यवहृत आविष्कार का अनुकरण शेष व्यक्ति या समूह भी अतिशीघ्र करते ह, (३) समाज की एक अवस्था में रिवाज और परम्परा का प्रभाव प्रबल होता है तो दूसरी में नवीनता का। यदि अवस्था पहली प्रकार की ह, तो आविष्कार बहुत शीघ्र परम्परा का अग बन जाता है।

तार्द का प्रभाव तार्दे के इस मत का रास पर बहुत प्रभाव पड़ा। ल्ला बौन सिडिस और सीगेल ने सुझाव' पर बहुत बल दिया है, सिडिस ने तो इसे आदिम समाज की आत्मा की उपाधि दे दी है। परन्तु तार्दे और उसके अनुयायियो की इन बातो में आशिक सत्य होने पर भी वह अपने पक्ष को पूणत सुल्झाकर पेश नही कर सके हैं। 'अनुकरण' शब्द को उन्होने अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया ह। व्यक्तियो के अन्त सचार (Communication), सुझाव सहानुभूति सभी को 'अनुकरण, कह दिया ह।

अनुकरण (Imitation), सुझाव (Suggestion) और सहानुभूति (Sympathy) व सामाजिक काय

तार्दे के मत को तीन रूपो— अनुकरण, सुझाव और सहानुभूति— में विभाजित कर अध्ययन करने से उसकी प्रामाणिकता की जाच की जा सकती ह।

अनुकरण उत्क्षेपात्मक (Reflex) नहीं तार्दे ने अनुकरण का अचेतन उत्क्षेपात्मक व्यवहार (Unconscious Reflex Action) माना ह। परन्तु

हम सवदा दूसरे लागा के व्यवहार को देखकर वैसा ही व्यवहार नही करते। किसी की क्रोधावस्था स हममें डर की अनुभूति होती है। बच्चे को हसता देखकर उस प्यार करन की, चूमने की स्वय मुस्कराने की और उसे चुप कराने की अलग अलग भावनाए हमारे मन में आ सकती हैं। अत तार्दे द्वारा अनुकरण को उत्क्षेपात्मक व्यवहार समझना भ्रान्तिमूलक है, क्योंकि उत्क्षेप में तो एक खास अचतन प्रतिक्रिया होती है। फिर भी दूसरा को चुप देखकर स्वय चुप हो जाने और मुस्कराते देखकर मुस्कराने में उत्क्षेपात्मक क्रिया भी होती है।

वुडवथ ने इस ओर ध्यान आकृष्ट किया ह कि कई ऐसी क्रियाए, जिनको हम उत्क्षेप मानते हैं वास्तव में उत्क्षेप नही हैं। जब कोई दशक एक फुटबाल के खिलाड़ी को फुटबाल को पाव से दूर फेंकते देखकर स्वय भी पाव चला दता है, तो वह उत्क्षेपात्मक अनुकरण है। परन्तु कितनी ही बार दशक खिलाडी के पाव मारन से पहले ही अपना पाव चला देता है। इस प्रकार इसे अनुकरण कहना भ्रान्तिपूण ह।

अनुकरण की प्रवृत्ति दूसरों के समान होने और उनके मत को स्वीकार करने में भी दृष्टिगोचर होती है। पर इस अनुकरण में हम इच्छापूवक प्रयत्न करते हैं, और हमारा अनुभव इसमें हमारा पथप्रदशक होता है। हम जान-बूझकर अपन अनुभव के प्रकाश में ही अनुकरण का निणय करते हैं। इस रूप में यह सहज प्रवृत्ति कैसे हो सकता है।

तीसरी प्रकार का अनुकरण विचारपूण और तक-संगत अनुकरण होता है। तार्दे के अनेक उदाहरण इसी कोटि के अन्तगत आते ह। परन्तु एसा अनुकरण, जो हम जान बूझकर, प्रमाण का युक्तियुक्त मानकर करते हैं, वह वास्तव में अनुकरण नहीं कहा जा सकता, न ही वह उत्क्षेप होता है न ही सहजप्रवृत्तिमूलक। इसलिए अनुकरण किसी सहजप्रवृत्ति का नाम नहीं हो सकता।

सुझाव आदर्शों और विचारों के अनुकरण का नाम सुझाव है। व्यक्ति बहुधा अपने तक की सहायता न लेकर सुझाई हुई चीजों को स्वीकार कर लेता है। किसी सहजप्रावृत्तिक या रागात्मक भावना को उत्तेजित करक और विरोधी विचारों का निरोध करके ही सुझाव सफल होता ह। हार्ट के अनुसार यह जानना आवश्यक ह कि सुझाए जाने वाले विचारों का सग्रह क्या ह, यह किस भावना को उत्तेजित करता ह और क्या व्यक्ति क मन न कोई विरोधी विचार या भावना पहले से ही तो विद्यमान नहीं ह। यही तत्त्व सुझाव के प्रभाव को निर्धारित करते ह।

सुझाव के प्रभाव का आधार व्यक्ति की सहजप्रवृत्तियाँ और भावनाओं (Impulses) की व्यवस्था और उनकी अलग-अलग अवस्था ह। कोई व्यक्ति

किसी एक प्रकार के सुझाव से अधिक प्रभावित हो जाता है, दूसरे प्रकार के सुझाव से नही, परन्तु वही सुझाव किसी दूसरे को अत्यन्त प्रभावित कर देता है। इसमें दोनो व्यक्तियो की मानसिक और मनोवैज्ञानिक अवस्थाओ का अन्तर ही यह अन्तर उपस्थित करता है। इस अन्तर के अध्ययन के लिए व्यक्तियो की इन अवस्थाओ और उनके विचारो, आदर्शों, और भावनाओ की व्यवस्था जैसे जटिल तत्त्वा का अध्ययन करना जरूरी है।

सहानुभूति (Sympathy) सहानुभूति वह सवेदन है जो सक्रामक रोग की भाति विभिन्न व्यक्तियो में फल जाता है। मैक्डूगल के अनुसार एक ही सवेदन का प्रसार पक्षी-समाज को एक सूत्र में बाधे और दृढ़ बनाए रखता ह। मैक्डूगल की धारणा जिसे भावनाओं का सहानुभूतिपूण आगमन (Induction) कहा जाता ह, यह ह कि एक व्यक्ति द्वारा एक विशष भावना की अभिव्यक्ति दूसरे व्यक्ति में भी उसी भावना का उदय करती ह। यह तो पहले कहा जा चुका है कि यह धारणा गल्त है। किसी को डरते देखकर डर भी लग सकता है, दया भी आ सकती ह, या हसी भी। जब कभी एक-सम भावना का प्रसार होता भी है, तो उसका कारण उस आदश या हित की समानता होती है, जिसके कारण उस भावना का उदय हुआ है। जब हम किसी ओजस्वी भाषणकर्ता के देश भक्ति से ओत प्रोत भावुक भाषण को सुन देश भक्ति की भावना में बहने लगते हैं, तो इसका कारण भाषणकर्ता से सहानुभूति नही, देश से सहानुभूति या भक्ति होता ह।

निष्कष इस सारे तक-वितक से इस परिणाम पर पहुचना कठिन नही कि समाज में शुद्ध अनुकरण का महत्त्व बहुत सदेहात्मक है। बल्कि सुझाव और सहानुभूति भी सामाजिक जीवन में अद्वितीय तत्त्व नहीं हैं। वह भी दूसरी भावनाओ और प्रवृत्तिया पर आधारित हैं और इनमें से कोई भी सहजप्रवृत्ति नही है।

सामाजिकता कोई सहजप्रवृत्ति नहीं

इस प्रकार यह स्पष्ट ह कि समाज में सामाजिक सहजप्रवृत्ति नाम की कोई वस्तु नहीं ह। हम जिन कारणा से समाज के अग बनते ह उनका जिक्र किया जा चुका ह। फिर भी यह दोहरा देना पर्याप्त होगा कि समाज में ही मानव अपनी शारीरिक आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता ह। मानव शिशु की असहायता और पराश्रितता उसे समाज का अग बना देत ह। और चूकि शशवकाल से ही हमें सामाजिक व्यवहार से सुख और सहारा मिलता ह, इसलिए हम मा के साथ अपने सम्बन्ध में, और पारिवारिक जीवन में ही सामाजिकता का पाठ पढ़ते हैं। अनुकरण सुझाव और सहानुभूति इन तीना ही को, हम अपने अनुभव या दूसरा की

क्रियाओं के आभास द्वारा सीखते हैं, और इस प्रकार यह कोई निश्चित सहज-प्रवृत्तियां नहीं हैं।

सामाजिक प्रक्रियाएं (Social Processes)

इनका अध्ययन समूहों के अन्त सम्बन्ध और आन्तरिक अवस्था के ज्ञान के लिए आवश्यक समूहों में अलग अलग व्यक्ति कसे एक दूसरे के प्रति अन्त क्रिया में भाग लेते है, कस एक ही समूह में छोटी-छोटी इकाइया, श्रेणियां और जातिया परस्पर अन्त सम्बन्ध स्थापित करती है और दो समूह किस प्रकार के व्यवहारों द्वारा एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं यह गम्भीर अध्ययन का विषय है। दो समूह परस्पर सहयोग की भावना से भी सम्बद्ध हो सकते है और संघर्ष की भावना से भी। एक समूह के अन्तर्गत दो विभिन्न श्रेणियां कभी धीरे धीरे एक दूसरे में मिल भी सकती हैं और पूर्णत पृथक भी रह सकती हैं। दो व्यक्ति परस्पर इस प्रकार समीकृत (Adjusted) हो सकते है कि एक दूसरे के गुणों और अवगुणों को स्वीकार करके साथ साथ रहने लगें और यह भी हो सकता है कि वे एक दूसरे के विरोधी गुणों को महत्ता देकर एक दूसरे का विरोध करें। इसमें से कौन सी प्रक्रिया किस समूह या किन समूहो में सामाजिक व्यवहार का निर्धारण करती है इस तत्त्व का अध्ययन न केवल समूहों की अन्त क्रियाओं को पूर्णत समझने के लिए आवश्यक है बल्कि इसलिए भी कि समूहों के आन्तरिक रूपों और स्वभावों या रीतियों पर भी इस तत्त्व का प्रभाव पड़ता है।

यदि दो समूह परस्पर सात्मीकरण (Assimilation) की प्रक्रिया द्वारा एक दूसरे को प्रभावित कर रहे है, तो उनमें धीरे धीरे भिन्नता न्यून होती जायेगी, और किसी भी समय दोनों में से प्रत्येक का आन्तरिक रूप थोड़ी देर पहले या बाद के रूप से भिन्न होगा। परन्तु यदि दो समूह विरोधी या स्पर्द्धात्मक प्रक्रियाओं से एक दूसरे से सम्बन्धित होते है, तो वह साथ-साथ रहने पर भी एक दूसरे से कुछ सीख सकेंगे। उनकी पृथकता की इस भावना से उनका विकास मद्धम पड़ जायेगा।

सेमुएल बटलर ने एक स्थान पर आलंकारिक भाषा में कहा है कि दूसरे व्यक्तियों के प्रति हमारे सम्बन्ध या तो डोरों की तरह होते है या चाकू की तरह जिसका अभिप्राय यही है कि एकीकरण और विभाजन की दोनों शक्तियां समाज में अपना-अपना प्रभाव डालती रहती है। यह गतिशील शक्तियां, जिन्हें हम व्यक्ति पर समाज के प्रभाव के रूप में, व्यक्तियों के सामाजिक व्यवहार में और समूहों के परस्पर व्यवहार में देखते है, सामाजिक प्रक्रियाएं कहलाती है। इन्हीं का ओग्बर्न और निमकॉफ ने मानव अन्त क्रिया के गतिशील प्रतिमान कहा है। यह

प्रक्रियाए व्यक्तित्व के निर्धारण और निरूपण में और समूह की व्यवस्था में एक महत्त्वपूर्ण भाग अदा करती हैं। यह सामाजिक प्रक्रियाए समाज में व्यक्तित्वा के विकास और प्रौढ़ता के लिए कार्य करती हैं।

अनेक प्रक्रियाओं की समकालीनता एक समाज में एक ही समय एक से अधिक प्रक्रियाओं का आवास हो सकता है। भारत में स्वातंत्र्य आंदोलन के समय जहा एक ओर साम्राज्य के विरुद्ध विरोध की भावना प्रबल हो रही थी वहा दूसरी ओर भारत के भिन्न भिन्न सम्प्रदायों में सहयोग और एकीकरण की प्रक्रियाओं द्वारा राष्ट्रीयता का उदय हो रहा था। अपने दैनिक जीवन में भी हम देखते ह कि कुछ व्यक्तियो के प्रति हम विरोधी या उपेक्षापूर्ण व्यवहार करते और कुछ के प्रति सहयोगी व्यवहार करते ह। आज अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों और गोरे लोगो में जो स्पर्द्धा और विरोध की भावना विद्यमान है उसके साथ-साथ ही अफ्रीकनों और भारतीयो में वर्णभेद की नीति के विरुद्ध घृणा और हितो की एकता के कारण सहयोग की भावना बढ़ रही है। भारत के विभाजन के पश्चात् सम्प्रदायों में तो समवस्थापन (Accommodation) की प्रक्रिया द्वारा मैत्री बढ़ने लगी है परन्तु पृथक भाषा भाषियों में स्पर्द्धा का उदय हो रहा है और एक भाषाभाषी समुदाय समीपतर होते जा रहे ह। इस प्रकार एक नहीं, अनेक सामाजिक प्रक्रियाए मिलकर हमारे व्यक्तित्वा और सामूहिक रीतिया पर प्रभाव डालती हैं।

मुख्य सामाजिक प्रक्रियायें

विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं में से यह छ, सामाजिक प्रक्रियायें मुख्य हैं (१)सहयोग (Co operation) (२) स्पर्द्धा (Competition) (३) विरोध (Conflict) (४) समवस्थापन (Accommodation), (५) समीकरण (Adjustment), (६) सात्मीकरण (Assimilation), इन सबका अध्ययन आवश्यक ह। इनके अतिरिक्त सुझाव (Suggestion) और अनुकरण (Imitation) आदि भी अन्य कुछ प्रक्रियायें हैं जिनका यथास्थान विचार किया गया ह।

१ सहयोग (Co operation)

मानव समाज सहयोग के बिना सुचारु रूप से अपना अस्तित्व कायम नहीं रख सकता। हम सब समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रयास और चेष्टा करते ह। एक समान उद्देश्य के लिए मिल कर प्रयत्न करना सहयोग ह। शत्रु से अपनी रक्षा, समान लाभो की इच्छा या परोपकार की भावना से समूह और व्यक्ति दूसरे समूहों या व्यक्तियो से सहयोग करते हैं। सहयोग से व्यक्तियों में एक सरगर्मी जोश और अधिक काम करने की प्रवृत्ति उदित हो जाती ह, और काम करने का वेग और काम-क्षमता भी बढ़ जाती ह।

सामाजिक परिवर्तन में सहयोग की गति बहुत कुछ अदृश्य होती है। जिसबर्ग के शब्दों में 'विभिन्न राजनैतिक समूहों में, राजनैतिक और आर्थिक अन्तर्निर्भरता के विकास में और सम्भवत सांस्कृतिक भिन्नताओं के बावजूद, विज्ञान, कला, धर्मों और संस्कृतियों के आधारभूत सात्मीकरण (Assimilation) और उद्देश्य की एकता में भी सहयोग की भावना की ही अभिव्यक्ति होती है।

सहयोग की भावना का सहजप्रवृत्ति और आत्मरक्षा के स्तर से धीरे धीरे अत्यधिक परिष्कृत, स्वतन्त्र और स्नेहयुक्त सहयोग की वृत्ति में विकास हुआ है। क्रोपाटकिन ने अपनी पुस्तक 'पारस्परिक सहायता' में सहयोग के कारण प्राणियों की अलग-अलग जातियों के अस्तित्व और जीवन रक्षा के कितने ही प्रमाण दिए हैं। परस्पर सहायता का प्रचलन प्राणियों की निम्नतम स्तर की जातियों, चीटियों आदि में भी होता है, और ऊंची विकसित जातियों में भी सन्तान के पोषण और खाद्य सामग्री के संग्रह में परस्पर सहायता से सहयोग का उदय होता है। क्रोपाटकिन ने, मनुष्यों में सहयोग और सहायता के विस्तृत होते हुए क्षेत्र का वर्णन करते हुए इस ओर संकेत किया है कि सहयोग के कारण ही हमारे समाज में मानसिक और शारीरिक दृष्टियों से दुर्बल व्यक्तियों को भी स्थान मिला हुआ है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सहयोग सहयोग प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, दोनों प्रकार का हो सकता है। जब हम समानहित के लिए एक साथ मिलकर सामूहिक रूप में वह कार्य करते हैं जो कि हम अकेले भी कर सकते हैं तो यह प्रत्यक्ष सहयोग है। परन्तु जब हम भिन्न भिन्न कार्यों को करते हुए एक ही ध्येय की ओर बढ़ते हैं, जैसा कि श्रम विभाजन में होता है, तो यह अप्रत्यक्ष सहयोग है।

जब कभी भी लोग अपनी भिन्नताओं से लाभ उठाकर एक हित की पूर्ति करना चाहते हैं तो वहां श्रम विभाजन विकसित हो जाता है। हमारी यान्त्रिक प्रगति के साथ-साथ प्रत्यक्ष-सहयोग को अप्रत्यक्ष सहयोग स्थान देता गया है। सभी श्रम विभाजन और विशेषीकरण के कारण हम प्रगति कर सके हैं। इसके साथ-ही-साथ प्रत्यक्ष सहयोग में जो घनिष्ठता, स्नेह और व्यक्तिगत सम्पर्क के तत्त्व विद्यमान थे उनका स्थान पृथकता, विशिष्टता, दूरी और निःस्नेह वातावरण ने ले लिया है। और आज व्यक्तित्वों के विघटन का मुख्य कारण प्राथमिक समूह परिवार, पाठशाला और बचपन के प्रत्यक्ष घनिष्ठ सहयोग के वातावरण और व्यस्त जीवन के श्रम विभाजित, अव्यक्तिगत सहयोग के वातावरण का परस्पर अन्तर ही है।

सहयोगात्मक क्रियाएं सोरोकिन ने सहयोगात्मक क्रियाओं के तीन भेद किए हैं (१) सीमान्त सहयोग, जो अंशत स्पर्द्धात्मक और अंशत सहयोगात्मक होता है, (२) माध्यमिक सहयोग, जो अधिकतर सहयोगी समूहों में होता है। इनमें समूह के सदस्य परस्पर सहयोग करते हुए भी सहयोग का पूरा-पूरा अर्थ नहीं समझते।

(३) पूर्ण सहयोग, जिसमें समष्टि हित की भावना प्रबलतम होती है।

समष्टि हित और व्यक्तिक हित सहयोगियों के दृष्टिकोण भी दो प्रकार के हो सकते हैं। यदि भिन्न भिन्न व्यक्ति एक ही समान हित के लिए सहयोग करते हैं तो उनमें से प्रत्येक सामूहिक लाभ की चिन्ता करता है, अपने स्वार्थ की नहीं। ऐसे समूहों में व्यक्तिगत बलिदान की भावना प्रबल होती है। निराशा या पराजय ऐसे समूहों को विशृंखल नहीं करती, विपत्ति उनको छिन्न भिन्न नहीं कर देती।

परन्तु यदि भिन्न भिन्न व्यक्ति अपने अलग-अलग, पर एक-जैसे लाभों के लिए सहयोग करते हैं, तो वह सामूहिक लाभ की उतनी चिन्ता नहीं करेंगे। वह तो केवल समान हितों की अभिज्ञता के कारण परस्पर थोड़ा थोड़ा समीकरण ही करेंगे? अपने-अपने हितों की दृष्टि से कुछ मैत्री-स्थापन (Reconciliation) ही करेंगे। विपत्ति उनके सहयोग को समाप्त कर देगी। इसी कारण हमारा आधुनिक समाज जिसमें व्यक्तिगत हितों की पूर्ति के प्रयास में श्रम विभाजन के प्रकार का सहयोग है अस्थिरता और अशान्ति के भय से भयभीत है।

सहयोग सामूहिक जीवन का प्राण है प्रेरणा का केन्द्र है, सामाजिकता का सार है। परन्तु अत्यधिक सहयोग ऐसी व्यवस्था को भी जन्म दे सकता है जिसमें काम की गति ही रुक जाए, जिसमें व्यक्ति अपना-अपना अलग-अलग व्यक्तित्व ही खो दें जिसमें चेष्टा आरम्भ करने की शक्ति का, रचनात्मक प्रयास का, व्यक्तिगत विचारों का और नए-नए अनुभवों और प्रयत्नों का पूर्ण ह्रास होने लगे जाए। ऐसी अवस्था में तो सहयोग समाज की प्रगति को ही समाप्त कर देगा।

७ विरोध (Conflict)

विरोध वह प्रक्रिया है जिसे बटलर ने सामाजिक जीवन में चाकू का नाम दिया है। हमारे समाज में यह प्रक्रिया युद्ध संघर्ष हड़ताल, क्रान्ति, मार-पीट और हत्या आदि के रूप में प्रकट होती है। डार्विन गुम्पलोविज और गिडिंग्स आदि कुछ विद्वानों ने इसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और सनातन माना है। फ्रायड ने भी इसे मनुष्य के स्वभाव का नैसर्गिक, प्रभावी और अनिवार्य अंग बताया है। परन्तु जो प्रवृत्तियाँ हमारे जीवन का अंग हैं वही मानवता के इतिहास के प्रत्येक काल में सामाजिक जीवन का आवश्यक अंग रही हों यह जरूरी नहीं है। सामाजिक विरोध के अन्तर्गत वह सम्पूर्ण व्यवहार आ जाता है, जिसमें अलग-अलग व्यक्ति या समूह एक ही उद्देश्य या लक्ष्य के लिए एक-दूसरे के विरुद्ध चेष्टा करते हों। यह सामाजिक शक्तियों के संघर्ष का नाम है चाहे वह संघर्ष आर्थिक क्षेत्र में हो, या राजनैतिक क्षेत्र में।

प्रत्यक्ष विरोध प्रत्यक्ष विरोध वह होता है जिसमें दो या अधिक व्यक्ति

विरोध या स्पर्धा नैसर्गिक नहीं यह कहना कि सहयोग या विरोध या स्पर्द्धा हमारे स्वभावों के नैसर्गिक अंग है, बहुत भ्रान्तिपूर्ण है। यह तो समाज द्वारा व्यक्तियों में भर दिए जाते हैं और यह, न केवल व्यक्तियों को बल्कि समाज की व्यवस्था को भी अत्यधिक प्रभावित करते है। किसी समाज में इनका क्या रूप होगा, इसका बहुत कुछ निर्धारण उस समाज की व्यवस्था करेगी, और इसलिए इन प्रक्रियाओं का अध्ययन अलग अलग समाजों की पृष्ठभूमि में ही करना होगा।

४ समीकरण (Adjustment)

दो व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह जब परस्पर विरोध और संघर्ष में रत होते हैं तो अंत में उस संघर्ष की निष्फलता या एक दूसरे को पराजित कर सकने की असफलता को स्वीकार करके विरोध या संघर्ष का अन्त कर देते है, और लड़ाई झगड़ा छोड़कर साथ साथ रहने लग जाना आरम्भ कर देते हैं। यह देखा गया है कि जो बच्चे शीघ्र झगड़ पड़ते है, वह मित्रता की स्थापना भी शीघ्र ही कर लेते है।

जिस प्रक्रिया द्वारा दो परस्पर विरोधी समूह समीकृत होकर रहने लगें और शत्रुभाव या द्वेष के होते हुए भी साथ-साथ काम करने लग जाएं, उस प्रक्रिया को समाजशास्त्रियों ने समीकरण का नाम दिया है। साथ साथ रहने या काम करने का यह अर्थ नहीं होता कि द्वेष भावना का अन्त हो गया है। इसीलिए समनर ने समीकरण को विरोधात्मक सहयोग का नाम दिया है। किन्तु समीकरण की मात्रा द्वेष की अवस्था में कम होती है, और उसकी अनुपस्थिति में अधिक।

हम अपने शैशव से ही समीकरण का पाठ पढ़ते आए हैं। बच्चा अपनी आशा के पूरा न होने पर विरोधी भावना प्रदर्शित करता है परन्तु शीघ्र ही अपने विरोध की निष्फलता का ज्ञान प्राप्त करके बड़ों के व्यवहार के अनुसार समीकृत होता जाता है, और अपने व्यवहार को उनके अनुकूल बनाने लगता है।

५ समवस्थापना (Accommodation)

विरोध की समाप्ति पर जो समूह या व्यक्ति क्या सम्बन्ध स्थापित करेंगे, अर्थात् उनमें समीकरण का क्या रूप होगा, इसका निर्धारण दोनों के पूर्व अनुभव द्वारा होता है। यदि विरोध एक समूह की पूर्ण पराजय पर समाप्त होता है तो पराजित को विजयी की इच्छा के आगे नतमस्तक होना पड़ता है और पराजय स्वीकार करके एक हीन दशा को स्वीकार करना पड़ता है। इस प्रकार समीकरण समाज में इन व्यक्तियों या समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध और स्थान का निर्देश कर देता है। पर यह ऐसे समूहों में होता है जो असमान शक्ति वाले होते है। परन्तु यदि दोनों समूह लगभग एक-सी ही शक्ति रखते हों तो उनमें शासक शासित, प्रबल-दुर्बल और उच्च-हीन सम्बन्ध की जगह समभाव स्थापित हो जायेगा। दोनों ही थोड़ा थोड़ा झुकेंगे जिससे कि समझौता हो सके और परस्पर समझौते से

ही उनमें सुलह स्थापित हो जायेगी । इस स्थिति को समवस्थापन कहेंगे ।

यह ध्यान रखना आवश्यक ह कि बुनियादी सिद्धाता पर कोई सुलह नही हो पाती, सुलह विरोध के कारण से भी प्रभावित होती ह और सस्कृति का भी ग्म पर प्रभाव पडता ह । हमारे राष्ट्रीय आ दोलन में अहिसा और प्रेम को प्रमुख स्थान दिया गया । इसीलिए हमारे नेता जनता से भारत को ब्रिटिश राष्ट्रसघ सदस्यता को मनवा सके । फास और जमनी में परस्पर अविश्वास की जो भावना विद्यमान है, वह उनकी सस्कृतियो का अग बन गई ह, और इसीलिए उनके बीच समवस्थापन की समस्या बहुत कठिन बन गई ह ।

सहनशीलता (Tolerance) जिन समहा में समवस्थापन नहीं हो सकता और जिनके आधारभूत सिद्धान्त या आदश, व्यवस्थाए या धर्म परस्पर वपम्यों का समीकरण नही कर सकते उन समूहो में परस्पर सहनशीलता का सम्बध स्थापित हो जाता ह । भारत में सूफीमत, कबीर, नानक और अमीर खुसरा की शिक्षाए हिदू और मुस्लिम धर्मों में ऐसी ही सहनशीलता की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थी ।

मत परिवतन (Conversion) सहनशीलता में असह्य, पर अनिवाय को सह लेने की भावना होती ह पर उससे मत्री नही होती । परन्तु कई बार किन्ही नये कारणा या नई घटनाओं के कारण परस्पर घृणा स्नेह में परिवर्तित हो जाती ह और हृदय-परिवतन विश्वास का विकास करता है । अलग-अलग विचार रहते हुए भी सहयोग होन लगता ह, परन्तु पथकता बनी ही रहती ह । लेकिन एक विरोधी अपनी भूल मान ले या दूसरे के दृष्टिकोण को स्वीकार करले, तो मत-परिवतन हो जाता है और दोनो विरोधी व्यक्ति या समूह एक ही आदश की प्राप्ति में सलग्न हो जाते हैं ।

समीकरण (Adjustment) के इन रूपो में से कौन सा रूप अपनाया जायेगा इसका निणय न केवल व्यक्तियों और समूहो की पारस्परिक शक्ति करती ह, बल्कि विरोध के अत का समय भी । परन्तु इसमें सबसे अधिक प्रभाव सस्कृति का होता है । शान्ति प्रिय सस्कृतिया में विरोधी पच निर्णय मान लेते ह परन्तु कई सस्कृतियो में व्यक्तिगत प्रतिशोध की ज्वाला विरोधियो को सदा जलाती रहती है । इसी प्रकार, यदि कोई क्रो इडियन दूसरे डकोटा कबीले के सदस्य का खून कर दे,तो यह आनन्द का विषय होता ह, पर अपने ही कबीले के व्यक्ति को मारना दण्ड नीय है । परन्तु कुछ कबीला में बिल्कुल उलटा रिवाज ह और परस्पर सहयोगी जूनी पडौसी नावाहो लोगो को हानि पहुचाना गव का बात समझते है । हमारे समाज में व्यक्तिगत विरोध का बुरा माना जाता है और इसके निपटारे के लिए पचायतें, अदालतें विधान इत्यादि बने हुए ह । इस रूप में यह स्पष्ट है कि विरोध

कैसे समाप्त हो और समीकरण का क्या रूप हो, इसका बहुत कुछ निर्धारण समूह की संस्कृति पर निर्भर है।

६ सात्मीकरण (Assimilation)

मतपरिवर्तन के किस्म का समीकरण सात्मीकरण का उदाहरण है। पाक और बर्जेस के शब्दों में यह 'अन्तःप्रवेश और विलयन की वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति और समूह दूसरे व्यक्तियों और समूहों की स्मृतियों, भावनाओं और धारणाओं को सीखते हैं, उनके अनुभव और इतिहास में साझीदार होकर उनके साथ एक ही सांस्कृतिक जीवन में अंग बन जाते हैं।' दूसरे देशों में बस जाने वाले प्रवासी धीरे धीरे नई संस्कृतियों और आदर्शों को अपने जीवन में मिलाने की चेष्टा करते हैं और समय पाकर उन्हीं देशों के जीवन के अंग बन जाते हैं। गोद लिए हुए बच्चे धीरे धीरे नए परिवार के मूल्यों और विश्वासों को सीखकर उन्हीं में घुल मिल जाते हैं।

इसका यह अर्थ नहीं है कि सात्मीकरण इकतरफा प्रक्रिया है। जब एक अल्पसंख्यक समूह किसी बड़े राष्ट्रीय समूह का अंग बनता है तो न केवल वह उस राष्ट्र की परिपाटियां और धारणाएं स्वयं स्वीकार करता है, बल्कि उसके राष्ट्रीय जीवन को भी अपने विचारों और रिवाजों द्वारा प्रभावित करता है। भारतीय संस्कृति किस प्रकार द्राविड़, आर्य, पारसी, मंगोल, अरबी, योरपीय इत्यादि, अनेक संस्कृतियों से मिलकर एक संयुक्त, सम्पन्न और गतिशील संस्कृति के रूप में विकसित हुई है और किस प्रकार अलग अलग आगन्तुक समूहों ने हमारे समाज में सात्मीकृत होकर अपना प्रभाव इस समाज और जीवन पर छोड़ा है, इस तथ्य का अध्ययन सात्मीकरण की प्रक्रिया के दोतरफा होने का अच्छा उदाहरण है।

सात्मीकरण (Assimilation) पर संख्या का भी प्रभाव पड़ता है। संख्या में बहुत थोड़े लोग किसी बृहत् समाज में धीरे-धीरे पूर्णतः घुल-मिल जाते हैं और उनकी अपनी अलग सामूहिक पृथकता नहीं रह पाती। परन्तु यदि उनकी संख्या अधिक हो या बराबर बढ़ रही हो, तो न केवल उनकी अपनी एकता और स्वाभिमान ही सात्मीकरण की प्रक्रिया की गति का बहुत धीमा कर देंगे, बल्कि बृहत् समाज भी उनके प्रति अविश्वास और अनुदारता की भावना से भर जायेगा। और इस प्रकार, सात्मीकरण के स्थान पर फिर विरोध विकसित हो जाएगा।

सात्मीकरण के लिए आवश्यक है कि दो समूहों में एक-दूसरे के प्रति वैर भावना न हो और वे ऐसी भावनाओं द्वारा आन्दोलित हों, जो उन्हें समीपतर लाती रहें। जब तक कोई समूह अहंकारपूर्ण विचारधारा रखता है, तब तक परस्पर समीकरण होने पर भी, पृथकता बनी ही रहती है। नस्ली अहंकार भी सात्मीकरण के मार्ग में बाधक होता है। दो समूहों में यदि केवल सहयोगियों

का अन्तर होता ह तो दूसरी-तीसरी पीढी में नए समूह के लिए पूण सामाजिक स्वीकृति प्राप्त कर लना सम्भव हो जाता हैं। परतु नस्ल, घम और आदर्शों की तीव्र विषमताए सामाजिक स्वीकृति की प्राप्ति को कठिन बना देती हैं। इस अवस्था में तो शासक शासित श्रेष्ठ निकृष्ट या उच्च निम्न की हसियत से ही समीकरण सम्भव होता ह।

भीड व्यवहार

भीड (Crowd) और सक्रिय उत्तेजित भीड (Mob)

अनिर्धारित नतृत्व और सदस्यता के समूह सदस्यता और नेतृत्व का निर्धारण एक समह के प्रकार और उसके व्यवहार की विशेषताओं पर अच्छा प्रकाश डालता ह। जिन समूहो का नेतृत्व या सदस्यता या इन दोना का निर्धारण परम्परा द्वारा होता ह उनमें हम उन सभाओ व गोष्ठियों आदि को गिन सकते ह जिनमें श्रोताओ व दशकों का प्रवेश निमन्त्रण पत्र या टिकट द्वारा होता हैं। पर हमारे समाज में एसा परिस्थितियाँ और अवसर भी कम नहीं होते, जिनमें एक समूह न तो जान-बूझकर या सोच समझकर न निश्चित प्रणाली नतृत्व का निणय करता ह द्वारा और जहाँ सदस्या के विषय में भा कोई विशिष्टता की आवश्यकता नही होती। एसे समूहा में भीड और उत्तजित भीड महत्त्वपूण ह।

शहर क बीच में घूमते हुए राहगीर जब दो साइकिल सवारो की टक्कर से पदा हुई लडाई स आकृष्ट हाकर इकटठे हो जाते ह ता न तो उनके आकपण, का कन्द्र पूवनिधारित होना ह न ही उनक मन में इस बात का कुछ विचार होता है कि वहा कौन-कौन औ कैसे-कैस व्यक्ति आकर यह तमाशा देखेंगे। इन अर्थों में एक भीड कुछ ऐसे व्यक्तियों का आकस्मिक समूह है, जा किसी ध्यान को आकृष्ट करने वाले एक समान केन्द्र के आस-पास एकत्रित हो जाते ह। इसमें उनकी सख्या की कोई निश्चित धारणा नही होनी। परन्तु फिर भी उनकी पर्याप्त सख्या आवश्यक है।

इससे यह न समझना चाहिए कि एक वक्ता की वक्तृता सुनने के लिए आमन्त्रित श्रोतागण भी एक भीड ह। उनके ध्यान का एक निश्चित केन्द्र हान पर भी वह एक परम्परा द्वारा पूव निर्धारित ह। सिनमा-दशक राजनतिक भाषण या प्रदशन में भाग लने वाल सदस्य या श्रोतागण किसा सुन्दर वस्तु की ओर एकटक देखन वाले परिवार के सदस्य, यह सब नियमबद्ध और पूवनिश्चित व्यवहार वाले परम्परा द्वारा निर्दिष्ट समूह हैं। पर भीड़ आकस्मिक हाती ह उसकी कोई एक नियत प्रणाली नहीं हाती।

भीड़ (Crowd)

एक सामान्य केन्द्र की ओर आकर्षितों का अस्थायी जनघट जसा कि उम

कहा जा चुका है, 'भीड एक सामान्य केन्द्र की ओर आकृष्ट व्यक्तियो का एक आकस्मिक जमघट है। ज्यो ही आकर्षण का केन्द्र नष्ट हो जाता है या एकत्रित व्यक्तियो के ध्यान का केन्द्र बनने मे अयोग्य हो जाता है वह भीड तितर बितर हो जाती है। इसमे स्पष्ट है कि भीड एक अस्थायी समूह है। आकर्षण के सामान्य केन्द्र के ध्यान मे उतरते ही भीड अन्तर्ध्यान हो जाती है।

शारीरिक सामीप्य साक्षात सम्पर्क, केन्द्रित अन्तःउद्दीपन (Inter stimulation) इस तरह इकट्ठे हुए लोग सख्या में इतने तो होने ही चाहिए कि वे एक-दूसरे के साक्षात् शारीरिक सम्पर्क में आ सकें। एक आकर्षण केन्द्र की ओर उत्सुक होने के कारण से सभी उसके पर्याप्त समीप पहुचना चाहते है। सब एक-दूसरे से आगे निकलना चाहते है। परिणामत, कन्धे-से-कन्धा भिडने लगते है।

शारीरिक सामीप्य और निकट सम्पर्क द्वारा वह एक-दूसरे पर अपनी उपस्थिति से प्रबल प्रभाव डालते है। प्रत्येक व्यक्ति पर अन्य सबके उपस्थित होने की उद्दीप्ति होती है और प्रत्येक व्यक्ति अन्य सब को भी उद्दीप्त करता है। इस सामूहिक उद्दीपन से जो शारीरिक सम्पर्क मे और भी तीव्र हो जाता है, सभी उद्दीप्त होते है। किसी के कुछ कहने और व्यवहार करने का भी इस पर प्रभाव पडता है। इस प्रकार जब एक व्यक्ति पर चारो ओर से उद्दीपनो का आक्रमण होता है तो वह अत्यन्त उत्तेजित हो जाता है। केन्द्र में खडे लोग सबसे अधिक उद्दीप्त होते है, किनारो पर खडे हुए उनकी अपेक्षा बहुत कम।

भीड में घुसने या बढने के कारण शारीरिक दबाव ऐसे समय यदि वे लोग जो किनारो पर या बाहिर खडे है, उत्सुकता के कारण आगे बढने की चेष्टा करें, जो बीच में है, वे सबसे आगे जाना चाहें और कुछ अधिक तेज या अति उत्सुक व्यक्ति दूसरो को कुहनी मार कर या धकेल कर आगे निकलना चाहें, तो भीड में शारीरिक दबाव बहुत बढ जाता है। कन्धे से कन्धे भिडने के साथ-साथ रेल में आगे या पीछे धकले जाना पिस जाना, फेंके जाना आदि आकस्मिक एव उत्तेजक अनुभव शरीर के अन्दर की अवस्था को उद्दीप्त करते है, और भीड की शक्ति के प्रति प्रत्येक सदस्य का अनुमान बढाकर उसके प्रति सम्मान की भावना और उत्तेजना को बढा देते है।

भीड समूह में अपरिमितता और अनुत्तरदायित्व एक समूह के सदस्य क्योंकि उस समूह के अग हो जाते है और समूह अपनी सख्या या शक्ति के कारण उनके सम्मान का पात्र हो जाता है, इसलिए वे अपने को व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से मुक्त अनुभव करते है। और क्योंकि समूह में काम करने वालो पर उनके कार्यों का परिणाम या उत्तरदायित्व सीधा उनके गले नहीं मढा जाता, इसलिए भी उनकी

नतिकता का स्तर नीचे गिर जाता है। भीड समूह में सदस्य व्यक्तियो की एक दूसरे मे अपरिचिति भी उनको व्यक्तिगत रूप से अपने नतिक उत्तरदायित्व से बहुत कुछ मुक्त कर देती है। भीड में हमें यह चिन्ता नही होती कि हम किसी उत्तरदायित्व से बधे हुए है, या हमें कोई देख रहा है। और इस अनियन्त्रण के कारण हम उत्तेजना और उद्दीपन के तीव्र वेग में अपने आप को, अपने उच्च बन्धनो और आदर्शों को भूल जाते हैं।

नैतिक बन्धनो की शिथिलता और अनुत्तरदायित्व समूह की प्रतिष्ठा और अपने उत्तरदायित्व को उस पर छोड देने की प्रवृत्ति और उद्दीपन के वेग की तीव्रता के कारण, हम अपनी नतिकता को तिलाजलि देकर निम्न और असभ्य व्यवहार तक कर बैठते है। हमारे मन और आचरण पर से संस्कृति और समाज का भय हट जाने से हमारी असामाजिक भावनाए प्रबल हो उठती है।

इस प्रकार हम भीड में तीव्र उद्दीपन तथा समूह के प्रति सम्मान की भावना और नतिक बन्धनो को ढीला होते देखते हैं। ये सब बातें व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। पर इनके साथ व्यक्तियो की मनोवैज्ञानिक अवस्था नेता, सुझाव, प्रतीकी सकेतो ध्वनियो और नारो की उत्तेजना का भीड पर जो प्रभाव पडता है वह और भी भयकर होता है। किसी भीड में कितनी उत्तेजना है इसे देखकर सामान्य बुद्धि से ही हम भीड और सक्रिय या उत्तेजित भीड का अन्तर पहचान सकते है।

सक्रिय या उत्तेजित भीड़ (Mob)

दूसरों को किसी ओर देखते देख स्वय भी उसी तरफ देखने लगना या दूसरों को सुनते देखकर स्वय भी सुनने लगना मानव-स्वभाव है। जब लोग केवल कुछ मिनटो के लिए ठहरकर कुछ देखने लगते है तो वह भीड होती है। परन्तु जब उत्तेजना और साक्षात् सम्पर्क नैतिक बन्धनों को ढीला करने लगते हैं और भीड वस्तुत उत्तेजित हो जाती है, और वह या तो किसी सुझाव के कारण या किसी नेता के आदेश पर अपनी उत्तेजना को क्रियात्मक रूप देने लगती है, तो वह सक्रिय भीड हो जाती है। उसे उत्तेजित भीड भी कह सकते है।

इन समूहो में एक सामान्य आकर्षण केन्द्र होने के अतिरिक्त, चेतना की गहराई में बठी हुई प्रवृत्तियां और उद्वेग उच्छृखल हो जाते हैं। एक सक्रिय भीड में प्रेम भय क्रोध और आक्रमण की प्रवृत्तियां प्रबल हो उठता है। ऐसी अवस्था में एक ऐसी लडाई भी आरम्भ हो सकती है जो 'सब को मारो' प्रवृत्ति का विस्तार करे। अन्त में जब यह एकत्रित समूह फैलने लगता है, तो यह भीड नही रहती। प्राय डर और घबराहट के कारण ऐसा होता है और अगर पर्याप्त खुला स्थान हो तो भीड जल्दी ही तितर बितर हो जाती है। पर एक जलते हुए सिनेमा या

नाट्यशाला म यही प्रवृत्ति बाहर निकालने क रास्ता का रोककर दूसरा के लिए घातक हो जाती ह । इस प्रकार हम देखते ह कि सक्रिय भीड क व्यवहार में अनुकरण, सुझाव प्राथमिक चालक, भावनाओं और नता का महत्वपूर्ण हाथ होता ह ।

भीड व्यवहार क आधार

भीड व्यवहार के प्राथमिक लेखकों न इसे एक रहस्यमयी शक्ति का परिणाम समझा था। ला बौन का विचार था कि कभी-कभी सामूहिक चेतना व्यक्तियों पर अधिकार कर लेता ह इसे उसने भीड की मानसिक एकता का नियम' कहा ह । बाद क लेखकों न इस भीड व्यवहार को उसके अनैतिक उत्तेजित आचरण क कारण विकृत व्यवहार कहा ह । मार्टिन न फ्रायड क सिद्धांत का अनुसरण करते हुए इसे 'दबी हुई कामवासना की अभिव्यक्ति' कहकर समझाने की चेष्टा की ह । पर हमें किसी एक तत्व से नहीं कई तत्वों के विश्लेषण से इसे समझाने का प्रयत्न करना होगा ।

अनुकरण (Imitation) प्राचीन समाजशास्त्रियों ने अनुकरण क भिन्न भिन्न अर्थ किए ह । वाल्टर बेगहाट और तार्दे ने सांस्कृतिक प्रणालियों और तत्वों के प्रसार (Diffusion) को अनुकरण बताया है। बाल्डविन न इस सरल और जटिल, सभी प्रकार क शिक्षण क रूप कहा ह । स्पष्टत अनुकरण शिक्षण की प्रक्रिया को घटा देता ह, क्योंकि दूसरे व्यक्ति को कुछ करते हुए देखने का सीधा प्रभाव यह होना ह कि दर्शक भी उसी प्रकार की क्रिया करने लगता ह । अनुकरण कर्ता भूल-सुधार की चेष्टा नहीं करता । जो भी हो यह तो निश्चित ह कि अनुकरण एक व्यक्ति की क्रिया का दूसरे व्यक्ति द्वारा अपनाए जाने का नाम ह । इस प्रकार अनुकरण कोई पृथक सहजप्रवृत्ति नहीं ह । चूंकि हम सबका शरीर-यंत्र एक-सा ही होता ह इसलिए हमारे उद्दीपन और प्रत्युत्तर भी प्राय एक ही ढंग के होते ह और यह एक समान व्यवहार का आधार बनते ह। इसी प्रकार हम बचपन से ही दूसरों को देखकर वैसा ही करने क अभ्यस्त हो जाते ह । दूसरों को हंसते देखकर हम हंसना स्वाभाविक-सा लगता ह। शिशु क अपनी मातृ भाषा सीखने और सामाजिक रीति रिवाज व मान्यताएं सीखने का आधार अनुकरण ही हैं ।

प्रतिष्ठित व्यक्ति का व्यवहार अनुकरण की लालसा को बढ़ाता है। नेता की प्रेरणा भी इसी कारण प्रभाव डालती ह । कई बार अनुकरण सोच-समझकर भी किया जाता हैं । परन्तु भीड-व्यवहार म ऐसा बौद्धिक अनुकरण नहीं होता। इन अवस्थाओं में तो अचेतन और आकस्मिक अनुकरण ही होता ह ।

सुझाव (Suggestion) नादिरशाह क आक्रमण के समय बाजारों में अफवाह उड़ाई गई कि, 'वाह रे मुहम्मदशाह रंगीले, तूने भी क्या मुगलई हाथ

दिखाया। नादिरशाह को बुलाकर कत्ल कर ही तो दिया।" बादशाह इस प्रकार तातारियों के सरदार विजेता को समाप्त कर दें तो फिर इस 'प्रतिष्ठित' व्यवहार का अनुकरण जनता क्यों न करे? और थोड़े ही समय में राजधानी में बिखरे सात सौ तातारियों को समाप्त कर दिया गया।

यह घटना सुझाव के प्रबल प्रभाव की ओर संकेत करती है। जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को किसी विचार, विश्वास या क्रिया की प्रेरणा इस प्रकार देता है कि वह अपनी बुद्धि द्वारा बिना परखे या समझे उन्हें मान ले तो यह प्रक्रिया सुझाव कहलाती है। मैकडूगल के शब्दों में सुझाव संवादवहन (Communication) की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति सुझाई गई बात की युक्तिसंगतता पर विचार किये बिना ही उसे स्वीकार कर लेता है।

दूसरों की विचारशक्ति पर रोक लगाकर उनसे अपना मनचाहा कुछ करा सकना ही सुझाव है। इसमें बाहर की प्रेरणा या उद्दीपक और व्यक्ति की मानसिक या आन्तरिक तत्परता दोनों की आवश्यकता पड़ती है।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो शीघ्र ही सुझाव के प्रभाव में आ जाता है। वह दूसरों की राय मानने में पहले सोचने के लिए नहीं ठहरता। प्रतिष्ठित और माननीय व्यक्तियों द्वारा सुझाई गई प्रेरणाएं अधिक प्रभावोत्पादक होती हैं, और उनको शीघ्रता से मान लिया जाता है। एक परीक्षण में कुछ ऐसे विद्यार्थियों को जो चिकित्सा शास्त्र के बारे में कुछ नहीं जानते थे इस विषय के बारे में कुछ सुझाव दिये गये और उनसे कहा गया कि वे उन पर गलत और सही के निशान लगा दें। यद्यपि आधे सुझाव गलत थे, फिर भी अधिकतर विद्यार्थियों ने चार में से तीन पर सही के निशान लगा दिए। इस परीक्षण से सिद्ध होता है कि व्यक्ति अधिकतर विश्वासी होते हैं। इसका कारण भी है। हम प्रत्येक तथ्य या प्रत्येक मत का विश्लेषण नहीं कर पाते। हमारी शारीरिक सामर्थ्य हमें इसका अवसर नहीं देती। ऐसी स्थिति में हम अधिकतर विश्वास करके ही काम चला सकते हैं। बचपन से ही समझे बिना बड़ों द्वारा सुझाये काम करके हम अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

इसीलिए वयस्कों की अपेक्षा शिशु और बालक, सुझाव द्वारा अधिक प्रभावित होते हैं। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को तथ्यों के परीक्षण का कम अवसर मिलता है अतः उनमें शीघ्र विश्वास करने और दूसरों की राय पर अपनी राय बनाने की प्रवृत्ति प्रबल होती है और वे सुझाव द्वारा पुरुषों की अपेक्षा अधिक प्रभावित होती हैं।

प्रचार और अफवाह के कारण सुझाव का प्रभाव सुझाव के प्रभाव की वृद्धि में प्रचार, अफवाह, सांस्कृतिक अभिसंह (Conditioning) तथा चिह्न, प्रतीकों, पताकाओं और शब्दों के उत्तेजक प्रयोगों का बड़ा हाथ होता है। सुझाव

कुछ अर्थों में भयानक प्रभाव उत्पन्न करता है, यद्यपि कर्ता यही समझता है कि वह यह व्यवहार स्वयं जान-बूझकर कर रहा है। प्रचार के साधन तो आज बहुत सर्वविदित हैं। यथा-स्थान उनका वर्णन किया गया है।

अफवाहें तीन प्रकार से फैलाई जा सकती हैं (१) चर्चा द्वारा, (२) चिट्ठी, टलीफोन या तार द्वारा, और (३) बड़े पैमाने पर समाचारपत्र, सिनेमा और रेडियो द्वारा। इस सम्बन्ध में जीनोवीव की प्रसिद्ध चिट्ठी जिसको इंग्लण्ड की कंजर्वेटिव पार्टी ने चुनाव के अवसर पर प्रकाशित करके प्रचारित कर दिया था और जिसके परिणामस्वरूप लेबर पार्टी को चुनाव में बहुमत प्राप्त न हो सका था, एक अच्छा उदाहरण है।

पत्र का आशय था कि रूसी बोल्शेविकों को यह सूचना प्राप्त करके कि लेबर पार्टी इंगलण्ड में रूस जैसी सशस्त्र क्रान्ति करने का कार्यक्रम बना चुकी है, बड़ी प्रसन्नता हुई है इसलिए रूसी क्रान्तिकारियों की ओर से वह बधाई की पात्र है। यह पत्र रूसी क्रान्तिकारी नेता जीनोवीव ने लेबर पार्टी को लिखा था। कहना अनावश्यक है कि पत्र का कोई वास्तविक अस्तित्व न था। सारी बात झूठी थी, परन्तु इसका प्रचार इस वेग से किया गया कि बहुत लोगों ने इस पत्र पर विश्वास कर लिया।

भीड़ के प्रति सम्मान की भावना सुझाव की शक्ति को तीव्र करने वाला एक अन्य तत्व है कि व्यक्ति भीड़ के कार्यों को अधिक सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। यह भावना कि बहुत अधिक लोग एक साथ हैं, उनकी दृष्टि में समूह की प्रतिष्ठा को बढ़ा देती है। समूह की स्वीकृति से जो कार्य होते हैं, हम आरम्भ से ही उनको सम्मान देते आए हैं। इसी कारण हम बहुत बार भीड़ में बिना जाने व सोचे-समझे ही अनुचित असाधारण कार्यों को करने लगते हैं।

भीड़ पर ताल (Rhythm) का प्रभाव भीड़ के एक साथ, एक खास क्रम से, एक ही काम करने से व्यक्ति पर उसका प्रभाव बढ़ जाता है। सेनाओं के कदम मिलाकर चलने की ध्वनि, प्रार्थना-समूहों का कीर्तन, मिलकर गाये जाने वाले भक्तिपूर्ण गीत और भजन, आकाश को हिला देने वाले जय घोष और किसी आवश्यक व्यवस्था विशेष से पंक्तियों में खड़े हुए लोग, यह सभी समूह के प्रभाव को तीव्रतर कर देते हैं। सुझाव का वेग मात्रा तीव्रता सभी भीड़ समूह की ताल से अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं।

पूर्व धारणाओं और भावनाओं का भावात्मीकरण (Emotionalisation) सुझाव और अनुकरण दोनों प्रक्रियाएं व्यक्तियों के पहले से बने विचारों, भावनाओं और पूर्व धारणाओं को नए रूप में ताजा कर देती हैं, उनको एक नया वेग दे देती हैं। और उनकी सहायता से अपने प्रभाव को अधिक तीव्र बना देती हैं। शीघ्र

बिखर जाने वाली भीडो को छोडकर और सभी जनसमूह अपने सदस्यों में कुछ भावनाओ और सवेगो को विकसित कर देते ह। वास्तव में तो किसी भीड के स्थायित्व का आधार इसी बात पर निर्भर होता है कि वह अपने सदस्यो में कितना गहरा भावात्मक सम्पर्क स्थापित कर सकती है, जब एक बार कुछ भावनाए उदित हो जाती ह तो वह हर नई वस्तु पर नई परिस्थिति पर, अपनी छाप छोड देती ह। व्यक्ति का दृष्टिकोण उन से इतना प्रभावित हो जाता है कि वह हर एक नई परिस्थिति को इन भावनाओ द्वारा परिवर्तित ढग से देखता ह। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक पटिक ने कहा है "हम वस्तुओ को जसी वे ह वैसी नही बल्कि जसे हम ह वसी देखते ह।'

उत्तेजना की दशा में यह तथ्य और भी अधिक सत्य होता ह। न केवल प्रत्यक्षबोध (Perception) बल्कि वे धारणाए और चित्र भी जो हमारे मस्तिष्क में पहले से विद्यमान होते ह भावनात्मक हो जाते है। भय या क्रोध की अवस्था में व्यक्ति अपने साथियो के समान ही, शोषक, शत्रु, आततायी और अत्याचारी के विषय में अद्भुत और कृत्रिम कल्पनाएं करने लगता है। गप्प का प्रसार करने वाले न केवल इन चित्रो और कल्पनाओ की रचना को उद्दीप्त करते ह, बल्कि उनको अधिक प्राणवान् भी बना दते ह।

नेता की भूमिका भीड समूह में भीड ही के प्रति सम्मान की भावना नही वरन् नेता के प्रति सम्मान की भावना भी, अपना प्रभाव प्रदर्शन करती है। चूकि एक व्यक्ति आगे बढ़कर सारे समूह का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेता ह, इसलिए वह अधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगता ह और उसकी समूह का पथ प्रदर्शन करने की क्षमता व्यक्तियो को उसका अनुकरण करने की प्रेरणा देती ह। प्रत्येक व्यक्ति में अपने को नेता के साथ मिला देने की भावना का उदय होता है। हम अपनी भावनाओ और व्यक्तित्व को परारोपित (Project) कर नेता में मूर्त देखते ह और उसके विचारो और मान्यताओं को स्वीकार करने में प्रसन्नता अनुभव करते ह। शैशव स हमें परिवाररूपी सामाजिक पाठशाला में आज्ञा-पालन की जो शिक्षा मिलती है वह अभिसहित रूप में हमारे व्यक्तित्व का अग बन जाती ह और इसलिए हम नेता की आज्ञा का पालन करने के अभ्यस्त हो जाते ह। नेता भीड का केन्द्र बनकर उसे बिखर जाने से रोके रखता है, भीड की मूक भावनाओ की अभिव्यक्ति करता ह, उनको वाणी देता ह, उनको एक मूर्त रूप, कुछ विशेष शब्द, और निश्चित धारा देता है, ज० समूह में फैलती जाती ह और सभी सदस्यो की विशिष्ट प्रकार स सोचने की प्रवृत्ति को दृढ़ कर देती है। वह भीड में कुछ ऐसे धा[illegible] चिह्न और सामूहिक घोष भी ल[illegible] प्रिय कर देता है, जो बाद में उसे क्रियात्मक होने के लिए प्रेरणा देते रहते

है। यह न केवल उनको कार्य करने की प्रेरणा देता है, बल्कि वह उन्हें एक विशिष्ट दिशा भी बता देता है, जिसकी ओर वह अग्रसर हो। इसके अतिरिक्त, वह समूह की भावनाओं को प्रतीकों या चिह्नों द्वारा उत्तेजित करके उनको सक्रिय बना देता है।

मनोवैज्ञानिक अवस्थाएं और भीड़-व्यवहार

प्राथमिक प्रेरक भावनाएं (Motivations) वयस्क व्यक्तियों को प्रेरित करने वाली तीन प्रमुख बुनियादी प्रेरक भावनाएं होती हैं (१) सुरक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा (२) स्नेहमय जीवन जो अधिकतर परिवार में केन्द्रित रहता है और (३) सामाजिक मूल्य और मान्यताएं, जो कि नियमपालन व्यवस्था-स्थापन सम्पत्ति का स्वामित्व और नागरिक अधिकार इत्यादि में सम्मिलित होती हैं। जब भी इन प्रेरकों में से कोई अधिक उद्दीप्त हो जाता है, तब ही व्यक्ति अप्रत्याशित व्यवहार करने लगते हैं। व्यक्ति को अपने परिवार या अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा पर किसी विपत्ति की आशंका बहुत अधिक चौंका देती है और इसी तरह अपनी श्रेणी या अपने समाज की मान्यताओं के प्रति सक्रिय उपेक्षा उसे उत्तेजित कर सकता है। भारत में साम्प्रदायिक दंगों के समय अपनी सुरक्षा की चिन्ता अपने परिवार और बच्चों के प्रेम और अपनी मान्यताओं या संस्कृति के विरुद्ध आक्रमण की भावना ने ही अच्छे पड़ोसियों को भी एक दूसरे का वध करने पर उद्यत कर दिया। भीड़ समूह इन प्राथमिक प्रेरकों से सम्बद्ध प्रतिक्रियाओं को अपने समूह विषयक उद्दीपकों द्वारा प्रबल बना देता है, विपत्ति की सन्निकटता और उसकी भयानकता को और भी अधिक महत्त्व दे देता है।

भीड़ समूह द्वारा अचेतन में दबी भावनाओं का उदय न केवल वे ही चालक जो हमारी चेतन (Conscious) अवस्था में विद्यमान रहते हैं बल्कि वे भावनाएं भी जिनको अचेतन (Unconscious) अंतर्हित है भीड़ समूह में अपनी अभिव्यक्ति करने लगती हैं। फ्रायड के कथनानुसार हम शैशव से ही अप्रिय समाज और संस्कृति द्वारा वर्जित भावनाओं को बलपूर्वक अपने मन में दबा देते हैं अपनी चेतन अवस्था से निर्वासित कर देते हैं, हमारी नैतिकता या चेतना जिसे हमारे समाज के आदर्श और मान्यताएं निर्धारित करती हैं, इन भावनाओं को हमारे चेतन में आने से रोक रखती है। परन्तु, जैसे कि कहा जा चुका है, भीड़ समूह में यह नैतिक बन्धन शिथिल हो जाते हैं। भीड़ में हम अपने नहीं, भीड़ के आदर्शों पर चलते हैं। अतः भीड़ हमारा अचेतन में निर्वासित असंस्कृत भावनाओं को उत्तेजित करके हमें संस्कृति द्वारा वर्जित कार्य करने को उद्यत कर देती है।

नागरिक सभ्यता और भीड़ व्यवहार

सामाजिक हितों की पूर्ति हमारी सभ्यता के इस युग में, अव्यवस्थित

औद्योगिक विकास के कारण बड़-बड़े नगर जिसे ल्यूइस ममफोर्ड ने राजनगरीय (Metropolitan) कहा ह, बन गए ह और लोग अपने आत्मसीमित ग्राम-समुदायों और सुगठित पारिवारिक इकाइयों को छोड़कर उन नगरों में बस गए ह, भीड़-समूह का प्रभाव बहुत बढ गया है।

आज नगरों में व्यक्ति अपने सभी हितो की पूर्ति करने में असमर्थ ह। ग्राम में उसके सामाजिक हित पूरे हो जाते थे, वह एक समुदाय का अग था। नगर में वह अपने उस समुदाय की अनुपस्थिति के कारण, वैसा सामुदायिक वातावरण प्राप्त नही कर सकता। उसकी सामाजिक भावनाए अतृप्त और अवरुद्ध रहती है। न ही नगर इसके स्थान पर एसी सस्थाओं का शीघ्रता से विकास कर सका ह, जो उसकी इस हानि को पूरा कर सक। एक ऐसी बस्ती में जहा भाति भाति के लोग अलग अलग गावो से आकर बस गए ह, गाव जसा घनिष्ठ वातावरण पा सकना उनक लिए बहुत कठिन ह।

निराशा का वातावरण दूसरी ओर नागरिक जीवन की कृत्रिमता, जटिलता और अस्वाभाविकता व्यक्ति के जीवन में एक सूनापन उत्पन्न कर दती ह। प्रकृति से सम्पर्क की कमी स्नेहरहित वातावरण और स्वच्छन्दता पर बन्धन भी, उसके मन में एक निराशा और उदासी का उदय करते ह। आर्थिक मागो का पूरा न हो सकना इतना पीड़ाजनक नही ह, जितना अपनी सापेक्ष गरीबी की जागृत भावना। धनवानो के विलास की तुलना में अपनी हीनता, अभाव और दुर्दशा का अनुभव व्यक्तित्व के विकास पर बुरा प्रभाव डालते ह।

भाग्यवाद में विश्वास हमारे औद्योगिक ढाचे में इतना विशिष्टीकरण हो गया ह कि साधारण मनुष्य उसे समझ नही सकता। सामाजिक समस्याओं और सामाजिक प्रक्रियाओं को समझ पाने में भी वह असमर्थ ह। यह असमर्थता और अयोग्यता उसे आरण्यक व्यक्ति की ही भाति भाग्यवादी बना देती है वह अपने ज्ञान और अपनी शक्ति पर नही बल्कि कुछ अलौकिक कल्पनातीत शक्तियों में विश्वास करने लगता ह। अपने अज्ञान के कारण जीवन में कोई आनन्द न पाकर निराश हो, वह इस विश्वास को अपने हृदय में स्थान देता ह कि इस अन्याय व्यवस्था को कोई चमत्कार ही बदल सकता ह।

जीवन में नीरसता का आधिक्य हमारी औद्योगिक प्रणालियों के विशिष्टीकरण और जटिल और अत्युन्नत श्रमविभाजन के कारण एक व्यक्ति को सारा दिन एक ही काम बार-बार दोहराते रहना पड़ता है। इसमे जीवन में बहुमुखता नहीं रहती, जीवन एकांगी हो जाता है। यह तत्त्व भी जीवन को नीरस बनाने में योग देता है।

परिवर्तन और दृढ़ नेतृत्व की कामना आशाओं की अपूर्ति निराशाओं

की वृद्धि व्यक्तित्व के विकास का अवरोध और भाग्यवाद में विश्वास—इन सब तत्त्वों के एकत्रित हो जाने और एक दूसरे को अधिक प्रभावी बना देने से आज के सामान्य व्यक्ति के मन में परिवर्तन की प्रबल आकांक्षा और उसकी पूर्ति के लिए एक नेता की लालसा बड़ी बलवती हो गई है। समूह के प्रभाव के वेग का बढ़ जाना और नेता के प्रति निष्ठा की भावना का अधिक प्रबल हो जाना इन्हीं आकांक्षाओं का परिणाम है। भीड़ समूह हमारी परिवर्तन की लालसा जीवन की नीरसता शून्यता और उकताहट से बचने और पलायन करने की तीव्र इच्छा और हमारे कौतूहल को पूर्ण करने का साधन होता है, या कम से कम इन लालसाओं की पूर्ति की आशा दिलाता है। इसलिए आज के नागरिक जीवन में भीड़-समूह का प्रभाव बहुत बढ़ गया है। नागरिक जीवन में सुझाव की शक्ति, नेता के व्यक्तित्व के प्रबल प्रभाव और एक ही स्थान में अधिक लोगों के एकत्रित हो सकने के कारण भीड़ में अन्त प्रेरणा का वेग बहुत तीव्र हो जाता है।

सामूहिक समाज का उदय कुछ थोड़े से स्थानों में आवश्यकता से अधिक लोगों के आवास के कारण नगरों में भीड़ व्यवहार और सुझाव की शक्ति बढ़ गई है। थोड़ी ही देर में अफवाह तेजी से सब ओर प्रसारित हो जाती है उत्तेजना पल भर में सभी व्यक्तियों को उद्दीप्त कर देती है और जो व्यवहार एक स्थान पर एकत्रित हुए लोगों में होना चाहिए, वह अपने-अपने घरों में बैठे व्यक्तियों में भी अल्प मात्रा में दृष्टिगोचर होने लगता है। थोड़ी ही देर में लोग घरों से बाहर निकल आते हैं, छोटे छोटे समूह बना लेते हैं और फिर वही सब कुछ होने लगता है जो भीड़ व्यवहार की विशेषता है। भीड़ की सभी प्रक्रियाएं बलवती हो जाती हैं। पहले की अपेक्षा आज भीड़ें न केवल परिमाण में बड़ी होती हैं बल्कि उत्तेजना की मात्रा में भी।

संस्कृति और भीड़ व्यवहार

हाल ही में भीड़ समूह और उसके व्यवहार को सामाजिक रोग के रूप में अध्ययन करने की परिपाटी चल पड़ी है। हमारा समाज जो बातें व्यक्तियों के व्यवहार में सहन नहीं कर सकता, वह भीड़ समूहों के व्यवहार में स्वीकार कर लेता है। भीड़ों में निन्दित व दुष्ट कर्म करने वाले भी दण्ड नहीं पाते, और जो लोग भीड़ की उत्तेजना से पागल होकर पागल सरीखा आचरण करते हैं, उनको पागलखाने में नहीं भेजा जाता इससे स्पष्ट है कि हमारी संस्कृति भीड़ में व्यक्ति के व्यवहार को एक रोग मानकर उसकी उपेक्षा कर देती है।

फिर भी यह ध्यान देने का विषय है कि विभिन्न संस्कृतियां भीड़ व्यवहारों पर अपना प्रभाव डालकर उनकी सीमाएं निर्धारित कर देती हैं। कई संस्कृतियां में कुछ कम वर्जित होते हैं। जूनी संस्कृति भावनाओं के संयम पर अधिक बल देती

हैं जबकि व्यक्तित्व सस्कृति भावातिरेक को पसन्द करती है। अमेरिका में भीड समूह आत्मविस्मृत होकर सरकारी सम्पत्ति को नष्ट कर देते ह और किन्ही नियमों और व्यवस्था की परवाह नही करते। परन्तु इग्लैण्ड में, इसके प्रतिकूल भीड, व्यवहार बहुत सयत होता ह। सम्राट जाज पचम की रजतजयन्ती के समय बकिंघम प्रासाद के सामने के बगीचे मे बहुत भारी भीड एकत्रित हुई परन्तु उसकी समाप्ति पर देखा गया कि न तो उस बगीचे में से कोई फूल ही तोडा गया था, और न ही उसे कोई अन्य हानि पहुचाई गई थी। खेद से कहना पडता है कि इस विषय में हमारी सस्कृति में भीड व्यवहार पर ऐसे कोई दृढ बन्धन नही लगाये ह।

स्वतन्त्रताप्राप्ति से पहले और उसके पश्चात् भीडव्यवहार से प्रेरित जो साम्प्रदायिक दगे इस देश में हुए, उसमें हजारो मनुष्य मारे गये। इसके विपरीत, १९३४ में पेरिस में जो दगे हुए, वे इतने विस्तृत थे कि एक बडे राजनैतिक बवडर की सम्भावना हो गई थी, परन्तु फिर भी उनमें सम्पत्ति की हानि होने पर भी हत्या बिल्कुल नही हुई। इसका कारण फ्रास में कैथोलिक मत का प्रचार था, जिसमें हत्या को बहुत जघन्य माना गया ह। इसके साथ ही फ्रांसीसी क्रान्ति के पश्चात बने कठोर दण्ड विधाता ने भी सास्कृतिक मान्यताओ को लोक प्रिय बनाने में सहायता प्रदान की।

सुझाव और सस्कृति यह सकेत किया जा चुका है कि जो व्यक्ति अधिक भावुक और अशिक्षित होते हैं वह सुझाव से अधिक प्रभावित होते ह। प्रत्येक सस्कृति व्यक्तियों के चरित्र नियन्त्रण के लिए कुछ ऐसे भावनात्मक निषेध और प्रतिबन्ध लागू कर देती ह कि उस दशा में सुझाव का कोई प्रभाव नही हो पाता। हमारी ही सस्कृति में कोई भी तीव्र प्रतिष्ठित और प्रचारित सुझाव हिन्दुओ को गोवध के लिए प्रेरित नहीं कर सकता। यदि किसी व्यक्ति के मन में यह सस्कार बद्धमूल ह कि अमुक कार्य किसी भी अवस्था में अनुचित है तो उसे उस ओर झुका सकना बहुत कठिन ह।

इसी प्रकार यह भी देखा जाता ह कि सुझाव के प्रभाव को कम करने के लिए अलग-अलग सस्कृतिया अलग-अलग साधनों का प्रयोग करती ह। सुझाव के प्रभाव को कम करने का सबसे अच्छा उपाय व्यक्तियों में स्वतन्त्र चिन्तन और मनन की प्रवृत्ति को प्रबल कर देना ह। चिन्तनशील व्यक्ति सुझाव को स्वय सोच विचारे बिना स्वीकार नहीं कर लेते। स्वय सोच विचारकर प्रमाणो या तथ्यो का विश्लेषण करके जो बात स्वीकार की जाती ह, वह सुझाव की कोटि में नही आती। वाद विवाद भाषणकर्ता से प्रश्नोत्तर, लेखो की समालोचना, व्यक्ति को अपना निर्णय स्वय करने की स्वतन्त्रता अधिक या अधिक-से अधिक

विकेंद्रीकरण, जिसमें लोग अपना-अपना उत्तरदायित्व मानें, मान्यता और शिक्षा यह सर्व सुझाव की शक्ति को कम करते हैं।

एक अध्ययन में कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त अमरीकन विद्यार्थियों के सामने कुछ ऐसे दृश्य उपस्थित किए गए जिनमें नीग्रो लोगों द्वारा गोरी जाति की नारी के प्रति घृणित अत्याचार और अपमान की ओर संकेत किया गया था। यह सुझाव भी उनको प्रबल रूप से दिया गया कि वह नीग्रो लोगों से बदला लेने के लिए उत्तेजित भीड़ में मिलें। परन्तु उन विद्यार्थियों में से अधिक ने अपनी शिक्षा के प्रभाव के कारण इस सुझाव को अस्वीकार कर दिया।

भारत में भी गावों में एक नारी के प्रति किसी युवक के अनर्गल प्रलाप को क्षमा नहीं किया जाएगा और सुझाव का लोगों पर तात्कालिक प्रभाव पड़ेगा, परन्तु नगरों में शायद इसकी उपेक्षा कर दी जाए।

इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि व्यक्ति का स्वभाव और संस्कृति की मान्यताएं दोनों सुझाव के प्रभाव के वेग को अधिक या कम करने में अपना अपना योग देती हैं।

सामूहिक व्यवहार के अन्य रूप

१ श्रोता (Audience) और दर्शक समूह (Spectators)

संस्कृति निर्धारित अस्थायी समूह ऐसे अस्थायी समूहों की चर्चा, जिन की सदस्यता और नेतृत्व संस्कृति या परम्परा द्वारा निर्धारित नहीं होते, भीड़ व्यवहार के प्रकरण में की जा चुकी है। श्रोताओं या दर्शकों के समूह अधिकतर कुछ परम्पराओं के नियन्त्रण को मानते हैं। एक श्रोता-समूह में नेता का चुनाव अकस्मात् नहीं होता, किसी मान्य या प्रचलित ढंग से होता है। परन्तु उसकी सदस्यता के बारे में ऐसा कोई नियम नहीं है। वह श्रोता या दर्शक जो किसी नियत भाषणकर्ता का भाषण सुनने आते हैं या किसी निश्चित दृश्य को देखने आते हैं किसी विशिष्ट रीति से नहीं चुने जाते। परन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को ही श्रोता या दर्शक के रूप में आने की अनुमति दी जाती है। इन सभाओं के स्थान समय और विषय इत्यादि का निर्धारण भी श्रोता या दर्शक समूह के एकत्रित होने से पूर्व ही हो जाता है।

सदस्यों में अन्तःप्रेरणा का अभाव ऐसे समूहों में सब व्यक्तियों का ध्यान नेता या दृश्य की ओर होता है और उनके लिए उद्दीपन का केन्द्र वहीं केन्द्र होता है। सदस्यों में परस्पर अन्तःउद्दीपन का स्तर बहुत नीचा नहीं होता। इसीलिए एक स्थान में एकत्रित होने पर भी वह भीड़ जैसा व्यवहार नहीं करते। उनके व्यवहारों पर भी कुछ संस्कृति द्वारा निर्धारित रूढ़ियों का बन्धन दृढ़ रहता है।

श्रोता या दर्शक समूह का भीड़ बनना सम्भव यह सम्भव है कि किसी विशेष घटना के घटने पर श्रोता या दर्शकगण अकस्मात् उत्तेजित हो जाए अपना मानसिक सतुलन खो बैठें और उत्तेजित भीड़ का सा व्यवहार करने लगें, जैसा कि कभी कभी खेलों में रैफरी द्वारा किसी पक्षपात व अन्यायपूर्ण निर्णय देने पर हो जाता है। फिर भी अधिकतर अन्य अस्थायी समूहों की अपेक्षा यह समूह अधिक शान्त रहते ह।

२ जनता और जनमत (Public Opinion)

जनता समान विषयों में अभिरुचि रखने वालों का एक शिथिल समूह प्रत्येक समाज में हर समय बहुत-से ऐसे विषय होते ह जिन पर अलग-अलग व्यक्तियो या समूहों के पृथक-पृथक मत होते हैं। इन विषयो और समस्याओ पर समाज में निरंतर विचार विनिमय होता रहता ह परन्तु अलग अलग व्यक्ति अलग-अलग विषयो में अभिरुचि रखते हैं और वे ही उस विषय पर हो रहे वाद-विवाद म भाग लेते ह। जितने अधिक ऐसे विषय होते ह, उतने ही ऐसे समूह भी होते ह। जिन व्यक्तियों को एक एस विशेष विवाद ग्रस्त विषय में अभिरुचि होती ह और जो एक स्थान में रहने के कारण नही प्रत्युत प्रसार और सचार (Communication) के साधनो द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित होत ह, वे व्यक्ति एक जनता (Public) का निर्माण करते ह।

एक व्यक्ति, साधारणत एक से अधिक विषयों में अभिरुचि रखता है, और इसलिए वह एक से अधिक जनताओ का सदस्य हो सकता ह। एक जनता में जो विवाद चलता रहता ह वह भीड की तरह उत्तेजित भावनाओ द्वारा निर्णीत नही होता बल्कि विचार विनिमय तक वितक और युक्तियो द्वारा होता ह। इस तथ्य के आधार पर भीड और जनता का अन्तर समझा जा सकता ह मोटे तौर पर एक ऐसे सगठित समूह को जिसके सदस्य किसी एक समान विषय में अभिरुचि रखते हो हम जनता कह सकते हैं।

जनमत एक गतिशील प्रक्रिया (Dynamic Process) जनता का अधिक भाग किसी एक विषय पर जो मत रखता ह उस विषय पर उसी को जनमत कहा जाता है। परन्तु किसी विषय पर जनता पूर्णत एकमत नहो होती, क्योंकि जनता द्वारा पूर्णस्वीकृति प्राप्त कर लेने पर विशेष विषय सवमान्य मान्यताओ या जनरीतियो का अग हो जाते ह। इसीलिए जनता के एक प्रतिनिधि भाग के मत को जनमत कहने की धारणाओ को ठुकराकर कूले ने जनमत को गति शील रूप पर बल दिया है। जो लोग जनता के बहुमत का स्वीकार नहीं करत, वह अपने मत का प्रचार करते रहते ह और जनमत को बदलने का प्रयास करत

रहते हैं। इस प्रकार यह एक गतिशील प्रक्रिया है एक अगतिशील (Static) धारणा नहीं है।

समाज के प्रारम्भ मे ही अलग-अलग व्यक्तियो के विचारो, आदर्शों और भावनाओ में परस्पर अन्तक्रिया होती रहती है। जनमत इस अन्तक्रिया से सम्बन्धित एक गम्भीर प्रक्रिया है जो व्यक्तियो के विचारो को प्रभावित करके उन्हें कुछ निष्कर्षों पर लाती है। अपने गतिशील प्रवाह के कारण जनमत समूहो के विचारपूर्ण अभिमतो को एक निश्चित वाणी देता है और उनका रूप सुधारता रहता है, और इसके साथ ही यह अल्प समय के लिए अस्थायी तौर पर जनता के आदर्शों भावो और मान्यताओ को स्पष्ट रूप से निर्धारित करता है।

ग्रामीण समाजो में जनमत जनमत के अध्ययन के लिए यह जानना आवश्यक है कि सभ्यता के साधारण स्तर और मत प्रकाशन के सास्कृतिक माध्यम क्या हैं। प्राचीनकाल में छोटे-छोटे ग्रामो में सभी लोग साक्षात् और घनिष्ठ सम्बन्धो के कारण शीघ्र ही जनमत की अभिव्यक्ति कर सकते थे और व्यक्तियों पर उसका प्रभाव भी उस समय अत्यधिक होता था। पर वहाँ विवाद के विषय बहुत थोड़े थे, क्योंकि अधिकतर बातो पर परम्परा धर्म, समुदाय और जन रीतियो का तीव्र नियन्त्रण होता था। केवल दैनिक जीवन की बातें ही जनमत की परिधि के भीतर आ पाती थी। इस प्रकार के अपरिवर्तनीय, बहुत कुछ स्थायी विश्वासो और जनरीतियो को, जो सभी कृषक समाजो और वस्तु विनिमय की अर्थ व्यवस्थाओ (Barter Economies)में प्रचलित था, विलियम बॉवर ने अगतिशील जनमत का नाम दिया है।

नगरीय सभ्यताए और जनमत गतिशील जनमत यूनान और रोम की नागरिक सभ्यताओं में बहुत प्रभावशाली था। परीक्लीज और सिसरो के काल में घनी जनसख्या वाले नगरों में तत्कालीन महत्त्व के विषयों पर प्रमाण और तर्कों का आश्रय लेकर विवाद विवाद हुआ करते थे और भाषणो, प्रहसनो और नाटको द्वारा अपने-अपने मत का प्रचार भी सम्भव था। इटली के पुनर्जागरण काल में छोटे छोटे नागरिक समूहो के उदय ने, दीर्घ के दीर्घकाल में फली कृषि अर्थ-व्यवस्था पर आधारित ग्राम समूहों के अगतिशील जनमत को गतिशील बना दिया। आज के युग मे औद्योगीकरण, तीव्र प्रगति और हमारी सस्कृति के द्रुत नगरीकरण ने तो जनमत के क्षेत्र, गति, गुण और प्रभाव को बहुत ही विकसित कर दिया है।

आधुनिक सभ्यता का जनमत पर प्रभाव जनसख्या में तीव्र वृद्धि और बृहत् नगरो में जनता के एकत्र हो जाने से जनमत का वेग बढ़ गया है।

हमारे नतिक आदश, मान्यताए, और विश्वास बदल रहे ह, और ऐसे सक्रान्ति काल में यह सभी जनमत और वाद विवाद के दायरे में आ जाते ह। इस प्रकार इसका क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया ह। यातायात और सवादवहन के साधना से इसकी गति में अनुपम तेजी पदा हो गई है। मनुष्यो के परस्पर सम्बन्धा और हितो के क्षेत्र और उनकी अनेकरूपता निरन्तर बढ़त जा रह है। जीवन की गति और विविधता ने भी इसमें अपना योग दिया है।

इसक साथ ही यह भी स्मरण रखना आवश्यक ह कि हमारे समाज में प्राथमिक समूहा का स्थान माध्यमिक समूहा ने ले लिया है और घनिष्ठ और व्यक्तिगत सम्बन्धा का स्थान निर्वैयक्तिक रस्मी सम्बन्धो ने। हम स्वम निरन्तर वधमान तथ्या का ज्ञान नही रख सकते, हमारी जानकारी आज बहुत सीमित और विशिष्ट हो गई ह। बढते हुए श्रम विभाजन और विशेषीकरण का प्रभाव भी इसी दिशा में पडा है। अधिकाश विषयो पर हमारे विचार और निष्कष अधिकतर काल्पनिक ही होते है। वस्तस्थिति से उनका सम्बन्ध कम होता ह। सिनमा रेडियो समाचारपत्रा और पुस्तका द्वारा जनमत को बनाया और बदला जा सकता ह। पर इन साधनों को भी जनमत का सम्मान करना पडता ह और कुछ मान्यताओ के बन्धनों को स्वीकार करना पडता ह।

हमार समाज में एक व्यक्ति जो कठिनाई या समस्या अनुभव करता है, उसके निदान वह पहले स्वय ही सोचता ह और उसके विचारो पर उसकी पूर्वधारणाओ का प्रभाव पडता ह। दूसरे लोगा का भी जब वह इसी उधड-बुन में देखता ह तो परिवार या मुहल्ले तक विवाद फलता है। परन्तु जब तक अनुभव की गई कठिनाई समाज के पर्याप्त बडे भाग की समस्या नही होती वह जनमत का विषय नही बन पाती। जब उस पर विवाद का रूप वृहत् हो जाता है, और सवादवहन क साधन भी उसमें अपना योग देते ह तो जनमत का उदय होने लगता है।

जनमत निर्माण की मुख्य अवस्थाए जनमत निर्माण में चार मुख्य अवस्थाए ह (१) सबसे पहले विषय का निर्माण (२) उसके बाद उस समस्या की गम्भीरता का अध्ययन और तथ्या की खोज (३) विकल्पा (Alternatives) का अध्ययन और (४) विवाद और विचार विनिमय के पश्चात् जनता के बहुमत द्वारा जनमत का निर्माण।

स्वस्थ जनमत निर्माण की समस्या परन्तु आज अनन्त तकयुक्त निष्कर्षों और सही तथ्या को जनता के ज्ञान का अग बना देना कठिन हो गया ह। इसके लिए नेताओ और सुधारको को जो जनमत निर्माण में पथप्रदशन करते ह विशेषज्ञा के समीपतर होना पडेगा और समाज को अपने सवाद-वहन के साधना का ऐसा उपयोग करना होगा कि जनता अधिक ज्ञानवान् हो। तभी जनमत अधिक तार्किक,

युक्तिसंगत और कल्याणकारी बन जायगा। यदि ऐसा नहीं होगा तो कुछ स्वार्थी और महत्वाकांक्षी सत्ताधारी इन बड़े साधनों का दुरुपयोग करके सचाई को छिपा कर जनमत को अपनी इच्छानुसार निर्मित और नियंत्रित करते रहेंगे।

(८) प्रचार (Propaganda)

प्रचार शब्दों और प्रतीकों का पूर्व नियोजित प्रयोग दूसरे व्यक्तियों के विचारों, धारणाओं और आदर्शों को बदलने के लिए शब्दों और चित्रों को चतुरता से उपयोग में लाने की चेष्टा प्राचीन काल से ही चली आती है। इटली के प्राचीन नगर पौम्पियाई की दीवारों पर चुनाव सम्बन्धी वाक्य लिखे पाए गए हैं। हिरोडोटस जिसे इतिहास का पिता कहा जाता है, उसके बारे में भी यह सन्देह है कि उसने भी एथेन्स के शासकों के हित और प्रीति के लिए शब्दों और तथ्यों का अनुचित प्रयोग किया था। प्रारम्भ में 'प्रचार' शब्द का प्रयोग रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय ने अपने धर्म के नियमों के प्रसार के अर्थ में किया था। जिस प्रणाली से हम प्रतीकों (Symbols) के प्रयोग द्वारा मानव व्यवहारों को बदलने का प्रयत्न करते हैं उस प्रणाली को प्रचार कहा जाता है।

शिक्षा, विचार विनिमय और प्रचार शब्दों और प्रतीकों का प्रयोग परम्पराओं, आदर्शों, रूढ़ियों और मान्यताओं को शिशुओं और बालकों के मन में स्थापित करने के लिए भी किया जाता है। परन्तु इसको शिक्षा कहते हैं। प्रचार का उद्देश्य विवादग्रस्त, परम्परा विरोधी या नवीन धारणाओं को फैलाना और लोकप्रिय बनाना होता है जब कि विचार विनिमय में हम अपनी पूर्वधारणाओं से युक्त होकर ही किसी समस्या को सुलझाने की चेष्टा करते हैं। प्रचार में हम दूसरे व्यक्तियों के मन में बैठी ऐसी पूर्वधारणाओं को बाहर निकाल देने का प्रयत्न करते हैं, अथवा नई धारणाएं बैठाने का प्रयत्न करते हैं। जब हम जान बूझकर शब्दों का व्यवस्थित और क्रमबद्ध उपयोग करते हैं, और सुझाव और दूसरी मनोवैज्ञानिक प्रणालियों का आश्रय लेकर इस उपयोग द्वारा लोगों के अभिमतों, विचारों और मूल्यों को इस प्रकार नियंत्रित करने का प्रयत्न करते हैं कि अन्त में उन लोगों के विचार को बदल सकें, तो हमारी यह चेष्टा प्रचार कहलाएगी।

प्रचार और समूह दो समूहों में मैत्री-स्थापन (Conciliation) के लिए भी प्रचार का प्रयोग हो सकता है और पारस्परिक विरोध को बढ़ाने के लिए भी। सामूहिक मान्यताओं में व्यक्तियों का विश्वास अडिग रखने और समूह में एकता कायम करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। प्रचार द्वारा झूठी-सच्ची कहानियों और अतिशयोक्तिपूर्ण तथ्यों पर समूह का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है।

प्रचार का मनोवैज्ञानिक आधार शैशव काल से व्यक्तियों के मन में जो

धारणाए बस जाती ह और उनकी जो विचार प्रणालिया बन जाती ह, उन्हीं धारणाओ और विचार प्रणालिया को उत्तेजित कर देना प्रचार का लक्ष्य होता ह। अनुकरण और सुझाव का सहारा लेकर और उन आदर्शों को जगाकर जो हमें प्रिय हैं वह हमें भावुक बना देता ह। ऐसी ही भावनाओं के आधार पर झूठी-सच्ची कहानिया गढ़कर कुशल प्रचारक हमें अपनी ओर आकृष्ट कर लेता ह और हमारे विचारो को बदलने में सफल होता है।

प्रचारक की सफलता के नियम प्रचारक हमारी अवरुद्ध भावनाओ और अतृप्त इच्छाओं को चेतन कर देता हैं, और हम में किसी लक्ष्य की प्राप्ति की लालसा जागृत कर देता हैं। जब वह लालसा जागृत हो जाती है, तो वह उसकी पूर्ति के मार्ग की ओर सकेत कर देता हैं। अपनी कार्यसिद्धि के लिए वह अपने प्रचार को जनता की बुनियादी और प्राथमिक इच्छाओ के साथ जोड़ता ह और प्रतीको द्वारा उनकी भावना प्रधान इच्छाओ को छेडता ह। समस्याओ को सरल भाषा और ढग से में लक्ष्य को स्पष्ट बनाकर जनता के सम्मुख पेश करने में ही उसकी सफलता हैं। बुनियादी मागो या उद्देश्यो को बार-बार क्रमबद्ध रूप से दोहराकर ही वह जनता का सौहार्द प्राप्त कर सकता हैं। जब इन प्रणालियो द्वारा वह व्यक्तियो के मनो में अपने लक्ष्य के लिए सहानुभूति या झुकाव पैदा कर लेता है, तब अतिशयोक्ति और झूठ के प्रयोग से जनता को अत्यन्त प्रभावित कर देना उसके लिए कठिन नही रहता।

प्रचारक और वकील प्रचारक और वकील के काम में बहुत कुछ समानता है। दोनो ही अपने अपने पक्ष के लिए सिद्धान्तो शब्दो और तथ्यो का उचित और अनुचित प्रयोग करते हैं, परन्तु जहां वकील अपनी बात न्यायाधीश को मनवाना चाहता ह, वहा प्रचारक जनता को। यह सभी जानते हैं कि जनता न्यायाधीश जैसी सतर्क और चतुर नही होती। जनता की अज्ञानता के कारण प्रचारक के हाथ में एक भयानक शक्ति रहती हैं। यदि वह मानवीय आदर्शों का उल्लघन करके जनता को धोखा देने लगे तो बहुत अनिष्ट की आशका हो सकती हैं। परन्तु किसी प्रचार को दबाकर उसको प्रभावहीन नही बनाया जा सकता। उसे रोकने में उस प्रचार के झूठ का भडाफोड और दूसरी नीतियो का प्रचार ही समर्थ हो सकते हैं।

प्रचार का नियन्त्रण आधुनिक समाज में व्यक्ति तथ्यो से बहुत दूर अपने छोटे से ससार में रहता हैं। वह अपने विचारो का निर्माण अधिकतर समाचारपत्रों रेडियो और सिनेमा से करता है, और अपनी असमर्थता और अज्ञानता के कारण शीघ्र ही उनके सुझावो पर विश्वास कर लेता हैं।

कुछ नगरो में शक्ति के एकत्रीकरण और उत्पादन के केन्द्रीकरण के कारण

हमारी प्रजातान्त्रिक व्यवस्था आज नाममात्र को ही प्रजातान्त्रिक रह गई है। यदि हमें समाज के सदस्यों की विचारशक्ति को एकदम कुण्ठित कर देने में समर्थ केन्द्रीय प्रचार के शक्तिशाली साधनों से अपने समाज की रक्षा करनी है, तो हमें प्रचार के साधनों पर सार्वजनिक नियंत्रण करना होगा, उनके दुरुपयोग को रोकने के लिए विशिष्ट संस्थाओं का निर्माण करना होगा और उनके रचनात्मक उपयोग के लिए आवश्यक प्रयत्न करना होगा। इसके लिए एक सीमा तक राजनैतिक शक्ति और सम्पत्ति के उत्पादन के साधनों का यथासम्भव विकेन्द्रीकरण एक प्रभावशाली उपाय सिद्ध हो सकता है। सार्वजनिक, उच्च, स्वाधीन, शिक्षा भी दूषित प्रचार के प्रभाव को नियन्त्रित करने में परोक्ष रूप से योग दे सकती है। सभी व्यक्तियों और दलों को प्रचार की समान सुविधाएं प्रदान करने से भी प्रचार के अनिष्ट की आशंका कम हो जाती है।

आज हमारे सम्मुख एक जटिल प्रश्न है कि कहीं प्रचार के माध्यम हमारी संस्कृति के विनाश और विघटन का कारण न बन जायें। यह तो एक कठोर सत्य है कि हम चाहते हुए भी प्रचार के साधनों को छोड़ नहीं सकते। ऐसी स्थिति में उनके उचित और कल्याणकारी उपयोग की ओर ध्यान देना ही बुद्धिमत्ता है।

(४) नेतृत्व (Leadership)

प्रभुता और आधीनता (Dominance and Submission)

लगभग सभी सामाजिक अन्तक्रियात्मक अवस्थाओं में कुछ सदस्य शेष सदस्यों के व्यवहारों पर अधिक प्रभाव डालते हैं जब कि उन कुछ सदस्यों पर शेष सदस्यों का प्रभाव कम पड़ता है। हमारे समाज में ही नहीं सभी समाजों में, सभी क्षेत्रों और संस्थाओं में कुछ व्यक्ति अधिक प्रबल और प्रभावशाली होते हैं। सेना, शासक और प्रजा के सम्बन्धों, परिवारों, राजनैतिक दलों, धार्मिक सम्प्रदायों यहां तक कि, विचार विनिमय या विनोद के लिए स्थापित समितियों में भी यह द्विविध व्यवहार दृष्टिगोचर होता है। कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रबल और प्रभावशाली होते हैं और बाकी लोग उनके प्रति विनम्र होते हैं। इन व्यवहारों को ही प्रभुता और आधीनता कहा गया है।

शैशव अभ्यास और व्यक्तिगत सामाजिक प्रभाव प्रभुता और आधीनता के यह व्यवहार केवल वयस्कों में ही नहीं दिखाई देते, बल्कि शिशुओं में भी यह विद्यमान हैं। एडलर ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है कि 'बड़े बच्चे छोटे बच्चों पर शासन करते हैं'। परन्तु एडलर के इस सिद्धान्त को गुडेनाफ और लीही ने ३०० किंडरगार्टन में पढ़ने वाले बच्चों का अध्ययन करके भ्रान्तिपूर्ण सिद्ध कर दिया है। बच्चों और वयस्कों में यह अन्तर आयु के कारण नहीं होते। उनका आधार शैशव

में मा और शिशु का परस्पर व्यवहार होता है। बच्चे को अधिक स्नेहपूर्ण वातावरण मिलता है या निःस्नेह, उसकी पुकार पर मा शीघ्र उसकी ओर ध्यान देती है या नही, इन बातों का उसके व्यक्तित्व के निर्धारण में पर्याप्त हाथ होता है। साथी बच्चो की अपेक्षा वह दुर्बल है या सबल स्वस्थ है या अस्वस्थ, बडा है या छोटा—यह तत्त्व भी उसके व्यवहार को प्रभावित करते है। असमर्थ और दुर्बल बच्चे समर्थ और सबल बच्चो को देखकर दूर हट जाते है, और इस व्यवहार के कारण दोनो आर अभ्यास के प्रभाव से प्रभुता और आधीनता उनके स्वभावो का अग बन जाती है।

प्रभुता और नेतृत्व परन्तु सभी प्रकार की प्रभुता नेतृत्व नही कहलाती। एक व्यक्ति को तभी एक समूह का नेता कहा जा सकता है, जबकि वह समूह जिसका वह नेता है एक समान हित पर आधारित हो और उस व्यक्ति द्वारा निर्धारित रूप में व्यवहार करता हो। अनुयायियो द्वारा नेता की आज्ञा का पालन किसी दबाव या परम्परा के कारण नही होता। पुरोहित, राजा और सेनापति सही अर्थों में नेता नही कहला सकते, न ही सामन्त या पूजीपति जो एक श्रेणीबद्ध समाज में अपने धन या प्रभुता के कारण सम्मानित होते है, नेता है। जब एक समूह किसी एक व्यक्ति का अनुकरण किसी दबाववश अभ्यासवश या अन्ध-विश्वास के कारण नही, वरन् स्वेच्छा से और तर्कयुक्त आधारो पर करता है, तभी उस व्यक्ति को नेता कहा जा सकता है।

सर्वप्रथम डेविड ह्यूम ने इस ओर ध्यान आकर्षित किया था कि नेता की शक्ति और समूह द्वारा उसकी शक्ति के सम्मान को एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता। समूह अपने कुछ प्रिय हितों या मूल्यो और आदर्शों की प्राप्ति और रक्षा के लिए नेता के प्रति सम्मान प्रकट करता है क्योकि उसे यह विश्वास होता है कि उसके नेतृत्व में वह उन हितों या मूल्यो की प्राप्ति या रक्षा कर सकेगा। ऐसे हितो में अधिकतर आर्थिक धार्मिक या आदर्शवादी हित होते है।

नेता के गुण नेताओं और सामान्य व्यक्तियो में अन्तर किन्ही दैवी गुणो के कारण नहीं होता। गोडविन के कथनानुसार 'प्रबन्धक और 'उपाधिधारी' प्रकार के नेता अधिक भारी और लम्बे होते है, परन्तु यह आवश्यक नही है। स्वाड ने विभिन्न कालिज के ११४ विद्यार्थी नेताओ और ११४ सामान्य विद्यार्थियों की बुद्धि-मापक अको द्वारा तुलना करके प्रमाणित किया कि नेताओं में से ७० प्रतिशत ने सामान्य विद्यार्थियो के औसत अको के बराबर या उनसे अधिक अक प्राप्त किए, और इस प्रकार, सामान्य विद्यार्थियो से अधिक बुद्धिमत्ता प्रदर्शित की। एक नेता में बुद्धिमत्ता, किसी काम को प्रारम्भ करने की क्षमता, बहिर्मुखता (Extroversion), आत्म-विश्वास उत्साह और सहानुभूति के गुणों का होना आवश्यक है।

नेता के कार्य पिगर्स के अनुसार नेतृत्व परस्पर प्रेरणा प्रदान करने की प्रक्रिया है। जो व्यक्ति अधिक गतिशील, कर्मण्य और चतुर होते हैं और जिनमें सहानुभूति होती है, वही जल्दी नेतृत्व सभाल सकते हैं। नेता ध्येय प्राप्ति के लिए एक योजना निर्धारित करता है और उस योजना को कार्यान्वित करने की नीति भी नियत करता है। वह न केवल अपने समूह का प्रतिनिधि होता है और समूह के कार्यों को दिशा प्रदान करता है, बल्कि समूह में एकता रखने का उत्तरदायित्व भी उसी पर होता है। अपने कर्मचारियों के चुनाव में उसे पूरी सावधानी से काम लेना होता है और निश्चय करना होता है कि वह किस-किस कार्य को अधिक सुचारु रूप से कर सकेंगे। उनके परस्पर सम्बन्धों पर नियन्त्रण रखना भी उसके लिए आवश्यक है। वह जहां अपने पदाधिकारियों या समूह के दूसरे सदस्यों को नियमोल्लंघन के लिए दण्ड देकर नियन्त्रण और व्यवस्था स्थापित करता है, वहां उत्साहवर्धन के लिए पारितोषिक और पदक इत्यादि भी प्रदान करता है। समूह के आन्तरिक द्वेषों और झगड़ों को सुलझाना, निर्णय करना सुलह-सफाई कराना, एक नेता का आवश्यक कार्य होता है। वह अपने कार्यों और जीवन को अनुकरणीय बनाकर आदर्श उदाहरण उपस्थित करता है। वह अपने समूह की एकता, अपने आदर्श और समूह की गतिविधि का प्रतीक भी होता है।

नेता की सफलता के साधन एक नेता की सफलता के लिए उसका अपना व्यक्तित्व बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि वह जनता का विश्वास प्राप्त कर सके। इसके लिए वह योजनाएं और साधन प्रस्तुत करता है। अपने अनुयायियों की भावनाओं को वह कुछ विशेष उद्देश्यों की ओर केन्द्रित कर देता है और उनके क्रोध को एक शत्रु, एक श्रेणी या एक विरोधी आदर्श की ओर उन्मुख कर देता है। उदाहरणार्थ, पूंजीपति, हिन्दू, मुसल्मान अथवा साम्यवाद से घृणा सिखाकर नेता अपने विशिष्ट समूह में सम्मान प्राप्त करता है। प्रतीकों और चिन्हों द्वारा जैसे ध्वज स्वस्तिक, हलाल, सलीब चरखा इत्यादि प्रतीकों द्वारा और 'भारत छोड़ो,' 'दिल्ली चलो' इत्यादि नारों द्वारा लाल कुर्ती, खद्दर या ऐसे ही किसी विशेष पहनावे द्वारा, और कवायद के नियमों, अभिवादन की प्रणालियों प्रार्थनाओं और गीतों द्वारा भी समूह में एकता कायम रखना और समूह का विश्वास प्राप्त किए रखना, नेता का कार्य होता है।

नेता और अनुयायियों का एक दूसरे पर प्रभाव नेता का अपने अनुयायियों पर प्रभाव उसके सम्मान, समूह द्वारा उसकी पूजा और उसके विषय में समूह में प्रचारित किम्वदन्तियों के कारण होता है। यह किम्वदन्तियां उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण फैल जाती हैं या फैलाई जाती हैं। सामान्य जनता पिता के प्रति अपने प्रेम और सम्मान की भावना को नेता में आरोपित कर देती है। इसी

कारण मुस्तफा कमाल को अतातुर्क (तुर्कों का पिता), गांधी जी को राष्ट्र-पिता और सनयातसेन को चीन का पिता कहकर सम्मानित किया जाता है। परन्तु नेताओं पर भी इस शक्ति का प्रभाव पड़ता है। मुसोलिनी ने शक्ति को हस्तगत करने के बाद जनता की इस आराधना से प्रेरित होकर अपने कार्यक्रम को कुछ बदल दिया था।

नेता और सामाजिक परिस्थिति नेता के उदय और सफलता के लिए परिस्थितियों का अनुसरण करना भी आवश्यक है। कई नेता अपने समय से अधिक प्रगतिशील होने के कारण असफल रहते हैं, परन्तु कितने ही समय और परिस्थिति द्वारा नेतृत्व की मांग होने पर भी नेतृत्व का विकास नहीं कर पाते। जब वास्तव में ही किसी अवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव हो रही हो, उस समय यदि एक ऐसे उचित नेता का, जो उस आवश्यकता को पूरा कर सकता हो उदय हो जाय, तभी नेतृत्व का विकास हो सकता है।

सामाजिक पुनर्निर्माण में नेता का महत्व नेता और नेतृत्व के लक्षणों और प्रभाव का अध्ययन करने से स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी समाज में नेता एक महत्वपूर्ण कार्य अदा करते हैं। यह भी सत्य है कि अनेक बार जनता ने गलती से धूर्त, स्वार्थी और अल्पबुद्धि व्यक्तियों को अपना नेता चुना है और उनकी गलतियों का घातक परिणाम भोगा है। फिर भी हम समाज से नेताओं को तिलांजलि नहीं दे सकते। आज के गतिशील और जटिल समाज में तो नेताओं की आवश्यकता, कार्य और महत्व बहुत ही अधिक बढ़ गया है। सामाजिक पुनर्निर्माण और आयोजन के लिए श्रेष्ठ निःस्वार्थ, बुद्धिमान् नेताओं का होना परम आवश्यक है। समाज का यह कर्तव्य है कि वह सामान्य जनता में विद्यमान, पर अविकसित नेतृत्व प्रतिभा के विकास की सुविधा जुटाये और साथ ही जनता में सही और श्रेष्ठ नेताओं को चुनने की उचित शिक्षा और समझ प्रदान करे।

नौवां अध्याय
संस्कृति
CULTURE

संस्कृति का जन्म और विकास

संस्कृति को समझने के लिए पहले यह आवश्यक है कि हम यह जानें कि यह कैसे प्रारम्भ हुई और कैसे उसका विकास हुआ। यह पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं कैसे बनी, इसे ठीक-ठीक कोई भी नहीं जानता। प्रारम्भ में इस पर सर्वत्र जड़ पदार्थ थे। एक दीर्घ समय के बाद इस पर जीवों का प्रादुर्भाव हुआ। जीवन ने कीड़े-मकोड़ों, साँपों, चिड़ियों और स्तनधारियों के नाना रूप धारण किये।

सीखने की शुरूआत

इस प्रारम्भ काल में 'सीखने' का कोई स्थान नहीं था। एक पशु अन्य पशु से कुछ भी नहीं सीखता था। जिस भाँति एक फूल दूसरे फूल से खिलना नहीं सीखता। एक बेल सूरज की किरणों के प्रभाव से स्वतः ही किसी पेड़ पर चढ़ने लगती है। पशुओं के सरल प्रत्यत्तरों (Reflexes) को जो कि उनके सीखने का परिणाम नहीं होते, सहज (Instinctive) व्यवहार कहते हैं। यह आनुवंशिकता द्वारा नियन्त्रित होता है।

चींटियों का उदाहरण चींटियों के व्यवहार का रूप बड़ा जटिल है और वह श्रम विभाजन, पद विभाजन और विभिन्न प्रकार के श्रमकार्यों पर आधारित है, *किन्तु यह सब व्यवहार चींटियों में जन्मजात हैं। यह व्यवहार तब तक नहीं बदलते* जब तक चींटी ही स्वयं न बदल जाय। प्रो० ह्वीलर ने आदिनूतन (Oligocene) युग की ६ से ७ करोड़ वर्ष पहले की बाल्टिक में सुरक्षित चींटियों में वही जाति भेद पाया जो कि उनमें आज पाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि ५ करोड़ सालों में चींटियों ने कुछ नहीं सीखा और यह भी कहा जा सकता है कि चींटियों को अधिक सीखने की जरूरत ही क्या थी। उन्होंने अपने सूक्ष्म संगठन को आनुवंशिकता द्वारा, न कि व्यक्तिगत शिक्षा व आनुकूल्य द्वारा, प्राप्त किया था।

पशुओं में सीखना पशुओं में धीरे धीरे सीखने की सामर्थ्य का विकास होने लगा। केवल आकस्मिक अनुभव से ही नहीं, किन्तु अपने साथियों के अनुकरण और संवाद-संवहन से कुछ साथ रहने वाले पशु निरन्तर सामूहिक जीवन द्वारा अपने बच्चों को शिकार, सुरक्षा अथवा काम शास्त्र इत्यादि की शिक्षा देते हैं जिसे

कि उनके बच्चे अनुकरण द्वारा सीख जाते हैं। उदाहरण के लिए हम सभी, जानते हैं कि बिल्ली किस तरह अपने बच्चे को चूहे मारना सिखाती है। चूहे मारना बिल्ली के बच्चे के लिए सहज व्यवहार नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि कुछ बिल्ली के बच्चों को शुरू से चूहों के साथ रखा गया, पर वे चूहे मारने वाले नहीं निकले।

इसी तरह चिड़ियाँ अपने बच्चों को उड़ना और गाना सिखाती हैं। जब अंग्रेजी अबाबील के कुछ बच्चों को कनारी चिड़ियों के साथ रखा गया तो उनके गाने का स्वर और तान बदल गई। इस तरह हम देखते हैं कि बिल्लियों के चूहे मारने या अबाबील के गाने में केवल आनुवांशिक कारण ही काम नहीं कर रहे हैं, उनमें सीखने का भी बड़ा हाथ है।

सीखना शारीरिक रचना प्रणाली का कार्य सीखने की सामर्थ्य शारीरिक रचना से प्रत्यक्ष प्रभावित होती है। यही कारण है कि पृष्ठवंशी प्राणी (Vertebrates) जो कि विकसित नाड़ी संस्थान और रीढ़ की हड्डी से युक्त है, इस दशा में बहुत उन्नत हैं। बन्दरों और लंगूरों में सीखने की खूब सामर्थ्य है, यद्यपि हाथी, घोड़े और कुत्ते भी सीखने में पर्याप्त कुशलता का परिचय देते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि सीखने का प्रारम्भ हमारे प्राणिक विकास पर अवलम्बित है। किसी प्राणी में जितना ही सूक्ष्म नाड़ी-संस्थान होगा, उसमें उतनी ही अधिक सीखने की सामर्थ्य होगी।

सीखने का संस्कृति से सम्बन्ध 'सीखने द्वारा, व्यवहार के संक्रमण द्वारा एक अद्भुत वस्तु का जन्म हुआ जिसे हम अधिजैविक (Super organic) कहते हैं। इसी अधिजैविक के सरल प्रारम्भ से आज उस विशाल प्रासाद का निर्माण हो सका है, जिसे हम सभ्यता कहते हैं। उदाहरण के लिए, एक चिड़िया के दूसरी चिड़िया को तान के संक्रमण से आज के रेडियो की नींव पड़ी है जिससे करोड़ों आदमियों को एक साथ आवाज पहुँचाई जा सकती है। एक बिल्ली के बच्चे द्वारा अपनी माँ के चूहे पकड़ने की हरकत को देखकर आज के टैलीविजन के विचार का उदय हुआ है। हम यह जान सकते हैं कि सूर्य और चाँद कैसे बने मोटर कैसे बनाई जाती है सुन्दर गाना कैसे सीखा जा सकता है सूर्य और चाँद की कितनी दूरी है। यह सब बातें केवल सीखने के संक्रमण से ही सम्भव हुई हैं।

संस्कृति की परिभाषा

समाजशास्त्र में संस्कृति शब्द का साधारण बोलचाल की भाषा से कुछ भिन्न अर्थ है। हम सामान्यतः सुन्दर परिष्कृत रुचिकर अथवा कल्याणकारक व्यक्तिगत या सामाजिक व्यवहार या गुणों को संस्कृति समझते हैं। परन्तु समाजशास्त्र में संस्कृति का ऐसा कोई अर्थ नहीं है। इसमें किसी भी समाज की अच्छी

भरी सभी चीजा, समी रीति रिवाजा, पारिवारिक, आर्थिक, राजनतिक सगठनों इत्यादि अयान्य कार्य-कलापों का समावेश ह। संस्कृति के सम्बध में एक बात और स्मरणाय हैं कि संस्कृति मानव की ही विशेषता ह। प्राणिजगत् के निम्न पशुओं में इसका विकास नहीं हुआ ह।

विभिन्न विद्वानों ने संस्कृति की विभिन परिभाषाए दी ह। इनमें से टेलर की परिभाषा बहुत प्रसिद्ध ह। उसके शब्दों में संस्कृति एक वह जटिल सम्पूर्ण ह जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता कानून, तथा मानव जाति के सदस्य की हसियत से सीखी, किसी भी अन्य सामथ्य का समावेश ह।'

रेडफील्ड ने संस्कृति को 'परम्परागत स्वीकृतियों का एक सगठित स्वरूप, जो कि कला, उपकरणों और परम्परा द्वारा सरक्षित रहते ह और जो मानव समूह की विशेषता ह,' कहा ह।

बोगार्डस के शब्दो में "एक समूह की काय करने और सोचने की समस्त रीतियां संस्कृति है। यह वह पृष्ठभूमि ह जिस पर प्रत्येक बच्चा जन्म लेता ह और जो तत्काल उसे एक विशेष प्रकार से कार्य करने और साचने के लिए निय त्रित करने लगती है।'

चार्ल्स एलवुड के अनुसार 'उन व्यवहारो के लिए जो कि सामाजिक रूप से सचमित किये जा सकते हैं, संस्कृति एक सामूहिक नाम ह।' सामान्यत समाज शास्त्री किसी समूह विशेष की समस्त बौद्धिक, नतिक यात्रिक और भौतिक प्रगति का संस्कृति में ही सम्मिलित करते हैं। पर प्रो० मकाइवर और मकसवेबर का मत इस सम्बध में कुछ भिन्न ह।

मानवशास्त्री के लिए संस्कृति वह सावभौम शब्द है जिसमें सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू, मार्वे और आदमखोरी तक का—समावेश ह। स्थापत्य शास्त्री विभिन्न पत्थर के औजारो के लिए इस शब्द का प्रयोग करते हैं। प्रो० टायनबी ने बिना किसी राजनतिक इकाई के भद के किसी भी प्रादेशिक क्षेत्र में विद्यमान जीवन रीति को 'सभ्यता का नाम दिया है।

सभ्यता और संस्कृति में भेद करने वाले, सभ्यता में जीवन के साधनों तथा संस्कृति में कला, धम, नतिक प्रेरणा और ज्ञान का समावेश करते हैं। इससे स्पष्ट है कि मानव कर्मों की एक दिशा में प्रगति, दूसरी दिशा में प्रगति से बहुत भिन्न है।

क्लारेंसकेस ने इस बात पर विशेष बल दिया ह कि संस्कृति मानव जाति का ही एक विशिष्ट गुण है तथा निम्न पशुओं के किसी भी प्रकार के व्यवहार को संस्कृति नाम देना उचित नहीं ह। उसके अनुसार पशुओं के पास, चिड़िया में गाने और उसकी उड़ने की योग्यता की भांति केवल मानसिक गुण हैं पर भौतिक सम्पत्ति नहीं है। मनुष्य द्वारा वस्तुए तयार की जाती ह जो कि मनुष्य से पृथक् होती

है। सम्कृति की बुनियाद औजारो के आविष्कार और उपयोग में, अर्थात् कृत्रिम भौतिक साधना में है।

टेलर की परिभाषा के अनुसार संस्कृति, भौतिक संस्कृति के अतिरिक्त भी, कुछ चीजें है। यद्यपि मनुष्य के सम्बन्ध में संस्कृति के भौतिक पहलू पर जोर दिया जाता है पर इसका यह अर्थ नही कि निम्न पशुओं में इसका कोई स्थान ही नहीं है। कोहलर ने बताया कि किस भांति पिंजडे के बाहर लटके केले को लेने के लिए बन्दर ने एक लकडी में दूसरी लकडी जोड कर उसे लेने का प्रयत्न किया। क्या यह दो लकडियो का मिलाना आविष्कार नही है ?

भाषा का महत्व

भाषा का बोलना और समझना एक प्रमुख तत्व है, जिसने निम्न पशुओं की तुलना में मनुष्य की संस्कृति को इतना उन्नत बनाया है। भाषा जिसके द्वारा विचारो को 'जसे आग लग गई और सब भस्म हो गये,' को, प्रकट किया जा सके, पशुओ की कुछ चीखो की तुलना में एक महत्वपूर्ण घटना है। एक विकसित भाषा नाना वस्तुओ के सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचारो का प्रकट करने की सामर्थ्य प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त, भाषा में ज्ञान को पीढ़ियो तक सुरक्षित रखने की शक्ति है। हिन्दी भाषा में कई लाख शब्द है। प्रागक्षर (Pre-literate) संस्कृतियो की भाषा की शब्दावलि केवल कुछ हजारो तक पहुचती है। सरल-से सरल भाषाओ का भी व्याकरण होता है और उनमे से कई तो हमारी भाषा से भी जटिल है। उदाहरण के लिए, ऐस्किमो भाषा में एक ही सज्ञा सकडो रूपो में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त की जा सकती है।

बन्दरों में यद्यपि भाषा जैसी कोई चीज नजर नही आती, फिर भी उनके इशारा हाव भावो व चीख पुकारो में एक प्रतीकात्मक अनुभव का आभास मिलता है। लरनेड ने वानरा में अन्य पशु और व्यक्तियों से सम्बद्ध सबहन के भोजन, पानी आदि बत्तीस तत्व पाये। चू कि एक वानर बच्चा सिखाये जाने पर भी भाषा नही सीख पाता, इससे हम इस परिणाम पर पहुचते है कि भाषा सीखने की सामर्थ्य प्राणिक विकास पर निर्भर है। किन्तु इससे यह अर्थ नहीं निकलता कि मनुष्य में हठात् और अकस्मात ही भाषा का विकास हो गया। भाषा वास्तव में कोई एक आकस्मिक करिश्मा न था। इसके विकसित होने में उसी प्रकार बहुत समय लगा होगा, जैसे कि एक गोरिल्ला के ६०० घन सेण्टीमीटर मस्तिष्क को, मनुष्य के मस्तिष्क के बराबर, १,५०० घन सेण्टीमीटर का बनने में लगा है।

यह तथ्य कि निम्न पशुओं में भाषा नहीं है मनुष्य और पशुओ की अधिजैविक (Super-organic) संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करता है। यह अन्तर इतना अधिक है कि मनुष्य की तुलना में पशुओं की संस्कृति अति तुच्छ और नगण्य

दीखती है। अतः यह कहना भूल नहीं कि मनुष्य के साथ ही संस्कृति का प्रारम्भ हुआ।

संस्कृतियों की तुलना

अधिजविष के जन्म और विकास का अध्ययन हमें संस्कृतियों की तुलना करने में बहुत सावधान कर देगा। उदाहरण के लिए, क्या एस्किमो की संस्कृति एक सरल संस्कृति है? बीसवीं सदी के संयुक्त राज्य अमरीका की संस्कृति की तुलना में वह असाधारण रूप से अविकसित है। एस्किमो संस्कृति उन मानवसम प्राणियों की संस्कृति की तुलना में कहीं अधिक उन्नत है जो कि प्र १० लाख साल पहले एक भोंडी भाषा का निर्माण कर रहे थे। इन प्राणियों से हिमयुग तक का फासला हिमयुग से बीसवीं शताब्दी के फासले से कई गुणा अधिक था। पहला फासला लाखों सालों का था जब कि दूसरा केवल २५ हजार साल का है।

प्रारम्भिक मानव-संस्कृतियाँ

मूस्तरियन संस्कृति प्राचीनतम मानव संस्कृति जिसके कि अवशेष हमें प्राप्त हैं मस्तूरियन संस्कृति है जिसमें नीनडरथल मानव का निवास था।

इस नीनडरथल मानव की संस्कृति के सम्बन्ध में, जो कि पुरा-पाषाणयुग (Paleolithic Period) में विकसित हुई कुछ जानना बहुत जरूरी है। किन्तु इस सम्बन्ध में कठिनाई यह है कि कोई भी रिवाज इतने अधिक समय तक शेष नहीं रह सकते। २५०० हजार साल तक सीली जमीन पर भौतिक संस्कृति के चिन्हों का बाकी रहना भी बहुत कठिन है। मूस्तरियन संस्कृति के जो अवशेष मिले हैं वे दो प्रकार के हैं बादाम की शक्ल के पत्थर के पत्तर जो कि बीच की पुंडी को तोड़कर बनाये गये हैं इस पुंडी को ऐसी शक्ल दी गई है जैसी कि दो हथेलियों को मिलाकर बनती है, इस औजार को कू दे पो कहते हैं। कू-दे-पो मूस्तरियन काल से पहले की संस्कृतियों में भी पाया जाता है। पत्थरों के पत्तरों का उपयोग मूस्तरियन संस्कृति में पर्याप्त विकसित था, क्योंकि हमें एक तरफ से तेज किये हुए पत्तर भी मिलते हैं। औद्योगिक कामों के लिए पत्थर छीलने रदने, छेदन आदि के लिए, विभिन्न औजार तथा चाकू की तरह के विभिन्न प्रकार के फलक, मुड़े हुए फलक, आरी की तरह कटे फलक, दोहरे फलक चाकू की शक्ल के फलक तथा कई धार वाले फलक पाये जाते हैं। वहाँ पत्थर के घन और हथौड़े थे। युद्ध और शिकार के लिए इनके पास पत्थर के भाले फेंकने के पत्थर और चाकू थे। उस समय के कुछ हड्डी के औजार भी प्राप्त हैं उनमें एक हड्डी की निहानी भी है। आग का ज्ञान मनुष्य को मूस्तरियन संस्कृति से पहले प्राप्त था।

नीनडरथल मानव की खोपड़ी के माप से, जो कि आज के मानव के बराबर ही है हम यह अनुमान लगाते हैं कि उसकी कोई भाषा भी रही होगी। किन्तु उसने क्या परम्परा छोड़ी या उसकी विश्व के सम्बन्ध में क्या कल्पना थी, हम

सम्बन्ध में हम कुछ नहीं जानते। किन्तु जिस भाति कब्रो में उसके ककाल पडे मिले है, उससे ज्ञात होता ह कि नीनडरथल मनुष्य का कोई धर्म भी था और वह परिवारों में रहता था। इसका अनुमान हम उसकी लाश के साथ दाबी हुई वस्तुओ से लगाते हैं जिससे यह प्रकट होता है कि शायद वह पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे और अत्येष्टि का यह काम उनके परिजन करते थे। वह एकपत्नी व्रती थे अथवा बहुपत्नीव्रती उनके यहाँ स्त्रियो की क्या स्थिति थी, क्या अनुशासन था, इस सम्बध में हमारे पास कुछ जानने का साधन नही हैं। शायद उनके यहा स्त्री-पुरुषो में श्रम विभाजन था। वह शायद गुफाओ में रहते थे। उनके कपडो के कोई अवशेष नही मिलते। पर वह जलवायु, जिसमें वह रहते थे, आज के ग्रीनलैण्ड जसी रही होगी। इससे अनुमान किया जा सकता है कि वह कपडे भी पहनते होगे। सारी ही आदिम सस्कृतियो में, जिनके अवशेष आज प्राप्त हैं हमें किसी न किसी प्रकार के ग्राम या बिरादरी सगठन, सगीत वाद्य, चित्रकला के दर्शन होते हैं। परतु मूस्त-रियन सस्कृति में यह सब कुछ थे या नहीं, या कैसे थे, इस बारे में हम कुछ नहीं जानते।

नीनडरथल मानव के बाद सामाजिक विरासत में तेजी से वृद्धि हुई और क्रोमग्योन मानव की मैडलिनियन सस्कृति, जो कि आज से लगभग १० १५ हजार साल पहले विकसित हुई उस स्तर तक पहुच गई जहा कि आजकल के ऐस्किमो ह। अत आज से १० १५ हजार साल पहली मानव सस्कृति का परिचय प्राप्त करने के लिए ऐस्किमो सस्कृति का अध्ययन उपयोगी होगा।

ऐस्किमो सस्कृति

हम यह निश्चयपूर्वक नही कह सकते कि हिम-युग के क्रोमग्योन मानव की सभ्यता ऐस्किमो के ही समान थी, पर हम इतना अवश्य जानते ह कि दोनो की भौतिक सस्कृतियां जलवायु और भौगोलिक वातावरण बहुत कुछ समान ह। यह बहुत सभव है कि क्रोमग्योन मानव की सस्कृति ऐस्किमो सस्कृति से बहुत कुछ मिलती-जुलती हो। चाहे कुछ भी हो उस समय के अवशिष्ट पत्थर और हड्डी के औजारो के आधार पर इतना तो कहा जा सकता है कि वह बहुत उन्नत और जटिल थी।

सुविधा के लिए ऐस्किमो सस्कृति का भौतिक (Material) और अभौतिक (Non material) दो भागो में अध्ययन करना बेहतर होगा।

भौतिक सस्कृति

निवास एस्किमो बर्फ के घरो में रहत ह जिन्हें कि एक कुशल ऐस्किमो कुछ ही घटो में तयार कर सकता है। घरो की शक्ल आधी गेंद की तरह होती ह। यह बर्फ का घर एक दिये से ही इतना गर्म हो जाता है कि इनके अन्दर ऐस्किमो

कमर तक नंगे रहते है, फिर भी बर्फ नहीं पिघलती। बर्फ की छत से खालों को लटकाकर वह हवा से सुरक्षा प्राप्त करते है, क्योंकि खाल और बर्फ की दीवार के बीच पर्याप्त हवा रह जाती है।

यातायात यातायात के लिए जब बर्फ सख्त होता है, ऐस्किमो स्लेड का प्रयोग करते है। यदि कोई बहती लकड़ी या हड्डी नहीं मिलती, तो वह जमी हुई सालमन मछली और वालरस की खाल से स्लेड बना लेते हैं। एक छोर से दूसरे छोर तक सालमन बिछा दी जाती है और उसे एक खाल में लपेटकर जमने छोड़ दिया जाता है, और बाद में उसे स्लेड से बांध दिया जाता है। रगड़ को कम करने के लिए कुछ पानी छिड़क दिया जाता है जो जम जाता है, और इस तरह चमड़े को घिसने से बचाता है। सधे हुए रेंडियरों की सहायता से एक ऐस्किमो अपनी स्लेड द्वारा बर्फ पर एक घोड़ा-गाड़ी से अधिक तेजी से यात्रा कर सकता है।

जल-यातायात के लिए ऐस्किमो के पास एक हल्की खाल की नाव होती है जिसमें पीपे के ढक्कन के बराबर एक छेद होता है। जब ऐस्किमो अपने खाल के कोट का उसके हुक जैसे छेद में बांध उसमें बैठता है, तो लहरों के थपेड़ों अथवा वालरस की चोट से उलट-पलट जाने के बावजूद भी, उसमें पानी नहीं भरता और न ही बैठने वाला गिरता है।

विस्तृत प्रदेश में बिखरे हुए ऐस्किमो के लिए यात्रा के यह साधन बहुत ही उपयुक्त हैं। इनकी जनसंख्या बहुत कम है, संसार के समस्त ऐस्किमो एक शहर में बसाये जा सकते हैं। एस्किमो वंश घुमक्कड़ जीव है। उसे भोजन प्राप्ति के लिए बहुत भटकना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, उसे घूमने का भी बेहद शौक है।

विशेषज्ञों की राय में ऐस्किमो के पास सर्वोत्तम और निर्दोष जूते है जिनमें हर उंगली के लिए अलग-अलग जगह होती है और पैर बड़े आराम में रहता है।

इसके अतिरिक्त, शिकार में ऐस्किमो अपने चातुर्य का विशेष परिचय देता है। उसके शत्रु भेड़िये को पकड़ना आसान नहीं है। उसको मारने का एक तरीका ह्वेल मछली की हड्डी को मोड़ उस पर चरबी लपेटकर उसे जमा देना है। भेड़िया उसे एक सटाके में निगल जाता है। पेट में जाने पर चरबी पिघल जाती है और हड्डी से उसका पेट फट जाता है। या एक चाकू पर खून लगाकर रख दिया जाता है। भेड़िया खून देखकर आकर्षित होता है और चाकू को चाट अपनी जीभ काट लेता है और जैसे ही चाकू पर अधिकाधिक खून आने लगता है वह उसे और ज्यादा चाटता है और अन्ततोगत्वा कमजोरी से गिरकर मर जाता है। ऐस्किमो का जख्मी जलचर का पीछा करने का तरीका भी बहुत कुशलतापूर्ण है। हारपून

हथियार के बाहर कुछ फूले लडर बधे रहते और बाहर तरते रहते हैं ऐसी स्थिति में जब वालरस या अन्य जलचर दौडने का प्रयास करता ह, उसकी गति कम हो जाती है और वह जल्दी ही थककर गिर जाता है।

उपयुक्त आविष्कार हिम युग के ह, जिसमें कि मानव को केवल पत्थर और हड्डी के ही औजार प्राप्त है, परन्तु इनमें तथा इनके प्रयोग में भी उसकी कुशलता का पर्याप्त परिचय मिलता है।

अभौतिक सस्कृति

धम ऐस्किमो का धम भी है, यद्यपि हम नही जानते कि ओमग्यौन मानव का भी कोई धर्म था कि नही। ऐस्किमो की देवी सेडना ह जो समुद्र की सतह पर अपने पिता के साथ रहती ह। सेडना समस्त समुद्री जीव जन्तुओ जो कि खाद्य-सामग्री के प्रमुख साधन है, तथा ऋतुओ पर नियत्रण करती ह। ऐस्किमो के धार्मिक नेता या पुरोहित अगक्कूट कहलाते ह। यह बहुत शक्तिशाली समझे जाते है, क्योंकि यह सेडना से खाद्य सामग्री और तूफान जसे महत्वपूर्ण प्रश्नो पर परामश करते ह। वह अलौकिक शक्ति द्वारा इनुआ नामक शक्ति से विभूषित होते ह। इस तरह अगक्कूट रोगियों तथा आहतो को ठीक करने अथवा अकाल को समाप्त करने क चमत्कार सम्पन्न कर सकते हैं। ऐस्किमो शिकारी का अपना विश्व विधान और अपने धार्मिक नेता ह। इस प्रकार के धम का विकास एक उच्च श्रेणी के बौद्धिक स्तर को सूचित करता ह। उनके यहा धार्मिक पूजा के लिए बफ के बने विशेष पूजा-स्थान भी हैं। इनमें विधिअनुसार जाडे की लम्बी रातो में नाच-गान होता ह।

उनके विभिन्न प्रकार के धार्मिक नियम हैं। ऐसा माना जाता है कि सील मछली का जन्म सेडना की उगलिया से हुआ अत प्रत्येक मारी गई मछली के लिए प्रायश्चित करना आवश्यक है। सील काटते समय सब काम बन्द कर देना अनिवाय ह। वालरस मारने के बाद तीन दिन आराम करने का विधान है। इसी तरह, विशेष कालो में स्त्रियो के लिए विशिष्ट विधान हैं। वह कच्चा मास नही खा सकती उन्हें विशेष प्रकार के बरतना में भोजन राधना होता है वह उत्सवों में भाग नही ले सकतीं। इन टबुआ—वर्जित बातो का उल्लघन करने का परिणाम अपराधी पर उस काली वस्तु का आक्रमण होता है, जो शिकार के जानवर को दिखाई दती ह और जिसे देखकर वह भाग जाते ह, और इस तरह भोजन की पूर्ति के लिए सकट खड़ा हो जाता है। अकाल के निवारण के लिए सावजनिक प्रायश्चित्त करना पडता है। इस तरह उनकी सस्कृति में दड के भी सूक्ष्म विधि-विधान है।

नतिकता इसी तरह एस्किमो में नैतिकता के विभिन्न नियम हैं यद्यपि

वह हमारे नियमो से बहुत भिन्न है। यात्री के आतिथ्य में भोजन और आश्रय के अतिरिक्त कभी-कभी सोने के साथी का भी समावेश होता है। पर इसके लिए पति पत्नी दोनो की सहमति आवश्यक है। ऐसे आतिथ्य की अस्वीकृति मेजवान और स्त्री के लिए बड़ी अपमान की बात समझी जाती है। पुरुष परिवार का मुखिया माना जाता है और बिना उसकी अनुमति के किसी प्रकार की कामुक उच्छृंखलता बहुत दण्डनीय है। अत काम-सम्बन्ध में उनके व्यवहार को किसी भी तरह यथाचार नहीं कह सकते। बूढ़ा ऐस्किमो, जो कि शिकार करने के योग्य नहीं रहता, या तो वह समूह को छोड स्वय अकेला चला जाता है, या समूह को अपने को छोडकर जाने के लिए कह देता है, या समूह द्वारा भोजन बचाने की चिन्ता में स्वय मरने को छोड दिया जाता है।

युद्ध एस्किमो शायद ही कभी लड़ते है यद्यपि अन्य आदिम जातियों की भाति खानदानी या स्थानीय वर्गों के झगडे उनमें भी पाये जाते है। युद्ध के बजाय एस्किमो व्यग और कटाक्ष द्वारा अपने झगड़ो का निपटारा करते है। लोगो के सामने एक भडवा या हास्य-गान प्रतियोगिता के रूप में झगड़े का सचालन होता है। प्रत्येक दल गाने की कडी जोडकर जवाब देता है और कुछ ही समय में श्रोता गण इस परिणाम पर पहुंच जाते हैं कि युक्ति और हाजिरजवाबी में कौन विजयी रहा।

स्वास्थ्य ऐस्किमो लोगो का स्वास्थ्य अच्छा होता है। यद्यपि वह बहुत गदे रहते हैं, जिसके लिए उनका वातावरण बहुत कुछ उत्तरदायी है। उनमें बीमारी विरल है। अन्वेषको का मत है कि ऐस्किमो बहुत प्रसन्न रहते है। वे चिड़चिडे और तुनुकमिजाज नही होते।

सामाजिक सगठन ऐस्किमो सामाजिक सगठन परिवार और ग्राम समुदाय पर आधारित है। परिवार के पुरुष भोजन जुटाते और घर बनाते हैं स्त्रियां भोजन पकाती और कपडे बनाती है। एक वर्ग के परिवार भोजन और वस्तुओं का सम्मिलित उपभोग करते है। चू कि ग्राम बहुत छोटे छोटे होते हैं, अत उसके सदस्यों में बहुत निकटता और घनिष्ठता होती है। विभिन्न परिवारों के पुरुषों से मिलकर शिकारी दल का निर्माण होता है। ऐस्किमो में बहुत कम सगठित सरकार है। शक्ति दो प्रकार के नेताओ—अगकूट और सर्वोत्तम शिकारियो में निहित है। नेतृत्व आनुवशिक और निश्चित रूप से सगठित नही है। तब भी यह क्षमतावान् को प्राप्त होता है। ऐस्किमो के एक बडे आदमी में आविष्कर्ता, उद्योगी नेता आदि के अनेक गुणो का सम्मिश्रण होता है।

कला क्रोमैग्नौन लोग अद्भुत कलाकार थे। उनकी कला की तुलना आज की कला से की जा सकती है। ऐस्किमो कला अधिक उन्नत नहीं है फिर भी

उनका हाथी दात और कपडे का काम दर्शनीय है। उनके फर आधुनिक औरतों के फ्रों से अधिक सुन्दर होते ह। एक ही हाथीदात के टुकडे को विना काटे उसमें सुन्दर डिजाइन एव चित्र तराशकर हार तैयार कर देना उनकी विशेषता ह।

उपयु क्त सक्षिप्त विवरण से हमें एस्किमो सस्कृति की एक झलक मिल जाती है। यद्यपि उनकी सस्कृति इससे कहीं अधिक जटिल और सूक्ष्म है। परवर्त्ती हिमयुग का क्रोमैग्योन मानव प्राणिक दृष्टि से आधुनिक मानव का भांति अति विकसित था और उसमें सस्कृति के सभी तत्व विद्यमान थे।

सभ्यता का उद्गम

यदि हम भौतिक अवशेषो से अनुमान करें तो हमें ज्ञात होगा कि हिमयुग की तुलना में इतिहास के शुरू में सस्कृति बहुत तेजी से आगे बढ़ रही थी। पुराने पाषाणयुग की तुलना में दजला-फरात और सिन्धु नदी के काठे के लोग अति विकसित सस्कृति का निर्माण कर चुके थे। इतिहास के शुरू में लम्बे प्रयत्नो के बाद लिपि पूर्णता को प्राप्त कर सकी। मोहेंजोदडो, हडप्पा तथा अमरीका की माया सस्कृति में इसने चित्रलिपि का रूप धारण किया। सस्कृति के विकास में लिपि का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। चूकि सस्कृति का आधार सक्रमण ह अत इसमें लिपि का उतना ही महत्त्व है जितना कि बोली या भाषा का।

इतिहास और सभ्यता लिपि के साथ प्रारम्भ होती है। आगबर्न और निमकौफ के शब्दो में सभ्यता को अधिजैविक का परवर्त्ती चरण कहा जा सकता है। वास्तव में सभ्यता शब्द सामाजिक सगठन के एक स्वरूप को सूचित करता है। सभ्यता से पहले पश्चिमी एशिया और यूरोप में समाज समरक्तता और विरादरी के आधार पर सगठित था। ग्रामो और समुदायो के विकास के साथ समरक्तता सामाजिक सगठन में पीछे धकेल दी गई और कवल परिवार तक सीमित रह गई, जसा कि आजकल हमारे यहाँ पर है। समूह नागरिक आधार पर सगठित किये जाने लगे और सभ्यता का सूत्रपात हुआ। भूमध्यसागरीय प्रदेश में नागरिक समाज अतिविकास को प्राप्त हुए। उन्होने लिपि को सुधारा और भौतिक उन्नति की। इस तरह लिपि और धातुओं के आगमन से प्राय सभ्यता का प्रारम्भ समझा जाता ह। पर जसे-जसे प्रागैतिहासिक सस्कृतियों की जटिलता और सूक्ष्मता सामने आ रही हैं वसे-वसे सभ्यता और आदिम समाज का अन्तर काफी अस्पष्ट होता जा रहा ह।

लिखित इतिहास के काल में धातुओं का पर्याप्त विकास हुआ है। १९ वीं शती में पक्के लोहे का निर्माण तथा २० वीं शती में मिश्रित धातुओ का प्रयोग इसमें विशेष महत्त्व रखता ह। शक्ति से चलनेवाली मशीनों ने उसे एक नई दिशा दी। आदिम सभ्यता के पास ढोने के पशु, लीवर और पाल थे। सभ्यता के प्रारम्भ में हवाई

पक्की का आगमन हुआ। किन्तु इन सबसे महत्वपूर्ण भाप के ऐंजिन का आविष्कार था। बाद में इन्टरनल कम्बशन, पेट्रोल ऐंजिन और बिजली की मोटर आई।

भौतिक और अभौतिक सस्कृति

अभौतिक सस्कृति (उदाहरण के लिए धर्म और रीति-रिवाजों) की तुलना में भौतिक सस्कृति (उदाहरण के लिए औजार और इमारतों) में सास्कृतिक विकास की सचयात्मक प्रवृत्ति विशेष रूप से व्यक्त होती है। पुरानी परिभाषाए सस्कृति में भौतिक वस्तुओ का समावेश नहीं करती थी। उनके अनुसार सस्कृति उपकरणो का समूह न होकर सीधा व्यवहार था। इस परिभाषा के अन्तर्गत भौतिक वस्तुओ के निर्माण में मानसिक अथवा अभौतिक सभ्यता का कोई स्थान नहीं था। फिर भी, भौतिक सस्कृति शब्द का प्रयोग चल पडा है। इसमें उन भौतिक वस्तुओ का समावेश है जो हमारी सामाजिक विरासत का अभिन्न अग बन चुकी हैं। वास्तव में प्रकृति के अतिरिक्त, नूतन मानव निर्मित वस्तुए भी हमारे वातावरण में जुड़ जाती हैं। उदाहरण के लिए, घर हमारी वर्षा, हवा, सर्दी और गर्मी से सुरक्षा करते है। इस तरह भौतिक सस्कृति एक नया वातावरण बन जाती है। अधिजविक (Super organic) के विभिन्न अग, परिवार, शिक्षा, मनोरजन—उसके अनुकूल अपने को ढालने का प्रयत्न करते हैं। अभौतिक सस्कृति बहुत कुछ अपने को नये औजारो आविष्कारो और यन्त्रों के अनुकूल बनाने का ही परिणाम होती है।

सामाजिक सगठन विशेष उद्देश्य के विश्लेषण के लिए भौतिक और अभौतिक सस्कृति में विभेद करना आवश्यक है। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यह एक बडी सास्कृतिक इकाई सामाजिक सगठन का अग है। उदाहरण के लिए, घर, भोजन फर्नीचर बतन पारिवारिक सस्था की भौतिक सस्कृति के अग हैं जब कि विवाह, एकपत्नीत्व अथवा पितृसत्ता उसकी अभौतिक सस्कृति के प्रतिनिधि हैं। भौतिक और अभौतिक सस्कृतिया बुनियादी मानवीय क्रियाओ के चारो ओर विकसित होती है और इस तरह सामाजिक सस्थाओ का विकास होता है। यौन सम्बन्ध, क्रिया, स्तुति, क्रीडा मनुष्य के मुख्य कार्य हैं। इन्ही पर परिवार, आर्थिक, धार्मिक और मनोरजन सस्थाओ की बुनियाद खडी हुई हैं। पुस्तक के अगले अध्यायो में इन सबका विस्तार से वर्णन है। सामाजिक सस्थाए सस्कृति का मूल तत्व और सार हैं।

सार्वभौम सस्कृति प्रतिमान (Universal Culture Pattern)

आज लगभग ५०० प्रागक्षर (Pre-literate) सस्कृतिया विद्यमान है। विभिन्न सस्कृति के अगों के सम्बन्ध में एक बात विचारणीय है कि क्या समस्त आदिवासी सस्कृतियों में यह सब अग उपलब्ध हैं। क्लार्क विजलर, जिन्होने इस विषय का गम्भीर अध्ययन किया है, उनके अनुसार निम्न अश सभी प्रागक्षर सस्कृतियों में

पाये जाते हैं (१) बोली, (२) भौतिक गुण, उनसे सम्बद्ध वस्तुए और कुशलता ; (३) कला, (४) पुराण और विधान, (५) धार्मिक कृत्य, (६) परिवार और सामाजिक प्रणाली, (७) सम्पत्ति, (८) सरकार, और (९) युद्ध। उपयुक्त नौ विभाजन सस्कृति के अल्पतम विभाग हं, जिन्हे विजलर ने सस्कृति के 'सावभौम प्रतिमान कहा ह। किन्तु यह सब बातें तभी पूरी हो सकती ह जब कि उपयुक्त विभागो का हमारा अथ पर्याप्त विस्तृत हो। क्योकि जैसा कि हम देखेंगे उदाहरण के लिए, प्रागक्षर सस्कृतियो में, हमें सरकार का प्रारम्भ ही दिखाई देता हैं।

सस्कृति के विभिन्न अगों का अन्त सम्बध (Inter relationship)

सस्कृति क विभिन्न अग एक दूसरे से सम्बद्ध ह और वह पृथक कार्य नही करते। उदाहरण क लिए परिवार, शिक्षा सस्था स सम्बद्ध ह। प्रागक्षर सस्कृतियो में धम और चिकित्सा एक दूसरे से गुथी हुई ह। सस्कृति के विभिन्न अग अत्यधिक अनुपात में एक दूसरे से सम्बद्ध ह। कला धम के पर्याप्त निकट ह। सरकार और उद्योग एक दूसर से घनिष्ठतया जुडे हुए हं। जसे कि पुराने समय में, परिवार उत्पादन क साथ था वसे आज आचार और धम साथ-साथ ह। इस तरह हम देखते ह कि सस्कृति एक शरीर या मशीन की भाति ह जिसके समस्त अग या पुर्जे एक दूसरे से सम्बन्धित ह।

सस्कृति सकुल (Culture Complex)

सस्कृति का प्रत्येक उप भाग कुछ चीजो से मिलकर बना होता हैं। जब यह अन्त सम्बन्ध किसी प्रबल सास्कृतिक गुण के चारो ओर केन्द्रित होते हैं, उन्हें सकुल या सम्मिश्रण कहते ह। इस तरह खाने-पीने सोने मिलने, उठने बैठने आने जाने, खेती करने, व्यापार करने मोटर चलाने आदि प्रत्येक का एक सकुल ह। उदाहरण के लिए रसोई, पकाने वाला, थाली, कटोरी, गिलास, दाल, सब्जी, रोटी चावल, आसन हाथ धोना, उगलियो से खाना, इत्यादि- हमारा भोजन सकुल ह। सस्कृति सकुल में सस्कृति क गुणो के परस्पर सम्बन्ध बहुत निकटतया दिखाई दत ह और इसमे भी अधिक सस्कृति के विभिन्न अगों का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट होता ह।

सस्कृति प्रतिमान (Culture Pattern)

सस्कृति के विभिन्न अगो मे जो व्यवस्था स्थापित होती है उसे सस्कृति प्रतिमान कहते ह। प्रत्यक सस्कृति की व्यवस्था में कुछ अन्तर होता हैं। चीन की सस्कृति अमरीका की सस्कृति स बहुत भिन्न ह। उदाहरण के लिए, चीन का पारिवारिक सगठन बहुत बडा ह, जिसमें प्राय २० या इससे भी अधिक सदस्य मिलकर रहते हैं। चीनी परिवार धार्मिक और आर्थिक सगठन स घनिष्टतया सम्बद्ध ह। पूर्वजो की पूजा उसकी मुख्य विशेषता है। चीन में अभी भी

परिवार उत्पादन की प्रमुख इकाई है। अमरीका की भांति वहां बहुत कारखानो के उत्पादन का विकास नही हुआ ह, और आज भी चीन एक कृषि प्रधान दश है। इसके अतिरिक्त, चीनी कृषि का आर्थिक सकुल अमरीका से बहुत भिन्न ह। चीन में हल भैस कुदाल और हाथ से खेती होती है, जब कि अमरीका में टैक्टर थ्रेशर और मोअर का बोलबाला है। इस तरह हम कह सकते है कि चीनी सस्कृति अमरीकन सस्कृति से भिन्न ह।

सस्कृति-घनिष्टय (Ethos) अनेक सस्कृतिशास्त्रियो ने विभिन्न सस्कृतियो की प्रमुख विशेषताओ को बताने का प्रयत्न किया ह। इन प्रयत्नों का बडी कमी सदव परिवतनशील और विभिन्न-तत्त्वीय जटिल सस्कृति को अति सरल शब्दो में रखने का प्रयास ह। हम प्राय सुनते हैं कि जमनी की सस्कृति तानाशाही, भारत की आध्यात्मिक इंग्लैंड की प्रजातान्त्रिक स्पार्टा की सामरिक एथेंस की व्यापारिक और पुनर्जागरणकालीन इटली की सस्कृति कलात्मक है।

एक सस्कृति से किसी एक प्रबल विशेषता को चुन लेने कि यह प्रवृत्ति एक व्यक्तिगत प्रतिक्रिया मात्र है। वैज्ञानिक विवेचन के लिए यह आवश्यक है कि समस्त या बहुत से सकुलो को, जो कि एक सस्कृति को एक विशिष्ट व्यक्तित्व या स्वरूप प्रदान करते हैं एक साथ प्रस्तुत किया जाय। उदाहरण क लिए, जापान की सस्कृति के लक्षणों को हम पूर्वज-पूजा राजा की दिव्यता, युद्ध प्रियता, ज्ञान के प्रति सम्मान तथा विनय और भद्रता में व्यक्त कर सकते है। अमरीका की सस्कृति विशाल मशीनो धनलिप्सा भोगवाद, प्रतियोगिता रहन-सहन का उच्च स्तर तथा प्रजातन्त्र में विश्वास के रूप में प्रकट होती हैं। सोवियत रूस की सस्कृति मार्क्सवाद, और महान् रूसी जाति की श्रेष्ठता में अटूट विश्वास सामूहिक कल्याण, मशीनो, प्रत्येक काय में कम्युनिस्ट पार्टी की सार्वभौमता और लेनिन की प्रशसा में व्यक्त होती ह। इसमें कोई शक नहीं कि प्रत्येक सस्कृति की कुछ अपनी विशेषताए होती हैं, पर उन्हें सरल भाषा में व्यक्त करना बहुत कठिन काय ह।

सास्कृतिक क्षेत्र (Culture Area)

सास्कृतिक प्रतिमानो और विशेषताओ के आधार पर विभिन्न प्रदेशों को पृथक सांस्कृतिक क्षेत्रो में विभक्त किया जा सकता ह। वास्तव में इस तरह जो सीमाए बनती है, वह वर्तमान राजनैतिक सीमाओं से प्राय मेल नहीं खातीं। एक देश में कई सस्कृतिया और कई देशों में समान सस्कृति के दर्शन होते हैं। और फिर किसी प्रदेश विशेष में भी सस्कृति का प्रतिमान निरन्तर अल्पाधिक गति से परिवर्तित होता रहता है। अमरीका, रूस आदि देशों में वहा विभिन्न सास्कृतिक क्षेत्रो को खोजने के प्रयास हुए हैं। भारतवर्ष में अभी तक इस दिशा में कुछ विशेष काय नहीं हुआ है।

उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक क्षेत्र डा० डी०एन० मजूमदार ने अवश्य उत्तर प्रदेश के सांस्कृतिक क्षेत्रों को परिसीमित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार उत्तर प्रदेश को निम्न सांस्कृतिक क्षेत्रों में बांटा जा सकता है।

(१) प्रांत का निचला हिमालय प्रदेश जो कि खस, राजपूत ब्राह्मणों की संस्कृति को, जो कि डोमों पर लादी गई है प्रकट करता है। गढ़वाल इसका केन्द्र बन सकता है।

(२) ऊपर से मिलती-जुलती संस्कृति की एक प्रशाखा कुमाऊं प्रदेश में है।

(३) तीसरा क्षेत्र लगभग तराई के प्रदेश को ढकता है, लखीमपुर-खीरी इसका केन्द्र कहा जा सकता है। इसमें तीन चार क्रमिक सांस्कृतिक तहों का समावेश है, जो कि बौद्ध धर्म के ताने-बाने में संयुक्त हो गई हैं।

(४) चौथा सांस्कृतिक क्षेत्र मिर्जापुर का आदिवासी इलाका है। इसमें मुख्यतः मुण्डा या द्रविड़ भाषा से सम्बद्ध भाषा भाषी आदिवासी रहते हैं। यह क्षेत्र एक ओर बिहार और दूसरी ओर मध्य भारत की आदिवासी संस्कृतियों से सम्बद्ध है।

(५) बनारस एक पृथक सांस्कृतिक क्षेत्र है, जिसमें हिन्दू संस्कृति की विशेषताएं सुरक्षित हैं।

(६) पश्चिमी उत्तर प्रदेश को दो सांस्कृतिक क्षेत्रों में बांटा जा सकता है। (क) बुन्देलखण्ड (ख) मथुरा और आगरा। यह सांस्कृतिक क्षेत्र मध्यकाल की अनेक वीरता और भक्ति की परम्पराओं को सुरक्षित किये हुए हैं।

(६) लखनऊ कानपुर और इलाहाबाद को पृथक संस्कृति क्षेत्रों में नहीं बांटा जा सकता, क्योंकि इन प्रदेशों की जनश्रुति में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

व्यक्ति और संस्कृति

क्या संस्कृति अनुवंशिकता (Heredity) से निर्धारित होती है ?

मनुष्य के प्राणिक स्वभाव और संस्कृति में परस्पर क्या सम्बन्ध है यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। क्या मनुष्य का प्राप्त स्वभाव उसके अधिजैविक (Super-organic) के स्वरूप को निर्धारित नहीं करता ? क्या काम प्रवृत्ति, परिवार, क्रीडा प्रवृत्ति, मनोरंजन और क्षुधा प्रवृत्ति मनुष्य के आर्थिक संगठन को निश्चित नहीं करती ? इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य का प्राप्त स्वभाव अधिजैविक का एक सामान्य मार्ग प्रदान करता है। परन्तु वह उसके ब्यौरे को निश्चित नहीं करता। यह ठीक है कि मनुष्य की काम प्रवृत्ति या जाति संरक्षण की आवश्यकता, एक परिवार की आवश्यकता को सिद्ध करती है किन्तु उस परिवार के छोटे-बड़े, एक विवाही, बहु पत्नीयुक्त, बहुपतियुक्त तलाक और बेतलाक या रखैलियों के साथ, विभिन्न स्वरूप हो सकते हैं। हम किसी अन्तर्राष्ट्रीय हस्पताल में एक हजार बच्चे देखकर यह नहीं

वता सकते कि यह कैसे परिवारो का निर्माण करेंगे। किन्तु यदि हमें यह मालूम हो कि किन समुदायों में उनका पालन-पोषण होगा तो हम भली भाँति वता सकते हैं कि वह कैसे परिवारो, रीति रिवाजा, व्यवहारा का पालन करेंगे और कौन-सी भाषा का प्रयोग करेंगे। इसमें सन्देह नही कि मनुष्य का प्राप्त स्वभाव उसके अधिजविक की सीमा को निर्धारित करता है और कुछ सामान्य प्रवृत्तिया की ओर सकेत करता है। फिर भी यह प्रश्न रह ही जाता ह कि मनुष्य का प्राणिक स्वभाव उसके कितने अधिजविक व्यौरे को निश्चित करता है।

इस सम्बन्ध में सार्वभौम सस्कृति प्रतिमान पर नजर डालना भी जरूरी ह। क्या विजलर के प्रतिमान—भाषा, परिवार युद्ध औजार आदि, मनुष्य के प्राणिक स्वभाव (Biological Nature) से निर्धारित होते ह ? हम एक एसी स्थिति की कल्पना कर सकते ह कि प्रत्येक व्यक्ति के पास मोटरकार हो और वह सब कोट-पतलून पहनना शुरू कर दें और लिखना पढ़ना जान जायें तो क्या इसस यह सिद्ध होता ह कि यह उनकी प्राणिक प्रकृति का परिणाम हैं ? यही वात युद्ध क सम्बन्ध में जो कि सार्वभौम सस्कृति प्रतिमान का एक अग ह, लागू होती ह। हम यह नही कह सकते कि युद्ध मानव की जन्मजात प्रवृत्ति है।

अधिजविक (Super organic) जविक (Organic) के लिए हानिकर हो सकता है यदि अधिजविक मनुष्य की प्राप्त प्रवृत्ति की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हो, तो सस्कृति और मनुष्य की प्राणिक आवश्यकताओं में कोई विरोध ही पदा न हो। पर सदव ऐसा नही होता। कुछ सास्कृतिक विशेषताए निश्चयात्मक रूप स मनुष्य के प्राणिक जीवन के लिए हानिकर होती ह। उदाहरण क लिए चीन में स्त्रिया क पर छोटे करने क लिए उन्हें लोह के जूते पहनाने का रिवाज भारत में बाल विवाह या पर्दा प्रथा अथवा योरोप में बहुत दर से विवाह प्राणिक दृष्टि से हानिकर हैं। इस तरह सस्कृति में निरोध और नियन्त्रण ह। जितना ही शिक्षा बढ़ती ह उतना ही यह बढ़ता जाता ह। मनुष्य म अन्य प्राणियो की तुलना में शिक्षा-अवधि सबसे लम्बी ह। इस तरह सस्कृति को उसकी जन्मजात प्रवृत्ति को परिवर्तित करने या मोड़ने का पर्याप्त अवसर मिलता ह।

एक शारीरिक क्रिया—क्रोध के लिए विभिन्न रिवाज हमारी प्राणिक प्रकृति की प्रवृत्तियो को विभिन्न प्रकार से ढाला जा सकता है। एक शारीरिक प्रक्रिया—क्रोध के उदाहरण से इसे स्पष्ट किया जा सकता है। आसाम के नागा बड़े लड़ाकू लोग है, ग्रीनलण्ड के ऐस्किमो बहुत शान्तिप्रिय ह। द्वितीय महायुद्ध में अग्रज राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर लड़े जब कि उनकी ओर स भारतीय सनिक केवल पट और पद के लिए लड़े। व्यक्तियो के बीच लड़ाई तक्ष में हठात् शुरू हो सकती ह। अनेक बार यह नियमबद्ध होती ह। फ्रास में व्यक्तिगत लड़ाई, जिन्हें ड्यूएल कहते ह,

का रिवाज ऐमा ही ह । डयूएल एक ही वग के लोगा के बीच हो सकता है, उसके लडने के निश्चित नियम होते हैं लडने वाले जिनका पालन करते हैं। अमरीका के गुडों में एमा कोई नियम नहीं है। वह शत्रु को किसी बहाने मोटर में बैठा, शहर के बाहर ले जाकर उसे किसी प्रकार के प्रतिकार का अवमर दिये बिना गोली मारकर जमीन म गाड देते ह।

कई जातियों में लडना जहाँ नारी के सम्मान का प्रश्न हो, बडा भारी गुण माना जाता ह । बहुत से माता पिता बच्चों को लडने की शिक्षा देने में पूरा जोर लगाते ह । इसके विपरीत, अन्य माता पिता बच्चों को लडाई झगडे से दूर रहने का उपदेश देते हैं। भारत में महात्मा गाधी ने निष्क्रिय प्रतिरोध पर बहुत बल दिया। बहुत से वग आपसी झगडे निपटाने के लिए अदालत में जाना अपनी हतक समझते हैं और स्वय ही अपने झगडे निपटाने में गौरव का बोध करते ह। उनकी शत्रुता एक समय में समाप्त नहीं होती। बहुत बार तो पीढियां तक चलती है। सामान्यत स्त्रियों में तथा स्त्री पुरषो में आपस में हाथापाइ अच्छी नहीं मानी जाती, पर अमरीका के कुछ नीग्रो वर्गों में इसे अनुचित नही समझा जाता। वास्तव में स्त्री-पुरुष के बीच क्रोध की शारीरिक प्रक्रिया में कुछ विशेष अन्तर नही है।

इस तरह हम देखते हैं कि लडाई से सम्बद्ध सांस्कृतिक व्यवहार में विभिन्न जातियों तथा एक ही जातियो में विभिन्न समयो में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। मनुष्य की मूल प्रवृत्ति इस सम्बन्ध में किसी एक प्रकार के व्यवहार को निर्धारित नही करती। न ही वह यह बताती है कि कितने कितने अन्तर बाद या कभी भी लडाई होगी या नही। स्पष्ट है कि विभिन्न सस्कृतियां इस सम्बन्ध में मनुष्य के व्यवहार को सचालित करती हैं।

जनरीति (Folkways)

व्यवहार जब संगठित होते हैं और दोहराये जाते हैं, उन्हें रिवाज कहते हैं। रिवाज भी दो प्रकार के होते है—शिष्टाचार और नियम। प्रसिद्ध लेखक सुमनर ने इन्हें जनरीति नाम दिया है और तभी से यह नाम प्रचलित हो गया है। सुमनर ने रिवाजों की विभिन्नता और मूल्यों या मान्यताओं (Values) पर बहुत बल दिया ह । जनरीति में दोनों का समावेश ह ।

जनरीति की विभिन्नता लडने के विपरीत, भोजन एक अनिवाय प्राणिक आवश्यकता ह। मनुष्य बिना लडे रह सकता ह पर बिना खाये नही। शायद प्राचीन काल में लडना सुरक्षा के लिए अनिवार्य रहा हो। जहा तक भोजन का सम्बन्ध ह शरीर की रक्षा के लिए उचित परिमाण में कार्बोहाइड्रेट प्रोटीन, चिकनाई, चूना फास्फोरस अम्ल, खनिज और लोहे की जरूरत पडती है। निम्न पशुओ में भूख भोजन का सरल मार्गदर्शक है। यह अपने आप सामान्यत उचित

सतुलित भोजन की खोज कर लेते ह। बच्चों पर परीक्षण करने पर भी ऐसा पाया गया कि उनके सामने ३५ खाद्य वस्तुए रखने पर उन्होंने उनमें से उचित परिमाण में वह विभिन्न वस्तुए, जो उनकी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए ठीक थीं, चुन ली।

छोटे बच्चो पर यह परीक्षण 'शरीर के प्राकृतिक ज्ञान' की ओर सकेत करता है, जो कि सतुलित भोजन के चुनाव में एक अच्छा मार्गदर्शक ह। बावजूद इसके, हम देखते हैं कि विभिन्न प्रदेशो में, लोग उन वस्तुओं को खाना पसन्द करते है जिनमें पोषक तत्वो की कमी है अथवा जिनमें से अनेक हानिकर भी ह। चाय, काफी शराब पान सुपारी, तम्बाकू ऐसी ही चीजें ह। बहुत-से लोग चोकर सहित पोषक आटे की तुलना में चोकर निकाला आटा, बिना पालिश किये पोषक चावल की तुलना में पालिश किया चावल खाना पसन्द करते हैं। यही बात भोजन सबधी परहेज के सम्बन्ध में भी लागू होती ह। बहुत-से ऐसे लोग बहुत-से खाद्य पदार्थों को अखाद्य मानते ह जो पोषक और गुणकारी ह। अभी हाल तक चीन में गाय के दूध से बने पदार्थ नही खाये जाते थे। बहुत-सी जातियाँ गाय के दूध को मल की तरह मानती है। आदिवासी अपने गण चिन्ह पशु या पक्षी को नही खाते। हिन्दुओं में गाय का मास खाना पाप और मुसलमानो में सूअर का गोश्त खाना हराम है। यह तो यह, हमारे यहाँ बहुत से लोग टमाटर, शलजम बैगन, सोयाबीन और प्याज जैसी उत्तम तरकारियो को भी खाते डरते है। इसके विपरीत, अनेक आदिवासी चींटें कीड़े-मकोड़े, मेंढक, साँप, छछूँदर तक बड़े चाव से खाते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि भोजन सम्बन्धी पसन्द और परहेज बहुत बार सर्वथा अबौद्धिक होते हैं और उनका खाद्य वस्तु के पोषक तत्वो से कोई सम्बन्ध नही होता।

वास्तव में खाने और लड़ने जैसे प्राणिक कार्यों के लिए भी सस्कृति हमारे व्यवहार का नियन्त्रण करती है। इसी प्रकार जन्म मृत्यु, विवाह, सन्तान, यौन सम्बन्ध उत्पादन, व्यापार, पूजा, रहन-सहन, वस्त्र और कला जैसे, अन्यान्य कार्यों का स्वरूप भी सस्कृति द्वारा निर्धारित होता है। मनुष्य के प्राप्त आनुवंशिक गुणो के आधार पर उसकी संस्कृति का अनुमान नहीं किया जा सकता। मूल प्रवृत्तियाँ विशिष्ट रिवाजो का आधार नही हैं।

रिवाजों की शक्ति

रिवाजो का एक विशेष लक्षण उनकी बाधित करने की शक्ति ह। समुदाय के सदस्य को उनका पालन करना ही होता है। मुसलमानो में किसी शादी में शरीक होने के लिए अचकन पहनना जरूरी ह। उत्तर भारत में बडा के साथ चारपाई पर बठते समय अदवायन की ओर बठने का कायदा ह। हिन्दू विवाहित स्त्रियो में माग में सिंदूर लगाने का रिवाज ह। हिन्दू स्त्रियाँ अपने पति का

नाम नही लतीं। इन सब रिवाजा का उल्लघन यर कानूनी नहीं हैं, फिर भी इनका पालन कठोरता से किया जाता है।

एक सस्कृति समुदाय के माध्यम से व्यक्तिया के व्यवहार के अनन्त पहलुओं का नियन्त्रण करती हैं। पच्चीस प्रागक्षर सस्कृतियो के नियन्त्रण क्षेत्र की निम्न तालिका से इसका अनुमान किया जा सकता ह। यह तालिका सी० एफ० फोर्ड के आधार पर वनाई गई ह।

पच्चीस पृथक सस्कृतियों द्वारा नियन्त्रित व्यवहार क्रियाए

नियन्त्रित करने वाली प्रतिशत सस्कृतिया	व्यवहार का प्रकार
१००	खाना, गुनगुनाना, वात करना सभोग, निकट सम्वन्धियो से सभोग करना विवाह करना तकल्लुफ दिखाना, नाम लेना, शोक करना, हानि पहुचाना, अपने को हानि पहुचाना।
९६	प्रवेश करना कपडे पहनना, चुराना, अपने को जख्मी करना, कत्ल।
९२	व्यभिचार, सालिया से सभोग, लेना, नहाना, छूना, काम करना।
८८	दूध पिलाना पीने भोजन प्राप्ति में वाधा उत्पन्न करना, भोजन अपवित्र करना।
८०	देखना, सम्मान करना दूसरो के नाम धरना, अपनी सुरक्षा।
७६	सोना दूसरो को सहायता करना, घनिष्ठ वनना, दूसरा की रक्षा पशुओ का वध।
७२	मूत्र त्याग, प्राग्ववाहिक सभोग, आज्ञा पालन, आत्म शुद्धि, आत्म पृथक्करण, दूसरों का मान न करना, दूसरों का अपमान, दूसरो को विना दद किये आहत करना।
६८	मिलना, दूसरा को कपड़े पहनाना दूसरा को दण्ड देना।
६४	वदले से वचना, उत्पादन में वाधा डालना, मल-त्याग।
६०	आदमखोरी, विलाप, सीखना, भुगतान करना, अपनी चिकित्सा, शिकार, मछली पकडना, खेती करना इत्यादि।
५६	वठना, दूसरों को शुद्ध करना, गुस्सा होना।
५२	सास खींचना, गाना, आतिथ्य करना, अपने को छुपाना।
४८	कायरता सीखना, विशेषाधिकार ग्रहण करना झगडना, खेलना, दुर्भाग्य का आवाहन करना।

४४ थूकना बाल्यावस्था में सभोग, नत्य, आभूषण पहनना, दूसरों की चिकित्सा शोक प्रकाश, दूसरों का मन जीतना, लडना, अपने को दण्ड देना ।

४० धूम्र पान, मालिश, प्रसव में सहायता देना, दूसरों को सिखाना, दूसरा की आज्ञा का उल्लघन अश्लील होना ।

३६ चबाना पसीना, गर्भाधान होना, चलना, आलसी होना, बन्ध्या करना, मत्री प्रकाश दूसरा को शांत करना, दूसरों को धोखा देना ।

३२ नशाली वस्तुओं का उपभोग वमन करना, बलात्कार, धन्य वाद देना जननेन्द्रिय का गोपन, ले जाना, अपराध मानना, आकस्मिक मनुष्यवध, गभपात, शिशुवध, उत्पादन, सामान का विनाश ।

२८ काटना वायु विकार ववाहिक सभोग कदम बढाना, इशारा करना, तलाक देना, प्रजनन शक्ति देना, आत्म शुद्धि, बीरता प्रदशन दूसरो को गुस्सा दिलाना, आत्महत्या ।

२४ स्वप्न देखना दूध पीना सगाई क बाद व्यभिचार, रहना, बचना सनना, प्रसव में बाधा देना, पीडा व्यक्त करना, युद्ध में रुकावट डालना भोजन की खोज में सहायता देना रूढि और टैबू का उल्लघन ।

२० चाहना सीटी बजाना, समलिंगी सभोग, झूठ बोलना, साथ देना लालचा होना, स्वतन्त्र होना कृपालु होना, विरोधी लिंग के वस्त्र धारण करने में रुचि, माता के दूध को बढाना, दूसरा का युद्ध करना अपने को बद करना विश्वासघात, राजद्रोह ।

१६ खासना, वेश्यावृत्ति खडे होना, पकडना, खुरचना, डरना, दूध पीने को निरुत्साहित करना दूसरों का आभूषण पहनना, दूसरों का उपहास करना दसरा को आघात पहुचाना ।

१२ मसाले खाना चूमना छीकना फुसफुसाना हसना समलिंगी सभोग भागना, शान से रहना, छाती का दूध निकालना, दूसरों को अभिवादन, अनुमति लेना, अपराध का प्रायश्चित्त ।

८ नशे में हो जाना चिल्लाना, सोचना हस्तमैथुन, विवाहेतर सभोग, बहकाना, पशुमैथुन, झुकना कूदना ईर्ष्यालु होना कामकृपण होना, न्यायपूर्ण होना दूसरोंको सावधान करना, लूटना, जलाना।

४ चखना होंठ चाटना, सूंघना, चेहरा बनाना, थर-थर कांपना, फलाना, सोते हुए चलना सोते हुए बोलना जनना अप्राकृतिक काम-व्यवहार, बेहोश होना, काम प्रदर्शनवाद, रेंगना, तैरना, चढ़ना, गुदगुदाना ताली बजाना, आंख मारना, घृणा करना, जिद्दी होना चिड़चिड़ा होना अनुत्तरदायी होना, पराश्रित होना, प्यार करने वाला होना, उद्योगी होना, मितव्ययी होना, दूध पीने को उत्साहित करना क्षमा याचना, नापसंदगी व्यक्त करना, डींग मारना दूसरों को डराना, डरना।

० मुंह में लार आना खखारना, जोर से खांसना, सांस लेना चमकना, शर्माना, कांपना जमाई लेना ऋतु धर्म होना, स्वप्न दोष दूसरों को कष्ट देकर काम तृप्ति करना, अपने को कष्ट देकर काम तृप्ति, ठोकर मारना आंख झपकना उत्सुक होना।

रूढ़िया (Mores)

जो रिवाज खाने पहनने उठने-बैठने बोलने चालने से अधिक महत्त्वपूर्ण विषयों से सम्बन्ध रखते हैं, उन्हें एक विशिष्टता प्राप्त हो जाती है। ऐसे रिवाज मानव व्यवहार के बुनियादी चालकों—महत्वाकांक्षा प्रेम शक्ति प्राप्ति की इच्छा, सम्पत्ति अर्जन की प्रेरणा आदि का नियमन करते हैं। बाध्यता ऐसे रिवाजों का मुख्य लक्षण है। सुमनर ने ऐसे रिवाजों को रूढ़ि के नाम से पुकारा है। उसके अनुसार "वह प्रचलित रीतियां और परम्परायें, जिनके बारे में यह दृढ़ धारणा है कि वह सामाजिक कल्याण के लिए लाभप्रद है और जो किसी अधिकारी द्वारा एकीकृत न होने पर भी व्यक्ति पर यह दबाव डालती हैं कि वह अपने आपको उनके अनुरूप बनाये रूढ़ियां कहलाती हैं।"

भारत की परिवर्तित रूढ़ियां जातीय सहिष्णुता स्त्री-पुरुषों की समानता एकाकी परिवार गैर-धर्मिकता (Secularism) और लोकतन्त्र आज के भारतवर्ष की मान्य रूढ़ियां बन रही हैं। इसके विपरीत जातिभेद की भावना, पुरुषों की प्रभुता संयुक्त परिवार, धार्मिकता और साम्राज्यवाद उन्नीसवीं शती में इसी देन की रूढ़ियां रही हैं।

रूढ़ियों का पालन समाज रूढ़ियों के विरुद्ध व्यवहार की अनुमति नहीं देता। आज हमारे यहां कोई जातीय या साम्प्रदायिक घृणा के पक्ष में प्रचार नहीं कर सकता, स्त्रियों की दासता का समर्थन नहीं कर सकता लोकतन्त्र के विरुद्ध आवाज बुलन्द करने का साहस नहीं कर सकता। रूढ़ियां हमें केवल कुछ कर्मों के करने से ही नहीं रोकतीं अपितु वे हमें कर्म करने का स्पष्ट आदेश भी देती

आग्रह बहुत प्रबल हो जाता है। जब कि एक विशेष आरण्यक संस्कृति के सदस्य से यह प्रश्न पूछा जाता है कि वह क्यों अपनी पत्नी द्वारा बच्चा जनने के समय बिछौने पर लटता है, तो इसका एक ही उत्तर उसके पास है, कि उसके यहां सदा से ऐसा ही होता चला आया है। यह स्मरणीय है कि सुमनर ने रिवाजों और रूढ़ियों के अधिकांश उदाहरण निश्चल समाजों से ही लिए हैं। इन आरण्यक समाजों में फैशन; अर्थात् शीघ्र परिवर्तनीय रिवाज विरल हैं। उस समाज में, जो कि तेजी से बदल रहा है, रिवाज बहुत अधिक समय तक नहीं दोहराये जाते जिससे कि उनमें बाध्यता आ सके।

इसके अतिरिक्त, समाज विभिन्न वर्गों से मिलकर बना हो सकता है। उसमें रईसों और श्रमिकों की स्त्रियां हैं, ग्राम्यवासी और नगरवासी हैं, धार्मिक और नास्तिक हैं। प्रत्येक वर्ग की एक-एक विशिष्ट जन रीति है। अतएव एक विभिन्नतत्त्वीय समाज में एकरूपता कायम रखना बहुत कठिन है। कुछ धार्मिक वर्ग सोमवार को मौन और उपवास रखते हैं। उसी दिन एक विशिष्ट वर्ग के लोग खाना पीना और नाच-गाना करते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि विभिन्न वर्गों की कुछ जनरीतियों में समानता हो, पर सबों में नहीं। उदाहरण के लिए एक ग्रामवासी और एक नगरवासी, दोनों ही एक प्रकार का और दिन में बराबर बार भोजन करते हैं पर वह एक समय सोकर नहीं उठते और न ही उनमें समान पड़ोसीपन नजर आता है। किसान जब गांव में चलता है, तो प्रथम राहगीर से बात करने रुक जाता है, पर नगरवासी किसी की ओर ध्यान नहीं देता। विशिष्ट परिस्थितियां बहुत हद तक इसके लिए उत्तरदायी हैं।

बावजूद इसके आधुनिक समाज में पर्याप्त स्थिरता और सांस्कृतिक बाध्यता विद्यमान है। प्रत्येक चीज ही शीघ्रता से परिवर्तित नहीं हो जाती। किसी रिवाज को बदलने में अधिक और किसी में कम समय लगता है। इस तरह एक परिवर्तनशील समाज में विभिन्न रिवाजों और रूढ़ियों के परिवर्तन की दर और बाध्यता की तीव्रता में पर्याप्त विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरण के लिए, भारतवर्ष के नगर निवासियों ने जिस तेजी से अंग्रेजी वेश को अपनाया अंग्रेजी भोजन को नहीं। और जहां तक अंग्रेजी वेश का भी प्रश्न है स्त्रियों ने तो उसे प्रायः बिल्कुल ही नहीं अपनाया और न ही निकट भविष्य में उसे अपनाने के कोई चिह्न ही नजर आते हैं। किन्तु अंग्रेजी सौन्दर्य प्रसाधनों के अपनाने में हमारी स्त्रियों में वह मन्दता नहीं है। और फिर वह रूढ़ियां जो कि अधिक बुनियादी समझी जाती हैं शीघ्र परिवर्तित नहीं होतीं। वास्तव में हम ऐसे समाज की कल्पना भी नहीं कर सकते, जिसमें ऐसे कोई नियम या रूढ़ियां न हों जिन्हें प्रायः सम्मानित और कार्यान्वित न किया जाता हो।

दसवां अध्याय

संस्कृति और व्यक्तित्व

CULTURE AND PERSONALITY

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अटलान्टा विश्वविद्यालय के तत्वावधान में वुडवर्थ ने एक महत्वपूर्ण परीक्षण किया जिसमें विभिन्न नस्लों के लोगों की कष्ट सहने की क्षमता को जांचने का प्रयत्न किया गया था। इस परीक्षण से यह सिद्ध हुआ कि एक सामान्य अमरीकन की तुलना में एक रेड इंडियन में कष्ट सहने की अधिक क्षमता है। इसके कारणों की खोज करने पर इसका कोई प्राणिक या नस्ली कारण न मिला पर उन इन दोनों समुदायों की संस्कृति में ढूंढा जा सकता है। मां की गोद से लेकर मृत्यु पर्यन्त रैड इंडियन को कष्ट सहन की शिक्षा अभ्यास और सम्मान करना सिखाया जाता है। यहां तक कि वह अपनी खोपडी का अपने कबीले द्वारा सुन्दर समझे जाने वाला रूप प्रदान करने के लिए कठोर यन्त्रणा को सहर्ष स्वीकार करता है। सन्ध्या समय अलाव पर उसे वीर गाथाएं सुनने को मिलती हैं। बचपन से ही उसे जीवन मृत्यु का आभास मिल जाता है। यौवनावस्था की रस्में उसे कष्ट सहन में अभ्यस्त बना देती हैं। उनमें तनिक भी कष्ट करना महान् कायरता समझी जाती है। ऐसे वातावरण में कैसे व्यक्तित्व का निर्माण होगा इसका अनुमान हम स्वयं ही लगा सकते हैं। अमरीकन संस्कृति इससे पर्याप्त भिन्न है। इसमें कष्ट या पीडा अनुभव करना या उसे स्वीकार करना कायरता नहीं समझा जाता। बचपन से ही बच्चों को यन्त्रणा या दर्दनाक दृश्यों से दूर रखा जाता है। पीडा निवारण के लिए उसका प्रत्युत्तर सहनशक्ति न होकर पीडानिवारक औषधियां और क्लोरोफार्म ही है। इस तरह रैड इंडियन और अमरीकन संस्कृति की तुलना कर, हम उनकी विभिन्न शारीरिक क्षमता के अन्तर का कारण जान सकते हैं।

इससे स्पष्ट है कि संस्कृति और व्यक्तित्व में अति घनिष्ठ सम्बन्ध है। वास्तव में जन्म के समय मानव प्राणी उन सब गुणों से शून्य होता है जिन्हें कि हम मनुष्यत्व के साथ जोडते हैं। वह यह गुण धीरे धीरे समाज और उसकी विरासत से सीखता है। जन्म से मृत्यु-पर्यन्त व्यक्ति और संस्कृति के बीच निरन्तर अन्तःक्रिया होती रहती है। वस्तुतः सांस्कृतिक वातावरण व्यक्ति पर किस तरह और कितनी छाप छोडता है, इसका सही-सही निर्धारण अभी तक नहीं हो सका है, यद्यपि इस दिशा में प्रयत्न जारी हैं। अतः अभी हमें अभिव्यंजनात्मक (Impression

गुस्से के दौरे पड़ते थे। वह दूसरों के हिलते होठों की भाषा को समझने में असमर्थ थी। किन्तु इसी समय उनके जीवन में कुमारी सुलीवन ने प्रवेश किया। उन्होंने हेलन के हाथों पर शब्द लिखने शुरू कर दिए, जिन्हें कि हेलन ने दोहराना और वस्तुओं से सम्बन्धित करना शुरू कर दिया। उसे यह पता नहीं था कि प्रत्येक वस्तु का नाम है। इस बात के हठात् ज्ञान ने उसके व्यक्तित्व में एक अद्भुत परिवर्तन उपस्थित कर दिया।

भाषा एक व्यक्तित्व गुण अनेक उदाहरणों से स्पष्ट है कि भाषा व्यक्तित्व के विकास का प्रमुख साधन है क्योंकि इसके माध्यम द्वारा ही व्यक्ति अपनी सूचनाएँ और धारणाएँ प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त बोली स्वयं व्यक्तित्व का एक गुण बन जाती है, जैसा कि सापिर ने अपने सूक्ष्म अध्ययन में स्पष्टतः लिख लाया है। उसके अनुसार बोली एक जटिल वस्तु है, जिसके कि पाँच पहलू हैं आवाज का प्रकार, गतिशीलता उच्चारण, शब्द भण्डार, और शैली। इसमें से हर एक पहलू का व्यक्तित्व के लिए अपना अर्थ है। हम विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व के मूल्यांकन में बहुत कुछ आवाज का अवलम्बन लेते हैं। हम बोली में हाव भाव का भी समावेश करते हैं। आवाज और हाव भाव की सहायता से हम जान सकते हैं कि अमुक व्यक्ति किस संस्कृति में पला और बड़ा हुआ है।

भाषा का व्यक्तित्व के लिए कितना महत्व है, यह एक वैज्ञानिक के उदाहरण से समझाया जा सकता है। वैज्ञानिक का एक विशिष्ट व्यक्तित्व होता है। उसकी भाषा संयत और स्पष्ट होती है। यह सही है कि कोई भी व्यक्ति सदा वैज्ञानिक नहीं रहता। पर हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि कुछ संस्कृतियाँ ऐसे व्यक्तित्व के निर्माण के अधिक अनुकूल हैं जो कि वैज्ञानिक व्यक्तित्व का विकास कर सकें। अफ्रीकी सूडानवासियों की तुलना में जिनकी भाषा में विशिष्ट तथ्यों के लिए केवल एकवचन शब्द है, हमारी संस्कृति इसके अधिक अनुकूल है, जिसमें कि बहुत सूक्ष्म विचारों और भावों के लिए पृथक शब्द हैं। उनकी संस्कृति में केवल एक ही शब्द के उच्चारण को ऊँचा-नीचा उठाकर विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। 'बड़ा' मझला और 'छोटा' के लिए उनके यहाँ एक ही शब्द है। आवाज में उतार चढ़ाव से ही उसके अन्तर को जाना जाता है। ऐसी संस्कृति में सूक्ष्मता के गुण का विकास होना पर्याप्त कठिन है।

विभिन्न संस्कृतियों की भाषा का अन्तर उनकी संस्कृति के अन्तर को बहुत कुछ प्रतिबिम्बित करता है। पर जहाँ एक ओर भाषा वैज्ञानिक के निर्माण में योग देती है वहाँ दूसरी ओर वैज्ञानिक भाषा के निर्माण में योग देता है। इसका अर्थ हुआ कि संस्कृति के विकास के साथ-साथ शब्द भण्डार भी बढ़ता जाता है।

संस्कृति प्रतिमान और व्यक्तित्व प्रतिमान (Personality Pattern)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृति गुणों और व्यक्तित्व गुणों में परस्पर निकट सम्बन्ध है पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह अति कठोर और निश्चित है। केवल घड़ियों का अस्तित्व समय-पालन की गारण्टी नहीं करता। तुर्की और अफगानिस्तान दोनों देशों के लोग घड़ियां रखते हैं। पर काबुली प्रायः समय के पाबन्द नहीं होते। यदि एक काबुली सुबह सात बजे का वायदा कर दुपहर के बारह बजे पहुंच जाय तो खुदा का शुक्र समझिये। काबुली गपशप और मेहमान नेवाजी का बेहद शौकीन है। बगैर बात किये उसकी गुजर नहीं। और कुछ नहीं तो वह सिर्फ बातचीत करने के लिए अपनी चप्पल में कील ठुकवाने लगता है और फिर रास्ते में जो कोई वाकिफ मिल जाये उससे दुआ-सलाम बात-चीत करने लगता है। अगर कोई कुछ खाने-पीने की दावत दे तो उसको मंजूर करना भी उसके लिए निहायत जरूरी है। संक्षेप में एक काबुली के लिए गप शप, मित्रता और आतिथ्य की तुलना में समय-पालन का कम महत्व है। इससे स्पष्ट है कि भौतिक आविष्कारों का व्यक्तित्व के ढालने में पर्याप्त महत्व है, पर उसकी दिशा और तीव्रता समग्ररूप में सांस्कृतिक स्थिति पर निर्भर करती है। इसलिए संस्कृति और व्यक्तित्व के सम्बन्ध को समझने के लिए हमें संस्कृतिप्रतिमान को समझना भी आवश्यक है।

ग्राम्य संस्कृतियां और आतिथ्य उदारता और कृपणता व्यक्तित्व-गुण हैं। शायद हम यह समझें कि यह गुण जन्मजात है पर वास्तव में यह दर्शाया जा सकता है कि इनका स्रोत भी संस्कृति ही है। विद्यमान और विलीन कृषि संस्कृतियों में आतिथ्य गुण अपनी चरम सीमा पर पहुंचा। भारतवर्ष में अभी भी अनेक भाग, जहां औद्योगीकरण का प्रभाव कम पहुंचा है, अपने आतिथ्य के लिए प्रख्यात है। इसके निम्न प्रमुख कारण हैं। एक गांव से दूसरे गांव का फासला पर्याप्त है। रास्ते में रात को ठहरने के लिए किन्हीं सरायों और खाने के लिए भोजनालयों का अभाव है। इसलिए मुसाफिरों को रात्रि में विश्राम के लिए किसी परिवार में ही रुकना पड़ता है। गांवों में खाने पीने की चीजों की कमी नहीं है, अतः प्रत्येक का स्वागत है। यहां रुपए का विनिमय के माध्यम के रूप में प्रयोग कम है। इसके अतिरिक्त, संवादवहन की सुविधाओं के अभाव में मुसाफिर खबर भेजने के उत्तम साधन है। ऐसी सांस्कृतिक परिस्थितियों में आतिथ्य गुण का विकास सर्वथा स्वाभाविक है।

आज के नगरों की अवस्था सर्वथा भिन्न है। यहां जगह की भीषण कमी है। खाने पीने की हर चीज की कीमत देनी पड़ती है, वह खेत या बगीचे से मुफ्त नहीं आ जाती। यहां पर भोजनालयों और विश्रामालयों की कमी नहीं है। यहां संवाद-वहन के सस्ते सुलभ और द्रुत साधन हैं। इसके अतिरिक्त, लोगों के पास समय की भीषण कमी है। ऐसी परिस्थितियों में आतिथ्य का विकास नहीं हो पाता।

स्त्रियों में जीविकोपार्जन और आज्ञा पालन स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों का एक और उदाहरण देकर संस्कृति के व्यक्तित्व पर प्रभाव को अच्छी तरह व्यक्त किया जा सकता है। आज से बीस साल पहले अगर हम किसी शिक्षित भारतीय महिला से यह प्रश्न पूछते कि उसकी सम्मति में एक अच्छी स्त्री का क्या गुण है, तो उसका उत्तर प्रायः आज्ञा पालन ही होता था। किन्तु आज शायद सौ में से पच्चीस भी शिक्षित स्त्रियां ऐसी नहीं मिलेंगी जो कि यह उत्तर दें। आजकल की पढ़ने वाली लड़कियों में सक्रियता और आत्म अभिव्यक्ति को आज्ञा पालन से अधिक महत्व दिया जाता है। आखिर इसका क्या कारण है? आज से बीस साल पहले स्त्रियों में शिक्षा का बहुत कम प्रसार था। उन्हें घर से बाहर काम करने और रोजगार पाने की सुविधाएं न थीं। आर्थिक दृष्टि से वह पूर्णतः पतियों या पिताओं पर निर्भर थीं। आज्ञापालन ऐसी परिस्थितियों का अवश्यम्भावी परिणाम था। अब अवस्था बदल गई है। लड़कियों को लड़कों के समान शिक्षा की सुविधाएं मिल रही हैं। वह वोट दे सकती और नौकरी पा सकती है और समाज इसे बुरा नहीं मानता। ऐसी सांस्कृतिक परिस्थितियां स्वभावतः स्त्री स्वातन्त्र्य की भावना को प्रोत्साहित करती हैं।

इसका यह अर्थ नहीं कि आज से पच्चीस साल पहले सभी औरतें दब्बू या आज्ञा-पालिका थीं। वास्तव में व्यक्तिगत अपवाद सभी समय विद्यमान रहते हैं। इसके अतिरिक्त, सिद्धान्त और व्यवहार में सदैव ही कुछ अन्तर रहता है। अतः रीति द्वारा आज्ञा-पालन का आदेश होने के बावजूद, कुछ स्त्रियां अपने पतियों पर हुकूमत करती थीं। पर यह सत्य है कि आज की तुलना में पच्चीस साल पहले स्त्रियां बहुत आज्ञा-पालिका थीं।

सहकारी और प्रतियोगी संस्कृति प्रतिमान व्यक्तित्व के निर्माण में संस्कृति के महत्व को समझते हुए अनेक समाजशास्त्रियों और नृवंशशास्त्रियों ने संस्कृतियों की, जो कि व्यक्तियों को एक विशिष्ट व्यक्तित्व प्रदान करती हैं, श्रेणी विभाजन का प्रयास किया है। रुथ बेनेडिक्ट ने जूनी कबीले की संस्कृति को अपोलोनियन तथा क्वैक्युतुल कबीले की संस्कृति को डायोनिशियन नाम दिया है। सहयोग, संयम और शान्ति अपोलोनियन संस्कृति के प्रमुख लक्षण हैं। इसके विपरीत, प्रतियोगिता, अति भावुकता और संघर्ष डायोनिशियन संस्कृति की मुख्य विशेषताएं हैं। जूनी संस्कृति इस तरह संगठित की गई है कि जिससे समुदाय के सदस्यों में प्रतियोगिता न हो सके। यदि कोई व्यक्ति बहुत आगे बढ़ना चाहे तो, उसे बुरा समझा जाता है। क्वाक्युतुल की अवस्था भिन्न है। यहां व्यक्ति का प्रमुख लक्ष्य दूसरे को नीचा दिखाना है। उनकी संस्कृतियों के अन्य पहलू समान हैं। दोनों संस्कृतियां दो पृथक प्रकार के व्यक्तियों को जन्म देती हैं। एक जूनी की तुलना में, अन्य बातों के साथ,

ववावयुतुल अधिक महत्वाकांक्षी, स्वार्थी और अशान्त होते हैं।

समाजीकरण प्रक्रिया (Socialisation Process)

वह प्रक्रिया जिसके द्वारा एक बच्चा धीरे धीरे अपने समाज की धारणाए और आदतें ग्रहण कर लेता है समाजीकरण की प्रक्रिया पुकारी जाती है। इसकी कार्य प्रणाली अभिसहित प्रत्युत्तर (Conditioning response) से मिलती है। विभिन्न प्रकार से व्यक्तियो का अभिसहन (Conditioning) सम्पन्न होता है। इनमें प्रमुख प्रणाली टामस के शब्द में 'आदेश और निषेध प्रणाली' है। छोटे बच्चे को बारम्बार यह बताया जाता है कि वह क्या करे और क्या न करें। आदेश और निषेध प्रत्येक बालक के भावात्मक अनुभव में विशेष स्थान रखते हैं।

एक बच्चे के समाजीकरण में प्रत्यक्ष और स्पष्ट आदेश का महत्त्वपूर्ण स्थान है, पर इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान उन बहुत से अप्रत्यक्ष और अज्ञात प्रभावों का है जो कि उसकी इच्छाओं और प्रवृत्तियों को परिचालित करते हैं। ज्ञात और अज्ञात अनुकरण का भी इसमें हाथ होता है। बच्चे पर निरन्तर उसके सांस्कृतिक वर्ग के सुझावों की वर्षा होती रहती है।

एक वष्णव परिवार में पले बच्चे का उदाहरण देकर इस तथ्य को भली भाँति स्पष्ट किया जा सकता है। ऐसे परिवार में बचपन से बालक घर में राधा-कृष्ण के चित्र और प्रतिमाओं के दर्शन करता है, निरन्तर वह माता पिता के मुह से राधाकृष्ण की बाल लीला, क्रीडा पराक्रम और अनुकम्पा की कथाएं सुनाता है, गले में कंठी पहनता है समय-समय पर घर में और बाहर राधाकृष्ण के उत्सवों में सम्मिलित होता है उनकी स्तुति में भजन और गीत सुनता और गाता है, कीर्तन देखता और उनमें भाग लेता है जयगोपाल या राधाकृष्ण कहकर परस्पर अभिवादन करता है। इन सब चीजों की अमिट छाप उसके मस्तिष्क और चेतना पर सदा के लिए पड़ जाती है जो जीवन-पर्यन्त उसके व्यक्तित्व, विचार और व्यवहार पर गहरा असर डालती है।

मानव प्रकृति की नमनीयता

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव प्रकृति में कितनी विभिन्नता पाई जाती है और इसमें संस्कृति का कितना जबर्दस्त हाथ है। यह तो एक प्रकट सत्य है कि बोनियों के खूंखार सिर शिकारी और शान्तिप्रिय अहिंसक जैनी दोनों ही मानव हैं। उनमें विद्यमान अन्तर केवल मानव प्रकृति के लचकीलेपन की ओर संकेत करता है। गोल्डनवीजर ने ठीक ही लिखा है मनुष्य एक है, सभ्यताएं अनेक हैं। जैनियों में पला बोनियो का एक बच्चा शान्तिप्रिय होगा। इसके विपरीत यदि एक जैनी बच्चा बोनियों के सिर शिकारियों द्वारा पाला जाय, तो वह किसी भी अर्थ में उनसे कम खूंखार न होगा। कभी कभी तो संस्कृति का दबाव

किसी समुदाय की प्रकृति में आमूल चूल परिवर्तन ला देता है। इस सम्बन्ध में फारिस के शब्द विचारणीय हैं

"नवशशास्त्रीय अध्ययनों का इससे अधिक महत्त्वपूर्ण सबक कोई नहीं जितना कि मानव पशु के अनन्त आनुकूल्य का सबक है। एक निर्विरोध सांस्कृतिक माध्यम द्वारा हम देखेंगे कि क्षुधा काम वासना, यहां तक कि जीने तक की इच्छा भी, यदि वह रूढ़ि के विरुद्ध हो, कुछ नहीं रह जाती। इस तथ्य की पुष्टि से हम सब परिचित हैं। स्वेच्छा से उपवास, स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य, स्वेच्छा से अग भग और शरीर को कष्ट, स्वेच्छा से आत्महत्या आदि उदाहरणों की कमी नहीं, जो कि सांस्कृतिक नमूने के प्रबल आकर्षण का दर्शाते हैं। व्यक्ति द्वारा अपने व्यक्तित्व का स्वतन्त्र सगठन वैसा ही है जैसा कि बिना माता के जन्म लेना।'

इससे वह पुरानी कहावत कि 'मानव प्रकृति नहीं बदली जा सकती भ्रान्त ठहरती है। ऐल्वुड ने सही ही कहा है कि "मानव प्रकृति हमें ज्ञात एक अति परिवर्तनीय वस्तु है।' निसन्देह इस परिवर्तन की सीमाएं हैं। इसी कारण "एक मनुष्य उन सबके कारण एक मनुष्य है।" उदाहरण के लिए, हर जगह ही मनुष्य क्रोध करते हैं। इस उद्वेग का पूर्णरूपेण दमन संदेहास्पद है। फिर भी विभिन्न संस्कृतियों में मनुष्य के क्रोध का अवसर, अवधि और रूप बहुत भिन्न होता है। विस्तृत प्राणिक सीमाओं में मानव प्रकृति पर्याप्त नमनीय है। यद्यपि मानव प्रकृति में बहुत नमनीयता है पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसे जैसे चाहें वैसे बदला जा सकता है और उसका प्राणिक प्रकृति के साथ समान समीकरण सम्पन्न होता है। हम बारह घंटे सोने का अभ्यास डाल सकते हैं और चार घंटे सोकर भी गुजर कर सकते हैं। इस अर्थ में मानव प्रकृति नमनीय है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य बिना सोये भी काम चला सकता है, या कितना भी सोने से उसकी प्राणिक प्रकृति के साथ उसे एक-सा समीकरण (adjustment) प्राप्त होता है। हो सकता है आठ घंटा ऐसी अवधि हो जो प्राणिक प्रकृति के लिए सबसे अधिक अनुकूल हो। इस तरह संस्कृति और आनुवंशिकता के समीकरण का प्रश्न समीकरण की सीमा और नमनीयता की सीमा से सम्बद्ध है।

एक संस्कृति में सांस्कृतिक विभिन्नता

निःसंदेह संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रबल प्रभाव पड़ता है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि संस्कृति एक ऐसा सांचा या ठप्पा है जो किसी समुदाय के सदस्यों को एक रूप या रंग में ढाल देता है। वास्तव में एक संस्कृति में पले सब सदस्य अपनी धारणाओं, विचारों और व्यवहारों में समान नहीं होते। आरण्यक समुदायों तक पर यह बात लागू होती है। पुरुष और स्त्रियों, बालकों और वृद्धों, पुरोहितों और शमनों नेताओं और अनुचरों—प्रत्येक के व्यक्तित्व में विस्तृत अन्तर पाया जाता

है। एक संस्कृति में व्यक्तित्वों की विभिन्नता का एक कारण उसके विभिन्न व्यक्तियों और समूहों से संस्कृति की विभिन्न मांगें हैं। लिण्टन ने इस तथ्य की ओर विशेष रूप से हमारा ध्यान आकर्षित किया है और साथ ही सांस्कृतिक प्रभावों का एक उपयोगी श्रेणी-विभाजन प्रस्तुत किया है। उसके अनुसार प्रत्येक संस्कृति में कुछ ऐसे सांस्कृतिक गुण होते हैं जो समान रूप से सब सदस्यों पर दबाव डालते हैं। इन गुणों को हम सार्वभौम गुण कह सकते हैं। इन गुणों में भाषा, वेशभूषा, घरों और समूह आदर्शों का समावेश है। इसके अतिरिक्त, संस्कृति के कुछ अन्य पहलू हैं जो कि जनसंख्या के एक विशिष्ट समूह पर ही लागू होते हैं। उदाहरण के लिए प्रत्येक संस्कृति में स्त्री-पुरुषों के बीच एक श्रम विभाजन विद्यमान रहता है और दोनों वर्गों के लिए आचार के विभिन्न मानदण्ड होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक पेशे के समूह का एक विशिष्ट सांस्कृतिक दृष्टिकोण होता है। विभिन्न पेशों के लिए विशिष्ट कार्यपद्धति यहां तक कि एक विशिष्ट शब्दावली होती है जो कि एक विशिष्ट पेशेगत दृष्टिकोण का सृजन करती है। संस्कृति के इन पहलुओं को लिण्टन ने विशिष्टताएं कहा है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक संस्कृति में एक ही आवश्यकता की पूर्ति के विभिन्न मार्ग होते हैं, जिन्हें कि उसने विकल्पों का नाम दिया है। उदाहरण के लिए, प्रत्येक संस्कृति में मनोरंजन और दिल-बहलाव के विभिन्न सर्वस्वीकृत साधन हर एक व्यक्ति को उपलब्ध होते हैं, वह जिसे पसन्द करे उसका उपयोग कर सकता है। -

इससे स्पष्ट है कि संस्कृति के सार्वभौम तत्त्व ही व्यक्तित्व की समानता में सहयोग देते हैं। किन्तु आरण्यक समाजों में भी सार्वभौम की तुलना में विशिष्ट और विकल्प तत्त्व ही अधिक अनुपात में पाये जाते हैं और यही संस्कृति में विभिन्नता और समानता एकता और अनेकता के लिए उत्तरदायी होते हैं। आरण्यक और आधुनिक दोनों ही संस्कृतियों में एकता और विविधता के दर्शन होते हैं। भारतीय संस्कृति के सम्बन्ध में तो यह बात बहुत ही पूरी उतरती है। समस्त भारत में एक विचित्र मानसिक और धार्मिक समानता है, पर फिर भी इसके विभिन्न भागों और विभिन्न भागों के विभिन्न समूहों और वर्गों की भाषा, वेश भूषा, रहन-सहन, आचार-व्यवहार, पद प्रतिष्ठा में विस्तृत अन्तर विद्यमान है। यदि यह कहें तो अच्छा होगा कि भारतीय संस्कृति एक रंगी चादर नहीं, बल्कि बहुरंगी चुनरी है।

उन देशों में भी, जहां कि संस्कृति अधिक एकतत्त्वीय है, पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। आधुनिक संस्कृति इतनी अधिक विस्तृत है कि कोई व्यक्ति इसे पूर्णतः नहीं ढक सकता। बच्चे का अनुभव बहुत कुछ संस्कृति के उस अल्प अंश का परिणाम होता है जिसके कि वह सम्पर्क में आता है। समूह विशेष सामाजिक विरासत के एक अंश के संरक्षक होते हैं, और जो कुछ बच्चा सीखता है, वह इस पर निर्भर करता

है कि वह किस समूह से सम्बद्ध है। वह एक कुलीन या एक अछूत की संस्कृति ग्रहण कर सकता है। यदि वर्गों की दीवारें बहुत ऊंची और अनुल्लंघनीय नहीं हैं तो वह बाद में एक वर्ग से दूसरे वर्ग में पहुंच सकता है, और इस तरह संस्कृति के विभिन्न प्रभावों को आत्मसात् कर सकता है।

और फिर, बच्चा किस खानदान या कुल से आता है, इस पर भी बहुत कुछ उसका व्यक्तित्व निर्भर करता है। कुल व्यक्तित्व पर अपनी छाप छोड़ता है। एक व्यापारी, कर्मचारी, श्रमिक या किसान बनने में बहुत अंश में यह एक निर्णायक तत्त्व है। बच्चे का क्रीडा समूह भी बच्चे के व्यक्तित्व के ढालने में अपना हाथ रखता है। वह एक बालचर या गलियों के छोकरों की संस्कृति ग्रहण कर सकता है। धार्मिक समूह भी उसको ढालने में अपना योग देता है। वह सुबह उठकर संध्या-हवन करता है, या मंदिर जाता है, या कीर्तन करता है या उपवास रखता है, या कलमा पढ़ता है यह उसके धार्मिक समूह द्वारा ही निर्णीत होता है। इसमें स्कूलों का भी दान है। वह विशिष्ट खेल खेलता है, संगीत और कला का अभ्यास करता है, यह उसके स्कूल की ही विशेषता है। तत्पश्चात् वह कौन-से कालिज या विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है, यह चीज भी उसके सांस्कृतिक प्रतिमान को विशेष रूप से प्रभावित करती है। शान्ति निकेतन, गुरुकुल कांगड़ी, कलकत्ता विश्वविद्यालय, रुड़की इंजीनियरिंग कालिज, दिल्ली कामर्स कालिज में एक विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण होता है। अन्ततः, उस पर उस पेशे के समूह का प्रबल प्रभाव पड़ता है जिसे कि वह अपनाता है। एक सिपाही, एक इंजीनियर, एक डाक्टर, एक अध्यापक, एक व्यापारी, एक शासक या एक किसान बनकर जो आदतें और धारणाएं वह अर्जित करता है, उनमें पर्याप्त पार्थक्य है। यह तथ्य और उदाहरण इस बात की ओर संकेत करते हैं कि हमारे जैसी एक जटिल संस्कृति विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्वों का निर्माण करती है और कर सकती है।

ग्यारहवा अध्याय

सस्कृति का विकास

EVOLUTION OF CULTURE

आज एक आधुनिक शहर में जो यह ऊ ची-ऊ ची इमारतें उम्दा सड़कें, रेल, बस, ट्राम, मोटर, स्कूल, स्टोर, हस्पताल, सिनेमागृह, टेलीफोन, रेडियो, तार, मन्दिर, मस्जिद पुल और कारखाने दखने में आते हैं, आखिर वह कहा से और कैसे आये ? इसका एक सीधा सहज उत्तर तो यह है कि यह मनुष्य कहे जाने वाले अभिमानी प्राणी क मस्तिष्क की उपज ह, उसकी बुद्धि का चमत्कार ह। परन्तु यह उत्तर बहुत भ्रात ह चूंकि इनमें से कोई भी वस्तु अकस्मात् और हठात् उत्पन्न नहीं हुई। इन सबके बनने मे कम-से-कम पाच लाख वर्ष लगे हैं। उन ढाचा क पेंच आर कडा का आविष्कार' जिन पर कि यह सारा शहर खडा है हजारों साल पहले हिमयुग में या उससे भी पहल हुआ था।

सस्कृति का सचय

आधुनिक शहर का निर्माण हजारो सालों के सास्कृतिक सचय का परिणाम है। प्रारम्भिक औजार बनाने वाले पत्थरो को एक दूसरे से टकराकर छीलते थे, बाद में उन्होंने दबाव डालकर घिसने खुरचने और छेदने के साधन विकसित किए। अन्ततोगत्वा हड्डिया सीगा और हाथीदातो का औजारा क निर्माण में प्रयोग हुआ। बाद म ताबे और साने जसी धातुओ को पीटकर चपटा करन और उनसे मिश्रित धातुए बनाने का आविष्कार हुआ। इस तरह धान धान सस्कृति में वृद्धि हुई।

गणित की भाषा में वृद्धि के इस सिद्धान्त को इस भाति व्यक्त किया जा सकता ह

$$स=क+ख प$$

क एक मौलिक सस्कृति ह, प उसके परिवतन को व्यक्त करता ह ख परिवतन के परिणाम को दर्शाता ह, स परिणत सस्कृति है। इसी बात का हम भाषा में ऐसे कह सकते ह कि जल की बूद-बूद करके सागर भरता ह मिट्टी के कण-कण से मिलकर पृथ्वी बनती ह।

योग (Addition) द्वारा वृद्धि सस्कृति की वृद्धि का नियम वृद्धि के अन्य नियमा क ही समान ह। यदि सस्कृति में नये जुड़े तत्वा की सख्या, विलीन

हुए तत्वों की संख्या से अधिक रहती है, तो हम उसे संस्कृति में वृद्धि कहते हैं अन्यथा संस्कृति का ह्रास हुआ या वह स्थिर रही, ऐसा कहा जाता है। यह ठीक वैसे ही है जैसे कि ज्यों-ज्यों एक बच्चा बढ़ता है उसके पुराने जीव-कोष (Cells) मरते जाते हैं और उनका स्थान नये और अधिक जीवकोष ले लेते हैं। संस्कृति में यह नया तत्व आविष्कार (Invention) कहलाता है। सामान्यतः हम आविष्कार का अर्थ एक नई यान्त्रिक विधि या युक्ति समझते हैं, पर समाजशास्त्र में हम अभौतिक आविष्कारों का भी समावेश करते हैं। उदाहरण के लिए आर्थिक क्षेत्र में संयुक्त पूंजी की कम्पनी और आयोजन, राजनीतिक-क्षेत्र में मन्त्रि परिषद् और मतदानपत्र, कला और साहित्य के क्षेत्र में रवीन्द्र संगीत, भरत नाट्य और एकांकी नाटक यह सब अभौतिक सामाजिक आविष्कार हैं। पर यह भी सही है कि भौतिक आविष्कार प्रायः जहां एक ओर उत्पादन की नई प्रणाली और प्रक्रिया को जन्म देते हैं, वहां दूसरी ओर यह अपने प्रति नये दृष्टिकोण तथा समूह में नये विश्वासों और धारणाओं को जन्म देते हैं।

सामाजिक विरासत में दो प्रकार से वृद्धि हो सकती है, विद्यमान तत्वों की अधिकाधिक वृद्धि से अथवा नये तत्वों के प्रवेश से। उदाहरण के लिए यदि हमारे विदेशी व्यापार की मदों में कोई हेर फेर नहीं होता पर उनका परिमाण बढ़ जाता है तो यह वृद्धि पहले प्रकार की वृद्धि है। पर यदि इसमें नई वस्तुओं के आविष्कार और उत्पादन से कोई नई मदें आकर उसे बढ़ा देती हैं तो वह दूसरे प्रकार की वृद्धि कहलायेगी।

संस्कृति के अल्प अंश ही लुप्त होते हैं संस्कृति के विकास और वृद्धि में एक यह बात स्मरणीय है कि किसी भी ऐसे आविष्कार का, जिसकी कि उपयोगिता प्रदर्शित हो चुकी हो, प्रायः लोप नहीं होता। भाषा संक्रमण द्वारा उसे जीवित रखती है। बावजूद इसके, संस्कृति में कुछ हानियां अवश्य घटती हैं। भारतवर्ष में ही धनुर्विद्या से सम्बन्धित शस्त्रों तथा ढाका की प्रसिद्ध मलमल के निर्माण की कला आज लुप्त हो चुकी है। मिस्र में आज कोई ममियों की भांति मुर्दों को संरक्षित रखना नहीं जानता। पूर्वकाल का शिकारी संस्कृतियां आज शिकार पकड़ने, घेरने फंसाने मारने, मारे हुए पशुओं की खाल उतारने, कमाने, रंगने और उससे विविध वस्त्र तैयार करने की हजारों विधियों को भूल चुकी हैं। पर हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि समस्त मानव संस्कृति की समृद्धि की तुलना में यह हानियां नगण्य हैं। सांस्कृतिक गुणों के लोप का ठीक-ठीक निर्णय करना सुगम नहीं है। एक विलुप्त कला का केवल किसी पुस्तक में वर्णन हो सकता है, जब कि वास्तव में उसका कोई चिह्न नहीं मिलता। इसी तरह कोई कौशल बहुत थोड़े लोगों तक ही सीमित हो सकता है। किसी सांस्कृतिक क्षेत्र में लोप की यह प्रक्रिया बहुत धीमी और किसी

में पर्याप्त तेज होती है ।

प्रतिस्थापन (Substitution) अनेक वार सस्कृति प्रतिस्थापन होता है अथात् एक विद्यमान वस्तु के लिए ही कोई अन्य वस्तु प्रस्तुत की जाती है। इस प्रक्रिया को सस्कृति वृद्धि के बजाय सस्कृति परिवतन या प्रतिस्थापन कहना अधिक उपयुक्त होगा। सस्कृति के विकास के लिए, प्रतिस्थापन के अतिरिक्त, नूतन वृद्धि भी अपेक्षित है। मोटर और रेल गाडी ने घोडे और बैलगाडी को प्रतिस्थापित किया ह, पर फिर भी यह अभी पूरी तरह घोडे और बैलगाडियों को हटाने में समर्थ नही हुए ह। मोटर, रेल, घोडे, बैलगाडी सभी का प्रयाग हमारे देश में अभी हो रहा है। अत प्रतिस्थापन के साथ हम यहा सचय भी देखते हैं। कभी-कभी एक या अनेक आविष्कारों को एक नया आविष्कार सवथा प्रतिस्थापित कर देता है। अनेक उद्योगा में बिजली ने कायले को पूणत प्रतिस्थापित कर दिया है।

अभौतिक (Non material) सस्कृति में सचय सचय की प्रक्रिया केवल भौतिक सस्कृति तक ही सीमित नहीं है, वरन् अभौतिक सस्कृति पर भी वह पूणत लागू हाती है। रीति रिवाजों, जनश्रुतिया, कला और साहित्य में निरन्तर वद्धि हाती रहती ह। कभी इसकी वृद्धि का अनुपात प्रतिस्थापित तत्त्वो से कम और कभी अधिक होता है।

सस्कृति-सचय का सिद्धान्त इस वात को स्पष्ट करता है कि हम आज जिस सस्कृति का उपभोग कर रहे हैं, उसके पीछे हजारों लाखों साला के हजारों लाखा मनुष्यो का श्रम और शक्ति लगी हुई ह। हमें अपने पूवजा की तुलना में कही अधिक समृद्ध विरासत प्राप्त हुई ह। दो हजार ई० पूर्व के भारतीया की तुलना में दो हजार ई० पश्चात के भारतीय, कही अधिक समृद्ध सस्कृति का उपभोग कर रहे हैं और आज से सौ साल वाद आने वाले उनके वशज आज से कही समृद्धतर सस्कृति का उपभोग करेंगे।

निरन्तरता (Continuity) का सिद्धान्त

किसी भी नये आविष्कार या सास्कृतिक गुण के विकास को समझने के लिए विद्यमान वस्तुआ और परम्परा का ज्ञान आवश्यक ह। वास्तव म किसी भी नये आविष्कार, तथा सास्कृतिक गुण का मूल, अब तक वतमान ज्ञान में निहित ह, या दूसरे शब्दा में वह विद्यमान का ही वढा हुआ रूप ह। विद्युत एक्सरे, हवाई जहाज इस्पात तथा विविध वस्तुआ के निर्माण के पीछे सदियों का इतिहास है। हजारा वर्षों के छोटे छोटे आविष्कारा के सचय ने इनके वतमान और जटिल निर्माण को संभव बनाया ह। इस प्रकार मानव सस्कृति में हमें सवत्र ही निरन्तरता का तत्त्व दृष्टिगोचर होता ह।

आज जटिलतम वस्तुओं का निर्माण करने के लिए हमें उस सुदीर्घ विकासवादी प्रक्रिया से नहीं गुजरना पड़ता जिससे कि विभिन्न समयों में हमारे समुदाय के लोगों को गुजरना पड़ा है। जो बातें उन्होंने सदियों में सीखीं वह हम ज्ञान के संक्रमण (Transmisson) और हस्तान्तरित होने की कृपा से कुछ ही वर्षों में सीख लेते हैं। हम ऐसा इसीलिए कर सकते हैं क्योंकि निरन्तरता द्वारा संचित ज्ञान का भण्डार विद्यमान है और हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु वह ज्ञान जो आज एक निर्माता को आधुनिक वस्तुओं के निर्माण की क्षमता प्रदान करता है शायद उतना ही पुराना है जितना की अधिजैविक (Super-organic) का विकास। वास्तव में बिना संस्कृति के मनुष्य के लिए यह ज्ञान प्राप्त करना सर्वथा असम्भव था।

निरन्तरता का सिद्धान्त 'दुनिया में कुछ भी नया नहीं है,' इस पुरानी कहावत को एक अर्थ प्रदान करता है। आगरे का ताजमहल या भाखरा का बाँध देख हम दाँतों तले उंगली दबा लेते हैं, उनके निर्माताओं की प्रतिभा की प्रशंसा करते नहीं थकते। पर यदि हम जरा शान्ति से सोचें तो हमें पता चलेगा कि १७वीं सदी के भारतीयों ने ताजमहल और २०वीं सदी के भारतीयों ने भाखरा बाँध का निर्माण शून्य में नहीं कर लिया। उसमें सदियों के ज्ञान संचय और विभिन्न विस्तृत संस्कृतियों का दान और सहयोग था। यही बात सामाजिक संस्थाओं और प्रथाओं के सम्बन्ध में भी सत्य है। उदाहरण के लिए, इंग्लैण्ड में प्रजातन्त्र की स्थापना और स्थिरता कोई आकस्मिक घटना नहीं है। यह एक दीर्घ परम्परा का परिणाम है। इससे स्पष्ट है कि इतिहास के समुचित अध्ययन के बिना किसी सामाजिक समस्या को सही-सही नहीं समझा जा सकता। भूत से वर्तमान का और वर्तमान से भविष्य का निर्माण होता है।

आविष्कार विकासवादी प्रगति की सीढ़ियाँ हैं। यदि कोई आविष्कारक किसी श्रेष्ठ वस्तु या संगठन का आविष्कार करता है, या कोई यान्त्रिक या सामाजिक सुधार करता है तो यह तभी सम्भव हुआ है जब कि उसे मानवजाति द्वारा तब तक अर्जित ज्ञान और अनुभव प्राप्त है। न्यूटन ने ठीक ही कहा है "यदि मैंने आगे तक देखा, तो इसीलिए, क्योंकि मैं विशालकाय कंधों पर खड़ा था।"

मिश्रित-फलीकरण (Cross-Fertilisation) का सिद्धान्त

विद्यमान ज्ञान से ही आविष्कारों का जन्म होता है, यह मिश्रित फलीकरण के सिद्धान्त का मूल है जिससे कि हम सांस्कृतिक विकास और संचय की प्रक्रिया को समझ सकते हैं। मान लीजिये कि एक सामाजिक विरासत के क, ख, ग, घ, ङ, यह पाँच परस्पर अविभाज्य विभिन्न अंग हैं। यह क ख, ग, आदि विभिन्न अंग पृथक पृथक किसी एक विशेष विचार या तत्त्व का प्रतिनिधित्व करते हैं और

इनके कोई भी दो या अधिक अग परस्पर मिल्कर किसी नये आविष्कार को जन्म देते हैं।

उदाहरण के लिए, युद्धशास्त्रों के विकास में सस्कृति के एक विभाग, रसायन शास्त्र से बारूद का विचार लेकर और सस्कृति के दूसरे विभाग यन्त्रशास्त्र (Mechanics) से वस्तु फेंकने की प्रणाली का विचार लेकर, दोनों के सम्मिश्रण से गोला फेंकने वाली तोप का आविष्कार हुआ है। माचिस के आविष्कार से पूर्व पत्थर और लोहा टकराकर तथा एक सीख बीच में लगाकर, जो कि आग पकड लेती थी, आग जलाई जाती थी। बाद में इस सीख को गधक में डुबाया जाने लगा ताकि वह जल्दी आग पकड सके। अन्ततोगत्वा, उस पर एक अन्य रासायनिक पदार्थ लगा दिया गया जिसको रगडने से ही आग निकलने लगी, और इस तरह आधुनिक माचिस आविष्कृत हुई। इसी तरह डार्विन के विकासवाद का सिद्धान्त अर्थशास्त्र के माल्थस के जनसख्या सिद्धान्त और प्राणिशास्त्र के सिद्धान्तों के मिश्रण का परिणाम था।

मिश्रित फलीकरण सदैव ही नये विचारों के उद्गम का स्रोत रहा है। नये विचार भौतिक और अभौतिक दोनों क्षेत्रों में हमारी सस्कृति को समृद्ध करते हैं, यह तथ्य विभिन्न विज्ञानों के निकट सम्पर्क और परस्पर आदान प्रदान के महत्त्व के ऊपर भी प्रकाश डालता है।

प्रसार (Diffusion)

आविष्कारों के लिए एक सामाजिक विरासत के विभिन्न भागों से ही विचार नहीं आते, वरन् अनेक बार उनका आगमन दूसरी सस्कृतियों से होता है। सस्कृति-गुणों का एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को जाना या स्थानान्तरण प्रसार कहा जाता है।

सभ्यता के विकास को सही-सही समझने के लिए यह समझना जरूरी है कि लोगों के समूह विभिन्न सास्कृतिक क्षेत्रों में रहते हैं। सस्कृति का विकास समग्र ससार में एक साथ और एक गति से न होकर, विभिन्न छोटे-छोटे क्षेत्रों में होता है। इसीलिए हमें बर्मी, चीनी और जापानी सस्कृतियां देखने को मिलती हैं। किसी सुदूर भविष्य में शायद समस्त विश्व एक सस्कृति बन सके, पर फिल-हाल इसके कोई चिह्न नजर नहीं आते। फिर भी विभिन्न सास्कृतिक क्षेत्र एक दूसरे से बिल्कुल पृथक नहीं हैं। उनके बीच घनिष्ठ और निरन्तर सम्पर्क है। यही कारण है कि एक स्थान के आविष्कार दूसरे स्थान में अपना लिए जाते हैं। रेल पहले-पहल इगलण्ड में बनी, पर धीरे धीरे ससार के सभी देशों ने उसे अपना लिया। इन देशों में स्वतन्त्र रूप से उसका आविष्कार नहीं हुआ। विभिन्न देशों में रेल का प्रचार और प्रवेश प्रसार का ही परिणाम था।

संस्कृति में स्व प्राविष्कृत तत्वों का प्रभाव किसी भी क्षेत्र में वहाँ के स्व-आविष्कृत तत्वो का अनुपात कुल संस्कृति की तुलना में बहुत कम होता है। लिण्टन ने इस तथ्य को एक अमेरिकन की दिनचर्या देकर बड़े सुन्दर ढंग स स्पष्ट किया है

"हमारा ठेठ अमेरिकन नागरिक उस चारपाई से सोकर उठता है जो उस नमूने की बनी है जिसका निकटपूर्व में जन्म हुआ और जिसका अमरीका में संक्रमण होने के पूर्व उत्तरी योरोप में संशोधन हुआ। वह उन पर्दों को हटाता है जो भारत में उगी कपास, या निकटपूर्व में उगी लिनन या वहीं उत्पन्न भेड़ों की ऊन या उस सिल्क के बने होते हैं जिसकी कि उपज सर्वप्रथम चीन में हुई थी। यह सभी चीजें उन प्रक्रियाओं से काती या बुनी जाती हैं, जो कि निकटपूर्व में ही आविष्कृत हुई। वह उन आराम जूतों में पैर डाल देता है जिनका आविष्कार पूर्वी जंगलों के रेड इंडियनों ने किया, वह उस गुसलखाने में घुसता है जिसमें लगी चीजें योरोप और अमरीका के आधुनिक आविष्कारों का मिश्रण है। वह अपना पाजामा, वह पोशाक जिसका कि आविष्कार भारत में हुआ है निकालता है और उस साबुन से धोता है जिसका आविष्कार गाल लोगों ने किया था। वह फिर हजामत बनाता है। इस आत्म पीडन रीति को उसने शायद सुमेर या प्राचीन मिस्र से लिया प्रतीत होता है।

कमरे में लौट कर वह दक्षिणी योरोपीय किस्म की कुर्सी से अपने कपड़े उतारकर उन्हें पहनने चलता है। वह ऐसी पोशाक पहनता है जो एशियन मैदानों के बनजारों से ली गई है उन जूतों को पैर में डालता है जिनको कि खाल प्राचीन मिस्र में आविष्कृत प्रक्रिया से कमाई गई है और जिसकी काट भूमध्यसागर की प्रसिद्ध सभ्यताओं से मिलती है वह अपनी गर्दन में एक चमकीली रंगीन पट्टी बांधता है जो कि सत्रहवीं सदी के क्रोटियन लोगों द्वारा कन्धों पर डाल जाने वाले शालों का अवशेष है। नाश्ते पर जाने से पहले वह एक बार उस खिड़की से झांक कर देखता है जो कि मिस्र में आविष्कृत शीशे से बनी हुई है और अगर वर्षा हो रही है तो वह केन्द्रीय अमरीका के आदिवासियों द्वारा खोज की गई रबड़ के बने जूते पहनता है और दक्षिण पूर्व एशिया में बने छाते को लगाता है। अपने सिर पर एशिया के मैदानों में बने एक पदार्थ से बना फल्ट का हैट लगाता है।

नाश्ते पर जाते हुए रास्ते में वह एक अखबार खरीदता है और उसकी कीमत का भुगतान, सिक्कों से जो कि लीडिया का आविष्कार है करता है। रेस्तरां में उसे दूसरों से उधार ली गई वस्तुओं की एक नई सूची का सामना करना पड़ता है। उसकी प्लेट चीन में आविष्कृत बर्तन के नमूने की बनी है।

उसका लोहे का चाकू एक मिश्रित धातु से जो सबसे पहले दक्षिणी भारत में आविष्कृत हुई, बना है, उसका काटा मध्यकालीन इटली का आविष्कार है, और उसका चम्मच मूल रोम के नमूने का संशोधित रूप है। वह भूमध्यसागर के सतरे, फारस के खरबूजे या अफ्रीका के तरबूज के टुकडे से अपना नाश्ता शुरू करता है। उसके साथ वह अबीसीनिया के एक पौधे से बनी काफी क्रीम और चीनी डालकर पीता है। गौओं को पालने और उनका दूध दुहने, दोनों का विचार निकटपूर्व में उदित हुआ, जब कि चीनी सबसे पहले भारत में बनी। फल और काफी के बाद वह स्कण्डिनेवियन विधि से एशिया माइनर में उपजाई गई से बनी वफिल केक की ओर हाथ बढ़ाता है। उसके ऊपर वह मेपल का शर्बत, जिसका कि आविष्कार पूर्वी जंगलों के अमरीकी आदिवासियों ने किया है डाल लेता है। साथ में वह हिन्दचीन में पाली जाने वाली एक चिड़िया की जाति का एक अण्डा ले लेता है अथवा उस जानवर के गोश्त के टुकडे ले लेता है जो कि पूर्वी योरोप में पाला गया है और जिसे उत्तरी योरोप में विकसित प्रणाली द्वारा नमक और धुआं लगाया गया है।

हमारा दोस्त खाना खत्म करने के बाद या तो वर्जीनिया के आदिवासियों से अपनाए पाइप या मेक्सिको से ली हुई सिगरेट जिसमें कि ब्राजील में उत्पन्न एक पौधे की पत्तियां पड़ी हुई हैं पीने बैठ जाता है। यदि वह काफी दिलेर है तो एक सिगार आजमाता है जो हमारे पास स्पेन के रास्ते ऐण्टिल्स से आया है। पाइप, सिगरेट या सिगार पीते-पीते वह दिन की खबरों पर नजर दौड़ाता है जो कि जर्मनी में आविष्कृत अक्षरों से छपी है। जैसे ही वह विदेशी झंझटों के विवरण पढ़ता है यदि वह एक अनुदारदली नागरिक है, एक यहूदी देवता को एक हिन्दी-आर्यन भाषा में धन्यवाद देता है कि वह एक शत प्रतिशत अमरिकन है।

लिन्टन का यह उद्धरण जितना एक सामान्य अमरिकन के सम्बन्ध में उपयुक्त है एक पाश्चात्य सभ्यता से विशेष प्रभावित आधुनिक भारतीय के सम्बन्ध में भी उससे कम उपयुक्त नहीं है।

आधुनिक अमरीका की सामाजिक विरासत, वहां इंग्लण्ड, स्पेन और अन्य योरोपीय देशों से ले जाई गई है। उस सामाजिक विरासत की कुछ वस्तुएं जैसे कि आलू, मक्का कई प्रकार के खाने और लड़ने के तरीके, अमरिकन आदिवासियों से ग्रहण किए गए हैं। इंग्लण्ड और फ्रांस ने इटली की संस्कृति से बहुत कुछ सीखा है। जब कि इटली ने स्वयं बहुत कुछ ग्रीस से ग्रहण किया है। ग्रीक लोगों ने बहुत कुछ क्रीट से और स्वयं क्रीट ने बहुत कुछ मिस्र से पाया है। मिस्र स्वयं दजला और फरात की घाटी की सभ्यता का बहुत ऋणी है और दजला

और फरात की सुमेरियन सभ्यता, भारतीय सभ्यता और चीनी सभ्यताओं में परस्पर घनिष्ट सम्पर्क था ऐसा विद्वानों का मत है। इससे स्पष्ट है कि एक क्षेत्र ने अन्य क्षेत्रों से कितने ही सांस्कृतिक तत्वों को ग्रहण किया।

भारतीय सभ्यता में विभिन्न संस्कृतियों की देन

पृथक्करण (Isolation) प्रसार के मार्ग में बाधक वास्तव में किसी क्षेत्र की संस्कृति अन्य क्षेत्रों की संस्कृति के अंशों के आयात (Import) से ही समृद्ध होती है। वह क्षेत्र जो कि किन्हीं कारणों से दूसरी संस्कृतियों के सम्पर्क में नहीं आ पाते, सभ्यता की दौड़ में बहुत पीछे रह जाते हैं। सम्पर्क, यातायात और संवाद वहन की सुविधाओं के न होने के कारण, दूर स्थित द्वीपों या दुर्गम वन्य और पर्वतीय प्रदेशों में प्रायः ऐसा ही होता है। हमारे ही देश में हिमालय पर्वतश्रेणी और आसाम के वनों के कुछ दुर्गम प्रदेशों की संस्कृति बहुत पिछड़ी हुई है। इसका प्रधान कारण उनका पृथक्करण ही है।

सांस्कृतिक वृद्धि की दर

प्राचीन युग की मंद गति

प्रसार और पृथक्करण संस्कृति-वृद्धि की तेज और धीमी गति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। प्रागैतिहासिक (Pre-historic) काल में संस्कृति के विकास की गति बहुत धीमी रही होगी। उस समय के प्राप्त पत्थर के हथियारों में संशोधन और परिवर्धन करने में हजारों या दसों हजार साल लग गये। प्राचीनतम पाषाण-संस्कृति चेलन संस्कृति थी, जो कि शायद पचास हजार साल से अधिक समय तक कायम रही। इसकी प्रगति अत्यन्त धीमी थी। चैलन संस्कृति के प्रारम्भ में हमें एक साधारण नुकीली कुल्हाड़ी के दर्शन होते हैं, जिसकी लम्बाई मझली, शक्ल दोनों हथेलियों को मिलाकर बादाम जैसी, धार टूटी थी। इस संस्कृति के अन्तिम दिनों में यह कुल्हाड़ी अधिक लम्बी और गोलाई लिए हुए बनने लगी, पर इसकी धार अभी भी टूटी ही रही। इस युग के मानव के अवशेष हमें नहीं मिलते। अतः हो सकता है कि मनुष्य का अपरिपक्व प्राणिक विकास प्रगति की इस मन्द गति के लिए उत्तरदायी रहा हो।

किन्तु अब से पन्द्रह-बीस हजार साल पहले परवर्ती हिमयुग का मनुष्य आधुनिक मानव के समान ही था। परवर्ती संस्कृति में भी भद्दे-खुरदरे औजार मिलते हैं। कहीं नवपाषाण युग (Neolithic Age) में जाकर, आज से लगभग पांच हजार साल पहले चिकने पत्थरों के औजारों के दर्शन होते हैं। भद्दे, खुरदरे औजारों से चिकने औजारों तक पहुंचने में दस हजार साल से ज्यादा लग गये। यद्यपि अन्य दिशाओं में तत्कालीन पाषाण संस्कृतियों ने, विशेष कर विभिन्न प्रकार के पत्थर, हड्डी और हाथी दांत के औजार और उपकरण बनाने में, बहुत

उन्नति की।

परवर्ती युग की तेज गति

इससे स्पष्ट है कि प्रारम्भ में सचय की गति बहुत ही धीमी था। नवपाषाण युग में वह कुछ तेज हुई। परवर्ती कालो में ताबे से कासे और कासे से लोहे के प्रयोग के साथ इसकी गति तीव्रतर होती चली गई। अन्तत, ऐतिहासिक काल, विशेपकर उन्नीसवी और बीसवी सदी में तो, इसकी गति में अनुपम वृद्धि हो गई। १८३० में रेल १८८० म टाम, और १९०० ई० में बस का आगमन हुआ। आज दशको वर्षो और कभी-कभी महीनो म बड़े-बड़े परिवतन घट जाते हैं। कम-से कम भौतिक वस्तुओ के आविष्कारो की गति तो बहुत ही तीव्र हो चुकी ह। प्रसिद्ध मानव-शास्त्री लोई ने इस परिवतन को निम्न रूपक द्वारा बडी सुन्दरता से चित्रित किया है।

हम 'मानवजाति की प्रगति की उस सौ साल के मनुष्य से तुलना कर सकते हैं, जो अपने जीवन के पचासी साल तक किण्डरगाटन में भटकता रहता ह, दस साल प्राइमरी पास करने में लगा देता ह तत्पश्चात् बिजली की गति से मिडिल स्कूल, हाई स्कूल और कालिज पार करता चला जाता ह।

वृद्धि की दर में अन्तर के कारण

एक समय था जब कुछ लोग मनुष्य की मानसिक क्षमता की वृद्धि को सामाजिक विरासत की वृद्धि का कारण समझते थे। यदि मानसिक क्षमता में प्राणिक विरासत और सीखे ज्ञान, दोनो का समावेश ह तो यह बात ठीक है। वस्तुत जो चमत्कार आज का मानव सम्पन्न कर सकता ह वह क्रोमग्यौन मानव द्वारा सभव नही था। इसका कारण आधुनिक मानव में जन्मजात योग्यता की अधिकता न होकर अर्जित ज्ञान की अधिकता ह। वास्तव में पिछले बीस हजार सालो में मनुष्य की जन्मजात क्षमता में शायद कुछ भी अन्तर नही पडा ह। अत हमें सस्कृति वृद्धि की दर के अन्तर के कारण प्राणिक (Biological) क्षत्र से बाहर ढूढने होगे।

विद्यमान ज्ञान और आविष्कार की दर में सम्बन्ध सस्कृति की वृद्धि का एक कारण विद्यमान ज्ञान और आविष्कार की दर का क्रियात्मक सम्बन्ध ह। प्रत्येक अविष्कार अनेक विद्यमान तत्वो के सम्मिलन का परिणाम होता है। उदाहरण के लिए हवाईजहाज का आविष्कार इण्टरनल कम्बशन ऐंजिन पर निर्भर था। कलन (Calculus) का आविष्कार विश्लेषणात्मक ज्यामिति पर आश्रित था।

आविष्कार ज्ञात तत्वों का नया सम्मिलन एक आविष्कार ज्ञात तत्वो का एक नया सम्मिलन भी कहा जा सकता है। टेलीग्राफ बटरी, इलक्ट्रो मगनेट और तार का सम्मिलन है। मिट्टी के बतन, मिट्टी, पानी गर्मी रग और अन्य चीजो का

सम्मिलन है। इसी तरह, एक मोटरकार बनाने में पट्रोल ऐंजिन, तरल ईंधन के पात्र रनिंग गीयर और उसके उपकरण, बीच का क्लच, चलाने के स्टीयरिंग और मोटर की बॉडी, इन छ प्रधान आविष्कारों का हाथ था। और फिर, प्रत्येक पूर्व आविष्कार स्वयं पूर्व विद्यमान तत्त्वों के संयोग का परिणाम था। उदाहरण के लिए, इंटरनल कम्बशन ऐंजिन, स्वयं दबाव के सिद्धान्त, बिजली की चिनगारी और व्यवधान (Gap) तथा पानी की नली की शीतल व्यवस्था का संयोग था।

गुहावासी मानव पिछड़ा हुआ आविष्कारक था, इसका बड़ा कारण उसका अत्यल्प अर्जित ज्ञान था। आज का मानव महान् आविष्कारक है, इसका प्रधान कारण उसके पास सदियों से सञ्चित और उसके द्वारा अर्जित ज्ञान का होना है, यद्यपि उसकी जन्मजात योग्यता में एक गुहावासी मानव की तुलना में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा है।

संस्कृति का व्याख्यात्मक सिद्धान्त (Exponential Principale)

पुरानी भौतिक संस्कृति के वर्तमान सञ्चय तथा यान्त्रिक आविष्कारों के बीच, एक निर्विवाद कार्य-कारण सम्बन्ध है। तथ्य इस बात की पुष्टि करते हैं। पुरापाषाण-काल (Paleolithic) में यह सञ्चय बहुत अल्प था, परिणामत आविष्कार भी बहुत अल्प थे। पर जैसे-जैसे सञ्चय बढ़ा, अधिकाधिक खोजें हुईं, विद्यमान ज्ञान का भंडार बढ़ता गया और आविष्कारों की गति भी अधिकाधिक बढ़ती गई।

इस तथ्य को हम चक्रवृद्धि ब्याज (Compound Interest) की वृद्धि की भाँति एक व्याख्यात्मक वक्ररेखा (Curve) से दर्शा सकते हैं। मान लीजिये १०० रु० पर एक साल में ५ रुपया ब्याज मिलता है। हर साल ब्याज के जुड़ने से मूल राशि बढ़ती जाती है। एक साल के अन्त में यह १०५ रु० दो साल के अन्त में ११० रु० ४ आने, तीसरे साल के अन्त में ११५ रु० १२ आ० हो जाती है। हर साल वृद्धि की दर ५ रु० से कुछ ज्यादा ही होती जाती है। किन्तु एक समय पश्चात् मूल के साथ-साथ ब्याज भी एक बड़ी रकम बन जाता है। और १०० साल के बाद जुड़ने वाले ब्याज की रकम ५ रु० के बजाय, लगभग १ ००० रु० हो जाती है।

इस व्याख्यात्मक परिवर्तन को किसी के पूर्वजों के गुणन (Multiplication) के उदाहरण से भी समझाया जा सकता है। पूर्वज भी इसी नियम से पर अधिक तेजी से बनते हैं। इसके अनुसार एक व्यक्ति के चार बाबा आठ दादा और सोलह पड़ दादा होंगे। यदि इसी संख्या को १,००० ई० पू० तक ले जाया जाय तो शायद उसके पूर्वजों की संख्या दसियों लाख में पहुँच जायगी।

पूर्वजों के गुणन का सिद्धांत केवल एक अनुमान मात्र है। अन्त प्रजनन के कारण किसी व्यक्ति के उतने पूर्वज नहीं होते जितना कि गणित हमें बताती है।

वास्तव में चक्रवृद्धि ब्याज के नियम की भांति व्याख्यात्मक वक्ररेखा भी एक प्रवृत्ति की ही परिचायक है, अक्षरश सत्य नही है। किन्तु यह तो स्वीकार करना पडेगा कि योग द्वारा वृद्धि का विचार हमें सस्कृति के विकास को समझने में पर्याप्त सहायता प्रदान करता है।

व्याख्यात्मक वक्र रेखा (Exponential Curve) केवल एक अनुमान सस्कृति की वृद्धि का स्वभाव एक अनुमानमात्र है। इसको लागू करते समय दो बातो का ध्यान रखना बहुत जरूरी है। पहली तो यह कि आधुनिक युग में रीति रिवाजो के सम्बन्ध में भौतिक आविष्कारो की तुलना में यह कम सही उतरता है, क्योकि आधुनिक युग में जनरीति में परिवर्तन की गति अपेक्षाकृत बहुत धीमी है। दूसरी बात यह है कि समग्र ससार की तुलना में व्याख्यात्मक सिद्धान्त का अनुमान किसी स्थानीय सस्कृति क्षेत्र पर कम लागू होता है। यदि भारत, दुनिया से बिल्कुल अलग एक भूखण्ड होता, तो यहा सस्कृति की वृद्धि सभवत चक्रवृद्धि ब्याज की भांति होती। पर चू कि यह सम्पर्क के साधनो द्वारा समस्त विश्व से जुडा हुआ है, इसलिए यहा पर वृद्धि की दर कई गुणा मिश्रित हो गई है। यातायात और सवादवहन के आविष्कार विशेष रूप से सस्कृति वृद्धि की गति को अत्यन्त बढ़ा देते है। १९ वी सदी के मध्य में पाश्चात्य देशों के सम्पर्क में आने से जापान में सस्कृति वृद्धि की दर असाधारण रूप से बढ गई, और यही कारण है कि उससे पहले वहा पाच हजार सालो में जितनी वृद्धि नही हुई थी, उससे कहा अधिक उसके बाद के पचास सालो में हो गई।

सास्कृतिक वृद्धि की दर में अन्तर के कारण

सस्कृति की वृद्धि का अनियमित स्वभाव सस्कृति कभी मन्द, तो कभी तीव्र गति से बढ़ती है। यदि इसके विकास की गति व्याख्यात्मक सिद्धान्त के अनुसार हो तो, इसके विकास की गति निरन्तर तीव्रतर होती रहनी चाहिए थी। उसके धीमा होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

प्रसार (Diffusion) एक बाधक कारण प्रसार की प्रक्रिया सदैव समान गति से कार्य नहा करती। कभी उसकी गति मन्द तो कभी तीव्र होती है और तदनुसार ही वह सस्कृति की वृद्धि की दर को प्रभावित करती है।

सब आविष्कारो का महत्व समान नहीं होता परिवर्तन की गति के तेज से मन्द पड जाने का एक कारण यह है कि सभी यान्त्रिक या सामाजिक आविष्कारो का समान महत्त्व नहीं होता। उदाहरण के लिए, वाष्प शक्ति और लोहे के आविष्कार अत्यधिक महत्वपूर्ण थे। इन्होंने विकास की गति को बहुत तेज कर दिया। पर महत्वपूर्ण आविष्कार एक निश्चित अवधि के अन्तर से नहीं होते, अत उनके आगमन की अनियमितता सस्कृति की वृद्धि की दर में पर्याप्त हेर-फेर उत्पन्न

कर देती है

किसी भी एक वस्तु के संशोधन क्रम को ले लें, चाहे वह बन्दूक हो या गाड़ी, यही अनियमितता दृष्टिगोचर होगी। पर जब एक संस्कृति का निर्माण करने वाले हजारों क्रमों को जोड़ा जाय, तो यह अनियमितताएं कुछ कम दृष्टिगोचर होंगी, क्योंकि व्यवहारत इनमें से अनेक एक दूसरे की पूरक सिद्ध होंगी। अतएव समग्र रूप से संस्कृति की वृद्धि का क्रम निरन्तर बढ़ता ही रहता है, घटता नहीं।

संस्कृति वृद्धि की विभिन्न कल्पनाएं

चक्रीय (Cyclical) कल्पना कुछ विद्वान् सांस्कृतिक परिवर्तन को एक चक्र के रूप में व्यक्त करते हैं। ओस्वाल्ड स्पेंगलर इनमें प्रमुख है। उन्होंने ग्रीस रोम, स्पेन, हालैण्ड, भारत इत्यादि देशों के उदाहरण देकर संस्कृति के उत्थान-पतन को समझाने का प्रयत्न किया है। यह लेखक हमारी तरह सामाजिक विरासत के अर्थ में संस्कृति शब्द का प्रयोग नही करते। विभिन्न लेखकों की संस्कृति के सम्बन्ध में विभिन्न कल्पनाए है। और इनमें से कोई भी संस्कृति में भौतिक संस्कृति का समावेश नही करता। वास्तव में संस्कृति के किसी एक विभाग में परिवर्तन की गति पर्याप्त धीमी और तेज होती रहती है। निःसदेह कला, साहित्य और संगीत के विकास की गति में पर्याप्त अन्तर पड़ता रहता है पर यही बात भौतिक आविष्कारों के विकास के सम्बन्ध में भी लागू होती है।

साम्राज्यवादी कल्पना कुछ विद्वान् संस्कृति के उत्थान-पतन को साम्राज्यों के उत्थान-पतन के साथ संयुक्त करने का प्रयत्न करते हैं। ऐल्फरेड जिमरन इनमें प्रमुख हैं। निःसदेह, साम्राज्यों के पतन राजनीति शिक्षा कला इत्यादि विभागों को बहुत प्रभावित करते हैं, किन्तु भौतिक संस्कृति के विभागों पर इसका अधिक प्रभाव नहीं पड़ता।

आध्यात्मवादी कल्पना कुछ अन्य विद्वान आध्यात्मिकता के रूप का ही सांस्कृतिक परिवर्तन को कुंजी मानते हैं। पिटिरिम सोरोकिन इनमें प्रमुख हैं। इनके अनुसार कला और सामाजिक संगठन के आदर्शात्मक पहलुओं का संतुलित एकीकरण संस्कृति के सृजन के लिए आवश्यक है। यह भी संस्कृति में भौतिक संस्कृति का समावेश नहीं करते। इनमें अधिकांश वह लोग हैं जो आधुनिक सभ्यता या भौतिकता से उकता चुके हैं और आध्यात्मिकता के उत्कर्ष में ही विश्व का कल्याण देखते हैं।

भौतिक संस्कृति की उपेक्षा की भूल वास्तव में संस्कृति को कलाओं से मिला देना और अभौतिक संस्कृति की उपेक्षा करना बड़ी भूल है। कला और साहित्य की अवनति के युग में भी, प्राय भौतिक संस्कृति में निरन्तर वृद्धि होती रही है।

बहुत बार हम सस्कृति के नेतत्व के अपहरण को उसका सास्कृतिक क्षय मान लेते ह । पेरीक्लीज के समय के ग्रीस अथवा गुप्तकालीन भारत को हम कला, साहित्य, दशन की दृष्टि से अवश्य उन्नत कह सकते हैं, परन्तु यदि हम समग्र सस्कृति पर ध्यान दें, तो हमें आज की ग्रीक और भारतीय सस्कृति उस समय से कही अधिक समृद्ध और उन्नत दिखाई देंगी ।

सस्कृतियों की तुलना

विभिन्न क्षेत्रो की भौतिक और अभौतिक सस्कृति की तुलना कर हम यह जान सकते ह कि उनमें से किस क्षेत्र की सस्कृति अधिक उन्नत है । निर्विवाद रूप से वह सस्कृति, जिसमें लेखन कला, जिसके द्वारा ज्ञान का सरक्षण सम्भव ह विद्यमान ह, उस सस्कृति की तुलना में जहा लेखन कला का विकास नही हुआ है, अधिक विकसित ह । सस्कृतिया की तुलना करते समय श्रेष्ठ और निकृष्ट शब्द का प्रयोग उचित नही ह क्योंकि इन शब्दो में नैतिक स्वीकृति या अस्वीकृति का भाव छिपा हुआ ह जिस पर एकमत होना बहुत कठिन ह । पर सस्कृतियो की तुलना करते समय इस बात पर एकमत हुआ जा सकता ह कि एक सस्कृति में विद्यमान ज्ञान उसे अन्य सस्कृतियों के ज्ञान की तुलना में अधिक काय करने की क्षमता प्रदान करता ह । उदाहरणाथ, पत्थर के औजारों वाली सस्कृति की तुलना में लोहे की औजारो वाली सस्कृति नि सदेह अधिक काय सम्पन्न कर सकती है । इस अथ में एक सस्कृति को दूसरी सस्कृति से श्रेष्ठ कहा जा सकता है ।

इस बात को एक उपमा देकर भी समझाया जा सकता ह । मान लीजिए समस्त सस्कृतियां एक दौड प्रतियोगिता में भाग ले रही हैं । यदि उनकी प्रगति चक्रवृद्धि ब्याज के नियम या व्याख्यात्मक सिद्धात (Exponential principle) के अनुसार हो, तो विकसित सस्कृतिया असाधारण गति से आगे बढ़ जायेंगी और पिछडी सस्कृतियो को बहुत पीछे छोड जायेंगी । यदि हम यह मान लें कि दोनो सस्कृतियों में वृद्धि और ह्रास की दर समान ह, तो उन्नत और पिछडी सस्कृतिया के बीच का अन्तर निरन्तर अधिकाधिक होता जायेगा । इस भाति ऐस्किमो सस्कृति की तुलना में योरोपियन सस्कृति कही आगे बढ गई है और यह उन्नति बिना किसी वशानुगत मानसिक योग्यता की वृद्धि के सम्पन्न हो सकती ह ।

पर व्यावहारिक जगत् में व्याख्यात्मक सिद्धान्त के अनुसार वद्धि के माग में कई बाधाएं ह, जिनमें कि प्रसार प्रमुख है । उदाहरणाथ, भारत में अग्रेजो के तथा जापान में कमोडोर पेरी के आगमन से पूव, सांस्कृतिक वृद्धि की गति पर्याप्त मन्द थी, पर उनके प्रवेश ने इन देशो की सांस्कृतिक वृद्धि की दर में असाधारण

रूप मे वृद्धि कर दी। इसी तरह एक समय तक ग्रीस सभ्यता का अग्रदूत रहा और अपेक्षया तीव्र गति से प्रगति करता रहा। पर जैसे ही उसने इटली के प्रायद्वीप पर अपने उपनिवेश स्थापित किए, वहा के लोगों को इस सम्पर्क से एक विशेष सुविधा प्राप्त हुई और वह शीघ्र ही ग्रीस के सांस्कृतिक तत्त्वों को ग्रहण कर उसके बराबर पहुच गये। एक बार एक पिछडी संस्कृति का उन्नत संस्कृति से सम्बन्ध स्थापित होने पर, वह अन्य प्रभावो के कारण उन्नत संस्कृति से आगे निकल सकती है। रोम में ऐसा ही हुआ।

सांस्कृतिक दर को प्रभावित करने वाले कारण

सामाजिक सगठन संस्कृति की वृद्धि और विशेषकर राज्य के विकास में सामाजिक सगठन का बडा हाथ होता है। यदि सरकार भली भांति सगठित है, शांति और सुरक्षा विद्यमान है, तो ऐसी अवस्था शिल्प, कला व्यापार और उद्योग की उन्नति के लिए अनुकूल है। इसका परिणाम आविष्कारों की वृद्धि होता है।

युद्ध का परिणाम दोहरा होता है। एक ओर युद्ध आविष्कारो को प्रोत्साहित करते हैं, दूसरी ओर विजित प्रदेशो के शासन के लिए कुशल और कार्यक्षम सरकार की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, विजित प्रदेशों से प्राप्त हरजाने और लूट का विजेता देश अपने देश में उत्पादक पूंजी के रूप में प्रयोग कर सकते हैं। भारत में अंग्रेजी राज्य की कहानी इस तथ्य पर अच्छा प्रकाश डालती है कि किस प्रकार शुरू में भारत से हथियाई पूंजी ने अंग्रेजों उद्योगो की नींव रखने में योगदान दिया। इसके विपरीत युद्ध किसी समाज को अन्तत या पूर्णत विशृंखल, विगठित, छिन्न भिन्न एव क्लान्त कर सकता है। इस तरह युद्ध एक क्षेत्र में संस्कृति के विकास में सहायता और दूसरे क्षेत्र में बाधा उपस्थित करते हैं। इससे स्पष्ट है कि किसी भी राष्ट्र का सामाजिक सगठन सभी दिशाओ में बहुत दूर तक उसके समाज की प्रगति को नियन्त्रित और निर्धारित करता है।

भौगोलिक स्थिति संस्कृति की वृद्धि और विकास पर भौगोलिक स्थिति का भी प्रबल प्रभाव पडता है। भूमध्यसागर के पूर्वीय छोर के निकट के प्रदेशों, एशिया माइनर, सिंधु, गगा यमुना और यांगसीक्यांग के काठे में सभ्यता के प्रारम्भिक विकास पर भौगोलिक स्थिति का प्रभाव स्पष्टत अंकित है। नील दजला, फरात, सिंधु गगा, यांगसीक्यांग नदियों में पर्याप्त दूरी तक नावें चलाई जा सकती थीं। ऐजियन सागर के द्वीपों का परस्पर अन्तर और थल से उनकी दूरी भी अधिक न थी। इसके अतिरिक्त, वहां की भूमि उर्वरा और जलवायु समशीतोष्ण था। ऐसी स्थिति में इन प्रदेशों में कृषि, पशुपालन और कुटीर-

शिल्प पर आधारित संस्कृति का द्रुत विकास और आविष्कारों को प्रोत्साहन स्वाभाविक था। स्वभावतः एशिया के घोड़े के पालन, उत्तरी ग्रीस के पहिये के आविष्कार, अफ्रीका के ताँबे और लोहे के आविष्कार तथा एशिया-माइनर की वर्णमाला ने भूमध्यसागर के पूर्वीय छोर पर समृद्ध संस्कृति की स्थापना की।

भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में एक बात स्मरणीय है कि इसकी अनुकूलता या प्रतिकूलता भी विद्यमान सांस्कृतिक अवस्था के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। उदाहरण के लिए, बड़ी नौकाओं और जहाजों के आविष्कार के पश्चात् भारतीय प्रायद्वीप संस्कृति के विकास के अधिक अनुकूल होगया और एशिया की संस्कृति का केन्द्रस्थल और व्यापार का प्रमुख संस्थान बन गया।

वाष्पशक्ति और वृहत् मशीनों के आविष्कार के पूर्व उपजाऊ मैदान संस्कृति के विकास के अधिक अनुकूल थे। पर इनके आविष्कार ने वेल्स, स्काटलैण्ड और उत्तरी इंगलैण्ड के कोयले और लोहे की खानों से उजड़े हुए प्रदेश को औद्योगिक विकास का महत्त्वपूर्ण क्षेत्र बना दिया। अमरीका में योरोपियन प्रवासियों के आगमन से पूर्व वहाँ के रेड इंडियन धातुओं और यान्त्रिक शक्ति के ज्ञान के अभाव में प्रकृति द्वारा प्रदत्त अमूल्य और प्रचुर खनिज पदार्थों का उपयोग करने में सर्वथा असमर्थ थे और आर्थिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़े हुए थे। प्रवासियों ने आकर उनका उपभोग किया और एक समृद्ध अमेरिकन संस्कृति का निर्माण किया।

नस्ल और संस्कृति एक समय कुछ विद्वानों ने नस्ल के आधार पर संस्कृति की प्रगति को समझाने का प्रयत्न किया था। पर हमें यह न भूलना चाहिए कि इतिहास में कभी किसी तो कभी किसी क्षेत्र ने संस्कृति की दौड़ में नेतृत्व किया है। नेतृत्व के इस परिवर्तन में स्थिति प्राकृतिक साधन, प्रसार की सम्भावनाएं यातायात की अवस्था, भौतिक संस्कृति का प्रभाव प्रमुख कारण हैं। अतः हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि संस्कृतियों की प्रगति के अन्तर में नस्ल कारण नहीं है।

आधुनिक सभ्यता में परिवर्तन की दर

भविष्य में परिवर्तन की क्या सम्भावित दर होगी? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। कुछ लोग आज के युग को परिवर्तन का युग मानते हैं। उनके इस कथ्य से कुछ ऐसा भाव झलकता है कि आज से पूर्व की संस्कृति शायद अगतिशील थी। इस सम्बन्ध में इतना कहना ही पर्याप्त है कि किसी भी काल और किसी भी समाज की संस्कृति कभी भी अगतिशील नहीं रही है। अन्तर केवल इतना है कि प्राचीन काल की तुलना में आधुनिक युग में संस्कृति के परिवर्तन की गति बहुत ही तीव्र हो गई है। वास्तव में पिछले कई हजार वर्षों में कभी भी कोई

अगतिशील समाज नहीं रहा है। यदि अगतिशीलता का अर्थ मनुष्य के जीवन-काल में परिवर्तन का न होना मान लिया जाय, तो जब तक लेखनकला का उदय नहीं हुआ था और मनुष्य की स्मृति ही ज्ञान के संरक्षण का एकमात्र साधन थी, ऐतिहासिक प्रयोजन की दृष्टि से समाज को अगतिशील ही कहा जा सकता था। किन्तु आज तो मनुष्य के जीवन-काल में ही विपुल यान्त्रिक और सामाजिक परिवर्तन घटित हो जाते हैं। यहाँ तक कहा जाता है कि अनेक बार तो पिता और पुत्र ही एक-दूसरे की भाषा और विचार नहीं समझ पाते।

भौतिक आविष्कार द्रुत-परिवर्तन का एक कारण संस्कृति के परिवर्तन में यान्त्रिक या अन्य आविष्कारों तथा पूर्व विद्यमान आविष्कारों का प्रसार प्रधान कारण है। आज के किसी भी देश में यान्त्रिक आविष्कार की प्रगति मन्द होती दिखाई नहीं देती। इसका अनुमान पेटेण्टों तथा नई-नई वस्तुओं के निर्माण की बढ़ती संख्या से लगाया जा सकता है। यद्यपि प्रत्येक पेटेण्ट नया आविष्कार नहीं कहा जा सकता, फिर भी उसे हम गौण आविष्कार कह सकते हैं। यह ठीक है कि महत्त्वपूर्ण आविष्कारों की प्रगति की दर में परिवर्तन हो सकते हैं, पर इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि विद्यमान नये आविष्कार स्वयं ही सामाजिक परिवर्तनों को उत्पन्न करने के लिए पर्याप्त हैं।

जहाँ तक अभौतिक संस्कृति के परिवर्तनों को मापने का सम्बन्ध है हमारे पास पेटेण्ट जैसा कोई मापदण्ड नहीं है। अतः अभौतिक संस्कृति के परिवर्तनों की भविष्योक्ति एक कठिन काम है। फिर भी इतना कहा जा सकता है कि अनेक भौतिक आविष्कार ही स्वयं सामाजिक आविष्कारों के लिए उत्तरदायी हैं। उदाहरणार्थ, बड़ी मशीनों ने मजदूरों के मुआवजे के कानून को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त, एक सामाजिक आविष्कार जो कि स्वयं यान्त्रिक आविष्कार का परिणाम नहीं है, अन्य सामाजिक आविष्कारों के लिए उत्तरदायी होता है, जैसे संयुक्त पूंजी की कम्पनियों ने सीमित दायित्व को जन्म दिया है।

प्रसार (Diffusion) और परिवर्तन की दर यातायात और संवाद-वहन के साधनों द्वारा आविष्कार एक स्थान से दूसरे स्थान को संक्रमित (Transmit) होते हैं। एक देश से दूसरे देश में प्रसार वहाँ पर प्रगति की दर को बढ़ाता है। पर अधिक प्रसार का एक दूसरा परिणाम भी हो सकता है वह यह कि विभिन्न क्षेत्रों में सांस्कृतिक विभेद बहुत कुछ मिट जायें और इस भाँति एक सामान्य सार्वभौम संस्कृति का निर्माण हो सके। जहाँ तक संस्कृति एक-दूसरे के समान होगी, उनसे उद्भूत आविष्कार भी प्रायः समान ही होंगे। ऐसी स्थिति में आविष्कारों की तेज दर की संभावना की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त, कुछ अन्य बातें भी कुछ अंशों में आविष्कारों को प्रभावित

करती है। विशाल प्रयोगशालाए, विशेषज्ञ वैज्ञानिक, सरकारी सहायता और प्रोत्साहन भी आविष्कार की दर को प्रभावित करते है।

निरन्तर द्रुत परिवर्तन की सम्भावना क्या मानव की आविष्कारो की क्षुधा कभी शान्त न होगी ? यह एक मनोरजक पहेली है। कुछ व्यक्तियो का कहना है कि मनुष्य अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लगभग समस्त ही अपेक्षित वस्तुए प्राप्त कर चुका है। कुछ लोग यही बात शायद अशोक के भारत में भी कह सकते थे। सत्य यह है कि मनुष्य की आवश्यकताए निःसीम है, उनका वैचित्र्य और परिमाण आंका नही जा सकता। एक आवश्यकता के पूर्ण होते ही एक अन्य नई आवश्यकता आ जन्मती है। एक लेखक का तो यहा तक कहना है कि अभी भी मानवता को कम-से-कम १,५०० आविष्कारो की तो बहुत ही जरूरत है। हम इतना ही कह सकते हैं कि विद्यमान सस्कृति के रुकने के कोई चिह्न नजर नही आ रहे हैं। इसके विपरीत, भविष्य में उसके तीव्रतर होने की ही अधिक सम्भावना है।

बारहवां अध्याय

सांस्कृतिक परिवर्तन में बाधाएं

OBSTACLES TO CULTURE CHANGE

संस्कृति में अपरिवर्तन के कारण सांस्कृतिक विकास के कारणों को समझना जितना आवश्यक है, उसके अपरिवर्तन या अल्प और मन्द परिवर्तन के कारणों का अध्ययन भी उससे कम महत्वपूर्ण नहीं है। यों तो प्रत्येक संस्कृति में अल्पाधिक परिवर्तन होते ही रहते हैं। मुख्य प्रश्न उनकी गति का है।

आज के युग में तेजी से परिवर्तन घट रहे हैं। यहाँ तक कि उन्हें लेकर ही विभिन्न देशों में अनुदार पुराणपंथी सुधारक और क्रान्तिकारी राजनीतिज्ञ बन गए हैं। इनमें से एक वर्ग तो सामाजिक परिवर्तन की गति को रोक कर रखना चाहता है और दूसरा वर्ग उसकी तीव्रता का समर्थक है। प्रगति के इस प्रतिरोध की प्रक्रिया का अध्ययन समाजशास्त्र के विद्यार्थियों के लिए विशेष महत्व रखता है।

सांस्कृतिक विकास के मार्ग में दो प्रधान बाधाएं हैं सापेक्षतया आविष्कारों का अभाव और समूह द्वारा उन्हें अपनाने की अनिच्छा। इन दोनों कारणों पर हम क्रमशः विचार करेंगे।

आविष्कारों (Inventions) का अभाव

आज भी आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से दूर कुछ ऐसे द्वीप और दुर्गम पर्वत प्रदेश हैं जहां के निवासी आज भी उसी भाँति रहते हैं, जिस भाँति वह आज से तीन सौ या चार सौ साल पहले रहते थे। आखिर इसका क्या कारण है? आविष्कारों की कमी ही इसका उचित उत्तर है। अन्य संस्कृतियों के आविष्कार भी प्रसार द्वारा वहां नहीं पहुंच सके।

आविष्कारों के लिए आवश्यक चीजें आविष्कार एक कठिन कार्य है। किसी भी आविष्कार के लिए तीन चीजों का विद्यमान होना परम आवश्यक है। पहला आविष्कार के लिए आवश्यक तत्त्वों का ज्ञान और उपस्थिति, दूसरा, आविष्कार की माँग और तीसरा, आविष्कार करने की मानसिक क्षमता।

१ आविष्कार के लिए आवश्यक तत्त्वों का ज्ञान और उपस्थिति एक आविष्कार विद्यमान सांस्कृतिक ज्ञान का एक नया संयोग है। उदाहरणार्थ *विद्यमान मैगनट, तार डकनियों और विद्युत् धारा के ज्ञान के नये संयोग से ही टेलीफोन का* आविष्कार संभव हो सका। प्रायः नए आविष्कार का श्रेय किसी एक व्यक्ति को दिया जाता है, *पर वास्तव में एक आविष्कार के पीछे अनेक आविष्कारों का योग-*

दान छिपा रहता है। आज जापान में एक आरण्यक कबीले की तुलना में अत्यधिक आविष्कार होते हैं। इसका प्रधान कारण जापानी संस्कृति की विपुल सांस्कृतिक तैयारी है जब कि आरण्यक संस्कृतियों में उसका अत्यन्त अभाव है। इसीलिए आरण्यक संस्कृतियों में बहुत कम आविष्कार होते हैं। सांस्कृतिक तैयारी की कमी सांस्कृतिक विकास के मार्ग में एक बड़ी बाधा है।

मध्य युग की तुलना में आज आविष्कारों का अनुपात असाधारण रूप से बढ़ गया है। कुछ लोग इसका कारण मानसिक क्षमता की वृद्धि मानते हैं। जहां तक आनुवंशिक मानसिक योग्यता का प्रश्न है, वह तो मध्य युग की तुलना में आज भी ज्यों की त्यों ही है। हां, यदि हम उसमें शिक्षा द्वारा अर्जित योग्यता को भी सम्मिलित करें तो यह दूसरी बात है। शिक्षा द्वारा अर्जित योग्यता तो स्वयं सांस्कृतिक वृद्धि का परिणाम है। अतः आज अधिक आविष्कारों का कारण न तो मनुष्य की अधिक मानसिक योग्यता ही है और न ही उसकी अधिक आवश्यकताएं वरन् उसकी अधिक सांस्कृतिक तैयारी है।

२ *आविष्कारों की मांग* मानवीय आवश्यकताएं ही आविष्कारों के विकास को प्रभावित नहीं करतीं बल्कि उनमें संस्कृति विशेष के सामाजिक मूल्यांकन, धारणाओं और रुचियों का भी बड़ा हाथ होता है। उदाहरणार्थ, मनीपुर के आदिवासियों में नृत्य का बहुत महत्त्व है परिणामतः, वहां विविध प्रकार के नृत्यों का आविष्कार हुआ। गृह्य सूत्रकालीन भारतवासियों को कर्मकाण्ड बहुत प्रिय था, अतः उन्होंने अनेक प्रकार के याज्ञिक क्रिया-कलापों को जन्म दिया। स्पार्टावासी बहुत युद्धप्रिय थे अतः वहां युद्ध के शस्त्रों के आविष्कार को विशेष प्रोत्साहन मिला। यह तथ्य केवल आविष्कारों पर ही नहीं प्रत्युत शिक्षा पर भी लागू होता है। मध्य काल में शिक्षा का उद्देश्य प्रायः पुरोहित बनना होता था। धर्म का प्रभाव उसके लिए उत्तरदायी था। आज हमारे आकर्षण का केन्द्र भौतिक और सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन हो गया है। सामाजिक मूल्यांकन में परिवर्तन ही इसका प्रधान कारण है।

किसी वस्तु की केवल मांग होने से ही वह निर्मित नहीं हो जाती। प्राचीन काल में रोगों और प्राकृतिक विपदाओं से सुरक्षा की मांग आजसे कहीं अधिक प्रबल थी, फिर भी प्राचीन लोग इनके उपचार की दिशा में अधिक कुछ न कर सके। अपर्याप्त सांस्कृतिक तैयारी इसका मुख्य कारण थी। आज यद्यपि रोगों और प्राकृतिक विपदाओं का भय कम हो गया है, फिर भी इस दिशा में निरन्तर आविष्कार होते जा रहे हैं। इसका श्रेय आज की असाधारण सांस्कृतिक तैयारी को ही है।

इसके विपरीत जहां सांस्कृतिक तत्त्वों की अधिकता हो, वहां आविष्कारों

के उदय में माग प्रमुख कारण ह। उदाहरणार्थ, हवाईजहाज के आगमन ने कोहरे में सकट से सुरक्षा की माग की। परिणामस्वरूप, इस दिशा में पच्चीस नये आविष्कार प्रस्तुत किए गए। आज हमारे पास इतना अधिक वैज्ञानिक ज्ञान ह कि विभिन्न सस्कृति विभागों में माग का परिवनन, विभाग विशेष में विपुल परिवर्तन ला सकता है। अत किसी एक विभाग में आविष्कारों का अभाव, अशत उस विभाग के प्रति उपेक्षापूर्ण सामाजिक मूल्यावन के कारण होता ह।

३ मानसिक योग्यता नि सन्देह आविष्कार के लिए पर्याप्त मानसिक योग्यता की आवश्यकता है। पर ऐडिसन कहा करता था कि आविष्कारो में प्रतिभा से अधिक कठोर श्रम की आवश्यकता पडती है। यह भी द्रष्टव्य ह कि हमारे अनेक आविष्कार, जैसे कि दो पत्थरों से टकराकर आग निकालना, केवल आकस्मिक घटना के परिणाम ह। यही नहीं, आज भी प्रयोगशालाओं में बहुत स अप्रत्याशित आविष्कार अकस्मात् हो जाते है।

साधारण जनता की यह धारणा ह कि आवश्यक मानसिक क्षमता होने स किसी भी समय किसी भी वस्तु का आविष्कार किया जा सकता है। यह बात सच हो सकती थी, यदि मानसिक योग्यता कोई अपरिमित पदार्थ होती। किन्तु मानसिक योग्यता की यह धारणा, विशेषत निश्चित सांस्कृतिक अवस्थाओं में, सही नही है। वास्तव में आविष्कारों के उद्गम में मानसिक योग्यता को अनुचित महत्व दे दिया गया ह।

इस सम्बन्ध में जन्मजात मानसिक योग्यता और अर्जित योग्यता में भेद करना आवश्यक ह। ऐसा माना जाता ह कि कुछ व्यक्तियों में अन्य व्यक्तियो की तुलना में अधिक मानसिक योग्यता होती ह। व्यक्तियों की जन्मजात आविष्कार करने की क्षमता को हम एक वक्ररेखा (Curve) द्वारा प्रदर्शित कर सकते ह, जो कि घटीनुमा (Bell-Shaped) बनेगी। यदि ऊपर के आधे भाग के लोगा को आविष्कार करने योग्य माना जाय, तो आज भारतवर्ष में लगभग १३ करोड व्यक्ति आविष्कार करने की क्षमता रखते हैं। यदि एक प्रतिशत लोगों को भी आविष्कार करने की सामथ्य से युक्त मान लिया जाय तब भी भावी आविष्कारों की सख्या ३ लाख ६० हजार बैठती ह। बावजूद इसके हमारे यहां कुछ सौ ही व्यक्ति ऐसे हैं, जिन्हें आविष्कारक कहा जा सकता ह।

इसका एक प्रधान कारण यह है कि समाज उन समस्त व्यक्तियों का, जिनमें आविष्कार करने की क्षमता है आवश्यक शिक्षा और सुविधाए प्रदान नहीं करता, अथवा यदि उन्ह शिक्षा भी प्राप्त है, वह उन्हें आविष्कार करने के लिए प्रोत्साहन नहीं देता। अत किसी भी समाज में आविष्कारों के अभाव का कारण जन्मजात मानसिक योग्यता की कमी न होकर आविष्कारों के प्रति उपेक्षा है। जब कि

जन्मजात योग्यता हमें प्राप्त है, उसे उचित शिक्षा और अभ्यास द्वारा उन्नत किया जा सकता है।

भारत और स्विट्जरलैंड के लोग एक ही नस्ल के है, उनकी जन्मजात मानसिक योग्यता समान है। फिर भी दोनों देशों में प्रति व्यक्ति आविष्कार की दर में अपार अन्तर है। उसका कारण भारत में आविष्कार करने की योग्यता रखने वाले व्यक्तियों की आवश्यक शिक्षा के प्रति उपेक्षा अथवा आविष्कार के लिए अन्य आवश्यक सहायक तत्वों का अभाव ही कहा जा सकता है।

स्वीकार्य (Acceptable) आविष्कार करने में कठिनाई

आविष्कार निर्माण की अवस्थाएं किसी वस्तु का आविष्कार एक दीर्घ प्रक्रिया है। ओग्बर्न और गिल्फिलैन ने एक आविष्कार के निर्माण में छः अवस्थाएं गिनाई हैं। पहली, आविष्कार का विचार अस्पष्ट या स्पष्ट रूप में आविष्कर्ता के मन में उठता है। दूसरी, उस विचार को विकसित किया जाता है। तीसरी उसके सिद्धांत को समझाने के लिए एक रेखाचित्र या माडल बनाया जाता है। बहुत-से आविष्कार इस अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाते। मैसूर राज्य में एक पुराना हस्त लिखित ग्रंथ प्राप्त हुआ है जो सम्भवतः सत्रहवीं शती का है। इसमें वायुयान के रेखाचित्र बने हुए हैं। इससे सिद्ध होता है कि उसका लेखक आविष्कार की तीसरी अवस्था तक तो पहुंच गया पर अन्य आवश्यक ज्ञान के अभाव में वह अपने विचार को कार्यान्वित न कर सका। चौथी आविष्कार को प्रयोगशाला में कार्य करने योग्य बना दिया जाता है। पांचवीं उसमें और सुधार किए जाते हैं ताकि कोई उसे खरीद सके। उपभोक्ता द्वारा अपनाए जाने के लिए यांत्रिक आविष्कार के टिकाऊपन, सरलता, सुरक्षा, मितव्ययिता और मरम्मत होने की सुविधाएं आवश्यक हैं। छठी, एक बार उपभोक्ता द्वारा आविष्कार के स्वीकार किए जाने पर भी, उसको अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने के लिए उसमें कुछ समय तक निरंतर सुधार होते रहते हैं।

बहुत से आविष्कारों को उपर्युक्त समस्त अवस्थाओं में से गुजरने की जरूरत नहीं पड़ती। फिर भी व्यवहारतः सभी आविष्कारों में उनके उपयोग द्वारा निरंतर कुछ-न-कुछ सुधार होते रहते हैं। सामाजिक आविष्कारों को भी इस क्रम की आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि उनकी उपयोगिता के प्रदर्शन के लिए सामाजिक स्वीकृति की आवश्यकता पड़ती है। बालिग मताधिकार अपनाने से वह ही एक सामाजिक आविष्कार बन गया।

किसी भी यांत्रिक आविष्कार की स्वीकृति के लिए उसकी उपयोगिता का प्रदर्शन जरूरी हो जाता है। उन देशों में जहां कि अविकसित आविष्कारों के पेटेंट कराने की सुविधा है सैकड़ों ऐसे विचार पेटेंट किए जाते हैं जो कि कभी कार्यान्वित

नहीं हो पाते। १९२७ में लकडी के बुरादे से चीनी बनाने का आविष्कार हुआ। आज उसका नाम भी सुनने में नहीं आता। आविष्कारों की तेज मृत्यु-दर का कारण उनकी प्रारम्भिक कमियां ही नहीं, वरन् उनके श्रेष्ठ और सस्ते स्थानापन्न भी होते हैं।

आविष्कारो की स्वीकृति में बाधाएं

भौतिक अभौतिक दोनों आविष्कारों का विरोध

आविष्कार हो जाने के बाद भी लोग उन्हें सदैव एकदम नहीं अपना लेते। पास्तुर ने जब सर्वप्रथम कीटाणुओं से रोगों के फैलने के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया तो लोगों ने उसे पागल कहा। हार्वी ने जब रक्त सचार का विचार अपने समकालीन चिकित्सकों के सम्मुख रखा तो चिकित्सक वर्ग ने उसका प्रबल विरोध किया। एडवर्ड प्रथम के राज्य में कोयले का जलाना निषिद्ध कर दिया गया और एक नागरिक को इस आज्ञा के उल्लंघन के अपराध में फांसी दी गयी। रेल, मोटर और टेलीग्राफ जैसी उपयोगी वस्तुओं तक का प्रारम्भ में प्रबल विरोध हुआ।

सामाजिक आविष्कारों का विरोध सर्वज्ञात है। हमारे यहां सत्याग्रह के सामाजिक आविष्कार का पहले पहल लोगों ने पर्याप्त विरोध किया। जमींदारी उन्मूलन व हिन्दू कोड के विरुद्ध किए जाने वाले आन्दोलन भी इसी कोटि में आते हैं। इंगलैंड में स्त्रियों के मताधिकार के विरुद्ध सौ साल से अधिक आन्दोलन चला। कारखानों में मजदूरों के काम करने के घंटे और उन पर नियन्त्रण करने के कानून बनाने में पचास वर्ष से अधिक लग गए।

यह एक विचित्र विडम्बना है कि मानव के लिए वरदान कुछ मान्त्रिक और सामाजिक आविष्कारों का प्रारम्भ में प्रबलतम विरोध हुआ है। यहां तक कि उनको लेकर भीषणतम रक्तपात तक हुआ है। रोग के कीटाणुओं का सिद्धान्त, श्रम बचाने वाली मशीनें, रेलें, आय-कर, स्त्री-मताधिकार, बालश्रम का निषेध, दासता और जमींदारी का उन्मूलन, प्रतिनिध्यात्मक शासन और प्रजातन्त्र—यह सब ऐसे ही आविष्कार थे।

परिवर्तन के प्रतिरोध की प्रवृत्ति का अध्ययन हमें विशिष्ट सामाजिक समस्याओं को भली भांति समझने में पर्याप्त सहायता प्रदान कर सकता है। अतः उन प्रतिरोधों का संक्षिप्त विवेचन उपयोगी होगा।

प्रारम्भिक कमियों के प्रति असहिष्णुता अधिकांश आविष्कारों में प्रारम्भ में पर्याप्त कमियां होती हैं। बहुत बार वह बार-बार बिगड जाते हैं, अथवा उनकी सरलता से मरम्मत नहीं हो सकती अथवा वह अपना कार्य बहुत सुचारु रूप से सम्पन्न नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, आधुनिक सिनेमा चित्र शुरू शुरू में बहुत ही भाड़े और भद्दे थे। अधिकांश कमियों को शीघ्र ही दूर किया जा सकता है, यदि

जनता का रुख उनके प्रति सहानुभूतिपूर्ण हो, यह थोड़ा सब्र करे और उचित आर्थिक सहायता प्रदान करने को उद्यत हो। दूसरे शब्दों में, सांस्कृतिक आविष्कारों के प्रति यदि लोग अधिक सहिष्णु हों तो परिवर्तन की गति को, अधिक तीव्र किया जा सकता है।

समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले आविष्कारों का विरोध

संस्कृति के कुछ अंश एक या दूसरे से इतने घनिष्ठतया सम्बन्धित होते हैं कि एक आविष्कार यदि उसके एक भाग को प्रभावित करता है तो अन्य भाग भी अनिवार्यतः उससे प्रभावित होते हैं। यह बात यान्त्रिक और सामाजिक दोनों ही आविष्कारों पर समान रूप से लागू होती है। यदि आज रेलों की रफ्तार में असाधारण वृद्धि कर दी जाय तो, उसके लिए सिगनलों के बीच के अन्तर, ब्रेकों की शक्ति, घुमावों की परिधि ऊंचाई मोड़ों के कोणों, पुलों के खम्भों आदि सभी में आमूल-चूल परिवर्तन करना होगा। इसी भांति स्त्रियों के कारखानों खानों, दुकानों और दफ्तरों में काम करने का प्रभाव बच्चों, नौकरों, स्कूलों, पति-पत्नी के सम्बन्धों, रीति-रिवाजों, सामाजिक जीवन, मनोरंजन स्त्री शिक्षा विवाह और स्त्री शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण आदि अनेक बातों पर पड़ेगा। एक रिवाज और सामाजिक संगठन का बदलना रेल की रफ्तार बढ़ाने से आसान काम नहीं है। आधुनिक तुर्की के निर्माता कमाल अतातुर्क का वहां रीति रिवाजों लिपि और विवाह संस्था को बदलने का कार्य किसी उत्पादन के साधनों के विराट परिवर्तन से कम महत्त्वपूर्ण न था।

यह उदाहरण दूसरे सांस्कृतिक क्षेत्र से किसी आविष्कार को अपनाने की कठिनाइयों की ओर भी संकेत करता है। एक पिछड़ी हुई संस्कृति में किसी उन्नत संस्कृति के एक आविष्कार का आयात अनेक कठिनाइयों को जन्म देता है जब कि, मिलती-जुलती संस्कृतियों से कुछ ग्रहण करने में यह कठिनाई उपस्थित नहीं होती इस विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आविष्कार की सहज स्वीकृति के लिए आवश्यक है कि वह विद्यमान सामाजिक व्यवस्था में कम-से-कम असंतुलन या व्याघात उत्पन्न करे।

स्थानापन्न (Substitutes) अपनाने की कठिनाई

नई रीतियों की तुलना में पुरानी रीतियों का पालन अधिक सुगम होता है। इसीलिए प्रत्येक संस्कृति में पुरानी रीतियों के जीवित रहने की प्रवृत्ति विद्यमान रहती है। यह अवशिष्टता (Survival) प्रायः हमारी सांस्कृतिक जड़ता की सूचक है। किंतु यह ध्यान देने योग्य है कि सभी अवशिष्टताएं बिल्कुल निरर्थक नहीं होतीं। उदाहरणार्थ, आधुनिक युग में भले ही अधिकांश पढ़े-लिखे हिंदुओं के लिए धार्मिक दृष्टि से होली और दिवाली के त्यौहार का कोई महत्त्व न रहा हो पर आज भी

यह त्योहार ऋतुओं के परिवतन के पश्चात् आनन्द, मनोरंजन, मेल मिलाप, सम्मिलित खान पान की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। और यही कारण है कि वह अब तक हमारे साथ है। इसके अतिरिक्त, सांस्कृतिक आविष्कार केवल एक ही नही अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

आर्थिक लागत (Economic Cost)

किसी भी आविष्कार को सफल और लोकप्रिय बनाने के लिए उसके प्रति विद्यमान अन्धविश्वास या अज्ञान को दूर करने में धन की आवश्यकता पडती है। यदि किसी आविष्कार के प्रयोग की प्रति इकाई लागत इतनी है कि उसे उपभोक्ता से वसूल किया जा सके और उस पर कुछ लाभ उठाया जा सके, तो उसको अपनाना सुगम हो जाता है। बहुत-से उपयोगी और आवश्यक आविष्कार इसीलिए उपयोग में नही लाये जा सकते कि उनकी लागत नही निकल पाती। इसके विपरीत वह आविष्कार जिनसे शीघ्र ही अधिक लाभ की आशा होती है, शीघ्र अपना लिए जाते हैं। यहा यह तथ्य स्मरणीय है कि लागत कोई स्थिर चीज नहीं है। अनेक अवस्थाओं में आविष्कार का अधिकाधिक प्रयोग ही लागत को घटा सकता है।

अज्ञान

अज्ञान प्रगति और परिवतन का सबसे बडा शत्रु है। प्रारम्भ में लोग लोहे के हल को अपनाने में हिचकते थे। उनकी धारणा थी कि लोहा भूमि और बीज को हानि पहुँचायेगा। यान्त्रिक आविष्कारों के प्रति सदेह का सीधा सरल उत्तर परीक्षण हैं। किन्तु सामाजिक आविष्कारों के सम्बन्ध में प्रयोगशाला का परीक्षण सभव नहीं है। प्रादेशिक या पेशेवर प्रतिनिधित्व, अथवा कौन प्रणाली प्रजातन्त्र के विकास और स्थिर शासन के लिए अधिक उत्तम है यह ऐसे प्रश्न हैं, जिनका कोई निर्विवाद उत्तर नही दिया जा सकता। किन्तु जब व्यक्तिगत बस-सर्विसों के स्वामी यह कहते हैं कि सरकारी बस-सर्विस उनकी तुलना में अक्षम और अमितव्ययी सिद्ध होगी तो उसमें उनका वर्गीय स्वार्थ निहित होने के कारण, उनके वक्तव्य पर सरलता से विश्वास नही किया जा सकता।

सामाजिक परिवतन का प्रतिरोध और मानव स्वभाव

एक देश के लोग जब दूसरे देशों में जाकर स्थायी रूप से बस जाते हैं वह अपने मूल देश के खान पान और वेश भूषा को त्याग उपनिवेश के रीति रिवाज ग्रहण नही कर पाते। पुरानी पडी आदतों या स्वभाव से ही इस तथ्य को समझाया जा सकता है। इस तरह आदत से ही किसी आदत की कैफियत दी जा सकती है।

बूढ़ों की अनुदारता बच्चों और वयस्कों की तुलना में बूढ़े सदैव ही अधिक अनुदार होते हैं। बच्चे बहुत शीघ्रता और सुगमता से नई आदतें और नई

रीतियां सीख जाते ह, क्योंकि उनकी कोई पुरानी पक्की आदतें नहीं होती, जिन्हें वदलने में उन्हें विशेष कष्ट या कठिनाई अनुभव हो। यही कारण है कि अनुदार रूसी किसानों के वह बच्चे, जिन्हें सोवियत सरकार ने अपनी शिशु शालाओं और स्कूलों में पाला और शिक्षा दी अपने पूवजों की आदतों से प्राय मुक्त होगये।

मानव का स्वभाव पूव अनुभव के आधार पर एक व्यक्ति अपने जीवन-दर्शन का निर्माण करता है, जिसे वह परिवर्तित परिस्थितियों में शीघ्र ही नहीं वदलता। सामाजिक दशन एक मानसिक जीवन-काल की आदतें है। बूढ़ों के विचार प्राय अनेक वष पूव निर्मित धारणाएं होती हैं, जो कि समाज में परिवतन होने के वावजूद, परिवर्तित नहीं हुई होती। विभिन्न सामाजिक प्रश्नों पर युवकों और वूढ़ों द्वारा लिए गये मत इस तथ्य की पुष्टि करते हं। बूढ़ों के राजनतिक दलों के चुनाव म भी यही अनुदारता दिखाई देती ह। यही नहीं दल विशेष के साथ बंधे रहने में भी वृद्ध व्यक्ति अधिक अनुदार होते हैं जब कि युवक राजनतिक दलों को वदलने में विशेष झिझक नहीं दिखाते। आयु बढने के साथ साथ व्यक्तियों की धारणाएं अधिकाधिक जड होती हैं। स्ट्रांग ने मनुष्यों के मानसिक अध्ययन से यह परिणाम निकाला कि १५ से २५ वष की आयु की तुलना में २५ से ६५ की आयु में पसन्द, नापसन्द, रुचियां और आकांक्षाएं वहुत कम वदलती हैं।

परिवर्तन के विरुद्ध धारणाएं

कुछ व्यक्ति परिवतन और क्रांति के पक्ष में हो सकते ह जब कि कुछ अपरिवर्तन और विद्यमान व्यवस्था के। फिर भी सैद्धान्तिक रूप से यह कहा जा सकता ह कि सामान्य मनुष्य में परिवतन की तुलना में सुरक्षा की चाह अधिक प्रवल हैं। कुछ ऐसी भावनात्मक धारणाएं ह जो कि परिवतन के विरुद्ध ह जिनमें से निम्न प्रमुख हैं।

नवीनता का भय किसी नये यान्त्रिक आविष्कार या सामाजिक नीति के पारिणाम के वारे में आशंका व भय, नये साधनों और नीतियों के अपनाने में वहुत वाधक होते ह। पर परिवर्तन के प्रति व्यक्तियों की यह धारणा संस्कृति के समस्त विभागों के लिए एक समान नहीं होती। उदाहरणार्थ, हमारे यहां लोग धम की तुलना में शिक्षा के क्षेत्र में नये परीक्षण के लिए अधिक तैयार ह। फैशन के सम्बन्ध में तो, यह तैयारी, उत्साह और लत का रूप धारण कर चुकी ह।

अतीत की पूजा अतीत के प्रति श्रद्धा का भाव सामाजिक प्रगति के मार्ग में एक अन्य वाधा ह। पुरानी परम्पराओं और संस्थाओं के प्रति हम सम्मान की भावनाओं के सूत्रों से वंधे रहते ह, जिन्हें हम सरलता से छिन्न भिन्न करना पसंद नहीं करते। हमारे जीवन और विचारों पर स्पष्टत अतीत की छाप रहती है। युद्ध, मन्दी अथवा क्रान्ति के समय में अतीत के यह वन्धन अवश्य ढीले हो जाते

ह । और प्रत्येक नया परिवार जो एक सास्कृतिक वातावरण पैदा करता है, किसी प्रकार कम महत्त्व नही रखता। निमकौफ के अनुसार परिवार समतान या नि सतान, या अकेले पति पत्नी की एक अल्पाधिक स्थायी समिति है।'

परिवार का महत्त्व समस्त मानव-वर्गों में परिवार वग अनेक अर्थों में सर्वाधिक महत्वपूण है। अपनी प्रारम्भिक इकाई पिता माता स बच्चा अपनी शारीरिक विरासत प्राप्त करता है, अर्थात् दुबल या स्वस्थ मानसिक और भौतिक शरीर प्राप्त करता ह। स्वस्थ शरीर और मन के साथ ज मना सबस बडा वरदान है। अस्वस्थ ज मना एक बडा अभिशाप है।

परिवार एक शिक्षण सस्था परिवार में बच्चा सामाजिक उत्तरदायित्व का अथ क्षमा का महत्त्व और सहयोग की आवश्यकता का सीखता ह। परिवार एक विशिष्ट प्रारम्भिक सस्था ह, इसमें बच्चा अपने जीवन की मौलिक धारणाए नमूने, आदश, शली और साचे बनाता ह।

नये परिवार का निर्माण

जब बच्चा प्रौढ हो जाता ह वह अपने परिवार-वग को छोड एक दूसर परिवार की बुनियाद रखता ह। अपने माता पिता की इच्छा या अपनी मर्जी से, समझदारी से या बेवकूफी या जल्दबाजी से, वह अपनी भावी सतान के लिए एक भावी मा का चुनाव करता है। इसी प्रकार एक तरुण युवती अपन भावी बच्चों के लिए जिन्हें वि वह जन सकती ह, पिता के रूप में एक नवयुवक का चुनाव करती है।

विवाह सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने का साधन सामा यत लोग सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाने के रूप में विवाह का महत्त्व नही समझते। बोसार्ड ने उन विभिन्न तरीको का जिक्र किया है जिनके द्वारा ऐसा होता ह। उदाहरण के लिए (१) विवाह व्यक्ति को अपने पितृ-परिवार में उच्च पद प्रदान करता ह, (२) यह उसक पेश और काम में उसके पद को उन्नत करता है, (३) यह समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढाता है (४) यह उसे अपनी मित्र-मडली में प्रतिष्ठा प्रदान करता है, (५) यह उसे जीवन की समस्याओ के सम्ब ध में नई रोशनी देता है।

परिवार में व्यक्तिगत विकास—समूह परिवर्तन की प्रक्रिया

दो विभि न पारिवारिक वर्गों की कृति दो युवा-युवति विवाह की सामाजिक रीति द्वारा अपने पारिवारिक समूह की स्थापना करते है। उनकी धारणाए बदलती हैं क्योकि अब वह एक गरजिम्मेदार बेटा या बेटी जि होने कभी माता पिता के शासन के प्रति बगावत की थी, एक जिम्मेदार माता पिता का जि ह अपन बच्चों को शिक्षित और अनुशासित करना है काय करते ह। इस भांति पारिवारिक समूह टूटते हैं नये स्थापित होते ह और व्यक्तिगत विकास और समूह परिवतन की

प्रक्रिया जारी रहती है।

गिलक का पारिवारिक चक्र

गिलक तथा अन्य विद्वानों ने पाश्चात्य देशों में पारिवारिक परिवर्तन की प्रक्रिया को तीन भागों में विभक्त किया है। सबसे पहले विवाह और पहला बच्चा पैदा होने के बीच की अवधि आती है। यह आधारभूत समीकरण (Adjustment) की अवधि है, जिसमें कि प्रत्येक साथी एक दूसरे से अत्यधिक प्रेम करता है। दूसरी अवस्था बच्चा जनने और पालने की है जब कि मा घर के कामों में फंस जाती है और पति के ऊपर अतिरिक्त आर्थिक भार आ पड़ता है। पति पत्नी का प्रेम, माता और पिता के प्रेम में परिवर्तित हो जाता है, तथा दोनों का बच्चों के प्रति प्रेम बढ़ जाता है, यद्यपि पहला पति-पत्नी प्रेम भी जारी रहता है। तीसरी अवस्था तब आती है जब बच्चे बड़े हो जाते हैं, विवाहित हो जाते हैं और घर छोड़ देते हैं। पति-पत्नी के पास एक दूसरे का ध्यान करने के लिए पर्याप्त समय रहता है। स्नेह परिपक्व हो जाता है। पूर्ववर्णित विश्लेषण में हमने सतुलित प्रकार के विवाह की विवेचना की है।

बोसाड का पारिवारिक अंत क्रिया का नियम

यह देखने में आता है कि परिवार में प्रत्येक व्यक्ति की वृद्धि से "व्यक्तियों की संख्या समानान्तर वृद्धिक्रम (Arithmetical Progression) में बढ़ती है, जब कि व्यक्तिगत अन्तःसम्बन्धों की संख्या त्रिकोणात्मक संख्याओं के क्रम (Triangular Progression) में बढ़ती है। इस बात को हम ऐसे भी कह सकते हैं कि परिवार में एक सदस्य की वृद्धि होने से, व्यक्तिगत अन्तःसम्बन्ध पूर्वस्थित अन्तःसम्बन्धों से संख्या में उतने ही अधिक हो जाते हैं जितना कि वृद्धि से पहले परिवार में सदस्यों की संख्या थी। यह तो स्पष्ट है कि दो संख्या में व्यक्तिगत सम्बन्ध का केवल एक ही सेट होगा। अब यदि सदस्यों की संख्या दो से तीन हो जाय, तो उपयुक्त सिद्धांत के अनुसार, उनके व्यक्तिगत सम्बन्धों के सेट की संख्या तीन हो जायगी। यदि सदस्य संख्या चार हो जाय तो हम देखेंगे कि व्यक्तिगत अन्तःसम्बन्धों के सेट की संख्या छः हो जायगी और आगे चलें, तो पांच सदस्यों के हो जाने पर इस तरह के सम्बन्धों के दस सेट हो जायेंगे।

इस नियम की समाजशास्त्रीय महत्ता को अभी तक पूरी तरह नहीं समझा गया है। किन्तु इसके विभिन्न पहलू हैं। इनमें सबसे मुख्य यह है कि परिवार के सदस्यों की संख्या में वृद्धि अंत क्रियाओं में असाधारण वृद्धि कर देती है। इसके विपरीत, परिवार समूह से एक के बाद एक सदस्य का हटना अन्तःक्रियाओं की प्रक्रिया को बहुत कम कर देता है।

परिवार का उद्गम उद्देश्य और विकास

पशु जगत में परिवार

परिवार की सस्था, उसकी समस्याओं और महत्व को समझने के लिए उसके पूर्व इतिहास पर दृष्टि डालना जरूरी है। उच्च प्रकार के पृष्ठवंशी पशुओं (Vertebrates) में हमें परिवार के मौलिक रूप के दर्शन होते हैं। अपृष्ठवंशियों (Invertebrates) में—अधिकांश मछलियों और रेंगनेवाले जानवरों में वात्सल्य का कोई चिह्न नहीं पाया जाता। पृष्ठवंशियों में माता पिता द्वारा बच्चे के पालन-पोषण के कुछ उदाहरण अवश्य मिलते हैं। पशु जगत् में कछुओं ने पारिवारिक जीवन की शुरुआत की। चिड़ियों में वात्सल्य पर्याप्त विकसित हुआ है। यहां नर मादा मिलकर घोंसला बनाते हैं। जब नर भोजन लाता है, मादा अंडा सेती है। बच्चा पैदा होने पर दोनों उसकी रक्षा करते हैं। वे उसे उड़ना सिखाते हैं और जब तक बच्चा अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो जाता, वह अपनी जिम्मेदारी से छुटकारा नहीं पाते। कुछ चिड़िया के जोड़े जीवन भर एक साथ रहते पाये गये हैं। स्तनधारियों (Mammals) में बच्चे अपनी माता पर अत्यधिक आश्रित हैं। पशुओं में नर-मादा का सम्बन्ध अधिकांशतः गर्भाधान ऋतु तक सीमित रहता है। शिपान्जी और गौरिल्ला परिवारों में रहते हैं। उसमें से बहुत से मिलकर एक बलिष्ठ नर के नेतृत्व में एक झुंड बना लेते हैं। बन्दरों और बबूनों के रेवड़ परिवारों से मिलकर बने होते हैं।

परिवार के उद्गम के कारण

कामचार (Promiscuity) से परिवार की उत्पत्ति पिछली सदी के समाजशास्त्रियों की कल्पना थी कि मानव समाज में पहले स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों के कोई नियम न थे। पुरुष और स्त्रियां इच्छानुसार जिससे चाहें उसके साथ समागम कर सकते थे। स्त्रियां सारे पुरुष समाज की सामूहिक उपभोग की वस्तु थीं। इस अवस्था को उन्होंने कामचार स्वच्छन्द उपभोग (Hetairism) यूथ विवाह या सामूहिक विवाह का नाम दिया है।

मकलीनान, बखोफन और मॉर्गन इस कल्पना के मुख्य समर्थक थे। कामचार के विषय में एकमत होते हुए भी, उससे विवाह की उत्पत्ति कैसे हुई इस पर इनमें तीव्र मतभेद था। मकलीनान के मत में पुरुष के मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि वह अपनी वैयक्तिक स्त्री रखे। अपने समाज में यह सम्भव न देख वह दूसरी जातियों से जबर्दस्ती स्त्रियां भगाकर लाने लगा। बैखोफन के अनुसार स्त्रियां पुरुषों की इस स्वच्छन्दता से ऊब उठीं और उनकी बगावत स्वरूप परिवार की स्थापना हुई।

उक्त तीनों ही विद्वान् प्रारम्भिक अवस्था में स्त्रियों की प्रभुता या मातसत्ता

(Matriarchy) मानते थे। उनका कहना था कि कामचार की अवस्था में बच्चे के पिता का ठीक-ठीक बता सकना सम्भव नही था, अत उस समय परिवार का केन्द्र मां होती थी और वही परिवार की मुखिया और शासक थी। इस मातृसत्ता का प्रबल प्रमाण यह था कि अनेक जातिया और वशो में कुल क्रम और सम्पत्ति का बटवारा पुरुषो द्वारा न होकर स्त्रियो द्वारा होता था। उदाहरणार्थ, मालाबार में आज भी अनेक जातियो में पिता के मरने पर उसका लड़का सम्पत्ति का उत्तराधिकारी न होकर उसकी बहिन या लडकी होती ह। त्रावणकोर के राजघराने में भी यही परिपाटी प्रचलित हैं।

मातृ क्रम (Matrilineal Descent) कामचार का प्रमाण नहीं प्राचीन *काल में कामचार सिद्ध करने के लिए जो प्रमाण दिये जाते ह, व सब जाच कसौटी* पर खरे नही उतरते। वह अधिकाश में गलत तथ्या और भ्रान्त सूचनाओ पर आधारित ह। कामचार समर्थको का सबस प्रबल प्रमाण मातृवशानुक्रम (Mother Right) है। उनका कहना है कि यह व्यवस्था तभी प्रचलित हो सकती ह जब बच्चा के पिता का निश्चित ज्ञान न हो। बच्चों के पिता का निश्चित ज्ञान न होने का अर्थ हुआ कि वहां कोई परिवार नही ह। किन्तु डा० हार्टलैण्ड ने ऐसी बहुत सी जातियो के उदाहरण दिए ह जहा पितृत्व (Paternity के बिल्कुल निश्चित होने पर भी मातृवशानुक्रम चलता है। इसके अतिरिक्त हम यह देखते ह कि जिन जातियो में कन्या के साथ शादी कर उसे अपने घर नही लाया जाता बल्कि पति उसके घर में बस जाता है वहा सवत्र मातवशानुक्रम की प्रथा प्रचलित ह। मालाबार की कई जातिया में शादी के बाद पत्नी अपने पिता के यहा रहती ह अत वहाँ बहन के लड़के से ही वंश का चलना स्वाभाविक ह।

बच्चों के दीर्घ सरक्षण की आवश्यकता से परिवार का उद्गम कामचार का प्रबल खण्डन डार्विन आदि वैज्ञानिको ने प्राणि शास्त्र की दृष्टि से किया ह। प्राणि वर्ग में अधिक विकास के साथ सन्ताना की सख्या घटती जाती है और उनके पूर्ण विकास की अवधि बहुत बढ़ जाती है। मछली लाखा अण्डे देती ह। सूर्य की गर्मी से वे पक जाते हैं और मछली के बच्चे एकदम तैरने और अपना भोजन ढूढ़ने लगते हैं। बन्दर या मनुष्य के बच्चे बहुत थोडी सख्या में पैदा होते ह और उनके पूर्ण-विकास में बहुत साल लग जाते हैं। यदि उस समय तक उन्हें माता पिता का सरक्षण न मिले तो वह नष्ट हो जाय। इस पालन-पोषण की आवश्यकता सन्तान रक्षा और वात्सल्य की भावना में ही परिवार का उद्गम छिपा हुआ है। सन्तानोत्पत्ति की इच्छा और गर्भिणी माता और उसकी सतान की रक्षा की भावना ने परिवार की आवश्यकता को जन्म दिया। इसके वशीभूत स्त्री-पुरुष परिवार बना कर रहने लगे। यद्यपि इन परिवारा का उद्देश्य मूलत एक ही था पर परिस्थिति रुचि और

विश्वास भेद से इसके विभिन्न स्वरूप हुए, इसके निर्माण के विभिन्न कायदे और कानून गढ़े गये।

मातृनामी और पितृनामी परिवार

जिन स्थानों में पति पत्नी के घर जाकर रहने लगा वहां पर बच्चे माता के कुल का नाम ग्रहण करने लगे। दक्षिण मालाबार की कुछ जातियां, उत्तरी अमरीका के रेड इण्डियन तथा अन्य कई आदिम जातियों में हमें मातृनामी प्रथा के उदाहरण मिलते हैं। जिन परिवारों में पत्नी पति के घर जाकर रहती है वहां प्राय बच्चे पिता के कुल का नाम ग्रहण करते हैं। पिता को ही सम्पत्ति विभाजन का अधिकार प्राप्त होता है। संसार की अधिकांश जातियों में पितृनामी परिवार प्रथा ही प्रचलित है।

पितृनामी और मातृनामी परिवार तथा पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक परिवार में भेद करना आवश्यक है। जब कि पितृनामी और मातृनामी शब्द में कुल के नाम का प्रयोजन मुख्य है पितृसत्तात्मक और मातृसत्तात्मक शब्द पिता-माता का पारस्परिक नियन्त्रण शक्ति या प्रभुता के द्योतक हैं।

विवाहों के भेद

परिवार बसाने की भावना ने विवाह—स्त्री-पुरुष के लम्बे समय तक साथ साथ रहने की आवश्यकता का जन्म दिया। पर इस साथ-साथ रहने ने विभिन्न रूप धारण किए। किन्हा समाजों में एक पुरुष एक स्त्री से ही सतुष्ट हो गया कहीं पर एक पुरुष ने एक से अधिक स्त्रियां रख परिवार का निर्माण किया, कहीं पर कई पुरुषों ने मिलकर एक साझी स्त्री रख ली। इन विभिन्न रीतियों को क्रमश एक विवाह (Monogamy), बहुभार्यता (Polygyny) और बहुभर्तृता (Polyandry) कहते हैं।

संसार के कुछ भागों में बहुभर्तृता चिर काल से प्रचलित है। बहुभर्तृता विवाह का वह रूप है जिसमें एक स्त्री के एक समय में एक से अधिक पति होते हैं। बहुभर्तृता के भी दो प्रकार हैं। जब एक स्त्री के विभिन्न पति आपस में भाई भाई होते हैं तब उसे भ्रातृक-बहुभर्तृता (Fraternal Polyandry) कहते हैं जब विभिन्न पतियों में ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं होता तब उसे मातृसत्ताक बहुभर्तृता कहते हैं। तिब्बत और भारत के कुछ भागों में यह प्रथा प्रचलित है। सामान्यत यह प्रथा बहुत विरल है और विशिष्ट और कठोर परिस्थितियों में ही पाई जाती है।

भारतवर्ष में इस प्रथा के कुछ प्राचीन, एवं अर्वाचीन उदाहरण मिलते हैं। किन्तु इसका प्रचलन बहुत कम है। हमारे समाज में इस प्रथा को निन्दनीय एवं

बुरा ममझा गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में इसका निषेध किया गया ह। प्राचीन काल में न्मका सबसे बडा उन्दाहरण द्रौपदी का ह। महाभारत के अध्ययन से स्पष्ट ह कि उम समय के सभी लोगा ने इमे पाप और पाडवा के चरित्र पर एक बडा धब्बा ममझा था। वास्तव में हमारे यहा कुछ अपवादो को छोडकर, बहुभत ता शायद कभी भी प्रचल्ति नही रही। वतमान काल में दक्षिण भारत में मालाबार के नायग, नीलगिरि के टोडो तथा कुरुम्बा में यह प्रथा प्रचलित ह। उत्तर भारत में बहुभतृ ता अधिकतर हिमालय क प्रदेशों में है। उत्तरप्रदेश में देहरादून जिले के जौनमार वावर में इस प्रथा का खूब प्रचलन है। बहुत-से भाइयो की एक पत्नी होती है। कई बार एक परिवार में कई साझी स्त्रिया होती ह। पजाब के पहाडी हिस्सों, कागडा जिले के स्पीली लाहौर परगनो, चम्बा, कुल तथा मण्डी के ऊचे प्रदेशा में कानेतो और नीची जातिया में यह प्रथा विद्यमान है। मार्टिन ने मध्य भारत के ओरावा में इस प्रथा के कुछ चिन्ह पाये हैं।

बहुभत ता प्रचलित होने के कारण जनसख्या में पुरुषा की तुलना में स्त्रियों की कमी और निर्धनता बहुभतृ ता के मुख्य कारण हैं। इसमें आर्थिक कारण ही प्रबल है। पहाडों में कृषि के योग्य भूमि बहुत कम है आजीविका के अन्य कुछ साधन भी नहीं ह। एक पुरुष के लिए एक स्त्री का भार उठाना और उसकी सतान का पालन पोषण सभव नही होता। इसलिए कई व्यक्ति मिलकर एक साझी पत्नी कर लेते हैं। इससे एक और भी लाभ होता ह कि भाइया में सम्पत्ति विभक्त नहीं हो पाती।

बहुभायता (Polygyny)

वह विवाह प्रथा जिसमें एक पुरुष की एक से अधिक पत्नियां होती हैं बहुभायता कहलाती ह। बहुभायता दासता की सस्था से घनिष्टतया सम्बन्धित ह। युद्ध म पकडी गई स्त्रिया विजेता की स्त्रियां और रखलिया बना ली जाती ह। रखली एक दूसरे दर्जे की पत्नी है। बहुभायता के अन्दर पत्नी की खरीद भी प्राय प्रचल्ति ह। उदाहरण क लिए एक मुखिया उसी भाति एक दर्जन औरतें खरीदता ह जिस भांति वह अन्य कोई व्यक्तिगत सामान खरीदेगा। किन्ही-किन्ही अवस्थाओं में एक पुरुष की स्त्रियो की सख्या सकडो तक पहुच जाती है।

बहुभायता तब तक विकसित नहीं हुई जब तक मनुष्य ने पर्याप्त सम्पत्ति सग्रह नही कर ली। अत उन देशा में भी जहां कि बहुभार्यता कानून-सम्मत ह बहुत थोडे धनी लोग ही इसे व्यवहार में लाते ह।

बहुभायता प्रचलित होने के कारण (१) स्त्री पुरुषा की सख्या में विषमता, (२) पुरुषा की विषयासक्ति (३) आर्थिक कारण व सामाजिक प्रतिष्ठा तथा (४) पुत्र की कामना, बहुपत्नीत्व के मुख्य कारण हैं।

१ जिन समाजो में स्त्रियों की सख्या पुरुषो से अधिक हो वहा बहुभायता स्वाभाविक प्रतीत होती है। युद्धों जिनमें कि पुरुष पर्याप्त सख्या में मारे जाते हैं, के बाद प्राय ऐसा होता ह। किन्तु यह कारण अपने-आप में पर्याप्त नहीं ह। बहुभायता अनेक ऐसे समाजो में भी दृष्टिगोचर होती ह जहा पुरुषों की सख्या अधिक है। अत वहा अन्य कारण विशेष महत्त्व रखते हैं।

२ एकविवाह में पुरुष को आवश्यक रूप स कुछ समय तक पत्नी क रजस्वला, गर्भवती व प्रसूता होने पर सयम करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, कुछ पुरुष मधुकर की तरह विभिन्न पुष्पो का पराग ग्रहण करना चाहते हैं। अत नवीनता की लालसा और पुरुष की कामवासना अनुकूल परिस्थिति में बहुभायता को जन्म देती ह।

३ बहुभायता का एक प्रमुख कारण आर्थिक ह। यह उसे बढ़ाना भी ह और कम भी करता ह। जिन समाजो में स्त्री आर्थिक दृष्टि से लाभकर नहीं होती कुछ कमाती नहीं, वहा यह कारण बहुभायता को रोकता ह। गरीब लोग इसीलिए कई विवाहो की छूट रहते भी एक ही विवाह करते हैं। कई समाजो में आर्थिक रूप से सहायक होने के अतिरिक्त, बहुभायता समाज में व्यक्ति की प्रतिष्ठा को बढ़ाती है। थोगा (पुर्तगाली पूर्वी अफ्रीका) के धनी लोग अपना रुपया स्त्रियों में लगाते हैं।

४ बहुभायता का चौथा कारण पुत्र की कामना है। पहली स्त्री क बन्ध्या होने पर, पुरुष स्वयं अथवा कई बार स्त्री की प्रेरणा से सतान के लिए दूसरा विवाह करता है।

बहुभायता के दुष्परिणाम बहुभायता ने प्राय स्त्रियो की स्थिति को गिराने, मानव प्रेम को वासना की बलि-वेदी पर चढ़ाने पारिवारिक कलह को बढ़ाने तथा बच्चों के पालन-पोषण में लापरवाही, माता-पिता और सतान में स्नेह को समाप्त करने में योगदान दिया है। मुस्लिम-कानून में अभी भी बहुभायता जायज है। इसमें अवश्य उसकी सख्या चार तक सीमित करदी गई है। १९५५ क हिन्दू विवाह कानून के अनुसार हिन्दू समाज में अब बहुभायता गर कानूनी हो गई ह।

एक विवाह (Monogamy)

एक पुरुष से एक स्त्री का विवाह पूर्वकाल से अब तक विवाह का मुख्य स्वरूप रहा है। अधिकांश समाजो ने एकपत्नीव्रत के आदर्श और लाभो को स्वीकार किया ह। विभिन्न लेखको और वैज्ञानिक पर्यवेक्षकों ने उसका समर्थन किया ह।

एक विवाह के लाभ

१ बच्चों की बेहतर देख रेख अन्य किसी विवाह प्रथा की तुलना में एक विवाह के अन्तर्गत पति पत्नी दोनों बच्चे के पालन-पोषण में एकाग्रचित्त हो योग

देते हैं। वह दोनों बच्चों पर अधिक ध्यान दे पाते हैं।

२ उच्चतम प्रेम का जन्मदाता एकविवाही परिवार ही उच्चतम प्रेम और भक्ति की सृष्टि करता है। बहुभार्यता के अन्तर्गत पति अनेक पत्नियों और अनेक बच्चों के होने के कारण न तो विभिन्न पत्नियों से ही समान रूप से प्रेम कर पाता है और न ही बच्चों को समुचित प्यार दे पाता है। पत्नियों के बीच ईर्ष्या फलती फूलती है और बच्चे एक दूसरे से पृथक रखे जाते है। एक-विवाह के अन्तर्गत ऐसा नही होता।

३ दृढ़ता और निश्चिततर पारिवारिक बन्धन एक विवाह के अन्तर्गत माता पिता और बच्चों के बीच प्रेम अधिक सुखकर और दृढ़तर होता है। कानूनी और रक्त सम्बन्ध कहीं सरल और कम उलझे, और कम झगड़ो और कलह का कारण होते है। परिणामत, यह कहना सम्भव है कि एकविवाही परिवार प्राय समाज की एकता और सुदृढ़ता में वृद्धि करते है।

४ बच्चों और माता पिता दोनो के जीवनों का संरक्षण एक विवाह केवल बच्चों को ही अधिक सुरक्षित नही करता, अपितु माता पिताओं के जीवन को भी अधिक सुरक्षित करता है। एक विवाह के अन्तर्गत बड़े होने पर बच्चों से मां-बाप की अधिक सेवा की आशा की जा सकती है। बहुभार्या परिवार पिता और बच्चों में स्नेह-वृद्धि का अवसर नहीं देता। बुढ़ापे में बच्चों द्वारा पिता की उपेक्षा होती है।

इस भांति एकविवाह के अनेक और महत्त्वपूर्ण लाभ है। एकविवाह सामाजिक अन्तःक्रियाओं के लिये श्रेष्ठ सुविधाएं प्रदान करता है और अन्य विवाहों की तुलना में स्वस्थ सामाजिक जीवन की स्थापना के लिए अधिक उपयोगी प्रतीत होता है।

वैवाहिक प्रतिबन्ध

जहां विभिन्न समाजों में पति-पत्नी की समस्याओं के सम्बन्ध में कुछ नियम और प्रतिबन्ध है वहां पति-पत्नी के चुनाव के सम्बन्ध में भी कुछ नियम और प्रतिबन्ध हैं, जिनका अध्ययन जरूरी है। जब दो व्यक्ति किन्ही ऐसे दो वर्गों के होते है जिनमें आपस में विवाह नहीं हो सकता तो उसे बहिर्विवाही (Exogamous) समूह कहते हैं। जब दो व्यक्ति किसी ऐसे वर्ग के होते हैं जिनमें आपस में विवाह हो सकता है तो उसे अन्तर्विवाही (Endogamous) समूह कहते है। प्रत्येक समाज में कुछ समूहों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना निषिद्ध तथा कुछ समूहों में ही वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना स्वीकृत होता है।

हिन्दुओं में वैवाहिक प्रतिबन्ध

उदाहरण के लिए अन्य समाजों की भांति हिन्दुओं ने विवाह को नियमित

करने के लिए कुछ नियम बनाये हैं। भाई भी विवाह करते समय इन नियमों का पालन करना पड़ता है। इन नियमों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है

(१) बहिर्विवाही नियम (Exogamous Rules) हिन्दुओं में एक गोत्र और प्रवर वालों में विवाह नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त पिता की सात और माता की पाँच पीढ़ियों से बाहर विवाह करना चाहिये। इस प्रकार हिन्दुओं में अपने गोत्र, प्रवर और पिण्ड से बाहर विवाह करने की प्रथा प्रचलित है।

(२) अन्तर्विवाही नियम (Endogamous Rules) हिन्दुओं में यह नियम है कि वर-वधू का वर्ण (जाति) एक होना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण विवाह करना चाहे तो यह आवश्यक है कि एक ब्राह्मण वर्ण की कन्या का ही ही पाणिग्रहण करे। अपने वर्ण जाति या वर्ग में विवाह करने का नियम अन्तर्विवाह का नियम कहलाता है।

बहिर्विवाह और अन्तर्विवाह के नियमों के पारस्परिक सम्बन्ध को वृत्तों के उदाहरण से समझाया जा सकता है। ब्राह्मण जाति एक बहुत बड़ा वृत्त है। इसमें विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि अनेक छोटे-छोटे गोत्रों के वृत्त हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपने गोत्र के छोटे वृत्त से बाहर किसी दूसरे गोत्र में शादी करनी पड़ती है किन्तु ऐसा करते हुए, वह ब्राह्मण जाति के विशाल वृत्त की परिधि से बाहर नहीं जा सकता। यही नहीं एक ब्राह्मण हर एक ब्राह्मण से भी विवाह-सम्बन्ध स्थापित नहीं करता। ब्राह्मणों की एक अपनी उपजाति तक ही उसका चुनाव सीमित रहता है।

भिन्नगोत्रता के नियम

हिन्दुओं में जब विवाह की बात होनी शुरू होती है तो सबसे पहले जाति और गोत्र का प्रश्न होता है। अनेक विवाह अन्य सब दृष्टियों से ठीक होते हुए भी गोत्र मिल जाने के कारण नहीं हो पाते। कहीं भिन्न गोत्र होने पर भी विवाह नहीं हो पाता। इसका कारण यह कहा जाता है कि अमुक गोत्रों में परस्पर पटती नहीं। हजारों वर्षों के बाद भी वशिष्ठ और विश्वामित्र के गोत्रों में पुरानी दुश्मनी चली आ रही है। वैर भाव के साथ भिन्नगोत्र वालों का झगड़ा समाप्त नहीं हो जाता। कुछ गोत्रों में परस्पर भाईचारा समझा जाता है। कश्यप और शाण्डिल्य गोत्रों का असित नाम समान होने से दोनों में परस्पर अनुकूलता समझी जाती है। ऐसी स्थिति में इन दोनों में भी विवाह नहीं हो सकता।

गोत्र द्वारा वंशपरम्परा द्योतन का प्रचलित मत और स्वरूप गोत्र और प्रवर के सम्बन्ध में यह विश्वास प्रचलित है कि गोत्र और प्रवर वंशपरम्परा और रक्त सम्बन्ध को सूचित करते हैं। प्रा० हरिदत्त के अनुसार यह कल्पना अत्यधिक विरोधों और असंगतियों से भरी हुई है। वास्तव में गोत्र की उत्पत्ति प्रवर से हुई है। प्रवर प्रारम्भिक काल की याज्ञिक क्रियाओं में पुराने ऋषियों को वरण करने को कहते

ह। प्रत्येक यजमान अपनी सफलता के लिए किसी विशेष ऋषि का आवाहन आवश्यक समझता था। कालान्तर में याज्ञिक कर्मकाण्ड के नियम निश्चित हो जाने पर कौन-सा याज्ञिक सम्प्रदाय किन ऋषियों का नाम पढ़े, यह निश्चित कर दिया गया। इससे स्पष्ट है कि गोत्र का रक्त से कोई सम्बन्ध नही ह। वास्तव में ८वी ७ वी ईस्वी पूर्व ही पहली बार सगोत्र विवाहो के निषेध का नियम प्रचलित हुआ। इससे सगोत्र विवाहो का समरक्त मान उनके निषेध की निरर्थकता भली भाति स्पष्ट है एक गोत्र वालो की सख्या अत्यधिक होने पर गोत्र का नियम अपने आप शिथिल हो जाता है।

सपिण्डता रक्त सम्बन्ध से सयुक्त सम्बन्धियो लिए सपिण्ड शब्द का व्यवहार होता ह। पिता की सात और माता की पाँच पीढियाँ सपिण्ड कहलाती है। मध्यकाल में सपिण्डता बहुत विस्तृत हो गई। इसके अनुसार २१२१ कन्याए अविवाहित होजाती ह। इस सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि आखिर सपिण्ड विवाहो के निषेध का नियम क्यो प्रचलित हुआ? सर्वसाधारण में यह समझा जाता ह कि सपिण्ड विवाहो को रोका जाना चाहिए। भारतीय आयुर्वेद के ही किसी प्राचीन ग्रन्थ में ऐसा प्रमाण नही ह जिसम सपिण्ड विवहो की हानि बताई गयी हो। धर्मशास्त्र भी सपिण्ड विवाह के निषेध में इस कारण का उल्लेख नही करते, और न ही आधुनिक सुप्रजननशास्त्री इसे सदैव हानिकर बताते है।

वस्टरमार्क ने सपिण्ड विवाहो के निषेध का यह यह कारण माना ह कि निकट सम्बन्धियो में परस्पर इकट्ठा रहने के कारण यौन दृष्टि से एक उदासीनता उत्पन्न हो जाती ह। यही उदासीनता सपिण्ड विवाहो के निषेध के रूप में प्रचलित हुई। यदि वैस्टरमार्क की कल्पना मान ली जाय तो यह भी मानना पडेगा कि पति पत्नी के इकट्ठा रहने पर उनकी काम भावना बिल्कुल शान्त हो जाती है। ब्रिफाल्ट और फ्रायड न उपयुक्त धारणा को गलत बताया है। वास्तव में सपिड विवाहो के निषेध का मूल कारण प्राचीनकाल के विशाल सयुक्त परिवार में नतिकता को सुरक्षित बनाये रखने की चिन्ता हो सकती है। प्रो० मलनोवस्की का मत भी इसम मिलता है।

अन्तर्विवाह (Endogamy)

विभिन्न जातियो में बहिर्विवाह की भांति अन्तर्विवाह के विभिन्न नियम हैं। इनका मूल कारण विभिन्न नस्ल, राष्ट्र, वर्ग या धर्म के प्रति श्रेष्ठता व उच्चता की भावना ही कही जा सकती है। उदाहरण के लिए, हिन्दुओ में अपनी जाति, उपजाति और उपवर्ग में ही विवाह किया जाता है और सर्वसाधारण का यह विश्वास ह कि यह व्यवस्था अनादि काल से चली आ रही ह। वास्तव में यह व्यवस्था भारत में लगभग १२वी सदी से ही शुरू हुई है। प्राचीन युग में चारो वर्णों में परस्पर विवाह होते थे अनुलोम और प्रतिलोम उनके दो रूप थे। बाद में अपने वर्ण

में ही विवाह प्रशस्त माना जाने लगा, किन्तु फिर भी उच्च वर्ण के लोग निम्न वर्ण की स्त्रियां ले लेते थे। इस प्रकार के विवाह अनुलोम (Hypergamy) कहलाते थे। १३वीं शती में यह बिल्कुल बन्द हो गये। इस पाबन्दी ने अनेक समस्याओं को जन्म दिया। कुछ तथाकथित कुलीन जातियों में योग्य वर न मिलने के कारण उस जाति की कन्यायें अयोग्य वर के मत्थे मढ़ी जाने लगीं। बंगाल के कुलीन विवाह का इतिहास स्त्रियों के दासत्व की दर्दनाक कहानी है।

अधिकांश हिन्दुओं में आजकल भिन्नजाति या अन्तर्जातीय विवाहों को बड़ी निन्दा की दृष्टि से देखा जाता है। जब स्व० विट्ठलभाई पटेल और डा० भगवान दास ने अन्तर्जातीय विवाहों को वैध ठहराने का प्रस्ताव व्यवस्थापिका सभा के सम्मुख रखा, उसका भारी विरोध किया गया। वास्तव में हिन्दुओं का यह दुराग्रह एक अर्थ में स्वाभाविक था। वर्तमान हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी विशेषता जातिभेद है। यह दो बुनियादों पर खड़ा है—खान-पान और विवाह। रोटी-बेटी का सम्बन्ध इसका मुख्य उद्देश्य है। इन्हें हिला देने पर उसकी नींव ही हिल जायगी। १९५५ के हिन्दू विवाह कानून ने अन्तर्जातीय विवाह को जायज करार दिया है।

अन्वेषकों का कहना है कि अपनी ही जाति या वर्ण में ही विवाह करने का नियम न तो पुराने जमाने में प्रचलित था और न ही धर्मशास्त्रों ने उसे विवाह का अनिवार्य शर्त बताया है। वैदिक और पौराणिक साहित्य में वर्णान्तर विवाहों के बीसियों उदाहरण मिलते हैं। वैदिक काल में चार ही जातियां (वर्ण) थीं, किन्तु कालान्तर में इनकी हजारों उपजातियां बन गयीं। १९०१ की जनगणना रिपोर्ट में २३७८ जातियों का उल्लेख है। निम्न वर्गों की जातियां अपने को निरन्तर ऊंचा उठाने का प्रयत्न कर रही हैं। इन विभिन्न जातियों के वैवाहिक नियमों की कठोरता में कोई कमी नहीं हुई है। लोकाचार में शास्त्र के सवर्ण नियम को उपवर्ण उपजाति और उपजाति के बहुत छोटे छोटे वर्गों तक विस्तीर्ण कर दिया है। उदाहरणार्थ, महाराष्ट्र के ब्राह्मणों में देशस्थ, कोकणस्थ और करहाद तीन भेद हैं। देशस्थों के फिर चार उपभेद हैं। इन चारों में परस्पर विवाह नहीं हो सकता। टाड ने वैश्यों के ८४ कुल गिनाए हैं। इन सबमें परस्पर विवाह नहीं हो सकता। कायस्थ १२ भागों में बंटे हैं और इनमें शादी-ब्याह नहीं होते। जाति भेद का रोग केवल उच्च जातियों तक ही सीमित नहीं। उत्तर भारत के भंगियों में १,२५९ वर्ग हैं जो परस्पर शादी-ब्याह नहीं करते।

अन्तर्विवाहों के दुष्परिणाम

सजातीय विवाह के प्रतिबन्ध से वर-वधू के चुनाव का दायरा बहुत संकुचित हो गया है। कुछ जातियों में पुरुषों की संख्या इतनी कम है कि कन्याओं का विवाह एक समस्या बन गई है। इन लड़कों के माता पिता लड़की वालों की असमर्थता का

पूरा फायदा उठाते ह । दहेज के लिए बडी-बडी रकमें मागते हैं । उस समय कन्या के माता पिता को भारी कर्ज लेना पडता है या ऐसे धनी खूसट वृद्ध के साथ अपनी लडकी का ब्याहना पडता है जो दहेज न मागता हो । इस तरह हर साल लाखो लडकिया लोभी, निर्दय और कामुक व्यक्तियो क हाथ सौप दी जाती ह । सुकुमार कन्या के गले में वृद्ध पति की फासी डाल दी जाती ह और उसे जीवन भर अपने भाग्य पर रोने के लिए छोड दिया जाता है । जो कन्याएं कुछ साहस रखती ह वह स्नेहलता की तरह आत्महत्या कर अपने और अपने माता पिता के कष्टो का अन्त करती ह ।

अन्तर्विवाहो से बाल विवाह की बुराई को भी प्रोत्साहन मिलता है । जाति में लडकियो की कमी के कारण, कई बार युवकों को जबदस्ती कुवारा रहना पडता है । उस दशा में युवक दूसरी स्त्रियो से अनुचित सम्बन्ध रखते हैं । इन युवको के लिए स्त्रिया भगा कर लाई जाती ह और इस तरह समाज में अनाचार की वृद्धि होती ह ।

जब कन्याओ क विवाह करने में इतना कष्ट हो, तो उनका वध और उनकी उपेक्षा स्वाभाविक ह । हिन्दुओ में कन्याओ की जो दुर्दशा ह उसका प्रधान कारण वर ढूढने और उसे सन्तुष्ट करने की कठिनाइया ह । कन्या होते ही घर में जो शोक की लहर दौड जाती ह उसका कारण कन्या के विवाह की चिंता ह । इसके अतिरिक्त विवाह के क्षेत्र में जातिभेद राष्ट्रीय एकता, सगठन और मेल का सबसे बडा दुश्मन ह ।

अन्तर्जातीय (Inter-caste) विवाहों की उपादेयता भारत की विभिन्न जातियो मे एकता और सौहार्द स्थापित करने का अन्तर्जातीय बर्हिविवाह ही एक मात्र प्रभावशाली साधन ह । केवल मौखिक सहानुभति मन्दिर उद्‌घाटन और सहिष्णुता के प्रचार से भारत में एकता नही हो सकती । उस एकता को लाने के लिए उसे रक्त के अविच्छिन्न और दृढ सूत्र से बाधना होगा ।

सन् १९१८ में श्री विट्ठलभाई पटल न हिंदुओ में अन्तर्जातीय विवाहो को वध बनान का एक प्रस्ताव विधानसभा क सम्मुख रखा था । कट्टरपंथियों ने उसका घोर विरोध किया । १९३७ में पुन डा० भगवानदास न इस सम्बन्ध में प्रयत्न किया वह भी निष्फल सिद्ध हुआ । १९५५ के हिन्दू विवाह कानून के अनुसार अब यह जायज हो गए हैं ।

विवाह के प्राचीन और अर्वाचीन रूप

विवाह की विधि के अनुसार विवाहो को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता ह । उदाहरण क लिए, हिन्दुओ में प्राचीन काल से विवाह के अनेक रूप प्रचलित रहे ह । उनमें से अनेक तो विदेशो में प्रचलित विवाहो से मेल मिलते

जुल्ते ह। सामान्यत भारतीय शास्त्रकारा ने विवाहो को ब्राह्म, दैव आर्ष, प्राजापत्य, गान्धर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच नामक आठ श्रेणियो में विभक्त किया है। सुविधा क लिए इन्हें चार मुख्य भदो में बाटा जा सकता ह।

(१) ब्राह्म विवाह जब कन्या या पिता विद्वान् और आचारवान् वर को स्वय बुलाकर अपनी कन्या को वस्त्र तथा आभूषणो से अलकृत कर उस दान दता ह उस ब्राह्म विवाह कहते हैं। दव, आर्ष और प्राजापत्य विवाहो में इससे कोई मौलिक भद नहीं ह।

(२) आसुर विवाह यह विभिन्न देशो में खरीदकर विवाह (Marriage by Purchase) से बहुत मिलता जुलता ह। जब कोई वर कन्या क लिए उसके माता पिता को यथाशक्ति धन देने पर इच्छापूर्वक कन्या को ग्रहण करता है तो उसे आसुर विवाह कहते हैं।

(३) गान्धर्व विवाह आधुनिक पाश्चात्य देशों में यह अत्यन्त लोकप्रिय ह। भारतवर्ष में भी एक जमाने में यह बहुत प्रचलित रहा है, यद्यपि बहुत लोग आज शायद इस पर विश्वास नही करेंगे। गान्धर्व विवाह में कन्या और वर का इच्छापूर्वक सयोग होता है।

(४) राक्षस इस विवाह की विभिन्न असभ्य जातियो में प्रचलित 'बलपूर्वक विवाह' (Marriage by Capture) से तुलना की जा सकती ह। जब कन्या पक्ष के लोगो का हनन करके कन्या के घर की रक्षक दीवार आदि भेद करके रोती और चिल्लाती कन्या को जबदस्ती घर से भगा लिया जाय तो उसे राक्षस-विवाह कहते हैं। राक्षस और पैशाच विवाह में कोई मौलिक भेद नही ह।

उपर्युक्त सभी प्रकार के विवाह विस्तृत अर्थों में समस्त देशो में प्रचलित रहे ह। हमारे यहा अत्यन्त पूज्य एव महात्मा समझे व कहे जान वाले भीष्म पितामह और श्रीकृष्ण आदि महापुरुषों न स्वयं इन्हें किया ह या वरन में सहायता दी है। वास्तव में इनक नाम शास्त्रकारा की पसन्दगी और नापसन्दगी को जाहिर करते हैं। उन्हाने जिन विवाहा को उत्तम समझा उन्हें अच्छा नाम दिया और दूसरा को बुरा। भारतीय विवाह के इतिहासज्ञो का कहना है कि वैदिक युग से लेकर वात्स्यायन के समय तक भारत में आज के पाश्चात्य देशों की तरह युवक-युवती एक-दूसरे का अनुरजन (Courtship) कर विवाह किया करते थे। किन्तु ८ वी शती से बाल विवाह प्रचलित होने और स्त्रियो में शिक्षा का लोप होने क साथ साथ यह समाप्त हो गया और बाद में केवल ब्रह्म, दैव आर्ष और प्राजापत्य विवाह ही बच रहे, जिनमें कन्यादान आवश्यक अग ह।

कन्यादान यह प्रथा स्त्री के गिरते दर्जे की सूचक है। पिता की प्रभुता और नारियों की स्वतन्त्रता का अपहरण कन्यादान के प्रचलित होने के प्रमुख-

कारण थे।

कन्यादान विरोधी आधुनिक प्रवृत्तियां आजकल उसी विवाह को श्रेष्ठ माना जाता ह जिसमें वर-वधू की सम्मति हो। कन्या कोई गौ, वस्त्र या अन्य जड़-पदार्थ नहीं ह, जिसका जड़-वस्तुओं की भांति दान किया जा सके। १८ वीं शती म यूरोप में औद्योगिक क्रांति हुई। मशीनों और उद्योग धन्धों से समाज की बनावट बदलने लगी। संयुक्त परिवार प्रथा टूटने लगी। व्यक्तिवाद (Individualism) का जन्म हुआ। लड़के माता पिता से पृथक हो, आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हो गए। पिता की प्रभुता घटने लगी। विवाह की आयु ऊंची होने लगी। इसलिए योरोप के सभी देशों में वर-वधू की सहमति से होने वाले विवाह अच्छे समझे जाने लगे। भारत में भी वही युग आ रहा है। परिवार का पुराना महत्त्व कम हो रहा है। पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से व्यक्तिवाद, स्वाधीनता और लोकतन्त्र के विचारों के प्रसार से पिता का महत्त्व कम होता जा रहा है। इस प्रकार पिता का अधिकार कम होने तथा बाल-विवाह की प्रवृत्ति कम होने से भविष्य में भारतीय समाज में माता पिता की स्वीकृति के बिना प्रणय विवाहों के अधिक बढ़ने की पूरी सम्भावनाएं ह। नए विवाह कानूनों में इन विवाहों की वैधता को स्वीकार किया गया है।

दाम्पत्य अधिकार और कर्तव्य

विवाह द्वारा पति पत्नी एक सूत्र में आबद्ध हो जाते ह और एक साथ मिल कर गृहकार्यों का संचालन करने लगते ह। इस अवस्था में दोनों के ही एक-दूसरे के प्रति कुछ कर्त्तव्य और अधिकार उत्पन्न हो जाते हैं। प्राचीन काल में कर्त्तव्यों पर अधिक बल दिया गया है, आजकल अधिकारों की जोरदार मांग की जाती ह। विभिन्न देशों और कालों में धार्मिक विश्वासों और आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों ने स्त्री पुरुषों के अधिकारों में परिवर्तन पैदा किया है। कई जातियों में किसी एक को विशेष अधिकार प्राप्त है तो कई देशों में समान अधिकारों का बोल-बाला है।

भारत में दाम्पत्य अधिकार भारतवर्ष में वैदिक युग में पति-पत्नी के अधिकार पर्याप्त समान थे। नव-वधू घर की रानी समझी जाती थी। किन्तु ५ वीं सदी तक उस नौकरानी का दर्जा दिया जाने लगा। यह पतन गुप्तयुग तक पूर्ण हो चुका था। इस पतन के कई कारण थे।

यज्ञीय कर्मकाण्डों में अत्यधिक शुद्धि के विचार से स्त्रियों को धार्मिक यज्ञीय कार्यों से पृथक किया जाना, युद्धों के कारण पुत्रों की कीमत का बढ़ जाना, स्त्री शिक्षा का अभाव और बाल विवाह स्त्रियों की गिरती अवस्था के लिए मुख्यतः उत्तरदायी थे।

दाम्पत्य अधिकारों के सम्बन्ध में निम्न प्रश्न विशेषतः विचारणीय ह

(१) पति का पत्नी को दण्ड देने का अधिकार, (२) दाम्पत्य अधिकारों

की पुन प्राप्ति, (३) व्यभिचार विषयक नियम, (४) सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार।

१ दण्ड देने का अधिकार पति अपनी पत्नी को दो प्रकार से दण्ड दे सकता है—पीटकर या जुर्माना करके। पुराने जमाने में प्राय सभी पितृसत्ताक देशों में पतियों को यह अधिकार प्राप्त था। लोकतन्त्री इंगलैंड में १८९१ तक पति पत्नी को पीट सकता था। १५वीं सदी में जर्मनी में एक कहावत थी 'औरत और गधा दोनों पीटने के लिए होते हैं।" मध्य युग के रूस में वधू का पिता दामाद को एक कोड़ा देता था जो वधू के बिस्तर पर टांगा जाता था। पत्नी को कितना पीटा जाय यह पति की इच्छा पर निर्भर था। हमारे यहां भी कौटिल्य और मनु ने स्त्रियों को दण्ड देने का विधान किया है।

२ दाम्पत्य अधिकारों की पुन प्राप्ति (Restitution of Conjugal Rights) विवाह हो जाने पर पति पत्नी का यह अधिकार है कि वे परस्पर सहवास के सुख का उपभोग करें। उनमें से कोई एक-दूसरे को इस अधिकार से वञ्चित करता है तो वह अधिकार का हनन है। आजकल इस अधिकार की प्राप्ति के लिए स्त्री पुरुष अदालत में दावा दायर कर सकते हैं। यदि कोई पति अपनी पत्नी के विरुद्ध दावा दायर करता है तो स्त्री क्रूरता भयंकर बीमारी और नपुंसकता के कारणों के आधार पर उसके साथ रहने से इन्कार कर सकती है और अदालत द्वारा पति से कानूनी त्याग भी पा सकती है।

३ व्यभिचार विषयक नियम अधिकांश जातियों में विवाहित पति-पत्नी का एक दूसरे को छोड़ पर स्त्री या पर पुरुष से सम्भोग अवैध माना गया है और उसके लिए कठोर दण्डों का विधान किया गया है। इस मामले में भारतीय शास्त्रकारों ने स्त्रियों के प्रति कुछ नरमाई से काम लिया है। इसका मुख्य कारण उनका अबला समझा जाना है। जहां तक दाम्पत्य अधिकारों का सवाल है भारतवर्ष में स्त्रियों के अधिकार पुरुषों के तुल्य हैं, कुछ मामलों में उनके साथ विशेषता भी दिखाई गई है। व्यभिचारिणी होने पर उन्हें दण्ड नहीं दिया गया है और इस दशा में भी पति को आवश्यक रूप से उसका भरण पोषण करना पड़ता है।

४ सम्पत्ति सम्बन्धी अधिकार दाम्पत्य अधिकारों में साम्पत्तिक अधिकार का विशेष महत्व है। वास्तव में किसी परिवार में स्त्री-पुरुष के पद निर्धारण में इस बात का बड़ा हाथ है कि उन्हें सम्पत्ति में क्या और कितने अधिकार प्राप्त हैं। भारतवर्ष में पिता या पति की सम्पत्ति में स्त्री का कोई अधिकार नहीं है। हमारे देश में स्त्रियों की गिरी अवस्था का यह एक बड़ा कारण है। आर्थिक दृष्टि से स्त्रियां पूरी तरह परतन्त्र हैं। यह कारण भी एक अंश में पिता या पति से असन्तुष्ट स्त्री को उनसे पृथक होने से रोकता है। प्रस्तावित हिन्दू उत्तराधिकार

बिल में लडकियो को लडको की भाति तुल्य सम्पत्ति का अधिकार प्रदान किया गया है। जहा एक अथ में स्त्री-पुरुषो के साम्पत्तिक अधिकार देश के कानून से निर्धारित होते है, वहा देश के कानून निर्माण में समाज की विद्यमान अवस्था का प्रबल प्रभाव होता है।

तलाक (Divorce)

पारिवारिक सुख दाम्पत्य जीवन का प्रधान उद्देश्य है। यदि दम्पति किन्ही कारणो से उस सुख को प्राप्त नही कर सकते तो तलाक की अनुमति देकर उन्हें दु खमय जीवन से छुटकारा दिया जा सकता है। अत तलाक वैवाहिक असफलता की घोषणा और नया परिवार बनाने की अनुमति है। अधिकाश समाज और जातियों ने पति पत्नी को तलाक का अधिकार दिया है, यद्यपि उनमें तलाक देने के कारणो में बहुत भिन्नता है। मध्य युग के योरोप में ईसाई मत के प्रभाव के प्रबल होने पर तलाक बन्द हो गया और वहा भी विवाह एक अविच्छेद्य सम्बन्ध समझा जाने लगा। १६वीं सदी की धार्मिक सुधारणा और १८वीं सदी की फ्रेंच राज्य क्रान्ति के बाद योरोपियन देशो में तलाक की प्रवृत्ति बढ़ने लगी। इग्लैण्ड इस विषय में अनुदार था और १८५७ तक वहा पालियामेण्ट के कानून द्वारा ही तलाक प्राप्त किया जा सकता था। इस बिल को पास कराने की प्रक्रिया बडी लम्बी और खर्चीली थी। इसलिए १७१५ से १८५५ तक के १४० वर्षो में केवल १७० व्यक्ति ही पूर्ण विच्छेद की अनुमति प्राप्त करने में सफल हो सके। इस्लाम में विवाह को एक ठेका (Contract) माना गया है और उसमें तलाक की इजाजत है।

हिन्दुओ में तलाक हिन्दुओ में यह आम विश्वास है कि विवाह एक अविच्छेद्य सम्बन्ध है। मृत्यु भी इसे भग नही कर सकती। पर ऐतिहासिक अध्ययन से ज्ञात होता है कि यह धारणा सही नही है। दूसरी सदी तक यहा पुनर्विवाह हो सकता था। किन्तु बाद में हिन्दू समाज में स्त्रियो की दशा गिरती गई और उनसे यह अधिकार छिन गया। वैदिक युग में पति के मर जाने पर पत्नी को दूसरा विवाह करने का अधिकार निश्चित रूप से प्राप्त था। यदि पति-पत्नी का सम्बन्ध अविच्छेद्य है तो पत्नी को यह अधिकार प्राप्त नही होना चाहिए।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में तलाक की विस्तृत चर्चा है। प्रवासजनित परिस्थितियो में विवाह विच्छेद के सम्बन्ध में कौटिल्य ने एक न्यायपूर्ण विधान बनाया है। कौटिल्य यह अच्छी तरह समझता था कि यदि स्त्रियो को कुछ विशेष अवस्थाओं में, जब कि वे अपने पति से वियुक्त हो जाती है पुनर्विवाह का अधिकार न दिया गया तो समाज में अधर्म और व्यभिचार बहुत बढ़ जायगा। कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि नीच, प्रवासी, राजद्रोही घातक, पतित और नपुसक पति स्त्री के लिए त्याज्य है। यह नियम धर्म विवाहो—अर्थात् ब्राह्म, प्राजापत्य, आर्ष

और दैव के ही लिए ह । अन्य विवाहा के लिए यह अधिक उदार है। इन विवाहा में परस्पर द्वेष से ही कौटिल्य मोक्ष, अर्थात् तलाक का अधिकार दता ह । कौटिल्य विवाह को एक ठेका मानता है, जसा कि आजकल पाश्चात्य देशों में माना जाता है ।

मध्य काल में स्त्री की अवस्था साधी के उच्च आदर्श से गिरकर दासी तक पहुच गई । मनु ने तो पत्नी को यहां तक आदेश दिया कि चाहे उसका पति दु शील, पर-स्त्रीगामी व गुणहीन ही क्यो न हो, पत्नी को उसकी देवता के समान पूजा करनी चाहिए । इस तरह धीरे धीरे उच्च वर्गो में तलाक का चलन समाप्त हो गया ।

हि दू-समाज के उच्च वग में शास्त्रो द्वारा तलाक प्रथा का सर्वथा निषेध होने पर भी नीची जातियों में रिवाज के तौर पर तलाक पुराने जमाने से अब तक चला आ रहा ह । बडोदा में सभी जातियो में तलाक की अनुमति ह, किन्तु इसका प्रचलन प्राय नीच जातियो में ही है । आसाम के खासियो में तलाक बहुत आम बात है । नेपाल में एक नेवार औरत अपने पति से असन्तुष्ट होन पर उस किसी भी समय तलाक दे सकती है। अपने प्रस्थान की सूचना के चिह्न क रूप में वह अपने बिस्तर पर दो सुपारिया छोड जाती है । जहा तलाक आसानी से प्राप्त हो जाता ह वहा स्त्रियो को पुनर्विवाह से प्राय नहीं रोका जाता ।

आधुनिक परिवार में व्यक्तित्व का विकास

यौन सुख और सन्तानोत्पत्ति के अतिरिक्त, व्यक्तित्व का विकास भी परिवार का मुख्य काय ह । यह काय दोहरा ह, एक का सम्ब ध पति पत्नी से ह और दूसरे का माता पिता और बच्चो से । पति पत्नी किस भांति आपस में निभाते और माता पिता किस भांति अपने बच्चो के व्यक्तित्व को विकसित करते हैं, इस सम्बन्ध में आजकल बहुत दिलचस्पी बढ़ रही है । इस बात को इस तरह भी व्यक्त किया जा सकता ह कि पति पत्नी का परस्पर सम्बन्ध सुख का सम्बन्ध है जबकि माता पिता और बच्चो का विस्तृततम अर्थो में शिक्षा का । यह वक्तव्य किसी अश तक अवश्य अधूरा है क्योंकि परिवार इनके अतिरिक्त कुछ आर्थिक, सुरक्षा और मनोरञ्जन के कार्यो को भी सम्पादित करता ह । किन्तु यह नि सदेह उस प्रवृत्ति का परिचायक ह जिस ओर हम बढ़ रहे हैं । आज विवाह की समस्याए हैं (१) पति पत्नी को सुखी बनाना (२) बुद्धिमान् माता पिताओ का निर्माण करना जो कि बच्चो को सुखी और स्वास्थ्यकर बचपन प्रदान कर सकें ।

सुखी विवाहों की सख्या

किसी भी समाज के लिए यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ह कि उसमें कितने

परिवार सुखी है। भारतवर्ष में इस सम्बन्ध में कुछ आकडे संग्रह करने का अभी तक कोई प्रयत्न नही किया गया है। विदेशो में अवश्य दाम्पत्य सुख का मापने के प्रयत्न किये गये है। इनसे कुछ मनोरंजक तथ्यो पर प्रकाश पड़ता है। बरजस काटल ने अमरीका के दाम्पत्य जीवन का अध्ययन कर यह बताया कि वहा विवाहितों का पाचवा भाग अत्यन्त दुखी है, जब कि दो तहाई अति सुखी या सुखी है। दूसरा अन्वेषक टरमैन भी लगभग इसी नतीजे पर पहुँचा है। उसने अपने अध्ययन में दो अधिक विशेषण—असाधारण सुखी और असाधारण दुखी—प्रयुक्त किये है। यह दृष्टव्य है कि ३० प्रतिशत दम्पति असाधारण सुखी और १ प्रतिशत असाधारण दुखी हैं। उपयुक्त तथ्य क्या इस बात की ओर संकेत नही करता कि सामान्य स्त्री-पुरुषो के लिए अपने जीवन को सुखी बनाने का विवाह एक उत्तम साधन है ?

वैवाहिक जीवन में विषाद के कारण

सुखी परिवार किसी भी स्वस्थ समाज का आदर्श है। परिवारो को कैसे सुखी बनाया जाय यह एक बड़ी सामाजिक समस्या है। उसका हल ढूंढने से पहले यह बेहतर है कि हम उन कारणो की खोज करें जो कि वैवाहिक जीवन में कडवाहट और दुख की सृष्टि करते है। अमरीका में इस सम्बन्ध में मनोरंजक खोज हुई है। टरमैन ने अपने अध्ययन में उन पैंतीस आम कारणो की एक फहरिस्त तैयार की है जिसकी कि प्राय पति-पत्नी शिकायत करते हैं। इन शिकायतो का पति-पत्नियो के लिए कितना महत्व और गम्भीरता है यह उनके क्रम द्वारा व्यक्त किया गया है।

पत्नियों के प्रति पतियो की शिकायतो का साधारण क्रम यह है—स्नेहशील नहीं, स्वार्थी और लापरवाह, बहुत शिकायत करने वाली, तेज मिजाज, घमण्डी अविश्वसनीय, आलोचक, संकीर्ण हृदय तर्क वितर्क करने वाली बच्चो को बिगाड़ने वाली, आय का नियन्त्रण नहीं करती, सास-श्वसुर-साले-सालिया, अपर्याप्त आय, नर्वस और भावुक, दूसरो से प्रभावित ईर्ष्यालु आलसी मनोरंजनरत बहुत बातून दोस्तो का चुनाव, दूसरे आदमियो में अभिरुचि, स्वतन्त्रता की कमी, परम्पराओ का आदर, बौद्धिक शौक मद्यपान के प्रति धारणा, परपुरुषगामी वफादार नही धार्मिक विश्वास, शिक्षा कसमें खाना, खाने-पीने का स्वाद स्त्री की अधिक उम्र धूम्रपान मद्यपान, कम उम्र।

पतियो के प्रति पत्नियो की शिकायतो का साधारण क्रम है—स्वार्थी और लापरवाह झूठा, तर्क वितर्क करने वाला, बहुत शिकायत करने वाला स्नेहशील नही नर्वस और बेसब्र अविश्वसनीय आय का प्रबन्ध न करने वाला, आलोचक वफादार नही, आलसी, सास-श्वसुर-साले-सालिया दूसरो से प्रभावित संकीर्ण हृदय,

अपर्याप्त आय, दूसरी औरतों में अभिरुचि, मनोरंजन और दिल बहलाव, तेज मिजाज, मदपान के प्रति धारणा, बौद्धिक शौक, परम्पराओं के प्रति आदर, घमंडी दोस्तों का चुनाव, बच्चों को बिगाड़ने वाला, स्वतन्त्रता की कमी, बहुत बातूनी, धार्मिक विश्वास, ईर्ष्यालु, कसम खाता है, मद्यप, शिक्षा, पति की उम्र अधिक, खाने पीने के स्वाद धूम्रपान, उम्र में कम।

उपर्युक्त उत्तर बुनियादी कारणों, जैसे कि व्यक्तित्व की कमी अथवा यौन अतृप्ति के बजाय, अन्तर्हित समस्याओं के अज्ञात लक्षण और अज्ञात व्यक्तियों के बौद्धिक उत्तर हैं। इन शिकायतों की सूची और क्रम देश, काल, सामाजिक वर्ग, पेशे और परम्परा के अनुसार बदलता रहेगा। इसमें से बहुत सी शिकायतें किन्हीं भी दो साथ में रहने वाले व्यक्तियों के सम्मुख उपस्थित हो सकती हैं चाहे वह समलिंगी क्यों न हों। लेकिन विवाह तो नर-नारी की एक साहचर्य-समिति है। अतः विवाह-सम्बन्ध में काम प्रवृत्ति का भी मुख्य स्थान होना चाहिए। जिन लोगों ने तलाक दिये पति पत्नियों का अध्ययन किया है उनका कहना है कि उनके विच्छेद में काम-सम्बन्धी कठिनाइयाँ सवदा या प्रायः सवदा ही कायम रहती हैं।

पशुओं के समान मानव प्राणियों में काम या यौन सम्बन्ध केवल एक शारीरिक प्रतिक्रिया मात्र नहीं जिस पर कि शिक्षा का कोई प्रभाव न हो, प्रत्युत यह काम अनुभव विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक कारणों से नियन्त्रित होता है। यदि विवाह में काम पहलू असफल है, यह असफलता मानसिक और सांस्कृतिक कारणों से हो सकती है जो कि काम प्रवृत्ति की तृप्ति के मार्ग में बाधा पहुँचाते हैं शारीरिक प्रकार के कामविरोध प्रायः विरल ही होते हैं। बरजस और काटल का कहना है कि "अधिकांश दम्पतियों में, काम-तृप्ति प्राणिक तथ्यों का उतना परिणाम नहीं होता जितना कि मनः-प्राणिक (Psychogenetic) विकास और काम के प्रति उनकी धारणाओं के सांस्कृतिक नियन्त्रण का परिणाम होती है।" बहुत कुछ ऐसा ही मत लेवी और हरियट मौरियर का है जो कि विवाह के काम-पहलू को दो व्यक्तियों के व्यक्तित्व के समीकरण का परिणाम मानते हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार, दाम्पत्य सुख में एकमात्र व्यक्तित्व प्रायः सबसे अधिक जटिल पहलू माना जाता है। व्यक्तित्व वास्तव में आदतों का एक जटिल मिश्रण है, जो कि हमें स्वस्थ या सनकी, सतुलित या विकृत बनाता है।

स्त्री दम्पतियों का व्यक्तित्व

व्यक्तित्व एक बहुत विस्तृत और जटिल वस्तु है। फिर भी टरमान ने व्यक्तित्व की उन विशेषताओं को बताने की चेष्टा की है जो वैवाहिक सुख को प्रभावित करती है। उन्होंने अपनी खोजों को संक्षेप में चलती भाषा में व्यक्त किया

है। यद्यपि यह मापा वैज्ञानिक नहीं, फिर भी उससे हमें सुखी और दुखी दम्पतियों के व्यक्तित्व का अच्छा परिचय मिलता है।

सुखी विवाहित स्त्रियां सामान्य रूप में, दूसरों के प्रति दयामय व्यवहार और बदले में दूसरों से दयामय व्यवहार की आशा से पहचानी जाती हैं। वह आसानी से नाराज नहीं होतीं, और इस बात की व्यर्थ चिन्ता नहीं करतीं कि वह दूसरों पर कैसा प्रभाव डालती हैं। वह *सामाजिक सम्बन्धों को प्रतिद्वन्द्वी परिस्थितियां* नहीं समझतीं। वह सहयोगी होती हैं, गौण काम करने में आपत्ति नहीं करतीं, दूसरों की सलाह से खिन्न नहीं उठतीं। लगन और सेवा-प्रवृत्तियां प्रायः उनके व्यवहार में व्यक्त होती हैं। वह उन कार्यों में आनन्द लेती हैं जिनसे कि दूसरों को शिक्षा और मनोरंजन का अवसर मिलता है, तथा पराश्रित और उपेक्षितों के लिए कुछ *करना चाहती हैं। वह अपने काम में नियमबद्ध और मेहनती होती हैं, छोटी छोटी* बातों का ध्यान रखती हैं और रुपए पैसे के मामले में सावधान होती हैं। धर्म, नैतिकता, और राजनीति में वह अपरिवर्तनवादी और परम्पराप्रिय होती हैं। उनकी व्यक्तिगत धारणाओं में आत्म-विश्वास और जीवन के प्रति एक निश्चित आशावादी दृष्टिकोण अन्तर्हित होता है।

दुखी विवाहित स्त्रियां इसके विपरीत भावनाओं के तनाव और मिज़ाज के उतार-चढ़ाव से पहचानी जाती हैं। वह गहरी हीन भावनाओं की साक्षी होती हैं जिनके प्रति उनकी प्रतिक्रिया भीति की न होकर आक्रमणात्मक धारणाओं में होती है। उनकी चिढ़ने और हुक्म देने की प्रवृत्ति होती है। अथक परिश्रम में परिणत क्षतिपूरक प्रक्रिया उनमें आम है। यह चीज दुखी पत्नियों के व्यवहार में आक्रमणात्मक और सामाजिक जीवन में अतिशयता की प्रवृत्ति में दिखाई देती है। यह अपनी परिचिति के क्षेत्र को बढ़ाने में प्रयत्नशील होती हैं किन्तु वह पसन्द होने के बजाय मशहूर होने के लिए अधिक चिंतित होती हैं। वह स्वकेन्द्रित होती हैं और परोपकारी और कल्याणकारी कार्यों में सिर्फ उस स्थिति को छोड़कर जब कि उन्हें व्यक्तिगत प्रशंसा का अवसर मिले, अधिक अभिरुचि नहीं रखतीं। वह ऐसे कार्यों को पसन्द करती हैं जिनमें प्रेम में पड़ने के अवसर मिलते हों। उनका व्यवहार स्त्रियों के प्रति पुरुषों की अपेक्षा अधिक नरम होता है और उनमें वह काम विरोध बहुत कम दिखाई देता है जैसा कि दुखी विवाहित पुरुषों में प्रदर्शित होता है। वह बेसब्र होती हैं, मनमौजी काम करती हैं, सावधान और बातरतीब लोगों को नापसन्द करती हैं और उस तरह के कामों को नापसन्द करती हैं जिनमें तरतीब और मेहनत की जरूरत पड़ती है। राजनीति, धर्म और सामाजिक आचार में वह सुखी विवाहित स्त्रियों की तुलना में अधिक क्रान्तिकारी होती हैं।"

सुखी और दु खी पत्नियो की टरमेन ने उपयु क्त तसवीर खींची है । उसने सुखी और दु खी पतियो के व्यक्तित्व का निम्न वर्णन किया है

सुखी विवाहित पुरुष सम और सतुलित स्वभाव का परिचय देते हैं। दूसरो के प्रति उनकी विशेष प्रतिक्रिया सहयोगी की होती है । यह बात उनके अपने व्यापारिक अधिकारियों के प्रति जिनके साथ कि वह अच्छी तरह काय करते हैं उनके व्यवहार में, स्त्रियो के प्रति उनकी धारणाओ में, जो कि समानतावादी आदर्शों को व्यक्त करती है, तथा अपने से नीचे और उपेक्षितो के प्रति उनके दया मय व्यवहार में प्रतिबिम्बित होती है । लोगों की सभा में वह अनात्म विस्मृत और कुछ बहिर्मु खी से नजर आते हैं । दु खी पतियो की तुलना में वह श्रेष्ठ कार्यप्रवृत्ति, उत्तरदायित्व की अधिक भावना तथा अपने दैनिक कार्य की तफसीलो में अधिक ध्यान देने की लगन दिखाते हैं । वह क्रमबद्ध कार्यविधि और वातरतीब लोगों को पसन्द करते है । रुपए-पसे के मामलो में वह किफायतशार और सावधान होते हैं । अक्रान्तिकारी धारणाएं उनकी खास विशेषताए है । धर्म के प्रति प्राय उनका रुख अच्छा होता है तथा वह यौन नतिकता और अन्य सामाजिक परम्पराओं का दृढ़ता से समर्थन करते हैं ।

"दु खी पति इसके विपरीत सनकी और नर्वस होते हैं । वह सामाजिक हीनता की भावनाओ से ग्रस्त होते हैं जनता में प्रमुख होना नापसन्द करते हैं तथा सामाजिक मत से बहुत प्रभावित होते हैं। सामाजिक अनुरक्षा की इस भावना की क्षतिपूर्ति वह उन सम्बन्धो में जहा वह अपने को श्रेष्ठ अनुभव करते हैं, प्रभुत्व के प्रदर्शन से करते हैं । वह अपने व्यापारिक आश्रितो और स्त्रियो पर हुक्म चलाने में आनन्द लेते हैं, और ऐसी परिस्थिति से हट जाते हैं जहा उन्हे गौण काम करना पडे अथवा श्रेष्ठों से प्रतियोगिता करनी पडे । वह इस हटन की क्षतिपूर्ति दिन के सपनों और शक्ति के हवाई किलों से करते हैं । सुखी पति की तुलना में यह अपने काम करने की आदतो में प्राय अस्त-व्यस्त और अव्यवस्थित होते हैं व्यवस्थित प्रवृत्ति और तफसील को नापसन्द करते हैं, रुपया बचाना नापसन्द करते हैं और बाजी लगाना पसन्द करते हैं । वह प्राय अधार्मिक प्रवृत्तियां व्यक्त करते हैं और यौन सम्बन्धों और राजनीति में क्रान्तिवाद की ओर झुके होते हैं । '

टरमेन का वैवाहिक सुख का सिद्धात

टरमेन ने अपना वैवाहिक सुख का सिद्धान्त इन शब्दों में व्यक्त किया है 'हमारा सिद्धान्त है कि विवाह में जो कुछ आता है वह इस पर निर्भर करता है कि उसमें क्या जाता है, और जाने वाली चीजों में सबसे महत्वपूर्ण चीजें यह धारणाएं पसंदगियां, नापसदगियां आदतें और भावात्मक प्रतिक्रियायें हैं जो कि किसी को अनुकूलता प्रदान करती हैं या उससे वचित करती हैं । दूसरे शब्दों में

हम विश्वास करते है कि बेमेल विवाहों का अधिक अनुपात पति या पत्नी या दोनो में, दुख के प्रति उनकी पूर्वधारणा के कारण हैं। चाहे प्रवृत्ति से, चाहे पोषण से ऐसे व्यक्ति पाए जाते है जिनमें कि अनुकूलता स्थापित करने के गुण का कमी होती है। ऐसे व्यक्ति विवाह में सुख पाने में असमर्थ है। ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो कम विरोधी है जो कि अत्यन्त अनुकूल परिस्थितिया में इसे प्राप्त कर सकते है, और कुछ अन्य व्यक्ति ऐसे हैं जिन्हें, जीवन के प्रति उनकी धारणा और दृष्टिकोण चाहे वह कितने ही प्रतिकूल विवाहित क्यों न हो, उन्हें अत्यन्त दुःख से सुरक्षित रखगा।'

वैवाहिक सफलता या असफलता की पूर्वोक्ति (Prediction)

क्या किसी दम्पति के वैवाहिक भविष्य की पूर्वोक्ति की जा सकती है, यह एक महत्त्वपूर्ण और मनोरंजक प्रश्न है। विदेशों में इसके सम्बन्ध में कुछ गवेषणा हुई। बरजस और लॉक ने "विवाह पूर्वोक्ति अनुसूची का निर्माण किया है। इसमें तीन भागों में विभक्त सत्तावन मदें हैं और स्वास्थ्य, शिक्षा पेशे, धार्मिक विश्वास और काय, अवकाश के काय, विवाह में माता पिता के सुख, वह वग जिसमें विवाह के इच्छुक व्यक्ति निवास करते है बच्चे होने के प्रति उनकी धारणा यौन प्रवृत्ति के सम्बन्ध में सूचनाए रुपये पैसे के मामले में दोनों के विचार, प्रीति का प्रदशन, मित्र, जीवन-दशन, तथा अन्य इक्कीस व्यक्तित्व के गुणों का समावेश है। इस अनुसूची के साथ अंक प्राप्ति के लिए हिदायतें दी हुई होनी है। इसी भाति बरजस और लॉक ने एक "विवाह व्यवस्थापन फार्म" भी दिया है।

विद्वानों का विचार है कि विवाह को सफल बनाने और बिगाड़ने वाले गुण बहुत अशों में व्यक्तियों में विवाह से पहले ही विद्यमान होते हैं। जहां सास श्वसुर साले-साली और जायदाद के झगडे होते है वहा कुछ प्रकार के व्यक्तियों के लिये तो यह बहुत ही विनाशात्मक सिद्ध होते है। अधिकांश अवस्थाओं में तो विवाह से पहले ही बहुत अशों में व्यक्तित्व का निर्माण हो जाता है।

विभिन्न खोजों का विशेष महत्वपूर्ण परिणाम तो यह है कि सुखी परिवार में सुखी बचपन सुखी विवाह के लिए बहुत सहायक है। अधिकांश अन्वेषकों का यह भी मत है कि उच्च शिक्षा विवाह को सुखी बनाने में मदद पहुचाती है। बरजस और काटरल के कथनानुसार सुखी विवाह उन व्यक्तियों में अधिक पाये जाते है जो तरुणावस्था में अधिक सामाजिक रहे हो, जिन्होंने संस्थाओं, गिरजों और स्कूलों के कार्यों में हिस्सा लिया हो, और जिनके बहुत दोस्त हों। माता-पिताओं से स्नेह भी अच्छा चिन्ह माना गया है।

बच्चों का व्यक्तित्व

पति-पत्नी को सुख पहुचाने के अतिरिक्त बच्चो का उत्तम पालन-पोषण भी परिवार का मुख्य उद्देश्य है । कुछ विचारको की राय में तो दूसरा कार्य अधिक महत्वपूर्ण है । वस्तव में यह दोना कार्य एक दूसरे से घनिष्ठतया सम्बन्धित है । एक सुखी पति पत्नी ही बच्चों के पालन-पोषण के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न कर सकते है । इस पर सब एकमत है कि बचपन के प्रारम्भिक वर्षों का व्यक्तित्व के निर्माण में जबदस्त हाथ होता है । बच्चे के यह प्रारम्भिक वर्ष अधिकतर माता पिता, धाय, भाइयों, बहनो और परिवार से सम्बद्ध खेल के साथियों के सम्पर्क में गुजरते हैं । अत पारिवारिक वातावरण एक युवक-युवती के व्यक्तित्व के निर्माण में सबसे अधिक महत्त्व रखता है ।

अच्छा पारिवारिक वातावरण क्या है ?

हम कैसे जान सकते है कि अच्छा पारिवारिक वातावरण कैसा है ? इसका एक सुगम तरीका यह है कि हम सुखी और दुःखी बच्चो की पारिवारिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करें । निःसदेह सुखी परिवार वही है जो कि सुखी बच्चे तयार करता है न कि दूसरा । टरमेन ने अपने अध्ययन में भी यह बात देखी कि सुखी बच्चे प्राय सुखी पति पत्नी सिद्ध होते है । क्योंकि सुख के लिए माता पिता और बच्चो में परस्पर स्नेह सम्बन्ध भी एक अनुकूल कारण है । यह दो तरह से व्यक्त होता है । एक तो माता पिता और बच्चा के बीच मे कोई मौलिक विरोध नही है । दूसरे बच्चे और माता-पिता एक दूसरे के सामने अपना दिल खोलकर रख देते है । एक अन्य अध्ययन के अनुसार बच्चा के लिए एक अच्छा पारिवारिक वातावरण वह है जो कि उन्हें माता पिता के स्नेह और सरक्षण पर आधारित उनकी भावुकता को सतुष्ट करने वाला सम्बन्ध प्रदान करता है । अल्प-सरक्षण और अल्प-स्नेह बच्चे के अन्दर असुरक्षा और हीनता की भावना को जन्म देते हैं और इस तरह कई बार क्षतिपूर्ति के लिए बच्चे को समाज विरोधी कार्यों में प्रवृत्त होने को बाध्य करते है । उदाहरण के लिए एक ही परिवार के दो अपराधी और निरपराधी बच्चा के तुलनात्मक अध्ययन से पता चला कि उनमें से पहला किसी भी कारण से माता पिता के साथ भावात्मक रीति से सतोषजनक सम्बन्ध स्थापित करने में असफल रहा ।

जहा कि माता पिता और बच्चो के बीच स्नेहपूर्ण सम्बन्ध सवथा आवश्यक है वहां उसकी अतिमात्रा बच्चों के लिए अनिष्टकर भी हो सकती है। अति-सरक्षण और अति-लाड़ "बिगड़े बच्चे" पैदा करता है विशेषत जब कि उन्हें अन्य बच्चों से नही मिलने दिया जाता जो कि उन्हें सुधार सकते है । अति-सरक्षिका और अति लाड करने वाली माताओं के अध्ययन से पता चलता है कि उनमें से अधिकांश

अपने बचपन म अल्प-सरक्षित और अल्प स्नेह प्राप्त थी। उनका विद्यमान व्यवहार अपने अभाव की क्षतिपूरक प्रक्रिया थी। वास्तव में एक बार व्यक्तित्व का पल्डा हिल जाने पर मनोवैज्ञानिक सतुलन प्राप्त करना बडा कठिन हो जाता है।

सामान्य अनुशासन निन्दा और स्तुति, स्नेह की भाति व्यक्तित्व के निर्माण के शक्तिशाली हथियार ह। अनक अन्वेषणा से यह प्रकट हुआ ह कि कठोर अनुशासन और अनुशासनहीनता इन दो अतिया के स्थान पर एक अच्छा पारिवारिक वातावरण एक सतुलित अनुशासन प्रदान करता ह। टरमेन ने देखा कि अधिकाश सुखी परिवारो से सम्बद्ध अनुशासन वह है जो 'कठोर नही है पर दृढ' है। कठोर किस्म का अनुशासन अधिनायकतन्त्रीय परिवार और दृढ प्रकार का अनुशासन लोकतन्त्रीय परिवार मे सयुक्त होता ह। वरजस के अन्वेषण बताते हैं कि हीन पारिवारिक अनुशासन जो कि विस्तृत नुक्ताचीनी का रूप धारण करता है तरुण वयस के हीन सतुलन म सम्बद्ध ह। उसक अनुसार, माता पिता की अल्प आलोचना माता पिताओ में नवमपन की कमी, माता पिता और बच्चा के प्राय हृदय उद्घाटन स्नेह का किसी प्रकार शारीरिक प्रदर्शन और सम्मिलित पारिवारिक कार्य अच्छे पारिवारिक वातावरण के मापदण्ड ह।

परिवार का भविष्य

भावी परिवार के बारे म समाजशास्त्रियो वैज्ञानिको और उपन्यास-लखको ने अनेक मनोरजन कल्पनाए की ह। इन कल्पनाओ के अनुसार सुदूर भविष्य में एक ऐसा युग आने वाला ह जब परिवार प्रथा पूर्ण रूप से समाप्त हो जायगी। स्त्री पुरुष इच्छानुसार कामोपभोग करेंगे। गर्भनिरोध (Birth Control) के साधनो के पूर्ण हो जाने से उपभोग में बच्चे उत्पन्न होने की कोई सभावना नही रहेगी और राज्य द्वारा सचालित शिशुशालाओ में शिशु पालन का काय अनुभवी धायों द्वारा सम्पन्न होगा। प्रसिद्ध एल्डस आल्डस हक्सले ने अपने एक उपन्यास 'साहसिक जगत्' में यहा तक उडान ली है कि भविष्य में विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा कि परीक्षण-नलिकाओ म वीर्य और रज को मिलाकर, प्रयोगशालाओ में बच्चे उत्पन्न किए जा सकेंगे। स्त्रियो को प्रसव का कष्ट नहीं उठाना पडेगा।

सक्षेप में, इन कल्पनाओ की अपेक्षा उन ठोस तथ्यो की समीक्षा करना आवश्यक ह जिनके आधार पर ऐसी कल्पनाए की जा रही हैं। पश्चिमी जगत में बडे परिवार की सस्था बहुत कुछ टूट गई ह, क्योंकि आधार के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे ह, राज्य के हस्तक्षेप से माता पिता का काय और महत्त्व कम होता जा रहा है, मुक्त प्रेम (Free Love) क विचार जोर पकड रह हैं। जिनसे ऐसा प्रतीत होता ह कि परिवार सस्था का भविष्य सकट में है।

१८वीं शती की औद्योगिक क्रान्ति ने जिसका कि इंग्लैण्ड में सूत्रपात हुआ और जो वहां से अन्य देशों में फैली, जहां आर्थिक जीवन में एक क्रान्ति उत्पन्न की वहां हमारी पारिवारिक संस्था को भी बुरी तरह प्रभावित किया। निम्न प्रवृत्तियां इसका मुख्य परिणाम थीं।

परिवार का विघटन

१ औद्योगिक क्रान्ति के कारण परिवार के आर्थिक कृत्यों का ह्रास औद्योगिक क्रान्ति से पहले परिवार उत्पादन का मुख्य केन्द्र था। मशीनों के प्रसार ने परिवारों को रोजगार की तलाश में गांवों से निकल शहरी कारखानों में जाने को बाध्य किया। घर से दूर शहरों में रहकर मजदूरों में व्यक्तिवाद की भावनाएं प्रबल हुईं। माता पिता का अनुशासन समाप्त हो गया, विवाह की पुरानी परम्पराओं पर भी धीरे धीरे कुठाराघात होने लगा। उत्पादन के व्यापारीकरण से घर में स्त्री-पुरुष के आर्थिक बन्धन ढीले हो गये। घर में उनकी उपयोगिता घटने लगी।

२ राज्य का हस्तक्षेप और परिवार के शिक्षण कृत्यों का ह्रास औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप राज्य के शासन में अधिक केन्द्रीकरण होने तथा उसके राजस्व के साधन बढ़ जाने और राज्य की जन-कल्याणपरक कल्पना ने शिक्षा को राज्य का दायित्व बना दिया। माता पिता के अपनी जीविका के लिए बाहर रहने और बच्चों के स्कूलों में जाने से माता पिता और बच्चे बहुत थोड़े समय ही एक-दूसरे के सम्पर्क में आने लगे। बच्चों के शिक्षण केन्द्र अब परिवार न रहकर स्कूल कालिज, क्लब सिनेमा और राजनैतिक दल हो गये। अतः अब बच्चों के आचार विचार को गढ़ने में माता पिता का उतना हाथ नहीं रहता जितना कि इन बाह्य संस्थाओं का। पर इसका अर्थ यह नहीं कि बच्चों के व्यक्तित्व के निर्माण में माता पिताओं का बिल्कुल हाथ नहीं रह गया है या नहीं रहेगा। माता पिता का स्नेह बच्चों के पालन-पोषण में एक अमूल्य और अनिवार्य वस्तु है। परिवार में पले और शिशुशालाओं में पले बच्चों के तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट है कि शिशुशालाओं में पले बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में कुछ कमियां रह जाती हैं। माता पिता का स्नेह बाल्यकाल में बच्चों के व्यक्तित्व के समुचित विकास के लिए सदा आवश्यक रहेगा।

संयुक्त परिवार का ह्रास आधुनिक प्रवृत्तियों ने निःसंदेह संयुक्त परिवार प्रथा को जबर्दस्त धक्का पहुंचाया है। पुराने समय में आर्थिक स्वार्थ, प्रव्रजन की सुविधाओं का अभाव और धार्मिक भाई चारे की भावना और विश्वास माता पिता और समस्त भाइयों के परिवारों को एक साथ सम्मिलित रहने में सहयोग देते थे, किन्तु उत्पादन के रूप में घर के विघटन, प्रव्रजन की सुविधाओं और व्यक्तिवादी भावनाओं ने संयुक्त परिवार-संस्था को नष्ट कर दिया और छोटे एकाकी परिवारों

की उपादेयता को हमारे सम्मुख रखा। कृषि के क्षेत्र में अवश्य सयुक्त परिवार सारे परिवार की जमीन को सयुक्त रखने में सहायता प्रदान कर रहे थे। सयुक्त परिवार के विघटन ने जमीन के विभाजन और उपविभाजन को बढा दिया। आधुनिक प्रवृत्तिया सयुक्त परिवार को समाप्त करती जा रही हैं और हम कह सकते हैं कि भविष्य के परिवार एकाकी परिवार होगे।

४ आयोजित मातृत्व सतति निरोध का प्रसार और छोटे परिवार व्यक्तिवादी विचारधारा के प्रसार ने तथा बच्चो की दीर्घकालीन शिक्षा तथा पितृभक्ति की परम्परा के ह्रास ने बच्चा के उत्पादन की आर्थिक उपादेयता को समाप्त कर दिया है। अब बुढापे में लडकों से सेवा की आशा में उन पर रुपया लगाने से बहतर बीमा की पालिसियां खरीदना हो गया है। स्त्रिया के लिए बच्चा जनना एक जहमत और पुरुषो के लिए एक व्यय का बोझा है। गर्भ निरोध के उत्तम साधनों ने यौन-सुख भोगकर भी सन्तति से बचने में सहायता प्रदान की है। सतानो की दृष्टि स भावी परिवारो का झुकाव अवश्य छोटे होने की ओर है। परन्तु इससे हम इस परिणाम पर नही पहुच सकते कि भविष्य में पति पत्नी सतानोत्पत्ति बिल्कुल ही बन्द कर देंगे। सतान प्राप्ति की इच्छा विशेषत स्त्रिया में इतनी प्रबल है कि उसे आसानी से नही रोका जा सकता। अधिकाश पति पत्नी बिना दो-एक स तानो क सुखी नही हो सकते। अत हम कह सकते है कि भविष्य में स्त्री पुरुष अनिच्छित बच्चा का उत्पादन नही करेंगे। पितृत्व और मातृत्व आयोजित होगा। इसमें सन्देह नही कि राज्य की नीति सतान उत्पादन के सम्बन्ध में विशेष प्रभाव डालेगी। जाति-सुरक्षा की भावना और युद्धो का सकट राज्यो को पति पत्नियो द्वारा अधिकाधिक सतान उत्पादन करने के लिए प्रोत्साहित करेगा। इसके लिए राज्य राष्ट्रप्रेम और आर्थिक सहायता दोनो का सहारा लेंगे, जैसा कि आधुनिक जर्मनी और रूस में हुआ है।

५ सुप्रजनित परिवार उपयुक्त विवेचना से हम इस परिणाम पर पहुचते है कि मानव जाति में परिवार सस्था क लोप की कोई सम्भावना नहीं, किंतु भावी परिवार वर्तमान परिवारो से कई बातो में भिन्न होंगे। स्नेह की भूख और बच्चा के पालन-पोषण की आवश्यकता परिवार को एक सर्वव्यापी और स्थायी सस्था बनाने म मौलिक कारण रहे हैं। जब तक परिवार एक वैयक्तिक और धार्मिक सगठन रहा उसमें राज्य का हस्तक्षेप नगण्य रहा, किन्तु भविष्य में राज्य माता पिता के बहुत से कर्तव्यो को अपने ऊपर ले लेगा। राज्य अपनी आवश्यकता नुसार स्वस्थ और सबल नागरिक उत्पन्न करने की दृष्टि से केवल उन्ही लोगो को सतानोत्पत्ति का अधिकार देगा जो गुप्तरोगज रोगो (Venerıl dıseases) से मुक्त हो। राज्य उतने ही नागरिक पैदा करने दे सकता है जितने नागरिक

राज्य द्वारा अच्छी तरह् पाले जा सकें। भविष्य में नैतिक आचार में, बच्चा पैदा होने से पहले के स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को व्यभिचार नहीं समझा जायेगा।

विद्युत् का परिवार पर प्रभाव

वाष्प इंजन का आविष्कार परिवार में अनेक परिवर्तन लाने के लिए उत्तरदायी है। उसने फैक्टरियों की स्थापना कर घर को उद्योग के केन्द्र के रूप में नष्ट कर दिया। किंतु अब विद्युत् पुन शक्ति को घरों में ले जा रही है। कुछ अंशों में यह सत्य होने पर भी अधिकांश उद्योगों को घर में नहीं लौटाया जा सकता। इसके विपरीत, विद्युत् मनोरंजन को व्यापारिक संस्थाओं के हाथों से निकालकर घर में रख सकती है। रेडियो ग्रामोफोन टेलिविजन घर को मनोरंजन का केन्द्र बना सकते हैं।

गतिशील समाज में परिवार

अतीत में परिवार-संगठन प्राय एक ही ढंग का हुआ करता था। किन्तु आजकल विभिन्न प्रकार के परिवार संगठन दिखाई देते हैं। पितृ-, मातृ-, समानतावादी, परम्परावादी, अपरम्परावादी अनेक प्रकार के परिवार नजर आते हैं। ग्राम्य और शहरी परिवारों का अन्तर तो स्पष्ट ही है। विभक्त या संतानहीन परिवार, संयुक्त या ससंतान परिवारों से बहुत भिन्न हैं। अत शीघ्र परिवर्तनशील समाज में पारिवारिक जीवन के अधिकाधिक जटिल और विचित्र होने की आशा की जा सकती है।

चौदहवा अध्याय

धार्मिक सगठन

PELIGIOUS ORGANISATION

धर्म का मूल

आदिकाल में मनुष्य का जीवन कितना अनियमित जोखिमपूर्ण और चिन्तापूर्ण रहा होगा इसकी हम कल्पना ही कर सकते हैं। जगली जानवर, तूफान, आधी उल्कापात, भूचाल, बाढ़ रोग, जन्म, यौवन, जरा मृत्यु, स्वप्न, सूर्योदय, सूर्यास्त ग्रहण इन्द्र धनुष सरदी, गर्मी उसके लिए एक विचित्र महान् आश्चय और रहस्य का कारण थे। मनुष्य उनका कारण जानना चाहता था। इसी जिज्ञासा ने धम को जन्म दिया। मनुष्य अपने प्रश्ना का उत्तर खोजने निकला ताकि वह अपन चिन्तित मन को ढाढस बधा सके। धार्मिक कल्पनाओ ने उनकी इस मांग को पूरा किया। यह बात मनुष्य जिसमें बुद्धि ह, कल्पना की शक्ति है और जिज्ञासा की भावना ह द्वारा ही सम्भव थी।

मानव ज्ञान के विकास के साथ साथ मनुष्य के बहुत-से प्रश्ना के उत्तर बदल गए, उन्होने पुरान उत्तरो की कल्पनिकता की ओर सकेत किया। फिर भी मानव विज्ञान जीवन की समस्त भौतिक और मानसिक गुत्थियो को न सुलझा सका, मानव जाति को पूणतया भय और जोखिम से मुक्त न कर सका।

धार्मिक सगठन का प्रारम्भ

आदिकालीन मनुष्य के ज्ञान का प्रभाव

मानव जगत् की बुनियादी समस्याओ का जो उत्तर मनुष्य देता ह वह बहुत कुछ उसके वस्तुओ के ज्ञान पर निर्भर करता ह। आज हम सूयग्रहण चन्द्र ग्रहण, भूकम्प दिन रात या जुड़वां बच्चे पैदा होने के कारणो को भली भाति जानते हैं। आदिकालीन मनुष्य को इनका ज्ञान न था। वह इन्हें किसी देवता का कोप या कृपा समझता था। उसकी दृष्टि में यह घटनाए प्राकृतिक नियम का उल्लघन थी, अत वह इन्हें विशेष महत्त्व की समझता था। वह इन्हें कभी शुभ और कभी अशुभ लक्षण मानता था। उदाहरण के लिए, कुछ जातियों में जुड़वां बच्चों का पैदा होना शुभ तथा कुछ में अशुभ लक्षण माना जाता ह। असल बात यह ह कि जब मनुष्य को किसी बात का सही कारण ज्ञात नही होता, तो वह किसी कारण का आविष्कार करता है। इस वृत्ति को मनुष्य की निश्चितता की खोज की प्रवृत्ति कहा जाता है।

अलौकिक (Supernatural) में विश्वास चूकि आदिकालीन मनुष्य को भौतिक तथ्यों और अन्य जीवन की समस्याओ का बहुत अल्प ज्ञान था, इसीलिए वह अपनी कल्पना का सहारा लेता था, और जिस तथ्य को वह सिद्ध नहा कर सकता था उसे दैवीय व अलौकिक शक्तियो का प्रभाव मानता था। अलौकिक में विश्वास ही धर्म की बुनियाद है।

वस्तु और कल्पना आदिकालीन मनुष्य के विचार जगत् को हम दो श्रेणियो में विभक्त कर सकते हैं—वस्तु-जगत् और कल्पना-जगत्। प्रथम श्रेणी में उसका भौतिक वस्तुओं का ज्ञान—आग कसे जलती है, हथियार कसे बनाए जाते हैं, शिकार कसे खेला जाता है, मौसम कब और किस क्रम से आते हैं, विभिन्न परिस्थितियो में मानव या पशु कैसा व्यवहार करते हैं, इत्यादि तथ्यों का समावेश है। शिकार खेलना, जाल बनाना, भोजन पकाना, झगड़ों को निपटाना इत्यादि कर्मों को आरण्यक मनुष्य अपने इस ज्ञान से ही सम्पन्न करता है। इन्द्रियों की साक्षी इस ज्ञान का आधार है।

आदिकालीन मनुष्य का दूसरा जगत्, विचार या कल्पना जगत् है। यह इन्द्रियातीत ज्ञान का क्षेत्र है। अन्तर्ज्ञान, इल्हाम प्रेत या जिन इसी के अन्तर्गत हैं। बालू का दस पानी का भान इसी कल्पना से सम्बन्धित चीज है। समाधि एगा अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति या परम पुरुष के साक्षात्कार में भी यही चीज निहित है। इस समस्त कल्पनाओं में मनुष्य की मधुर कामनाओं का तथ्य विद्यमान रहता है। मनुष्य की कुछ कल्पनाए तो सीधी सरल है, पर कुछ बहुत ही जटिल है जसे कि आत्म-बलिदान या अपने को ही दण्ड देने की इच्छा। शायद भूत प्रेत शैतान और जिन के आविष्कार के लिए यह भावना ही जिम्मेदार है।

पर इससे हमें यह अनुमान नहीं करना चाहिए कि काल्पनिक सत्ताओ का आविष्कार कोई सरल चीज है। बालक प्रायः काल्पनिक साथियो से खेलते और बात करते पाए जाते हैं, किन्तु यह निश्चिततापूर्वक नहीं कहा जा सकता कि बच्चा स्वय उसका आविष्कार करता है। बच्चो के खेल के यह अभिनेता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को जनश्रुति द्वारा पहुचाए जाते हैं। वास्तव में एक प्रेत का आविष्कार किसी एक यान्त्रिक आविष्कार से सुगम कार्य न था। पौराणिक गाथाओ का आविष्कार उतना सरल नहीं है जितना कि हम समझते हैं।

इसलिए हम देखते हैं कि जगत् और मानव जाति की सृष्टि, सूरज चांद, पानी या आग के जन्म के बारे में एक आरण्यक कबीले में एक ही जनश्रुति चली आती है।

पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में मध्यभारत के आरण्यकों की जनश्रुति

मध्यभारत के बगा के अनुसार मध्यभारतमें जल जल जल के अतिरिक्त कुछ

नहीं था। कोई ईश्वर की आवाज, कोई भूत, कोई हवा, काई रास्ता, कोई जगह नही था। जैसे आज आकाश है, वसे तब जल था। एक बडे कमल के पत्ते पर, जो इधर-उधर तैरता था, ईश्वर आसीन थे। उनके पास कोई फल फूल या जीव न था, वह अकेले थे।"

ऐसा मालूम होता ह कि पृथ्वी कमे बनी इस बारे में मध्यभारत के आरण्य का में तीन मत ह। पहले में यह मान लिया गया ह कि पृथ्वी चुरा ली गई और सष्टा उसे ढूंढने के लिए दूत भेजता ह और जब वह उसे मिल जाती ह वह उसे पानी की सतह पर फैला देता ह। दूसरे में जो कि प्राचीन वदिक कल्पना से मिलती-जुलती है, पृथ्वी बलि का परिणाम है। तीसरे में, ससार अपने आप बन जाता है जैसे कि कूडे में दही अपने आप जम जाता है।

अगरिया और गोंड श्रुति के अनुसार "भगवान् ने एक गाम बनाई और उसे पृथ्वी ढूंढने भज दिया। यह ककरामल क्षत्री, महान् कछुए की पीठ पर गिर पडी जो कि उसे समुद्र की तह में जहा गिद्धराज ने उसे निगल रखा था निकलवाने के लिए ले गया। उन्हाने उसे उगलने के लिए मजबूर किया और उसके मुह से बाईस विभिन्न प्रकार की पृथ्विया निकली। कौवा उन्हें भगवान् के पास ले गया। तब भगवान् न पृथ्वी को कौए की गदन से निकाला और अपनी गोद में रखा। तब उसने एक तरुण कुमारी को बुलाया। उसने पत्तो की एक हाडी बनाई और उसमें पृथ्वी को मथा। तब भगवान् ने उसे एक बडी पतली चपाती की तरह बेला और उसे पानी की सतह पर फैला दिया। वहा वह बढने लगी और अन्तत उसने सारा पानी ढक लिया।

कल्पनाओं का आधार

सृष्टि आग, चाद तारे, सूरज, विभिन्न पशुओ जीवो और शरीर के विभिन्न अगो के जन्म से सम्बंधित कल्पनाओ का आधार अशत शक्ति भावना अर्थात् अपने को सवशक्तिमान् से मिला देने की भावना होती ह। इन विभिन्न व्याख्याओ में कल्पनाशक्ति या जिज्ञासावृत्ति का भी बडा हाथ है। बैगा अगरिया, गोंड इत्यादि आदिवासियो का सृष्टि, आग, चाद तारे, सूरज इत्यादि का ज्ञान उनके अपने हथियारो और औजारो के ज्ञान की तुलना म बहुत अपूर्ण ह। इसका कारण भी स्पष्ट है। पहली चीजो के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करना उनके लिए बहुत कठिन ह इसीलिए उन्हें कल्पना का सहारा लेना पडता है।

आदिकालीन जीवन दर्शन और विश्वास

धर्मानिक ज्ञान की अल्पता तथा विश्वास और जीवन-दर्शन की एकता आदिकालीन सस्कृति में मनुष्य का धर्मानिक ज्ञान हमारी तुलना में बहुत अल्प है।

ऐसे समाज में उन विचारों का रहना बहुत स्वाभाविक है जिनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। आदिकालीन मनुष्य के काल्पनिक विचार ही उसका विश्वास उसका सिद्धांत घटनाओं की व्याख्या, सफल जीवन की कुंजी होते हैं। वह उनसे केवल जड़ जगत् की ही व्याख्या नहीं करता, वरन् अपने दैनिक व्यवहार को भी निर्धारित करता है।

विश्वास और जीवन दर्शन का यह सम्बन्ध एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। उत्तरी अमरीका के विनेबागो कबीले का सदस्य अपने लड़के को उपवास करने की सलाह देता है और कहता है 'तुम्हारा परदादा अग्नि देवता सदा तुम्हारे घर के बीच में रहता है, यह तुम्हें आशीर्वाद देता है। उसका सदा स्मरण करो। उसकी कृपा से तुम सही रास्ते को जान जाओगे, अपनी इच्छा का पुरस्कार और सम्मान प्राप्त करोगे। इसलिए श्रद्धापूर्वक तुम उपवास करो और अपने प्राणों की आहुति दे दो तभी यह युद्ध का आशीर्वाद तुम्हें मिलेगा। फिर भी बिना सतत प्रयत्न के यह आशीर्वाद नहीं मिलता।'

तथ्य और कल्पना का मिश्रण सतत प्रयत्न करो, बाधाओं पर विजय पाओ, सफलता प्राप्ति से ही सम्मान, प्रतिष्ठा मिलेगी', यह एक विश्वस्त सलाह है। ऐसा ही विश्वस्त अभी कि एक चिड़िया का सींग मारने से तुम्हें माल खाने को मिलेगा। पर बिना प्रयत्न के, केवल उपवास की सहायता से तुम जो चाहो मिल सकता है यह एक बहुत विश्वस्त ज्ञान नहीं कहा जा सकता, बल्कि यह एक मधुर कल्पना है। अच्छे जीवन और सफलता प्राप्ति के सम्बन्ध में, जहां तक विश्वस्तता का सम्बन्ध है, बहुत से विश्वास विनेबागो के विश्वास से मिलते हैं। और यहीं पर हमें पता चलता है कि आधुनिक मनुष्य के विचार भी आदिकालीन मनुष्य की भांति बिल्कुल दो विपरीत दिशाओं में चल रहे हैं एक तो तथ्यों पर आधारित हैं, और एक कोरी कल्पना पर।

धार्मिक संगठन

यद्यपि अलौकिक (Supernatural) या अंतिम सत्ता में विश्वास ही धर्म का सार है, पर मनुष्य इस विश्वास को एक पद्धति का स्वरूप प्रदान करता है अर्थात् वह अपनी धार्मिक भावना को धार्मिक संगठन में रूपान्तरित करता है। वास्तव में यह संगठन, न कि यह धर्मभावना समाजशास्त्री के लिए विशेष महत्वपूर्ण है।

सामाजिक कार्यों पर प्रभाव एक उच्च शक्ति में विश्वास के रूप में धर्म कई तत्वों का मिश्रण है। इसी तरह एक संगठन के रूप में यह अनेक कार्यों का मिश्रण है। समान आदतों और व्यवहार वाले धार्मिक लोग जब संगठित हो जाते हैं वह दूसरे सामाजिक कार्यों पर भी प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए, पुन

जन्म म विश्वास मनुष्य को इस जीवन में अच्छे काय करने की प्रेरणा दे सकता ह, अथवा कमफल में विश्वास उसे इस जन्म में धयपूवक कष्ट भोगने या अत्याचार सहने में समर्थ बनाता है और उनका प्रतिकार करने की प्रेरणा नही देता। इसी तरह सगठित धम हमारे आचार को अपने हाथ में ले सकता है।

सामाजिक कृत्यों को प्रोत्साहन इसी तरह प्राथना की साधकता में विश्वास वर्षा, अन्न और धन की समृद्धि के लिए उसके उपयोग को प्रोत्साहित करता है। इस भाति धम हमारे आर्थिक जीवन में प्रवेश कर जाता है। धार्मिक कथाओं के चित्रण और वणन कला और साहित्य को स्फूर्ति देते हैं। मन्दिर या धार्मिक मेले और तीर्थ यात्राए मिलने-जुलने, क्रय विक्रय और मनोरजन के सामाजिक कार्यों को सम्पन्न करते ह।

धम की एसी व्याख्या की जा सकती है कि वह अज्ञात के प्रति मनुष्य की भावात्मक प्रतिक्रिया या एक उच्च शक्ति में विश्वास है। किन्तु इस व्याख्या में यह जोडना बेहतर होगा कि सगठित धम में अनेक सामाजिक कार्यों का भी समावेश है।

धार्मिक सगठन का उद्गम

धम पहल-पहल कब उद्भूत हुआ ? क्या यह परिवार की भाति ही प्रारम्भ से हमारे साथ चला आ रहा है ? यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। धार्मिक विश्वास भौतिक सस्कृति की भाति अपने अस्तित्व के अवशेष नही छोडते। अत इस सम्बन्ध में निश्चिततापूवक कुछ कहना कठिन ह। बन्दरों में हमें पारिवारिक प्रथा के चिह्न मिलते हैं पर उनमें धार्मिक अनुभूति का कोई चिह्न नजर नहीं आता। अत हम यह मकन हैं कि धम बाद की उपज ह। धम के उद्भव के लिए मन और कल्पना के अधिक विस्तार की आवश्यकता थी। बावजूद इसके, धम का विकास बहुत प्रारम्भिक अवस्था में हो सकता है। अत यह सम्भव है कि धम सस्कृति जितना ही प्राचीन हो।

यह सब तक बहुत काल्पनिक ह, पर यह निश्चित सत्य ह कि धम अति प्राचीन सस्था ह। २५,००० साल पहले रहने वाले नीनडरथल वासी के खुदाई में प्राप्त कंकाल इस बात का समथन करते हैं। ये कंकाल एक विशिष्ट प्रकार से दफनाए पाय गय ह। इनके साथ पत्थर के औजार और हथियार भी मिले हैं जिससे यह अनुमान होता ह कि यह लोग पुनजन्म में भी विश्वास रखते थे। इसके अतिरिक्त हमें आज जितनी भी प्रागक्षर सस्कृतिया मिलती ह, उन सबमें ही हमें धार्मिक सगठन के दर्शन होते हैं। यह तो यह, सरलतम फलसचक सस्कृतिया में भी यह विद्यमान ह। इन सस्कृतियों में धर्म का अध्ययन धार्मिक सगठन के प्रारम्भ पर अच्छा प्रकाश डालता है।

अलौकिक शक्तियां सरल सस्कृतियो के सभी लोग अलौकिक शक्तियो में विश्वास रखते ह । यद्यपि उनके इस अलौकिक को ठीक ठीक समझना बहुत कठिन ह । उनकी अलौकिक की कल्पना हममे बहुत अधिक जटिल है । फिर भी उन सब का समान आधार अलौकिक शक्ति में विश्वास ह । अलौकिक शक्ति वह निर्वैयक्तिक है जिसकी किसी वस्तु विशेष में उपस्थिति, उसमे असमव काय सम्भव करवा सकती है । विभिन्न सरल सस्कृतियो में उसे विभिन्न नामो से सम्बोधित किया जाता ह। मध्य भारत के ही लोग उस 'बोगान' और मैलीनेशिया और पोलिनेशिया क आदि वासी उसे 'मन' कहते हैं ।

यद्यपि यह शक्ति निर्वैयक्तिक ह, फिर भी इसका किसी व्यक्ति या वस्तु में प्रवेश सम्भव है । उसका प्रवेश उन्हें नूतन और अलौकिक गुण प्रदान करता है । पोलीनेशियनों के अनुसार उस व्यक्ति में अधिक 'मन' ह जो अधिक जनश्रुति याद रख सकता ह वहा मुखिया के पास इतना अधिक 'मन' माना जाता ह कि वह जिस वस्तु को छू दे वह उसकी हो जाती ह । राजाओ के दवी अधिकार के सिद्धात का भी यही मूल ह कि वह अलौकिक गुणो स विभूषित होते हैं ।

यहा यह बात स्मरण रखनी आवश्यक है कि अलौकिक शक्ति में विश्वास समस्त वस्तुओ को जीवित मानने के विश्वास से भिन्न ह । अनेक आदिवासियों क अनुसार वस्तुओ के जीवित रहने का गुण उसमें विद्यमान प्रेतात्मा के कारण होता है । प्रेतात्मा एक छायामय आत्म-तत्त्व है, मन की तरह अमूर्त नहीं ह । इसके अतिरिक्त, कुछ प्रेतात्मायें अन्य प्रेतात्माओ की तुलना में अधिक शक्तिशाली होती ह । अनेक आदिवासी पहाडो, नदियो, वृक्षों, पशुओ से सम्बद्ध प्रेतात्माओं को भी देवताओं में सम्मिलित करते हैं । इन सबके ऊपर मुख्य देवता वह होता ह जिसका मानव प्राणियो स कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता ।

अलौकिक में विश्वास होते हुए भी प्रागक्षर सस्कृतियो के विश्वासों में पर्याप्त भेद ह । उनकी उच्च शक्तियां विशिष्ट या सामान्य हैं, वैयक्तिक या निर्वैयक्तिक ह, पूवज या सावभौम हैं । कुछ का परम पूज्य पुरुष तो कुछ का स्त्री ह । आजकल परम सत्ता अधिकाधिक निर्वैयक्तिक होती जा रही ह पर हम देखते हैं कि अनेक आदिकालीन धम भी इस दिशा में इससे भिन्न न थ ।

धार्मिक अनुभव अलौकिक शक्तियों में विश्वास को महत्त्वपूर्ण मानते हुए भी अनेक विद्वान् धार्मिक अनुभव को धम का अनिवार्य अंग मानते ह । इसे परम आनन्द कहा जाता है । इसका उन धारणाओ और भावनाओं से सम्बन्ध है जो कि उसे अलौकिक की ओर अग्रसर करती हैं । भारतीय योग और परमात्मा के साथ साक्षात्कार में यही तथ्य निहित है । किन्तु इस सम्बन्ध में भी विभिन्न सस्कृतियों में विभिन्न कालो में धम की बहुत भिन्नता पाई जाती है । भय, प्रेम आनन्द,

शाति इत्यादि धम की अनेक प्रतिक्रियाए हैं। आदिकालीन धर्मों में भय का तत्व अधिक ह जबकि आधुनिक धर्मों में शाति तत्त्व पर अधिक जोर दिया जाता ह। इस तरह परम सत्ता के प्रति विभिन्न प्रतिक्रियायें दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरण के लिए उत्तर पश्चिम अनाम और हिन्द चीन के माइ और सेदाग आदिवासी अपने देवताओ से घृणा करते हैं।

जादू-टोना (Magic) सरल सस्कृतियो में धम का स्वरूप जादू टोने से मिलता-जुलता ह। जादू टोने में अलौकिक शक्तियो को नियन्त्रित और अनुशासित करने का प्रयास होता ह। बीमारी हो जाने पर शरीर पर पत्थर घिस लेना, कान में मन्त्र पढ देना झाड-फूक दरवाजे पर शुभचिन्ह का लटका देना, जादू टोन म हो सम्बद्ध क्रियाए ह। कुछ विद्वान इसे धम नही मानते क्योकि इसमें अलौकिक शक्ति को बाधने, उसे अपने स्वाथ के लिए प्रयुक्त करने का उद्देश्य है। जबकि धम में एक विशिष्ट विनम्रता विद्यमान ह। उदाहरण के लिए, प्राथना में पूजा, निवेदन की भावना ह। परमशक्ति से साक्षात्कार इसका मुख्य लक्ष्य ह।

इस सम्बन्ध में यह ध्यान देन योग्य ह कि धम और जादू टोने के बीच विद्यमान भेद अन्तत सामाजिक ह। जैसे-जैसे धर्म की गम्भीर कल्पना उदित होता है जादू-टोने से उसका भेद स्पष्ट होने लगता है। बावजूद इसके दोनो के बीच पर्याप्त समानताए भी ह। दोनो ही अलौकिक शक्ति को स्वीकार करते है और उससे किसी न किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करते ह।

लेखको ने जादू को विभिन्न प्रकारो में बाटने का प्रयास किया ह। जादू टोने पर प्राप्त सबसे उत्तम पुस्तक गोल्डन बाऊ के प्रसिद्ध लेखक फ्रेजर ने जादू को अनुकरणीय और सक्रामक दो भागो में बाटा है।

अनुकरणीय जादू में मनुष्य उस बात का अनुकरण करता ह जिसे कि वह चाहता है और उसका परिणाम स्वत ही मान लिया जाता है। शत्रु का हनन करने के लिए उसकी एक मोम की पुतली बनाकर छेद दिया जाता ह। वर्षा कराने के लिए एक बतन में ऊपर तक पानी भर दिया जाता है।

सक्रामक जादू में यह मान लिया जाता है कि जो कोई वस्तु अलौकिक सम्पर्क में आती ह उसमें अलौकिक प्रभाव आ जाता ह। इसीलिए गण्ड, तावीजो और कवचो का सहारा लिया जाता ह।

विख्यात मानवशास्त्री लोई के अनुसार सम्मोहन (Spells) एक अन्य प्रकार का जादू है। इस तरह हम जादू को अनक श्रेणियो में विभक्त कर सकत हैं। जादू क मूल में इच्छा तत्त्व सदव विद्यमान रहता है अर्थात् मनुष्य जो इच्छा करता ह और जो होता है उसमें निकट सम्बन्ध पाया जाता ह।

धर्म का प्राचीन संगठन

प्राचीन धार्मिक विश्वास विस्तृत जादू की क्रियाओं में निहित था। जन्म यौवन, प्रसूति, मासिक धर्म, वर्षा, अकाल, सूखा, प्रत्येक समय के लिए कोई न कोई जादुई विधि विधान विद्यमान थे। रोगों की चिकित्सा जादू का मुख्य विषय थी तथा धर्म से घनिष्ठतया सम्बन्धित थी।

आर्थिक जीवन से सम्बन्ध फसल के समय या शिकार, उपयोगी औजारों या हथियारों का निर्माण तथा अन्य आर्थिक क्रियाओं में यद्यपि पुरुषार्थ का अधिक हाथ था और उनमें 'योगान' या 'मन' की सहायता न ली जाती थी, फिर भी भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए, शिकार में सफलता पाने के लिए अनेक जादू क्रियाएं सम्पन्न की जाती थी तथा गण्ड-ताबीज पहने जाते थे।

परिवार और शिक्षा से सम्बन्ध विवाह गर्भाधान, बच्चे के जन्म और संरक्षण में आदिकालीन मनुष्य पग-पग पर धार्मिक कृत्यों की सहायता लेता था। शिक्षा यद्यपि सामुदायिक जीवन का अंग थी, फिर भी उसमें धार्मिक पौराणिक जनश्रुति एक बड़ा भाग थी। तरुणावस्था शिक्षा के लिए सर्वोपयुक्त समय है। उस समय विभिन्न धार्मिक आदेशों का पालन, उपवास और साधना, विभिन्न धार्मिक उत्सवों का मनाना और पुराणों का अभिनय आदिकालीन संस्कृति की प्रमुख विशेषताएं हैं। इस तरह हम देखते हैं कि आरण्यकों के प्रत्येक कार्य पर धर्म की छाप है, वह सब जगह व्याप्त है।

ओझा (Shamans) आदिकालीन धर्म के परिचालक और नेता ओझा हैं जिन्हें शामन भी कहा जाता है। शामन पुरोहित का पुराना प्रतिरूप है। आदिकालीन समाज में उसकी स्थिति मुखिया या सरदार की भांति महत्वपूर्ण है। शामन अलौकिक साम्राज्य का शासक है उसकी गुत्थियां सुलझाने की उसी में सामर्थ्य है। यह शामन प्राय विक्षिप्त (Neurotic) होते हैं उन्हें मिरगी की प्रवृत्ति होती है समाधि और अन्तर्दर्शन (Visions) होते हैं। आस्ट्रेलिया के शामन इसका अपवाद हैं ये मानसिक दृष्टि से सर्वथा स्वस्थ और बहुत बुद्धिमान् व्यक्ति होते हैं। यद्यपि शामन समाज के अन्य वर्गों से पृथक होते हैं तथापि उनकी विकृतियां (Abnormalities) सामाजिक होती हैं। उन्हें अस्वस्थ (Abnormal) नहीं माना जाता, बल्कि यह प्रतिभावान् और उपयोगी व्यक्ति समझे जाते हैं। संकट या रोग और विपत्ति के समय उनकी भेंट-पूजा की जाती है। उन्हें विशेष शक्तियों से विभूषित माना जाता है। उनकी कल्पनाशक्ति, चिन्तनशक्ति और अन्तर्दृष्टि सामान्य लोगों से ऊंची होती है। इसके अतिरिक्त शामन किसी जाति के पुराणों (Myths), जनश्रुतियों, सृष्टि-कथाओं इतिहास और परम्पराओं के संरक्षक होते हैं। जनश्रुति और पुराणों में वर्णित तथ्यों को सिलसिलेवार ढंग से

रखना उनका मुख्य काय है। सक्षेप में शमन अनात जगत् के विशेषज्ञ ह।

धार्मिक सस्थाओं का विकास

बढ़ती हुई सूक्ष्मता और विभेद ओझा के नेतृत्व से शुरू हो धार्मिक विचारधारा और व्यवहार में बराबर सूक्ष्मता और वैचित्र्य आता जाता है। अलौकिक के सम्बन्ध में आदिकालीन मनुष्य के विचार बहुत अस्पष्ट थे। उन्हें स्पष्ट और सजीव करने का प्रयास होता ह। इसी से जीववादी (Animist) दर्शन का प्रारम्भ होता ह अर्थात जड वस्तुओ को जीवित माना जाने लगता ह। सूय पवत नदी या किसी विशेष पेड, पक्षी और पशु को दैवी शक्ति से युक्त माना जाता ह। यद्यपि कुछ सस्कृतिया में परम सत्ता की कल्पना विकसित हो गई है पर फिर भी वहा ऐसा माना जाता है कि प्रेतात्माए पशु, परी, वीर, भूत या शासक इत्यादि का स्वरूप धारण कर अवतरित होती ह। स्वप्न, साक्षात्कार, इल्हाम या अन्तदर्शन द्वारा शरीर क बाहर उसकी कल्पना की जाती है। इस तरह भूतो और उनके निवास की कल्पना का उदय होता ह। शासक प्रेतात्माओ और सृष्टि के मूल को समझाया जाता है। इस प्रकार रहस्यमयी शक्ति की श्रेणी व्यवस्था में उनक कार्यों को सिलसिलेवार ढग से रखा जाता ह। साथ ही ओझाओ के तरीके भी बारीक और विभिन्न हो जाते ह। प्रेतात्माओ को प्रसन्न करने के लिए वस्तुओ, भोजन, पशुओ कभी-कभी जीवित मनुष्यो तक भी बलि की आवश्यकता होती ह।

टबू की कल्पना का जन्म कुछ वस्तुए अखाद्य अवध्य अगन्तव्य या अछूत मान ली जाती है उन्हें टबू या निषिद्ध कहा जाता है। टबू को भग करन पर प्रेतात्मा या आत्मा का कोप होता है। इसी से पाप की कल्पना का उदय होता ह जिसका कि हमारे धम में बडा स्थान ह।

धार्मिक उत्सवो का जन्म धम के सूक्ष्म और विशिष्ट होने के साथ-साथ प्रेतात्माए सशरीर हो जाती ह मानव प्राणियो और पशुओ की भाति व्यवहार करने लगती ह। यद्यपि उनकी शक्ति और सामर्थ्य असाधारण रहती ह, तब भी धार्मिक नता उन्हें अभिनयात्मक ढग से पेश करते ह। बलि के समय विशिष्ट उत्सव का आयोजन ऋतुपरिवतन के लिए सापो का नृत्य अथवा भूमि का उवरा बनाने क लिए धान्य नृत्य ऐसी ही चीजें ह। इस तरह पुराणो को अभिनीत करने का उपक्रम होता है और धान नर्तन नृत्यो, उत्सवो और त्योहारो में उनकी परिणति होती ह।

धार्मिक सगठन में विकास की विभिन्नता

धम का अध्ययन करते समय यह स्मरण रखना आवश्यक है कि धम का विकास किसी निश्चित क्रम में नहीं हुआ ह। हम देखते हैं कि अनेक उच्च धर्मो में जादू और अनेक जादुई धर्मो में परमसत्ता के लिए स्थान ह। कुछ अरण्यको में एकेश्वरवाद (Monotheism) और मिस्र, रोम और ग्रीस जसी विकसित

सभ्यताओं में बहुईश्वरवाद (Polytheism) के चिह्न मिलते हैं। आस्ट्रेलिया के भौतिक दृष्टि से अति पिछड़े आदिवासियों के धार्मिक कृत्य अपनी सूक्ष्मता में अति विकसित संस्कृतियों को मात करते हैं। इस सम्बन्ध में धर्म की स्थिति सरकार जैसी है। जिस भांति सरकार के विकास का कोई निश्चित क्रम नहीं है वैसे ही धर्म-विधान का भी एक निश्चित क्रम नहीं है। हम केवल प्रमुख विकासवादी प्रवृत्तियों की ओर संकेत कर सकते हैं। वास्तव में किसी संस्कृति के भौतिक स्तर और उसके धार्मिक व्यवहार में कोई निश्चित कठोर सम्बन्ध नहीं है। धार्मिक जीवन का स्वरूप प्रधानतः धार्मिक नेताओं की बुद्धि और भावनाओं पर निर्भर होता है। यह सत्य है कि भौतिक संस्कृति उन्हें प्रभावित करती है।

आत्मिक जगत् के विशिष्ट और निश्चित होने से उसका असर वर्ग की भावात्मक प्रतिक्रियाओं पर भी पड़ा। जब तक जीवन में जोखिम प्रधान रहा, भय और आतंक की धारणा स्वाभाविक थी। यह धारणा अभी तक भी कुछ अंगों में कायम है। पर विशेषतः कृषि-संस्कृतियों में देवताओं के साथ कल्याणकारी भावनाओं का उदय हुआ। उदाहरण के लिए सूर्य देवता, जो फसल पकाता और वर्षा देता है, कल्याणकारी है। ऐसी स्थिति में भय का स्थान विनय और उपासना की भावना ने ले लिया।

धर्म का संगठन निरन्तर हमारे सामाजिक कृत्यों में प्रवेश करता रहा। परिवार, भोजन प्राप्ति, चिकित्सा, मनोरंजन यहां तक कि सरकार भी इसके दायरे में आ गई। भूत प्रेत की कल्पना ने धर्म को परिवार में केंद्रित करने में योग दिया और पूर्वजपूजा (Ancestor Worship) को जन्म दिया। यदि बिरादरी को राज्य का प्रारम्भ मान लिया जाय तो गणचिह्न (Totem) अर्थात् बिरादरी के धार्मिक प्रतीक का महत्व राज्य और धर्म के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध की पुष्टि करता है। इसके अतिरिक्त वर्ग संघर्ष के समय देवताओं का आवाहन किया जाता है और यह माना जाता है कि देवता विजेता दल की ओर है।

कृषि समाज में धार्मिक संगठन

कृषि अवस्था तक पहुंचते पहुंचते मनुष्य ने भौतिक दिशा में पर्याप्त उन्नति कर ली। उसके पास भोजन-सामग्री का पर्याप्त संचय, सम्पत्ति और वस्तुएं हो गई। समुदाय स्थिर निवास बनाकर रहने लगे और अब उनके लिए यह सम्भव हो गया कि वह धार्मिक नेताओं का भरण पोषण कर सकें। इस तरह पुरोहित सम्प्रदाय का जन्म हुआ। प्राचीन आर्यों की वर्ग व्यवस्था जिसमें क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के अतिरिक्त ब्राह्मण एक विशिष्ट वर्ग था, ऐसे ही वातावरण में उद्भूत हुई। इस पुरोहित वर्ग का मुख्य कार्य अमानवीयता का चिंतन, अर्थात जगत् का अन्वेषण तथा परम सत्ता से साक्षात्कार या ब्रह्म में विचरण था। इसी

समय स्थायी उपासना-गृहो का निर्माण हुआ और सामूहिक पूजा प्रोत्साहित हुई। धार्मिक नेताओं के भी कई वर्ग बन गये। उदाहरण के लिए बगान्दा कबीले में पुरोहितों, शमनो और ओझाओं की तीन श्रेणियाँ है। शमन एक प्रकार के माध्यम है जिन पर जिन या भूत चढे रहते हैं। पुरोहित इनकी समाधियो और इनके प्रलाप की व्याख्या करते है। ओझाओं का कार्य-क्षेत्र चिकित्सा और कवचों या तावीजो का निर्माण है। इस तरह कृषि-समाज में धार्मिक ढंग पर समाज का श्रेणी विभाजन शुरू हो जाता है।

सामाजिक और आर्थिक संगठन का अंत सम्बन्ध

पुरोहितो का एक पृथक् वर्ग, जिसका कार्य विभिन्न क्रिया-कर्म और यज्ञ याग कराना था, बन जाने के बावजूद धर्म किसी भी संस्कृति में मनुष्य के प्रतिदिन के कार्य-कलापो से पृथक नही रहा। उदीयमान धर्म-सामाजिक संस्थाएं धर्म से घनिष्ठतया सम्बन्धित रहीं। आर्थिक क्रियाओ में सफलता के लिए बराबर धर्म की सहायता ली जाती थी। चिकित्सा शिक्षा, आचार भी धर्म का मुख्य विषय थे। संसार के समस्त धर्मो में हम इस अन्त सम्बन्ध को पाते है। बडे धर्म भाषा और जाति की सीमाओ को लांघकर किसी विशिष्ट संस्कृति से बंधे नहीं रह गये। भारत में सूफी, वैष्णव, नानमार्गी तान्त्रिक शैव शाक्त, सिख हिन्दू बौद्ध फारसी, इस्लाम, ईसाई इत्यादि अनेक धर्मों का संगम है। चीन में कन्फूशियस टाओ और बौद्ध तीन धर्म है। यह समस्त धर्म ही हमारे सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप और योगदान करते हैं। भारत में जाति भेद धर्म की ही देन है। यह जाति-व्यवस्था आदि खान पान, शादी-व्याह शिक्षा-दीक्षा पद-पेशा, आचार-व्यवहार, मान प्रतिष्ठा हमारे सारे सामाजिक जीवन को प्रभावित करती है। सभी धर्म विशिष्ट आचार-व्यवहार की व्यवस्था करते है। आज को छोड सदा ही सरकार के साथ धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मध्यकालीन योरोप में चर्च के हाथ में ही हुकूमत की बागडोर थी। प्राचीन और मध्यकालीन भारत में राजपुरोहितो और काजियो का शासन म बडा हाथ था इसके अतिरिक्त पाठशाला और मकतब खोलने, पिंजरा पोल और अनाथालय इत्यादि विभिन्न सामाजिक संस्थाओ को चलाने में धर्म का बडा सहयोग रहा है।

धर्म में आधुनिक प्रवृत्तियां

संगठित धर्म के कृत्यों का ह्रास

आधुनिक युग में धर्म अन्य सामाजिक संगठनों तथा ज्ञान की शाखाओ से निरन्तर पृथक होता जा रहा है। लगभग समस्त सभ्य और उन्नत उद्योग प्रधान राष्ट्रों में सरकार में धर्म का हस्तक्षेप समाप्त हो चुका है। बौद्धिक और यान्त्रिक शिक्षा धार्मिक संगठनो के हाथ से निकल कर सार्वजनिक सरकारी स्कूलों के हाथ

में आ गई है। कला, सगीत, शिल्प साहित्य पर दिन प्रति दिन धर्म का प्रभाव घटता जा रहा है। आर्थिक जीवन में धर्म के बन्धन और विधान लोपप्राय हो चुके हैं पारिवारिक जीवन में धर्म की शक्ति क्षीण होती जा रही है। चिकित्सा-शास्त्र के विकास ने धार्मिक चिकित्सकों के महत्व को नष्ट कर दिया है।

यद्यपि सामाजिक कार्यों में अभी भी धार्मिक सगठन कुछ हाथ बटा रहे हैं, पर बेकारी, वृद्धावस्था, बीमा, दुर्घटना इत्यादि महत्वपूर्ण परिस्थितियों में राज्य ही नागरिकों की सहायता का भार ले रहा है। कर सग्रहकर्त्ता होने के नाते सरकार द्वारा ही यह बड़े-बड़े काम सम्भव है। वह धार्मिक सगठनों के बूते के बाहर है। अन्य सामाजिक कार्यों में भी अन्य बौद्धिक समितियाँ, पेशेवर सगठन और क्लब धार्मिक सगठनों से प्रतियोगिता कर रहे हैं।

सामाजिक कृत्यों के धार्मिक सगठन के हाथों से निकल अन्य गैर धार्मिक सस्थाओं के हाथों में चले जाने की प्रवृत्ति को एहिकीकरण (Secularisation) के आन्दोलन का नाम दिया जाता है। आधुनिक युग में धर्म का कार्यभार बहुत सकुचित होता जा रहा है या यों कहें तो बेहतर होगा कि धर्म पहले जो गैर धार्मिक कार्य सम्पन्न करता था, वह अब नहीं कर रहा है। विशुद्ध धार्मिक काम अब उसके कार्य रह गये हैं।

धार्मिक विश्वास का परिवर्तित स्वरूप

धर्म का अध्ययन करते समय यह बात भी दर्शनीय है कि भौतिक सस्कृति के विकास और परिवर्तन के साथ-साथ धार्मिक विश्वासों का स्वरूप भी निरन्तर बदलता जाता है। विज्ञान की उन्नति इसका सबसे प्रमुख कारण है। विज्ञान ने अज्ञात जगत् के क्षेत्र को बहुत सकुचित कर दिया है फिर भी यह मानना होगा कि धार्मिक विश्वासों में परिवर्तन एक कठिन और धीमी प्रक्रिया है। तथापि आजकल यह मानना कठिन हो गया है कि पृथ्वी चपटी है, यह बैलों के सीगों पर टिकी हुई है और उसके हिलने से भूकम्प होता है या सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है या विभिन्न तारे देवताओं के दीपक हैं। विज्ञान ने हमें इनके सम्बन्ध में सही-सही ज्ञान दे दिया है, जिससे कि पुराने विश्वासों से चिपटे रहना कठिन हो गया है।

फिर भी यह सत्य है कि विश्वासों को बदलने में पर्याप्त समय लगा है। प्रारम्भ में वैज्ञानिक सिद्धान्तों का घोर विरोध हुआ है वैज्ञानिकों को उन्हें स्थापित करने के लिए अनेक यातनाएँ और उत्पीड़न सहन पड़े हैं। आज भी अधिकांश धार्मिक लोग यह मानने को तैयार नहीं हैं कि वह पशुओं की सन्तान है। सब भी समझदार लोग आधुनिक धार्मिक वैज्ञानिक गवेषणाओं को मानते हुए ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार दोनों में कोई विरोध नहीं है। भारतवर्ष में भी स्वामी विवेकानन्द रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्री अरविन्द घोष

आध्यात्मिक विचारको का यही मत था।

वास्तव में धार्मिक विश्वास बहुत कुछ ज्ञान की अवस्था पर आश्रित है। विश्वास और ज्ञान परस्पर एक दूसरे को प्रभावित करते ह। ज्ञान के परिवनन से विश्वास नया स्वरूप धारण करता है। ज्ञान का विकास हमारे सम्मुख अज्ञात की नई-नई कल्पनाए प्रस्तुत करता ह। इलेक्टोन सापेक्षवाद (Relativity), पदाथ और गति के स्वभाव का ज्ञान हमें नई दृष्टि प्रदान करते ह। विज्ञान विश्वास के स्वरूप को बदल देता ह, पर विश्वास को नष्ट नही करता। यही कारण ह कि आजकल अनेक प्रमुख ज्योतिषी, गृह नक्षत्रों के स्वरूप गति, और दूरी से परिचित होने हुए भी और अनेक चिकित्सक रोगों के कारण, शरीर की कार्य प्रणाली का सूक्ष्म ज्ञान रखते हुए भी, भगवान् में विश्वास रखते ह। आज क प्रमुख आध्यात्मिक विचारका के मत में विश्वास से धार्मिक अनुभूति अधिक महत्त्व रखती ह वही धम का सार है।

धार्मिक अनुभूति की आवश्यकता

प्राचीन धर्म के गवेषक मानवशास्त्रियों और आधुनिक आध्यात्मिक विचारको का कहना है कि धार्मिक अनुभूति ही धम का वास्तविक सार ह। विभिन्न धर्मों के बाह्य स्वरूपो और विधि विधानो में पार्थक्य रहते हुए भी उन सबका लक्ष्य एक ह। डा० भगवानदास इसे सब धर्मों की मौलिक एकता कहते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने इसी सार्वभौम धम का प्रतिपादन किया ह। धार्मिक अनुभूति सब धर्मों में समान है। परम सत्ता से तादात्म्य उसका तत्त्व है। ऐसा कहा जाता है रामकृष्ण परमहस ने इस्लाम हिन्दू और ईसाई तीनों मुख्य मार्गों से साधना कर इस एकता का अनुभव किया था। इस धार्मिक अनुभूति का वर्णन सरल नहीं ह। इसे अनिर्वचनीय कहा गया ह। कबीर ने इसकी गूगे के गुड से तुलना की है। रवीन्द्रनाथ ने इस अवस्था को प्राणिमात्र में एकात्मभाव कहा है।

यह कहा जा सकता ह कि आधुनिक सस्कृति में ऐसे धम की परम आवश्यकता ह। विज्ञान के विकास न भयसचारक भूत प्रेत और काल्पनिक कथाओ पर आश्रित धम को हिला दिया ह। फिर भी आज की शहरी सभ्यता ऐसी यन्त्रवत् ह कि जिसमें बहुत बार लाखो में भी मनुष्य अपने को एकाकी अनुभव करता ह, अपार भौतिक सुखों के बीच भी कभी-कभी बडी शून्यता अनुभव करता ह। पुराने युग में उसे रोटी के सघर्ष से फुरसत न थी। आज अवकाश ने उसकी मानसिक जिज्ञासाओ और भावात्मक पिपासाओ को बहुत बढ़ा दिया ह।

मनुष्य के जीवन में एक समय आता ह जब उसका अन्तरतम विक्षुब्ध हो उठता ह। ऐसे समय उसे धार्मिक अनुभूति ही शायद उस घात पर सकती ह। अनेक बार हमारा वातावरण हमें ऐसे काम करने पर मजबूर कर देता ह जिनके

लिए हम लज्जा होती ह, पश्चात्ताप होता ह। एसे क्षणो में धार्मिक अनुभूति ही हम जीवित रख सकती ह, सान्त्वना दे सकती हैं। धार्मिक अनुभूति ही वह भावना ह जो हमें धन मान यश आदि की प्रतिद्वन्द्वी भावनाओ से ऊपर उठा सकती ह, एक उच्चतर लक्ष्य को प्रस्तुत कर एकात्मक शक्ति उत्पन्न कर सकती हैं। इसस हमें व्यक्तित्व क एकीकरण में सहायता मिल सकती है और हम जीवन के व्याघातों में अन्तर सतुलन स्थापित कर सकते हैं। कभी-कभी हमारे जीवन में तनाव इतना बढ जाता है कि उसे किसी मार्गदर्शक की आवश्यकता अनिवाय हो जाती ह।

मानव प्राणी धार्मिक अनुभव क्यो चाहते हैं, यह एक मनोरजक प्रश्न है। शायद सस्कृति से मानव प्रकृति का सतुलन स्थापन ही इसका मुख्य कारण है। विभिन्न प्रकार के दबाव, उद्दीपन, प्रलोभन, चिन्ता मानसिक सघष हमारे सामाजिक जीवन का परिणाम ह असतोष के द्योतक हैं और सस्कृति के साथ मानव प्रकृति के असतुलन को सूचित करते ह। यदि धम एसी स्थिति में मानव-मन को शान्ति प्रदान करता है सहारा देता है, उच्च लक्ष्य पर चलने की प्रेरणा देता है तो धम की आवश्यकता है। अनुभूतिशील धम ने इस आवश्यकता को पूरा किया है। पर सस्थात्मक धम ने प्राय ससार में अशांति घृणा और सघर्ष की सृष्टि की ह। सस्थात्मक या सगठित धम विश्वासो पर आधारित और प्रतिगामी रहा है। धार्मिक अनुभूति इससे पृथक चीज ह। कुछ लोगो का ख्याल है कि हम बिना धम क समाज को चला सकत हैं। यह लोग धार्मिक अनुभूति को भूल जाते ह और धार्मिक विश्वास पर चल जाते ह।

धर्म और सामाजिक प्रश्न

व्यक्तिगत आचार धम का प्रमुख विषय ह। प्राय प्रत्येक धम में दया उदारता और प्रेम की शिक्षा दी गई है। धम व्यक्तिगत आचरण की नतिकता निर्धारित करता ह। क्या उसे सामाजिक आचरण की नतिकता का भी निर्धारित करना चाहिए? व्यक्तिगत सम्पत्ति जमींदारी सूदखोरी, मजदूर सगठन, मजदूरी निर्धारण बेकारी, बीमा राष्ट्रीयकरण, कुछ ऐसे ही प्रश्न ह। विभिन्न देशो का अनुभव यह बतलाता ह कि इन प्रश्नो को हम व्यक्तिगत सदाचरण पर बल देकर नहीं सुलझा सकते। जहा विरोधी स्वार्थों का प्रश्न आता है, वहां सामूहिक कार्यवाही की जरूरत होती है। सामूहिक कायवाही के अभाव में यदि कुछ व्यक्ति सदाचार को मानवता की भावना को व्यावहारिक स्वरूप देने लगें, जब कि अन्य सब लोग उनका अनुकरण नही कर रहे है तो उनका तो दिवाला ही निकल जाय। एसी स्थिति में सामाजिक हस्तक्षेप की आवश्यकता पडती है।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि सभ्य समाजो में धर्म ने व्यक्तिगत आचार

पर वहुत वल दिया है, सामाजिक व्यवस्था में सधार का कोई जिक्र नही किया है। इसका यही कारण ह कि धम विद्यमान सामाजिक व्यवस्था को सत्य और सही मान लेता ह। गरीबो की गरीबी और असहायता की जिम्मेदारी सामाजिक व्यवस्था पर न हो, उनके भाग्य पर पडती ह जिससे वह केवल किसी करिश्मे द्वारा ही छुटकारा पा सकते ह। इस तरह हम देखते ह कि सामाजिक प्रश्नो को सुलझाने में धम सवथा असफल रहा ह और उसने सदा विशिष्ट शासक वग के स्वार्थों का ही सरक्षण किया ह। धम के प्रति वतमान उदासीनता और विरोध का यह एक बडा कारण है। इसीलिए पाश्चात्य देशो में तो कम-से-कम चच ने सामाजिक सुधार में दिलचस्पी दिखाई है। भारत में इस दष्टि से अभी कोई जागृति दृष्टिगोचर नहीं होती और ऐसा प्रतीत होता ह कि धार्मिक सस्थाए किसी भी प्रकार के सामाजिक सुधार के सवथा विरुद्ध ह। रामकृष्ण मिशन और आय समाज जैसी इक्का दुक्का ने अवश्य इस दिशा में कुछ महत्वपूण काय किया है।

बातें मिलती-जुलती है। एक बात ध्यान देने की है कि उन जातियों में जहां आने जाने के साधन सीमित और भोजन को सुरक्षित रखने के साधन अविकसित हैं शिकार और फल-संचय से माल भर गुजर करना बड़ा कठिन हो जाता है। इसीलिए कभी-कभी एक वर्गमील और कहीं-कहीं पर पन्द्रह-बीस वर्गमील में एक आदमी का पाया जाना आश्चर्य की बात नहीं है। शिकारी लोग प्रायः अकेले परिवारों में नहीं रहते वह छोटे छोटे समुदायों और समूहों में रहते हैं, जो बीसियों व्यक्तियों या परिवारों से मिलकर बने होते हैं।

परिवार और समुदाय के आर्थिक कार्य

परिवार वस्तुओं के उत्पादन और उपभोग की महत्वपूर्ण संस्था है। परिवार के स्त्री-पुरुष बाहर से जो खाद्य वस्तुएं लाते हैं उन्हें रांधना प्रायः गृह पत्नी का काम होता है। फिर केवल परिवार ही उत्पादन और उपभोग का अकेला संस्था नहीं है। कई बार भैंसों या अन्य जानवरों का शिकार करने के लिए एक परिवार के सदस्यों से अधिक बहुत-से लोगों की जरूरत होती है। कभी-कभी यह शिकारी दल हफ्ता और महीना बाहर रहते हैं। मुख्यतया उपभोग (Consumption) की इकाई परिवार ही होती है पर उत्सवों और त्यौहार के मौकों पर सामूहिक भोजन का आयोजन होता है। इस तरह हम देखते हैं कि परिवार और समुदाय दोनों ही उत्पादन और उपभोग की इकाई का काम करते हैं।

प्रारम्भिक पूंजी (Capital)

शिकारी परिवारों और समुदायों की पूंजी बहुत ही सरल और अल्प थी। भाले, तीर कमान, मछली पकड़ने के कांटे नावें और छद्मवेश उनमें मुख्य थे। मछली, चिड़िया और बड़े जानवरों को पकड़ने के जालों की अनेक किस्में थीं।

व्यापार का उद्गम

प्रारम्भिक आरण्यक समुदाय आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर थे और परिणामतः, व्यापार पर आश्रित न थे। प्रायः विभिन्न बस्तियों के बीच का फासला काफी था और यातायात के साधन अविकसित थे। शिकारियों के पास प्रायः बोझा ढोने वाले पालतू जानवर न थे। इसलिए विभिन्न कबीलों के बीच व्यापार संभव न था। व्यापार में दूसरी कठिनाई मान्य विनिमय के माध्यम (Medium of Exchange) का अभाव था। सजावटी किस्म के टिकाऊ पत्थर, कौड़ियां आदि मुद्रा का काम करती थीं। पड़ोसी कबीलों में ही कुछ व्यापार होता था जिसका आधार वस्तुओं की अदल-बदल (Barter) था। एक कबीले में मछली, गिरियां खालें आदि की कमी व्यापार को प्रेरित करती थी। किन्तु सामान्यतः शिकारी लोगों के जीवन में व्यापार का नगण्य स्थान था।

ऐसा मालूम होता है कि कुछ शिकारी लोग व्यापार करना बिल्कुल नहीं

जानते। जब गोरे व्यापारी कुछ आरण्यका मे चीजें वदल्ने गये तो उन्ह बड़ा आश्चय हुआ कि कोई उनकी वस्तुए भी वदल सकता ह। कुछ स्थाना में मौन-व्यापार की प्रथा प्रचलित हैं। एक निश्चित स्थान पर एक दल, जो वस्तुए वह दना चाहता ह छोड जाता ह। वाद मे वह आकर देखता है कि वह वस्तुए गायब ह और उनकी जगह दूसरी वस्तुए रखी हुइ ह। इससे अनमान होता ह कि व्यापार मनुष्य की मूल प्रवत्ति (Instinct) या उसके लिए प्राकृतिक चीज नहीं है। इसका आविष्कार हुआ ह, यह सीखी गई ह और संस्कृति के विकास में इसका वाद में आगमन हुआ ह।

उपहार विनिमय का माध्यम (Gift Medium of Exchange)

वहुत-से समुदायों में उपहार विनिमय के माध्यम का पाट अदा करते ह। मुद्राविहीन समाजा में उपहार मुद्रा का सामाजिक प्रत्य ह। इस तरह जब कभी किसी के यहा शादी-व्याह या कोई अन्य उत्सव होता ह ता लोग उस उपहार देते ह वाद में उनके यहा ऐसा अवसर आने पर उन्ह भी बदले में उपहार दिए जाते थ। यह पद्धति हमारे यहा के गावा के रिवाज से वहुत मिलता जुलती है। जसा कि हमारे यहा भी रिवाज है, प्रारम्भिक संस्कृतियो क लोग इस वात को खूब अच्छी तरह याद रखत ह कि कितनी कीमत की वस्तु उन्ह भेंट की गई और अगर कोई एसा कार्य ह जो कि सामूहिक सहयोग स किया जाता है, जैसे कि छप्पर का वनाना तो उसमें दूसरे व्यक्ति ने कितने उत्साह या आलस्य से सहयोग दिया। अपनी वारी आने पर उपहार या सामूहिक सहयोग देते समय इन सब वातो का ध्यान रखा जाता ह।

इस तरह आरण्यक समाजा में लेन-देन विनिमय की एक प्रचलित रीति है। वस्तु का मूल्य मुद्रा के माप को सहायता क विना प्राप्तकर्ता द्वारा याद रखा जाता है। वहा पर कोई मजदूरी नहीं हाती किन्तु श्रम के सम्बन्ध में यह साधारण नियम हाता है कि यदि तुम मेरा मदद कराेगे तो म तुम्हारी मदद करूंगा।

आतिथ्य (Hospitality) एक आर्थिक सेवा

आरण्यक जातियों में आतिथ्य सार्वभौम है। उनमें आतिथ्य वही काय करता ह जो कि आजकल के घर करते ह। उपहार की भांति आतिथ्यप्रदान करने का काय भी एकतरफा न हो कर दोतरफा ह। प्रत्येक मुसाफिर को भो न और आश्रय पाने का अधिकार प्राप्त हाता है। जब तक कि दूसरे के पास भोजन ह किसी व्यक्ति का भूखे नहीं मरने दिया जाता। कभी कभी वूढ़े या सम्स्त बीमार व्यक्तियों को मरने छोड दिया जाता है। किन्तु वह विशेष अवस्था ह जिसमें जान-बूझ कर ऐसा किया जाता है।

आतिथ्य व्यवहार कभी-कभी अपनी चरम सीमा का पहुच जाता ह। यह

तो उसने उससे एक चौथाई अधिक कीमत वसूल की किन्तु जब लिण्टन ने उसी कीमत पर सारा स्टाक बेचने को कहा तो उसने साफ इन्कार कर दिया और कहा कि वह दिन भर खाली बैठा क्या करेगा। मेक्सिको में एक अमरीकी राजदूत ने दो डालर देकर एक हाथ की बनी कुर्सी खरीदी किन्तु जब उसने वैसी ही दस कुर्सियाँ और खरीदने की इच्छा प्रकट की तो उसे उसकी कीमत पचीस डालर बताई गई और उसका कारण यह बताया गया कि दस कुर्सियाँ बनाने में बनाने वाले का दिल बहुत ऊब जायेगा।

सामान्यतः संस्कृति का आर्थिक जीवन से सम्बन्ध

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि आरण्यक समाज में आर्थिक क्रियाएं अन्य संस्थाओं से घनिष्ठतया सम्बन्धित होती हैं। पोटलाश उत्सव और त्यौहार से सम्बद्ध होता है। विवाह या उत्सवों पर उपहार देकर वस्तुओं के विनिमय को सम्पन्न किया जाता है। कभी-कभी शिकार धर्म और जादू-टोने से भी घनिष्ठतया संयुक्त होता है। कुछ पशु कबीले के गणचिन्ह (Totem) बन जाते हैं और वह अवध्य समझे जाते हैं। इस तरह हम देखते हैं कि विनिमय, व्यापार, उत्पादन और वितरण से सम्बद्ध प्रक्रियाएं समुदाय की मान्यताओं के अनुरूप होती हैं। आरण्यक आर्थिक जीवन परिवार, धर्म, सामुदायिक परम्परा और रीति से घनिष्ठतया सम्बन्धित है।

आर्थिक संस्थाओं का विकास

आर्थिक जीवन और भौतिक संस्कृति

आर्थिक जीवन केवल सामुदायिक मान्यताओं और आचार से ही सम्बन्धित नहीं है वह औजारों और आविष्कारों का भी परिणाम है। दो आविष्कारों ने धीरे धीरे शिकारी को समाप्त कर दिया और उन आर्थिक प्रक्रियाओं को तेज कर दिया जिनसे हम परिचित हैं। पशुओं विशेषकर बड़े ढोरों का पालन और कृषि, यह वे दो आविष्कार थे। शिकारी लोग शिकार में सहायता के लिए कुत्ते तो पालते थे, पर बड़े जानवरों के उपयोग से अपरिचित थे। पौधे लगाने और पशु पालने ने अन्य खोजों और आविष्कारों को उत्तेजित किया। हम यह कह सकते हैं कि आर्थिक संगठन का क्रम बहुत कुछ भौतिक संस्कृति के आविष्कारों पर निर्भर है।

ऐसा ख्याल किया जाता है कि स्त्रियों के प्रयत्नों से कृषि और पुरुषों के प्रयत्नों से पशुपालन का जन्म हुआ। कृषि ने खाद्यपूर्ति में पर्याप्त स्थिरता और निश्चितता ला दी। कृषि के करने के साधन पशुओं को पालने की तुलना में अधिक विस्तृत थे। इसीलिए पशुपालकों की तुलना में कृषि पर अधिक व्यक्ति निर्भर हो सके। हल के विकास और पशुपालन के प्रसार ने भोजन प्राप्ति के दोनों

तराकों को पास ला दिया, जैसा कि इतिहास के एक काल में प्रकट हुआ।

प्रारम्भिक कृषि

स्थिरवास, निश्चित खाद्यपूर्ति और बड़े समुदाय का विकास खेती की प्रारम्भिक अवस्था में कुदाल या अन्य कोई नोकीला औजार, न कि हल, खेती के मुख्य यन्त्र थे। कुदाल-कृषि (Hoe-culture) शिकार की तरह सरल चीज न थी, बल्कि एक कला थी। नई अर्थ-व्यवस्था का मुख्य परिणाम भोजन की खोज में इधर उधर घूमने के बजाय एक जगह बसना था। कृषि ने खाद्यपूर्ति को बहुत सरल और निश्चित किया, बड़े समुदायो का भरण पोषण सम्भव बनाया तथा जन-सख्या के घनत्व में वृद्धि की।

भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व कृषि ने भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व पर बल दिया। यद्यपि बहुत बार कृषि संस्कृतियों में जमीन सारी बिरादरी की होती थी और बाद को उसे अलग अलग परिवारों में बाट दिया जाता था। पर फसल उन व्यक्तियों की सम्पत्ति होती थी जो कि उन्हें पैदा करते थे। कुछ काम जैसे बुवाई या गहराई सामूहिक रूप से किये जाते थे। इस भांति सामूहिक रूप से कई परिवार भोजन के मालिक होते थे।

अन्य आविष्कारों को प्रोत्साहन कृषि के स्थिर जीवन के साथ अन्य आविष्कार भी जुड़े हुए हैं। बर्तन बनाने की कला प्राय कृषि के साथ ही प्रकट हुई। खालो ऊन या सूती कपड़े का बुनना भी कृषि-संस्कृतियों में प्रारम्भ हुआ। शिकारी लोग तो खाला या फरो से अपनी आच्छादन की आवश्यकता को पूरा कर लेते थे। कृषि से सम्बद्ध निश्चित निवास तथा विकसित आविष्कारों ने गृह निर्माण की नींव डाली। यद्यपि जैसा कि प्रत्येक सांस्कृतिक तथ्य के साथ होता है इसके अपवाद भी मिलते हैं।

श्रम विभाजन का सूत्रपात कपड़े, बर्तन टोकरियाँ फसलो आदि की वृद्धि के साथ सम्पत्ति जमा होने लगती है और पर्याप्त महत्त्व धारण कर लेती है। इसके अतिरिक्त, इन कार्यों द्वारा चाहे जाने वाली विशेष योग्यता श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण को जन्म देती है। इस तरह विनिमय के अनुकूल स्थिति उत्पन्न होती है और व्यापार की शुरूआत होती है।

पशु-पालन

पशु-पालन से पहले की तुलना में खाद्यपूर्ति की अनिश्चितता कम हो गई। यह ठीक है कि सभी पशुपालक जातियां दूध या उससे बने पदार्थों से परिचित नहीं होतीं। उन्हें खोजने और अपनाने में समय लगता है। फिर भी पशु-पालन का बड़ा लाभ यह है कि खाना सदा साथ रहता है न तो इसमें शिकार की अनिश्चितता रहती है न कमल के मारे जाने का भय। झुण्डों के बढ़ जाने के

साथ विनिमय और व्यापार के लिए सम्पत्ति में वृद्धि हो जाती है। कुछ दशाओं में पशु पालन पशुओं के झुण्डों का पीछा करने से विकसित हुआ, जैसे लापावासी रेंडियरों के झुण्डों का पीछा करते हैं। ऐसी स्थिति में पशु अर्ध-जंगली अवस्था में रहते हैं।

पशु पालन स्पष्टतः पुरुषों का कार्य है। इसीलिए पशु-पालकों में प्राय पुरुषों का प्रभुत्व होता है जब कि कृषि-संस्कृतियों में इससे उल्टा होता है।

जहां तक पशुपालक लोगों का झुण्डों के लिए घूमने का सम्बन्ध है उनका जीवन एक जगह बसे कृषकों के बजाय शिकारियों से अधिक मिलता-जुलता है। वह अपने साथ अधिक बर्तन भांडे नहीं रखते। वह ऐसे मकान बनाते हैं जिन्हें वह आसानी से समेट सकें और एक जगह से दूसरी जगह ले जा सकें। बनजारे पशु-पालकों में लूट-पाट, पशुओं की चोरी, अनाज के भंडारों पर हमला करने की प्रवृत्ति बहुत स्वाभाविक थी। घोड़े के पालन ने इसे बहुत सरल बना दिया। घोड़े से आक्रमण कर तेजी से भाग जाना बहुत आसान था। पशुपालक संस्कृति की लड़ाई में घोड़े का वही स्थान था जो कि आजकल तोपों या हवाई जहाजों का है।

दस्तकारी का विकास

पशु पालने और और अन्न पैदा करने के विकास के साथ-साथ अन्ततोगत्वा पशुपालन और कृषि संयुक्त हो गये। किसान भेड़ें, बकरियां, ढोर और घोड़े पालने लगे विशेषतः जहां पर पशुओं द्वारा खींचे जाने वाले हलों का आविष्कार हुआ, ऐसा ही हुआ। हलधर-संस्कृति (Plough Culture) की अवस्था में सम्पत्ति पर्याप्त विकसित हुई। साथ ही खेती की जमीन, यन्त्रों और उत्पादन पर व्यक्तिगत स्वामित्व की शुरूआत हुई। पशुओं द्वारा संचालित हलों की खेती ने खाद्य-पूर्ति को अधिक सुनिश्चित कर दिया। कुछ स्थानों में कृषि-पदार्थ आवश्यकता से अधिक भी होने लगे। जहां नावें या घोड़े उपलब्ध थे वहां उन्हें दूर ले जाकर विक्रय करना संभव हो गया। इसी बीच विभिन्न कलाओं में भी उन्नति हुई। बर्तन बनाने में सुधार हुआ। तकली की कताई के स्थान पर चरखे का आविष्कार हुआ।

हलधर-संस्कृति के विकास तक दस्तकारी एक अच्छे उद्योग के रूप में विकसित हो गई। प्रारम्भिकतम दस्तकारी की वस्तुएं वह थीं जो जानवरों के शिकार करने और फंसाने के काम आती थीं। यहां तक कि हिम युग में भी हमें नाना प्रकार के काटने छीलने और घिसने के पत्थर के औजारों के दर्शन होते हैं। जब तक कुदाल का स्थान हल ने लिया विभिन्न प्रकार की दस्तकारी उत्पादक और उपभोग्य वस्तुएं निर्मित होने लगीं। बोने, काटने गाहने, पीसने, पशु रखने, खाद्य-पदार्थ बनाने, खाना पकाने परसने घर की रक्षा और सजावट करने, फर्नीचर

बनाने, सीने, आग और रोशनी जलाने कताई, बुनाई, रगाई, टोकरिया बनाने के उपकरण इसी समय की देन थे।

दस्तकारी के विकास का आर्थिक महत्त्व

दस्तकारी के विकास का पहला परिणाम सम्पत्ति की वृद्धि था। मानव की सम्पत्ति और सम्मान की इच्छा के सघर्ष के बीच सम्पत्ति की इच्छा जोर पकडने लगा। दूसरे, जितनी ही वस्तुओ और उनकी किस्मो की सख्या बढ़ी उतनी ही श्रम की आवश्यकता बढ़ी। इस तरह, उम्र और स्त्री-पुरुष के दायरे को छोड श्रम विभाजन का सिद्धान्त अधिक विस्तृत हुआ।

श्रम विभाजन का विकास ताबे टीन, कासे और लोहे के आविष्कार ने विशिष्टीकरण को और भी बढ़ा दिया और विभिन्न प्रकार के धातु-हथियारों, औजारो और जेवरो के निर्माण को प्रोत्साहित किया। बहुत-सी ऐसी चीजें, जो पहले मिटटी, लकडी, पत्थर, घास या मनको से बनाई जाती थी, अब धातु से बनाई जाने लगी। पहले पदार्थों की तुलना म धातु का वितरण असमान था और साथ ही इससे पक्का माल बनाने की प्रक्रिया अधिक जटिल थी। उस पर दक्षता प्राप्त करना सुगम न था। परिणामत, अधिकाधिक विशिष्टीकरण हुआ। इस विशिष्टीकरण ने विनिमय को और अधिक अनिवाय बनाया।

दूर प्रदेशो म विनिमय का अथ व्यापार और यातायात (*Transport*) में वृद्धि हु। जो स्थान नदिया के समीप थे, वहा नाव यातायात का अच्छा साधन सिद्ध हुइ। घोडा के पालने के पश्चात् भी यह कायम रही। मदानो को छोडकर बिना अच्छे रास्ता के जगलो में घोडे की सवारी सुविधाजनक न थी। मानव जाति में सडको का निर्माण बहुत बाद की चीज है।

व्यापारिक और औद्योगिक नगरों का उद्गम दस्तकारी में विशिष्टीकरण और यातायात के विकास के साथ व्यापार में वृद्धि हुई। इसने नगरा की नीव डाली। नगरो का यह प्रमुख लक्षण है कि वह अपनी खाद्य आवश्यकताओ को स्वय पूण नही कर सकते। उन्हें बाहर से अन्न मगाना पडता है। इसके लिए यातायात और व्यापार अनिवाय होता है। किन्तु नागरिक मुफ्त म अन्न नही पा सकते, अत उन्हे कपडे, धातु चमडे इत्यादि कच्चे माल की ऐसी वस्तुए बनानी पडती है, जिनका कि व विनिमय कर सकें। प्राय जल मार्गों पर स्थित ऐसे प्रारम्भिक शहर व्यापार के केन्द्र बन गये। प्राचीन भारत में मौर्य-काल में पाटलीपुत्र, प्रयाग, काशी, ताम्रपर्णी, ताम्रलिप्ति ऐसे ही नगर थे। वस्तुए प्राय किसी एक निश्चित स्थान पर एकत्रित कर दी जाती थीं। वहीं पर उनका क्रय-विक्रय होता था। कई स्थानों पर इसके लिए सामयिक मेलो और पैंठो का आयोजन भी होता था। अक्सर व्यापार अदल-बदल द्वारा होता था। फिर भी कुछ ऐसी वस्तुओं का जिनकी

माग प्राय रहती थी, अधिक विनिमय होता था। जो ऐसी वस्तुएं हल्की और टिकाऊ होती थी, जसे कि सोना-चादी के अलकार, उन्होंने मुद्रा (Money) का रूप धारण कर लिया। नागरिक जीवन और उसके व्यापार के अनुपान ने मुद्रा के प्रयोग को प्रोत्साहित किया।

आर्थिक सगठन का विकास

आविष्कारों द्वारा सभव उपभोग्य वस्तुओ के परिवर्तित उत्पादन न उसके अनुकूल आर्थिक सगठन को विकसित किया। भौतिक सस्कृति का जिक्र करते समय हम कुछ आर्थिक सस्थाओ का जिक्र कर चुके हैं। आदिकाल में उत्पादन प्राय पारिवारिक सगठन में होता था, जहा आयु के अनुसार और स्त्री-पुरुष के बीच कुछ श्रम विभाजन अवश्य विद्यमान था। समुदाय कुछ कार्यों जसे कि शिकार खेलने, बोने या भूमि को वितरित करने में, पारिवारिक सगठन का हाथ बटाता था। समुदाय अपने सामजिक रिवाजो द्वारा आर्थिक तथा अन्य समस्त आचार की व्यवस्था करता था, जिससे कि लोग अति स्वार्थी न हो जाय। विभिन्न सस्कृतियो में विभिन्न अनुपात में उपहारो का आदान प्रदान, पारस्परिक सहयोग और भूमि का सामूहिक प्रयोग प्रचलित था। शिकारी अवस्था आर्थिक जीवन पर परिवार और समुदाय का नियन्त्रण था। हलधर और पशु-पालक सस्कृतियो में परिवार सगठन सम्मिलित खेती पर अधारित हुआ। किसान गावों में मिलकर रहते थे अत वहा पर समुदाय ने उनके आर्थिक जीवन को प्रभावित किया।

सामन्तशाही सगठन (Feudal Organisation)

आधुनिक अवस्था के आगमन से पहले, विशेषकर जहा केन्द्रीय सरकार नही थी लुटेरो से रक्षा के लिए सामन्तशाही व्यवस्था का जन्म हुआ। अधिक सम्पत्ति और भूमि के मालिक बड़े किसान दूसरे निर्बल-निधन किसानो स कर वसूल करते थे और उन्हें बदले में रक्षा का आश्वासन देते थे। वसूल हुए कर का बडा अश कुछ सशस्त्र सनिको को रखने में व्यय हो जाता था। सनिको की सहायता से सामन्त प्रभु (Lords) आस पास के प्रदेशो को भी विजय करते थे और उनसे भेंटें प्राप्त करते। सम्पत्ति के कुछ व्यक्तियो में केन्द्रित हो जाने स श्रम विभाजन का और अधिक विकास हुआ। सामन्तशाही व्यवस्था केवल सभ्य सस्कृतियो तक ही सीमित नही थी। हमें प्रागक्षर सस्कृतियो में भी प्रारम्भिक या विस्तृत रूप में इसके दर्शन होते हैं।

दस्तकारी सघो (Guilds) का निर्माण सामन्तशाही के उदय के शीघ्र बाद ही प्राय नगरों के आर्थिक और राजनतिक सगठन का विकास हुआ। विशिष्टीकरण, व्यापार और यातायात का विकास इसके मुख्य सहायक थे। नगरो में पक्के माल का निर्माण होने के कारण छोटे छोटे कारखानो में दस्तकारों में

बहुत निकट और घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित हुआ और इस तरह दस्तकारी संघों (Guilds) का निर्माण सम्भव हुआ। दस्तकारी संघ ही वर्तमान श्रम संघों (Trade Unions) के अग्रणी थे। उस समय के दस्तकारी संघ ठीक मजदूरों के संगठन न होकर, मालिकों के संगठन थे। उस समय तक मजदूर अपने औजारों के स्वयं मालिक थे और उनकी तथा उनके मालिकों की संख्या के अनुपात में, जैसा कि आज दिखाई देता है, बहुत अन्तर न था।

आधुनिक अर्थ-व्यवस्था

पूंजीवाद (Capitalism)

औद्योगिक क्रान्ति का हाथ सामन्तवाद के क्षय और औद्योगिक क्रान्ति के उद्भव ने आधुनिक पूंजीवाद की नींव डाली और मुक्त व्यापार (Free trade) तथा राज्य द्वारा अल्पतम हस्तक्षेप (Laissez faire) के तत्कालीन उदारवादी सिद्धान्तों ने उसे पोषित किया। इंगलैंड औद्योगिक क्रान्ति में अग्रणी था। भाप से चलने वाले नये यन्त्रों ने उत्पादन के अत्यन्त कुशल और कीमती साधन उपस्थित किये। इन साधनों का स्वामित्व साधारण श्रमिकों के बूते के बाहर था, अतः धनिक पूंजीपतियों ने इन्हें अपनाया। इन नये यान्त्रिक आविष्कारों की सहायता से उत्पादन अत्यन्त सस्ता और अधिक होने लगा। जो वस्तुएं किसी समय केवल कुछ गिने-चुने लोगों को उपलब्ध थीं वह जनसाधारण के उपभोग की वस्तु बन गईं। आविष्कारों की कृपा से दस्तकारी निर्माण भाप से चलने वाले यन्त्रों के आगमन से पहले ही काफी उन्नति कर चुका था। वाष्पशक्ति ने इसे नया प्रोत्साहन दिया। वस्तुओं के परिमाण और वैचित्र्य ने उपभोग और उत्पादक वस्तुओं के भेद को उत्पन्न किया।

बड़ी पूंजी के कारखानों की स्थापना स्वतन्त्र हाथ के कारीगर नये यन्त्रों की प्रतियोगिता के सामने न टिक सके। उन्हें अपनी जीविका के लिए वृहत् पूंजी से स्थापित कारखानों में शरण लेनी पड़ी। विपुल पूंजी का प्रयोग नई अर्थव्यवस्था का मुख्य लक्षण था, अतः इसे पूंजीवाद का नाम दिया गया। विपुल पूंजी का प्रयोग ही केवल इस नई प्रवृत्ति की प्रमुख विशेषता न थी वरन् तत्कालीन सामाजिक विचारधारा भी इसका अभिन्न अंग बन गई। इस विचारधारा को अल्पतम हस्तक्षेप नीति का नाम दिया जाता है। इसके अनुसार व्यक्तियों और व्यापारियों की अनवरुद्ध प्रतियोगिता में ही समाज और व्यक्तियों का कल्याण निहित है। अतः राज्य को आर्थिक क्रियाओं, उपभोग, वितरण, व्यापार आदि किसी भी क्षेत्र में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।

उद्योग पर परिवार के प्रभुत्व का ह्रास सामन्तवाद में दस्तकारी, व्यापार, यातायात पर परिवार का स्वामित्व था। पूंजीवादी व्यवस्था के अन्तर्गत एक परिवार के लिए उत्पादन के यन्त्रों को जुटाना सम्भव न रहा। परिणामतः दो या

अधिक परिवार की साझेदारी शुरू हुई। स्वभावत उद्योग पर परिवार का प्रभाव घटने लगा।

संयुक्त पूंजी की कम्पनियों (Joint Stock Companies) का जन्म और स्वामित्व और प्रबंध में परिवर्तन उद्योग में प्रत्येक साझीदारका अपरिमित दायित्व होता था। इसीसे साझीदारों द्वारा रुपया लेना सम्भव था। नये आविष्कारों ने उत्पादन यन्त्रों के मूल्य को और भी बढ़ा दिया और अब कुछ साझियों द्वारा भी उद्योग को चलाना सम्भव न रहा। ऐसी परिस्थिति में एक ऐसे सामाजिक आविष्कार की आवश्यकता हुई जो पूंजी की बढ़ती हुई माग को पूरा कर सके। संयुक्त पूंजी की कम्पनियों (Joint stock companies) ने इस माग को पूरा किया सबका, हजारों व्यक्तियों की थोड़ी थोड़ी पूंजी को जोड़कर विशाल पूंजी एकत्र हो गई। इन कम्पनियों में हिस्सेदारों का दायित्व उनके हिस्से की रकम तक ही सीमित था। परिमित दायित्व ने बहुत लोगों को हिस्सेदार बनने को प्रोत्साहित किया। इसका उत्पादन के यन्त्र का स्वामित्व पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ा। इससे उत्पादन यन्त्र का स्वामित्व एक व्यक्ति के हाथ में न रहकर सकड़ों-हजारों हिस्सेदारों के हाथों में चला गया। इसका एक और भी महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि अन्ततोगत्वा उद्योग का प्रबन्ध स्वामियों के हाथ में न रहकर कुशल प्रबन्धकों के हाथ में आ गया।

क्रमश मजदूरों और प्रबन्धकों की शक्ति में वृद्धि दूसरी ओर इससे सकड़ों हजारों मजदूरों को एक साथ काम करने का अवसर मिला। पूंजीपतियों के शोषण से बचने के लिए और अधिकतम मजदूरी निश्चित करने के लिए मजदूर संगठनों की आवश्यकता अनुभव हुई। तत्कालीन उदारवादी विचारधारा ने भी इसमें सहयोग दिया। इस तरह धीरे धीरे उत्पादन यन्त्र पर पूंजीपतियों का जोर घटने लगा और प्रबन्धकों और मजदूरों का जोर बढ़ने लगा। पूंजीवाद के अन्दर यह रूपान्तरण मुख्यत पूंजीपतियों और मजदूरों के संघर्ष का परिणाम न होकर उत्पादन-संगठन के नूतन यान्त्रिक परिवर्तनों का परिणाम था।

कृषि और पूंजीवाद

दस्तकारी की तुलना में पूंजीवाद ने कृषि को बहुत कम प्रभावित किया। वाष्प शक्ति खेती के लिए अनुकूल न थी। इसलिए औद्योगिक देशों में एक लम्बे समय तक मानव पेशियों पशुओं और वायु की शक्ति से खेती होती रही। पेट्रोल कम्बशन इंजिन के आविष्कार ने ऊबड़ खाबड़ भूमि पर यन्त्रों की सहायता से खेती को सभव और सस्ता बनाया। बीसवी सदी के मध्य में अब धीरे धीरे यान्त्रिक शक्ति खेती में आ रही है। अमरीका योरोप और रूस के किसान खेतों की बुवाई कटाई, और गहाई के लिए ट्रैक्टरों सीअरों मोअरों और थ्रेशरों का प्रयोग करने

लग ह। फिर भी कृषि म लगी पूजी की मात्रा बहुत कम ह। अमरीका में कृषि भूमि और किसाणा के मकाना की कीमत का कुल ७ प्रतिशत अश कृषि का पूजा म लगा हुआ ह। खेती में श्रमिको की मजदूरी के रूप म भी बहुत कम पूजी की जरूरत पडती ह क्योकि अधिकतर किसान अपने परिवार के सदस्या द्वारा ही सारा काम कर लेते हैं। उन्ह बहुत कम बाहरी मजदूरो को लगाना पडता ह।

पूजीवाद में उद्योग की भाति कृषि बडी सयुक्त पूजी की कम्पनियो में सगठित नही हो सकी। यह बहुत कुछ आत्मनिभर ह। इसी कारण इससे सम्बन्धित साख या विक्रय सस्थाओ का समुचित विकास नहीं हुआ। यातायात के विकास ने कृषि उत्पादन को परिवार के लिए न रख कर बाजारो के लिए बना दिया, यद्यपि कृषि फाम अभी भी बिखरे और असगठित रहे। परिणामत, आर्थिक मन्दी में कृषि पर ही सबसे अधिक चोट होती हैं। इसके अतिरिक्त हाल में कृषि द्वारा यन्त्रो का अपनाना बडी सख्या में खेती से श्रम को हटाने की ओर सकेत कर रहा हैं।

पूजीवाद में सम्पत्ति का उत्पादन

पूजीवाद के अन्तगत वस्तुओ के उत्पादन में अभूतपूव उन्नति हुई। बडे पमाने के उत्पादन ने जनता क लिए उत्पादन की नीव डाली। पुरानी वस्तुआ का उत्पादन बढा, नई-नई वस्तुओ का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। विकसित यातायात और विनिमय की सुविधाओ ने उसे और भी प्रोत्साहित किया। अमरीका जसे देश में आर्थिक प्रगति की दर का औसत २ प्रतिशत प्रतिवष रहा और दो सौ वष में प्रति व्यक्ति औसत आय चार गुणा से भी अधिक बढ गई। इस उन्नति का श्रेय पूजीवाद को दिया जाता ह।

वास्तव में जनसख्या प्राकृतिक साधनों और आविष्कारा पर समय का उत्पादन निभर करता हैं। चूकि पूजीवादी व्यवस्था के अन्तगत देशा की जनसख्या अपीर्याप्त बढ़ी इसलिए यह स्वाभाविक था कि वस्तुओ का उत्पादन बढता। पर महत्त्वपूण प्रश्न यह हैं कि क्या अन्य किसी सामाजिक व्यवस्था में यही जनसख्या और आविष्कार रहने पर क्या यही या इससे उत्तम परिणाम उपलब्ध नहीं किया जा सकता था? इसका निश्चित उत्तर देना कठिन हैं।

भारतवष में पूजीवाद अभी पूरी तरह विकसित नही हो पाया ह। वह अभी प्रारम्भिक अवस्था में है। अभी भी यहां कृषि और बहुत-से उद्योगा में सामन्तशाही व्यवस्था के अवशेष बाकी हैं। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि पिछले सौ साला में जनसख्या की वृद्धि के बावजूद प्रति व्यक्ति उत्पादन यहां पर बढ़ा ह।

पूजीवाद म सम्पत्ति का विभाजन

कुछ व्यक्तियो की व्यक्तिगत सम्पत्ति या पूजी से लाभ अर्जन की प्रेरणा

में अन्तर्गत बड़े पैमाने पर पूंजीवादी उत्पादन शुरू हुआ था। ऐसी स्थिति में लगान, मजदूरी और लागत का निकालकर जो कुछ बच रहता था, वह उद्योगपति का मुनाफा था। सामान्यत उसकी मात्रा एक सामान्य मजदूर की आय की तुलना में सैकड़ों और हजारों गुणा होता थी। इस तरह पूंजीवाद में व्यक्तियों की आय में अत्यन्त अधिक अन्तर विद्यमान रहता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति और उद्योगों की आय विपुल आय के मुख्य साधन हैं। विभिन्न व्यक्तियों की आयों के अत्यधिक अन्तर में योग्यता गौण और सम्पत्ति का असमान वितरण मुख्य कारण है। यह बात मार्के की है कि बराबर आय वाले विभिन्न पारिवारिक वर्गों की आय की वक्र रेखा (Curve) एक समकोण त्रिभुज की भांति है जब कि उनके आनुवंशिक गुणों की वक्र रेखा घंटीनुमा वक्ररेखा (Bell Shaped Curve) की भांति है। इससे स्पष्ट है कि पूंजीवाद के अन्दर योग्यतानुसार आय का अन्तर नहीं है। यदि ऐसा होता तो आय की वक्र रेखा समकोण त्रिभुज के समान न होकर घंटानुमा वक्र रेखा की भांति होती।

मुक्त उद्योग व्यवस्था और लाभ-अर्जन की मूल प्रेरणा ने आय के वितरण में बहुत असमानता ला दी। किन्तु पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में भी प्रगतिशील आयकर पद्धति (Progressive Taxation) और मृत्यु शुल्क (Death Duties) के लगान से यह असमानता पर्याप्त कम कर दी गई है। यह कहना अवश्य कठिन है कि असमान आय केवल पूंजीवादी व्यवस्था की ही विशेषता है, क्योंकि हम देखते हैं कि साम्यवादी रूस में भी व्यक्तियों की आय में पर्याप्त अधिक अन्तर विद्यमान है। कहने को तो भारत भी समाजवादी व्यवस्था की ओर अग्रसर हो रहा है पर विभिन्न वर्गों की और व्यक्तियों की आय की भीषण असमानता के कम होने के यहां अभी कोई चिह्न नजर नहीं आते हैं।

श्रमिकों की अवस्था

पूंजीवादी अल्पतम हस्तक्षेप नीति का प्रारम्भ में मजदूरों पर तो बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। उत्पादन के साधनों से वंचित असंगठित मजदूर सर्वथा असहाय थे। निर्धन और सम्पत्तिविहीन होने के कारण उनकी प्रतिरोध शक्ति शून्य थी। परिणामत उन्हें कम-से-कम मजदूरी पर जो उन्हें केवल जिन्दा रखने के लिए पर्याप्त थी अधिक-से-अधिक घंटे काम करने के लिए राजी होना पड़ा। अनेक तत्कालीन विचारकों ने इसे पूंजीवादी व्यवस्था का अवश्यम्भावी परिणाम और स्थायी लक्षण समझा। इसी को देख कार्ल मार्क्स ने पूंजीवाद में मजदूरों की अवस्था निरन्तर गिरने की भविष्यवाणी की।

पर धीरे धीरे अवस्था परिवर्तित हुई, जिस अल्पतम हस्तक्षेप नीति ने प्रारम्भ में पूंजीपतियों को श्रमिकों के शोषण की स्वाधीनता प्रदान की थी उसी

ने बाद में मजदूरों को संगठित होने का अवसर प्रदान किया। श्रमसंघों की स्वीकृति और विकास से मजदूरों की प्रतिरोध शक्ति और सौदा करने की शक्ति बहुत बढ़ गई। इससे मजदूर भी पूंजीवाद की बढ़ती समृद्धि में साझेदार हो सके। उनका रहन-सहन का दर्जा गिरने के बजाय बराबर उन्नत होता गया। फिर भी इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि संगठित उद्योगपतियों की तुलना में संगठित श्रम की प्रतिरोध शक्ति कम ही रहती है। मजदूर अधिक समय खाली नहीं बैठ सकते, जब कि पूंजीपति काफी समय खाली बैठकर खा सकते हैं।

व्यापार चक्र (Trade Cycles)

लाभ प्राप्ति की मूल प्रेरणा पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की मुख्य परिचायिका है। प्रत्येक व्यवसायी कम लाभ से अधिक लाभ वाले व्यवसाय में और प्रत्येक मजदूर कम मजदूरी से अधिक मजदूरी वाले स्थान में स्थानान्तरित होने की चेष्टा में निरन्तर संलग्न है। इस भांति वह पूंजीवादी विचारकों के अनुसार व्यक्तिलाभ में वृद्धि कर साथ ही-साथ सामाजिक कल्याण में वृद्धि करता है। लाभ का प्रलोभन और हानि का भय ही अधिकाधिक कार्य-क्षमता और कर्मशीलता को प्रोत्साहित करता है। व्यापारियों और उत्पादकों की पारस्परिक प्रतियोगिता द्वारा उचिततम मजदूरी निर्धारित होती है।

परन्तु पूंजीवादी व्यवस्था सब समय इस आदर्श के अनुसार नहीं चलती। एक समय ऐसी आर्थिक और मानसिक स्थिति आती है कि व्यवसायी किसी उद्योग में रुपया लगाना लाभप्रद नहीं समझता। यह भावना छूत की बीमारी की तरह समस्त व्यवसायी वर्ग को आक्रान्त कर लेती है। इसका परिणाम होता है कि विनियोग (Investment) रुक जाता है, उत्पादन गिर जाता है, व्यापार ठप्प हो जाता है, मजदूर बेकार हो जाते हैं, राष्ट्रीय आय गिर जाती है और सामाजिक असन्तोष की वृद्धि होती है। इस समय पूंजीवादी व्यवस्था की कमजोरी स्पष्टतया दिखाई देने लगती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सामयिक आर्थिक मन्दियां (Depressions) अनियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था का अभिन्न अंग हैं। १९२९ में ऐसी ही भीषण मन्दी ने संसार के पूंजीवादी देशों को आ घेरा था। यह मन्दी ३-४ साल तक रही और इसने बहुत आर्थिक और सामाजिक हानि पहुंचाई।

पूंजीवाद के समर्थकों का कहना है कि यदि मन्दी के आने पर कीमतों और मजदूरी को स्थिर करने का प्रयत्न न किया जाय, तो वस्तुओं की मांग न गिरे और मन्दी दूर होने में समय न लगे। जो भी हो, व्यवहार में ऐसा नहीं होता। गिरी हुई पूंजीवादी व्यवस्था स्वयं शीघ्र नहीं उठ पाती। उसे बाह्य उत्तेजना की जरूरत पड़ती है। इसी तरह, संकटकाल में या वस्तुओं के भारी अभाव की अवस्था में पारस्परिक प्रतियोगिता का खेल नहीं खेला जा सकता।

उन भीषण समय आवश्यकता होती है, कि कोई प्रतिनिधि सामाजिक संस्था उसका नियन्त्रण करे और सामाजिक हित में उसका प्रयोग करे। ऐसे समय ही आयोजन (Planning) की पुकार होती है।

प्रकारों अनियन्त्रित पूंजीवादी व्यवस्था में बिना इस बात का ध्यान करे कि इनका रोजगार पर क्या प्रभाव पड़ेगा केवल व्यक्तिगत लाभ की प्रेरणा के अन्तर्गत नये यन्त्रों को अपनाया जाता है। परिणामत, समय-समय पर भीषण यान्त्रिक बेकारी (Technological unemployment) की सृष्टि होती है। इसके अतिरिक्त मन्दी के समय लाभ की सम्भावना न रहने से मजदूरों की मांग गिर जाती है और बेकारी फैलने लगती है। इस तरह अनियन्त्रित पूंजीवादी व्यवस्था रोजगार की समस्या को सुलझाने में असमर्थ रहती है।

एकाधिकार (Monopoly)

अविकसित प्रारम्भिक अवस्था में पूंजीवादी उद्योग खुली प्रतियोगिता (Free competition) सिद्धांत पर कार्य करता रहा। व्यापारियों की पारस्परिक प्रतियोगिता बहुत अंशों में मजदूरों और उपभोक्ताओं के लिए कम मजदूरी और अत्यधिक कीमत के विरुद्ध अच्छा संरक्षण थी। पर धीरे धीरे व्यवसायियों ने यह अनुभव किया कि यह अधिक अच्छा हो कि वह आपसी प्रतियोगिता बन्द कर कार्य करें। इस तरह वह अधिक मुनाफा कमा सकते हैं। उद्योगों के स्थानीकरण और केन्द्रीकरण ने इसे सम्भव भी बना दिया। इस तरह प्रतियोगी पूंजीवादी व्यवस्था के भीतर एकाधिकारी पूंजीवादी व्यवस्था प्रकट हुई। आजकल पूंजीवाद का रुख प्रतियोगिता से हट एकाधिकार की ही ओर है। उद्योगों में यह प्रवृत्ति प्रबल है। कृषि में असंख्य छोटे छोटे और बिखरे उत्पादकों के कारण यह सरलतया सम्भव नहीं है।

यह भी सत्य है कि एकाधिकार कभी भी स्थायी या पूर्ण नहीं होता। नये आविष्कार तथा कुछ व्यवसायियों का विरोध उसे समय-समय पर तोड़ते रहते हैं।

प्रतियोगिता से दूर और एकाधिकार की ओर, इस प्रवृत्ति को प्रायः बहुत चिन्ता से देखा जा रहा है और स्वभावतः एकाधिकारों के शोषण से बचने के लिए उसके सामाजिक नियन्त्रण की मांग हो रही है। इस तरह हम धीरे धीरे अल्पतम हस्तक्षेप नीति को तिलांजलि दे रहे हैं।

कुछ दशाओं में तो सामाजिक एकाधिकार निःसंदेह प्रतियोगिता से श्रेष्ठ है। पूंजीवाद के समर्थकों तक ने कुछ सामाजिक एकाधिकारों का समर्थन किया है। जनोपयोगी सेवाएं इसी श्रेणी में आती हैं, रेल जल-विद्युत् डाक तार टेलीफोन आदि सेवाएं ऐसी ही हैं। इसमें कोई सार नहीं कि एक ही शहर में

पाच टेलीफोन की लाइनें हो। अत यही बेहतर है कि एक ही कम्पनी उस काम को कर और उस पर सरकारी नियन्त्रण हो।

उद्योगों का सामाजिक नियन्त्रण

अनियन्त्रित पूजीवादी व्यवस्था की कमियो को रोकने के लिए पूजावाद के विकास के साथ ही जोरदार आन्दोलन हुआ है। कट्टर-से-कट्टर पूजीवाद के पोषक देशा को इस आन्दोलन के आगे झुकना पडा ह। उद्योगा में सामाजिक नियन्त्रण की शुरुआत जनोपयोगी सेवाओ के नियन्त्रण मे हुई ह। धीरे धीरे सामाजिक नियन्त्रण का क्षेत्र बराबर विस्तृत होता जा रहा ह। आर्थिक जीवन का शायद ही कोई ऐमा भाग हो, जहा नियन्त्रण का हाथ नहीं पहुचा ह। सकटकाल और युद्धकाल में तो इसका विस्तार और भी बढ़ गया ह। श्रमिक और फक्टरी कानून, मजदूरी और मुनाफे का नियन्त्रण, आय और सम्पत्ति पर कर का लगाना वस्तुओ के वितरण की मात्रा और मूल्यो का नियन्त्रण, आयात निर्यात पर प्रतिबन्ध, मुद्रा के मूल्य का निर्धारण, इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

समुदाय द्वारा आर्थिक जीवन का नियन्त्रण कोई चीज नही है। स्वभावत यह आर्थिक सगठन जितना ही पुराना है वास्तव में पूजीवादी अल्पतम हस्तक्षेप नीति एक माध्यमिक अवस्था थी। यह विश्वास कि वतमान सस्थाए स्थायी ह भारी भ्रम है। कोई भी सामाजिक सस्था परिवर्तित हुए विना नही रहती, यही हाल पूजीवाद का है।

आयोजित अर्थ-व्यवस्था (Planned Economy)

ऐसा प्रतीत होता ह कि आयोजित अर्थ व्यवस्था शायद नियन्त्रित पूजावाद से अगली सीढी है, जिस पर हमें आगे बढ़ना ह। या तो पूजीवादी अर्थ-व्यवस्था में भी एक प्रकार का आयोजन निहित है। प्रत्येक व्यवसायी अपनी पृथक उत्पादन व वितरण योजनाए बनाता है। किन्तु अनियन्त्रित व्यवस्था म एक व्यवसायी का दूसर व्यवसायी की योजना पर कोई काबू नही होता। इसीलिए अनेक बार उसकी योजना अन्य व्यवसायियो की योजना से रद्द हो जाती ह। पृथक-पृथक् योजनाओ में एकीकरण या समन्वय न होने के कारण ही ऐसा होता है। इसके विपरात, आयोजित अर्थ व्यवस्था में समस्त छोटी छोटी पृथक योजनाए एक वृहत् योजना का अग होती ह उनमें आपस में कोई विरोध नही होता एक दूसरे को नष्ट करने का खतरा विद्यमान नही होता।

लाभ प्रवृत्ति और उत्पादन के साधना में व्यक्तिगत स्वामित्व के रहते हुए एक सार्वजनिक योजना नही बनाई जा सकती। अत आयोजित अर्थ व्यवस्था में उत्पादन यन्त्रों पर यदि कानूनी नही तो कम-से-कम व्यावहारिक सामाजिक स्वामित्व की तो अवश्य आवश्यकता पडती है। ऐसी स्थिति में नही

वस्तुए उत्पन्न की जाती ह और उन्ही के उत्पादन को प्राथमिकता दी जाती है जिनकी मांग निश्चित ह, जो सामाजिक हित की दृष्टि स उपयोगी और आवश्यक ह। यहां पारस्परिक प्रतियोगिता समाप्त हो जाती ह। इसके अतिरिक्त, उत्पादन यन्त्रों पर समाज का स्वामित्व होने के कारण स्वामित्व-जनित आय के भीषण अतर आयोजित अवस्था में समाप्त हो जाते ह। कुशलताजन्य मजदूरी के अतर अवश्य कायम रहते हैं या वढाये भी जा सकते हैं। इस तरह आयोजित अर्थ व्यवस्था में आर्थिक विषमता प्राय कम रहती ह। पर आयोजित अर्थ-व्यवस्था और आर्थिक समानता में कोई काय कारण का सम्बन्ध नहीं है। आयोजित अर्थ व्यवस्था को भी शक्तिशाली और स्वार्थी आयोजकों द्वारा विशिष्ट स्वार्थों और उद्देश्यों के लिए चलाया जा सकता ह। फासिस्ट जर्मनी में ऐसा ही हुआ।

निस्सन्देह उत्पादन, उपभोग, वितरण, विनिमय-यन्त्र और विनियोग तथा बचत पर पूर्ण नियन्त्रण होने के कारण आयोजित अर्थ-व्यवस्था में आर्थिक यन्त्र को सामाजिक हित में परिचालित करने की सुविधा रहती ह। पूजीवाद के भीतर विद्यमान सामयिक मन्दियों का सकट प्राय समाप्त हो जाता ह। यही कारण ह कि जब अमरीका और इगलैंड जसे पूजीवादी राज्यों में १९३० ३२ में भीषण बेकारी फैली हुई थी रूस और जर्मनी में मजदूरों की कमी थी।

पूजीवाद के अदर उत्पादन, आर्थिक प्रगति और सम्पत्ति का विभाजन उत्पादकों और व्यापारियों की परिवर्तनशील मानसिक स्थिति मालिकों और मजदूरों तथा जमींदारों की आपसी खींचातानी का परिणाम होते हैं परन्तु आयोजित व्यवस्था के अन्दर वह एक पूर्व-नियोजित योजना और सामाजिक सस्था के निर्धारण का परिणाम होते हैं। यहा पर कीमतें घटने म किसी के व्यक्तिगत लाभ में कमी नहीं पडती मजदूरी घटने से किसी की व्यक्तिगत आय में वृद्धि नहीं होती। इस तरह व्यक्तिगत स्वार्थों का सघर्ष बहुत कुछ समाप्त हो जाता ह। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि आयोजित अर्थ-व्यवस्था में कोई आर्थिक समस्याए नहीं उठती, उठती ह अवश्य, आयोजकों के अनुमान गलत हो सकते ह। आयोजन कोई रामबाण औषध नहीं ह। चौंतीस साल पहले रूस ने सर्वप्रथम आयोजन की ओर कदम उठाया। बारह साल के अल्पकाल में उसने औद्योगीकरण रोजगार में असाधारण उन्नति की और ससार का ध्यान आयोजन की ओर आकृष्ट किया। मन्दी और युद्ध ने आयोजन के प्रति दिलचस्पी को बढ़ाया और युद्धकाल म अत्यधिक रूप में सभी राष्ट्रों ने इसे अपनाया। १९५१ में भारत सरकार ने पहली बार एक पचवर्षीय योजना का सूत्रपात किया। १९५६ में दूसरी पचवर्षीय योजना चालू हो रही ह। गांव के आर्थिक और सामाजिक स्तर को ऊचा उठाने के लिए सामुदायिक योजनाए जारी की गई ह।

सोलहवा अध्याय

राजनैतिक सगठन

POLITIC\L ORGANISATION

व्यक्ति और राज्य (State)

राज्य हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण तथ्य ह। बालक का जन्म होते ही इसकी सूचना सरकार का देनी पड़ती है। कुछ बड़े होने पर सरकारी स्कूल हमें शिक्षा की सुविधा प्रदान करते हैं। घर बनाते समय हमें उसके नक्शे को सरकार से पास कराना पड़ता ह। आय का एक निश्चित अश हमें सरकार को कर क रूप में देना होता है। सरकारी नीति खाने पीने की चीजों, कपड़े आदि अन्य व्यवहारोपयोगी वस्तुओं क दाम व मकान के किरायो की दर को प्रभावित करती है। सरकार अनेक बार हमारे मनोरजन को भी नियन्त्रित करती ह और यह तक निर्धारित करती है कि हम क्या करें और क्या नही। कुछ देशो में यह चिकित्सा की सुविधा प्रदान करता है बच्चो को स्कूलो में भेजने को बाध्य करती ह। देश से बाहर जाने के लिए हमें सरकार की अनुमति प्राप्त करनी होती है। यहा तक कि यदि एक पति पत्नी एक दूसरे से पृथक होना चाहें तो वह भी राज्य की स्वीकृति क बिना पृथक नहीं हो सकते, पुनर्विवाह नही कर सकते। बहुत से राज्य बरोजगार होने की दशा में अथवा बुढ़ापे में अपने नागरिको को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं। हमारे मरने तक की खबर सरकार को पहुचानी पड़ती है। इस तरह हम देखते है कि राज्य बचपन से बुढ़ापे तक हमारा पीछा नही छोड़ता। यह हमारे समस्त जीवन पर छाया हुआ ह। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में हम रोज ही उसके सम्पर्क में आते ह।

सरकार के स्वरूपों की विभिन्नता

सरकार के उपर्युक्त या अन्य कार्यों को विभिन्न राष्ट्रीय प्रान्तीय या स्थानीय सरकार सम्पन्न करती हैं। कई बार उनका स्वरूप लोकतन्त्रीय तथा कई बार अधिनायकतन्त्रीय होता ह। कुछ राज्यो में राज्य का उद्देश्य व्यक्ति की रक्षा, कुछ में उसका उद्देश्य राष्ट्र का रक्षा होना ह। राज्य क कार्यों क बारे में भी पर्याप्त विभिन्नताए पाई जाती हैं, जिनका हम यथास्थान वर्णन करेंगे।

राज्य के प्रति समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

राज्य और सरकार राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का विषय है। एक

समाजशास्त्री की हैसियत से हमें सविधानो और सरकार के स्वरूपों तथा किस भांति राज्य अपने कार्यों को सम्पन्न करते हैं, इसमें दिलचस्पी नही। हम तो उसे एक विशिष्ट प्रकार की समिति समझते है और उसके समाजशास्त्रीय स्वरूप को पहचानने और सामाजिक व्यवस्था के अन्य भागों से उसके विशेष सम्बन्धो को बताने की कोशिश करते है। बडी-बडी समितियो या सस्थाओ ने पृथक विधाना को जन्म दिया है। समाजशास्त्र इनका स्थानापन्न नही बन सकता।

जटिल समाजो में राजनैतिक और आर्थिक सगठन की सस्थाए सामाजिक बुनियाद का एक विस्तृत ढाचा बन जाती है। यह जटिलतम सम्बन्धो में प्रसार करती है और राष्ट्र और श्रम की सीमा को पार कर जाती है।

राज्य और समुदाय (Community)

वास्तव में राज्य भी अन्य समितियो (Associations) की भांति एक समिति है। यद्यपि हम साधारण भाषा में प्राय इस शब्द का दुरुपयोग करते है। हम बहुत बार कहते हैं, भारत ने अमरीका से सन्धि की। इस भांति हम भारतवर्ष और अमरीका की समस्त जनता को मिला एक सार्वभौम साझेदारी की कल्पना करते हैं, जो कि भ्रान्त है।

यह सोचना गलत है कि राज्य वास्तव में हमारे अधिकाश सामाजिक सम्बन्धों को नियन्त्रित करता है, और उसे वैधानिकतया उससे भी अधिक अश को नियन्त्रित करने की सामर्थ्य है। यह भी कहा जाता है कि यदि वह स्वय ऐसा नही करता तो अन्य सस्थाए उसकी इच्छानुरूप उसे सम्पन्न करती हैं। पर यदि यह भी मान लिया जाय, तब भी हम नियन्त्रक को नियन्त्रित से नही मिला सकते। एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से हम नागरिक भर ही नहीं है। हम बहुत-से सम्बन्धों में शरीक होते हैं हम बहुत-से सामाजिक कार्य करते है, एक राज्य के सदस्य की हैसियत से नही बल्कि एक सामाजिक प्राणी, एक प्रेमी एक मित्र एक परिवार, एक सम्प्रदाय, एक क्लब या अन्य वर्ग के सदस्य की हैसियत से। अत राज्य से समुदाय को मिलाना बहुत अनुचित है। आजकल तो अधिकाश सविधान राज्य की शक्तियों पर अकुश लगा देते है उसके लिए बहुत सी बातो का निषेध कर देते है।

अत राज्य सामाजिक ढाचे का एक आवश्यक अग हैं, सम्पूर्ण शरीर नहीं। यह समाज की एक सस्था है जिसके हाथ में अनेक विस्तृत और महत्त्वपूर्ण कार्य है, फिर भी इसकी शक्तिया सीमित है। यह अन्य सस्थाओं का स्थान नही लेता और न ले सकता है। परिवार का अपना स्थान है, श्रम सघ का अपना स्थान है, विभिन्न समितियों का अपना स्थान है। राज्य को कहा तक और कैसे अन्य समितियो को नियन्त्रित करना चाहिए यह एक विस्तृत प्रश्न है जिसके उत्तर में बहुत मतभेद की गुजाइश है।

सरल संस्कृतियों म सरक र

आज पाई जाने वाली आरण्यक जातियों में जो भौतिक विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ह, सरकार अति सरल और कठिनाई से नजर आती ह। अण्डमान द्वीप वासी व टेराडेलफ्यूगो निवासी, बुशमैन और शोशोन इसी श्रणी में आते हैं। इनमें कोई विशेष गठित सरकार नहीं है, कोई निश्चित शासक, मुखिया या नेता नहीं है। विशेष जरूरत पडने पर यह एक अस्थाई नेता चुन लेते ह। उदाहरण के लिए किसी का कत्ल हो जाने पर कत्ल होने वाले व्यक्ति का कोई निकट-सम्बन्धी बदला लेने वाले दल का नेतत्व करता ह, किन्तु यह काम समाप्त हाते ही उसका नेतत्व भी समाप्त हो जाता ह।

नेतृत्व का तथ्य इन समाजो में भी कुछ व्यक्ति निःसन्देह अन्य व्यक्तियो को प्रभावित करते हैं। प्रागक्षर (Pre literate) समाजो में बूढ़े प्राय ऐतिहासिक वृत्तान्त, पुराणो और धार्मिक ज्ञान के सरक्षक होते हैं। विचार का लम्बा अनुभव उन्हें और भी प्रतिष्ठा प्रदान करता है। इसलिए महत्वपूर्ण मामलो में उनकी सलाह ली जाती है। उनका प्रभाव समुदाय में व्यवस्था और शान्ति कायम रखने का अच्छा साधन बन जाता है।

पुनरावृत्ति का तथ्य बार-बार किसी एक ही काम को करने से किसी व्यक्ति, वग या सम्प्रदाय के कामो में एक व्यवस्थितता आ जाती है। हमारी बुनियादी आवश्यकताए, जसे कि भूख और नींद दुहराई जाने वाली ह। इसी प्रकार एक समुदाय द्वारा एक ही काय की पुनरावृत्ति द्वारा उसमें व्यवस्थितता आ जाती है।

इस तरह सरल संस्कृतियो में नेतृत्व और पुनरावृत्ति व्यवस्था कायम रखने में योग देते हैं। यह कहा जा सकता ह कि जहा नेतृत्व व्यवस्था कायम करता ह वहा वह प्रतियोगिता की सृष्टि कर अशान्ति और अव्यवस्था को भी जन्म देता ह। कुछ अशो में यह ठीक भी है। फिर भी जब तक नेतत्व और पुनरावृत्ति किसी समुदाय में व्यवस्थित जीवन प्रदान करते हैं तब तक उसे निःसन्देह किसी सरकार की आवश्यकता नहीं होती।

सरल संस्कृतियों म सरकार की सीमित आवश्यकता क कारण

१ वग का छोटा स्वरूप शिकारियो या कन्द-मूल इकट्ठा करने वाले कबीलों की सदस्य-संख्या बहुत हो कम होती ह। उसमें १५ २० से लेकर अधिकतम १५० २०० व्यक्ति होते ह। और फिर प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को जानता है। परिणामत वग की सामुदायिक चर्चा (Gossip) और जनमत (Public Opinion) सामाजिक दबाव के साधन के रूप में प्राप्त होता ह। वयक्तिक सम्पर्कविहीन विशाल समुदाय में ऐसा नहीं हो पाता। एक बड़ शहर

के लिए तो सब नगरवासियो की सम्पति की देख भाल करने के लिए पुलिस की व्यवस्था ही एक बडी समस्या ह ।

२ विकृत (Abnormal) व्यक्तियों की अल्प-सख्या यद्यपि आदिम और सभ्य समाजो में अपराध और रोगो को प्रभावित करने वाले विकृत व्यक्तियों की ठीक-ठीक सख्या उपलब्ध नहीं है फिर भी इसमें सदेह नही कि सभ्य समाज उन्हें सरक्षण प्रदान करता है । शिकारी अवस्था में एक कमजोर आँख वाला और मन्दबुधी व्यक्ति जीवित नही रह सकता और फिर आदिम समाजो में विकृत व्यक्ति एक सकट या समस्या नही माने जाते । उनका धर्म उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा प्रदान करता ह । एक मिरगी पीडित व्यक्ति को रक्षक माना जाता ह । ओझा, पुरोहित शामन एसे ही लोग बनते ह । अन्तत जादू-टोना ऐसे व्यक्तियों के व्यवस्थापन में पर्याप्त सहयोग देता है ।

३ सस्कृति की अगतिशीलता आदिम समाजो में सामाजिक सस्थाए दीर्घकाल तक एक-सी ही अवस्था में रहती हैं । इसी कारण समुदाय के सदस्य शीघ्र ही अपने अपने कर्तव्य सीख जाते ह । इसी तरह एकतत्त्वीय (Homogenous) सस्कृति की सृष्टि होती है और सब लोगो के मत एक-दूसरे से मिलते ह । इसके विपरीत, एक विभिन्नतत्त्वीय (Heterogenous) परिवर्तनशील सस्कृति में लोगो के विभिन्न मत और भले-बुरे के विभिन्न मापदण्ड होते है । परिणामत एक जटिल समाज में अपराधो को अधिक प्रोत्साहन मिलता है ।

४ सम्पत्ति का अभाव सभ्य समाजों में अधिकांश अपराध सम्पत्ति को लेकर होते है । सरल समाजों में सम्पत्ति की राशि बहुत कम होती है और वह भी समुदाय छोटा होने के कारण उसके सदस्यो को आपस में ज्ञात होती ह । ऐसी स्थिति में विशेषकर जब कि व्यापार और यात्रा की सुविधाएं न हो, चोरी करना एक कठिन समस्या हो जाती ह ।

उपर्युक्त विवेचना से हम यह धारणा नही बना सकते कि शिकारियों में दुराचरण या अपराध नहीं होते । वहा पर भी वे होते हैं, पर उनका विस्तार और क्षेत्र बहुत सीमित होता ह । उदाहरण के लिए, वहा पर भी यौन-अनियमितताएँ होती हैं दूसरो की बुराइयां होती हैं, रुचि और व्यक्तित्व की विभिन्नताओ के कारण झगडे-फसाद होते हैं, धार्मिक नियमो का उल्लघन होता है । अनकूल परिस्थितियो के बावजूद शान्तिस्थापना की समस्या वहा भी उपस्थित होती ह ।

सरल सस्कृतियों में सामाजिक नियन्त्रण के साधन

१ परिवार किसी समुदाय में शासन सस्था सदैव राज्य ही नहीं होती । हमारे युग में शासन की प्रमुख सस्थाए अदालत और पुलिस के रूप में प्रकट होती

है । आरण्यको में परिवार आचार नियन्त्रण की जवदस्त सस्था थी जैसा कि कुछ अ गो म आज के सभ्य समाजा में भी है । पारिवारिक शासन की शक्ति की सबसे वडी साक्षी पारिवारिक लडाइया (Feuds) है । आरण्यको में किसी परिवार के सदस्य से अपराध होने पर, आहत परिवार के सदस्या का यह पुनीत कत्त य हो जाता था कि वह उसका वदला लें । अफ्रीका के कबील्गे के अपवाद को छोडकर अपराध का दण्ड देने की यह प्रथा लगभग समस्त आरण्यका में प्रचलित थी । यहा तक कि योरोप और एशिया के विभिन्न देशा में यह अभी हाल तक कायम रही। भारत में भी अभी कुछ ऐसी उपजातिया ह, जो अपने झगडे विना कानून की सहायता के अपने आप निपटाने में गौरव समझती हैं ।

२ बिरादरी अनेक वार शासन का काम एक अर्ध-पारिवारिक सगठन के हाथा में होता है जिसे विरादरी कहते हैं । बिरादरी के सदस्य कई गावो में फले हो सकते हैं । वह या तो रक्त सम्बन्ध से जुडे होते है, या अपने को एक ही पूर्वज की सतान मानते ह । बिरादरी का एक महत्त्वपूण काय विवाहो का नियन्त्रण होता है । बिरादरी कई सामाजिक सेवाओ को भी प्रदान करती है । स्वभावत शिकारी समाजो में बिरादरी का सगठन बाद में विकसित हुआ ।

३ विभिन्न समितिया परिवार और बिरादरी के अतिरिक्त, समवयस्को, सर्मालिगिया या विशिष्ट सदस्या की गुप्त समितियां भी निम्न सरल सस्कृतिया में शासन का कार्य करती है । उदाहरणार्थ, उत्तरी न्यूगिनी के काई तामी, यावीम और बाकुआ कबीलो के कुछ आदमी एक ऐसे धार्मिक भ्रातृत्व में दीक्षित होते हैं जिसे वृषभनाद कहते हैं । इसका मुख्य काय स्त्रिया और अदीक्षित पुरुषा के आचार-व्यवहार पर अनुशासन करना होता ह । गोंडा के 'घोतुल' और नागाओं क भारगे युवाओ के आचरण को नियन्त्रित करते ह । यह कहा जा सकता ह कि निम्न शिकारी सस्कृतियो में विभिन्न सगठन अपराध को शान्त करते और अनुशासन कायम रखन ह । परन्तु महत्त्वपूण प्रश्न यह ह कि क्या उनके यहा आजकल की भाति कोई ऐसा पृथक सगठन था जिसका मुख्य काय शासन करना था ? क्या उन सस्कृतियों में राज्य सस्था थी ? क्या राज्य सदा हमारे साथ रहा है ? अथवा यह एक सामाजिक आविष्कार ह, जो आखेट युग के बाद हुआ ह ? यदि यह सामाजिक आविष्कार ह तो इसका जन्म कैसे हुआ ?

राज्य की विशेषताए

उपयुक्त विवेचना में यह मान लिया गया है कि राज्य का मुख्य काय शांति और सुरक्षा कायम रखना और न्याय प्रदान करना ह । कई वार यह युद्धों का सचालन करता है मनोरजन की व्यवस्था करता ह, आर्थिक सहायता की व्यवस्था करता ह । पर क्या राज्यो का कोई ऐसा भी काय ह जो सब राज्या

में समान है ? हम देख चुके है कि परिवार और बिरादरी भी शांति और व्यवस्था-स्थापन में योग देते हैं । पर राज्य और इन सस्थाओं में मुख्य अन्तर यही है कि इसका नियन्त्रण सर्वोपरि और सावभौम (Sovereign) है। राज्य की कल्पना में एक दूसरा विचार एक निश्चित भौगोलिक सीमा है जिस तक इसकी सावभौमता विस्तृत है ।

राज्य एक ऐसा सगठन है जिसके कुछ विशेष गुण हैं विशेष यन्त्र है, विशेष शक्ति है, जो कि इस अन्य सगठनों से पृथक् करती है । यह यन्त्र राजनैतिक कानून का यन्त्र है। इसके आदेश के साथ बिना शर्त बाध्यता जुड़ी हुई है । इसके आदेश, बिना किसी अपवाद के एक भौगोलिक क्षेत्र में लागू होते हैं । इसके नियमों को सबसे अधिक श्रेष्ठता प्रदान करनी पड़ती है । अतः इसके नियम उस क्षेत्र में लागू नहीं हो सकते जिस क्षेत्र में कि उसके सदस्य मतभेद का दावा रखते हो । राज्य का आधार शक्ति है, उसकी अपील की शक्ति सीमित है । अन्य समितियां, जिनके कि व्यक्ति स्वेच्छा से सदस्य बनते हैं मतभेद की अवस्था में केवल समझाने-बुझाने का ही सहारा ले सकती है। यों तो राज्य भी अपने नागरिकों से अपील कर सकता है, प्रचार के समस्त साधनों को अपने हाथों में ले जनता को प्रभावित कर सकता है, पर उसकी अपील के पीछे भी बाध्यता और दण्ड का भय रहता है। अन्य समितियों के सदस्य समिति की नीति से असन्तुष्ट होने पर उसे छोड़ सकते हैं। समिति भग या विभक्त हो सकती है, पर राज्य के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं घटती । पुराने जमाने में राज्य की नीति से असतुष्ट वर्ग पृथक हो सकता था, किन्तु आज के केन्द्रित राज्य में यह असम्भव हो गया है।

इस विवेचना से यह भी नतीजा निकलता है कि कुछ काम ऐसे है जो कि समस्त जनता के लिए समान महत्त्व रखते हैं जिन्हें राज्य ही अच्छी तरह सम्पन्न कर सकता है। स्वतन्त्र समितियाँ विशिष्ट स्वार्थों और रुचियों की रक्षा के लिए उपयुक्त हैं जब कि राज्य सामान्य कार्यों के लिए। यह सामान्य कार्य क्या हों यह राज्य की परिस्थिति पर निर्भर है। कभी राज्य प्रभुता प्राप्त शोषक वर्ग की इच्छापूर्ति का साधन थे। परन्तु हाल में राज्य का नया पहलू कल्याण राज्य (Welfare State) के रूप में प्रकट हो रहा है।

राज्य का उद्गम

मनोवैज्ञानिक और सस्थात्मक कारण राज्य के उद्गम के विषय में अभी तक हमारा ज्ञान बहुत अधूरा है। कुछ विद्वानों के मत में कुछ मनोवैज्ञानिक तथ्य तथा कुछ के मत में कुछ सामाजिक सस्थाएं इसके जन्म के लिए उत्तरदायी हैं। मोर्ले कहता है कि ' राज्य उन अवस्थाओं की स्वीकृति है जो मानव में अन्तर्हित

सामाजिकता से उत्पन्न हुई और मानव सुविधा की सहज खोज में विकसित हुई ह।'

रक्त सम्बन्ध एक दूसरा लेखक वग है जो कि मनोवैज्ञानिक तथ्यो की उपेक्षा तो नहीं करता पर सस्थाओं पर अधिक बल देता हैं। विल्सन इसी मत का प्रतिपादक है। उसके अनुसार 'समस्त सभ्य जातियो में सरकार का इतिहास बहुत कुछ एक सा ही होना चाहिए। यह पारिवारिक अनुशासन में शुरू हुई होगी।' और जहा तक ऐतिहासिक केन्द्रीय राज्यों के बारे में ज्ञात हैं उससे स्पष्ट है कि सरकार बिरादरी से शुरू हुई जिसकी मौलिक एकता का बन्धन वास्तविक और कल्पित रक्त सम्बन्ध ही था।

व्यक्तिगत सम्पत्ति प्रसिद्ध लेखक कामन्स राज्य के उद्गम के सम्बन्ध में अन्य प्रवृत्तियो की ओर सकेत करता हैं। उसके शब्दों में "राज्य समाज की एक बाध्य करने वाली सस्था ह। वह समाज पर लादी गई कोई आदश इकाई नही हैं, किन्तु ऐसे विभिन्न वर्गों के बीच हुए समझौता का एक एकत्रित क्रम है, जिनमें से प्रत्येक ही व्यक्तिगत सम्पत्ति पर अपना नियन्त्रण चाहता ह राज्य व्यक्तिगत सम्पत्ति की सन्तान ह।'

युद्ध और विजय कामन्स से मिलता-जुलता ही गुम्पलोविज का मत ह। उसका कहना ह कि "राज्य कभी भी एक जाति या कई जातियों द्वारा मिलकर अन्य जाति के दासत्व बिना उत्पन्न नही हुआ।' वास्तव में यह कहना काफी हद तक ठीक मालूम होता है। एक वग के अन्दर सकट उत्पन्न होने पर अनुशासन की कल्पना उद्भूत हो सकती हैं। वर्गों की भीषण प्रतियोगिता राज्य के उद्गम के अनुकूल है। बुशमनो के उदाहरण से यह बात स्पष्ट की जा सकती है कि किस तरह वहा दासता शुरू होती है। हौटनटौट और काफिरो के आक्रमण से अपनी रक्षा करने के लिए वह सगठित होत ह। युद्ध राज्य के उदगम के अनुकूल स्थिति है ऐसा अनेक लेखको का मत है।

युद्ध बाद की चीज युद्ध पशुओ में एक सहजप्रेरित और सामान्य क्रिया ह जब कि मनुष्य में यह एक सगठित क्रिया ह, जिसे सीखने में समय लगता है। मलिनोवस्की ने ठीक कहा ह, 'मात्र झगडे फसादों टूटे दातो और फूटी आखो को युद्ध का नाम देना भ्रामक ह। युद्ध शक्ति का सगठित उपयोग ह। इस अथ में मानव समाजो में इसका प्रवेश और आविष्कार काफी देर में हुआ, ऐसा मानना होगा।

युद्ध का जन्म विभिन्न वर्गों में लडाई युद्ध का जन्म देती है। बहुत बार इसकी शुरुआत बदला लेने से होती थी। पारिवारिक दुश्मनिया युद्ध का रूप धारण कर लेती थीं। कभी-कभी युद्ध बिना खूनखराबी के भी सम्पन्न हो जाते थे।

सम्पत्ति के विकास ने युद्ध के अनुकूल स्थिति उत्पन्न की। यह भी सत्य है कि आक्रमण सदा सम्पति के लिए ही नहीं हुए। प्रारम्भिक अवस्था में जमीन का हथियाना युद्धो का उद्देश्य नही कहा जा सकता। कृषि के प्रारम्भ से ही भूमि एक मूल्यवान वस्तु समझी जाने लगी है।

राज्य का विकास

राज्यों का रेखाकित विकास (Linear Evolution) नहीं प्राचीन काल से लेकर आज के राष्ट्रीय राज्यो तक किसी एक निश्चित पद्धति से राज्या का विकास नही हुआ है। सामाजिक सस्थाए किसी एक समान क्रम में नही बढ़ती। उदाहरण के लिए, रेड इंडियनों में कोई राज्य सस्था नही है, किन्तु अफ्रीकी कबीलों में जो सस्कृति में उनसे ऊचे नही हैं सूक्ष्म राज्य सस्था है। १९वीं शती के शुरू में जुलुओ के विख्यात मुखिया चाका ने एक सुदृढ़ निरंकुश शासन खड़ा किया। पन्द्रह हजार आदमियो की सहायता से उसने अफ्रीका में जुलू को एक विशाल शक्ति बना दिया। इसी तरह अफ्रीका के युगाण्डा, शिलुक और बुगांगो आदि अन्य कबीलो में भी विस्तृत सरकारें हैं।

राज्यों से सम्बद्ध परिस्थितियों का बताना सम्भव यद्यपि राज्य के विकास को नही ढूढा जा सकता, पर उन कारणो और परिस्थितियों का बताना सम्भव है जो कि राज्य की कल्पना से सम्बद्ध है। कई कारणो और परिस्थितियो की ओर हम राज्य के उद्गम की विवेचना करते समय सकेत कर चुके हैं। नेता, अधिकारी दल, रक्षा-समितियाँ, सम्पत्ति युद्ध, दासता सामाजिक काय और वग उनमें मुख्य थे। विभिन्न परिस्थितिया के विभिन्न मिश्रणो ने विभिन्न समाजो में विभिन्न प्रकार की सरकारो को पदा किया।

सामन्तशाही सरकार

धनी, शक्तिशाली कृषक का उत्कर्ष सरकार की स्थापना में एक कारण समान सस्कृति वाले कृषको के हाथों में शक्ति और सम्पत्ति की वृद्धि भी रहा है। यह स्वाभाविक था कि गुलामा रयत अनुचरा और मजदूरो से युक्त कृषक उन पर किसी प्रकार की हुकूमत चलाते। यही धनी लोग सरदार या सामन्त बन बठे। उस युग में पुलिस का कोई प्रबन्ध नही था, लूट-मार, लड़ाई झगडे आम बात थी। एक सरदार दूसरे सरदार को हराकर उससे हरजाना वसूल करता था जिसकी एक बड़ी राशि वह अपने सनिको पर खच कर देता था। एक समय में भूमियों और अनुचरो के सगठन का काय सम्पन्न हो गया। धनी और लड़ाका कृषकों न बड़े पैमाने पर सरकारों की स्थापना की।

भारत, चीन, एशिया और योरोप के मध्यकालीन इतिहास के छात्र इस से परिचित है। यह एक रोचक तथ्य है कि सामन्तशाही पद्धति ससार के कुछ

प्रागक्षर लोगों में भी, जैसे कि पेरु, मेक्सिको, अफ्रीका और पौलीनेशिया के अनेक कबीलो में, पायी जाती है। जिन आराण्यको में सम्पत्ति अच्छी तरह विकसित हुई वहा भी साम तवाद पाया जाता है, क्योंकि मुखिया को सदा वस्तुओं के रूप में कर की अदायगी की जाती ह। साम तशाही व्यवस्था में घनिको या कुलीनो और सामा य जनता के बीच सदा एक श्रेणी विभाजन रहता ह।

सामन्तवाद के क्षय के कारण विभि न देशो में साम तवाद के क्षय के विभिन्न कारण थे। भारत में औद्योगीकरण का आगमन और प्रगति लोकत त्र का विकास जमींदारी प्रथा का उ मूलन समा तवाद के ह्रास के मुख्य कारण है। विभि न बोली बोलने वाले कबीलो में एकीकरण एक धीमी प्रक्रिया थी। इस परिवर्तन में मुद्रा व्यवस्था ने भी भाग लिया। मुद्रा के रूप म करो का सग्रह, सामा तवादी व्यवस्था में विद्यमान फसल के हिस्से क सग्रह की तुलना में बहुत सुगम था। उधर बारूद के आविष्कार ने सरक्षण के तरीको को प्रभावित किया। यातायात के साधनो का विकास एक और महत्वपण कारण था जिसने शासन के विस्तृत क्षेत्र और शक्तिशाली वग निर्मित किए। सस्कृति में स्वय ही ऐसे विकास हुए जिन्होने सामन्तवाद को विश्रृ खल कर दिया।

समान्तवाद का अध्ययन करते समय एक बात और ध्यान देने योग्य है कि स्थानीय शक्तिशालियो की प्रतियोगिता सदव एक बडे राजा को जो उन सबो पर राज्य कर सके, ज म नही देती। कभी-कभी यह शक्तिशाली सरदार एक सघीय सरकार की स्थापना कर लेते ह। उत्तरी-पूर्वी अमरीका के रेड इण्डियनो ने विभिन्न कबीलो और राष्ट्रो का एक सघ स्थापित किया। आइसलैण्ड के आदि-वासियो ने भी ऐसा ही किया।

नगर राज्य

ऊपर हम जिन सस्कारो की विवेचना [कर चुके है वह छोटे गावो और कृषि प्रदेशो से सम्बद्ध थी। किन्तु प्राचीन समय में कुछ बडे शहर भी थे जिनकी आस पास की भूमि पर प्रभुता थी और जो नगर राज्य कहलाते थे। कुछ नगरो की शक्ति, विशेषकर जहां कि जल या थल यातायात पर्याप्त विकसित था, विशाल क्षेत्र पर विस्तृत थी। ऐथेन्स और रोम ऐसे ही नगर थे। जब कि इन नगरो द्वारा शासित प्रदेश बहुत विस्तृत होते थे, वह साम्रा य कहलाते थे, जसा कि रोम में हुआ। यह नगर प्राय जलमार्गों पर विकसित हुए और व्यापार द्वारा समृद्ध हुए। इन नगरो में भूमि के रूप में उतनी सम्पत्ति नही थी जितनी कि वस्तुओ के रूप में। भूमि एक स्थायी सम्पत्ति है, अत उसका वशपरम्परा द्वारा सक्रमण सुगम] है। जहा किले रक्षा के प्रधान साधन होते ह वहां अनुचरो और सैनिको को

भूमि द्वारा आजीविका प्राप्त करने में विशेष सुविधा होती थी। भूमिपतियों में वंशानुगत कुलीनता का जन्म इसका स्वाभाविक विकास था। किन्तु नगरों में जहां का आर्थिक जीवन अधिक अस्थिर था, वहां कृषि की तुलना में वंशानुक्रम सिद्धान्त कम सुरक्षित था। ग्रामीण इलाकों की तुलना में शहरों में परिवार और बिरादरी व्यवस्था कम महत्त्वपूर्ण थी और इसलिए भी वंशानुगत शासन कठिन था। इसके अतिरिक्त नगर परिवर्तन से शीघ्र प्रभावित होते थे विदेशी व्यापारी दूसरे देशों से नये नये विचारों को यहां पर लाते थे। प्रारम्भ में धनी लोग और लड़ाक नगर राज्यों में शासक बन गये, किन्तु धीरे धीरे यहां पर नागरिकता का विचार भी विकसित होने लगा। नगर शासन को चलाने के लिए सम्पत्ति अधिकतर व्यापारियों और दस्तकारों से आती थी, यद्यपि नगर की सेनाएं और नौसेनाएं पास के इलाकों को जीत उनपर भी कर लगाती थीं। चूंकि धन नागरिकों के पास से आता था और नगर का भाग्य नागरिकों के भाग्य को निर्धारित करता था अतः यह स्वाभाविक था कि नागरिक शासन क्रिया में अधिकाधिक हिस्सा लें। इस तरह नगरों में लोकतन्त्र की शुरुआत हुई।

राजतन्त्रों (Monarchies) का पतन संसदों (Parliaments) की स्थापना

आधुनिक युग का मुख्य लक्षण निरंकुश राजतन्त्रों की समाप्ति और उनके स्थान पर सीमित राजतन्त्रों की स्थापना है। सम्राट बादशाह, जार और कैसर भूमि अर्थव्यवस्था से सम्बद्ध थे। वह कृषि प्रधान अवस्था अथवा पूंजीवाद की प्रारम्भिक अवस्था तक कायम रहे। बहुत बार, जैसा कि फ्रांस में हुआ, राजतन्त्र को क्रान्ति द्वारा समाप्त कर दिया गया और उनके स्थान पर बिना राजा के चुने हुए अधिकारी ही नियुक्त किये गये। बहुत बार जैसा कि इंगलैण्ड में हुआ राजा नाम का कायम रहे पर उनकी शक्तियां बहुत सीमित कर दी गईं। यह कार्य संसद् (पार्लियामेण्ट) की स्थापना से संभव हो सका। संसद् का राजस्व के साधनों पर नियन्त्रण होने के कारण राजा और उसका दरबार उस पर आश्रित हो गये। प्रारम्भ में राजा अपना राजस्व (Revenue) धनी सामन्तों कृषकों और जागीरदारों से प्राप्त किया करते थे किन्तु पूंजीवाद के आगमन से सम्पत्ति के नये साधन और धनिकों की नई श्रेणी सामने आयी। अब राजा की समस्या फसल का एक भाग पाना नहीं, प्रत्युत धन का एक भाग पाना हो गई। कर व्यवस्था विकसित हुई और उसके साथ संसदों का भी विकास हुआ। व्यापारी वर्ग के हाथों में धनराशि आजाने के कारण राजा के लिए उन्हें कानून निर्माण में अधिकाधिक हिस्सा देना जरूरी हो गया। क्योंकि व्यापारी वर्ग अब राजा की शक्ति छीनने में समर्थ था।

प्रजातन्त्र

राजा की शक्ति समाप्त होते ही तत्काल प्रजातन्त्र स्थापित नहीं हो गये। प्राय शक्ति उन लोगों के हाथो में चली गई जिनके पास सम्पत्ति थी। जनता अर्थात् समस्त वयस्क नागरिकों के पास जिसमे अमीर गरीब सभी सम्मिलित थे, यह शक्ति एकदम नही आई। यद्यपि कभी कभी यह परिवर्तन सीधा भी हुआ। राजा के हाथ से शक्ति निकलते ही जनता के हाथो में चली गई। १७९३ में फ्रास की राज्यक्रान्ति के बाद ऐसा ही हुआ, यद्यपि साधारण जनता अपने हाथो में शक्ति न रख सकी क्योकि नैपोलियन ने अपने को राजा घोषित कर दिया। १८वी शती के अन्त में यह विचार कि साधारण जनता कानून बनाये और शासन चलाये बहुत क्रान्तिकारी और असाधारण समझा जाता था। उस समय राजा अपने दवीय अधिकारो की दुहाई देते और उसका दावा करते थे। उस समय की सरकार कुलीनतन्त्र पर आधारित थी। १६वें लुई और जहागीर के दरबार उस समय की स्थिति पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।

ऐथेन्स, स्पार्टा या भारत के गणराज्यो में राज्य की नीति को निर्धारित करने वाले नागरिकों की सख्या बहुत अल्प थी। प्लेटो, सुकरात, कौटिल्य और मनु राजतन्त्र के समर्थक थे। रोम में यद्यपि एक समय गणराज्य था पर लोकतन्त्र वहाँ ऐथेन्स से भी कमजोर था। इग्लण्ड और सयुक्त राज्य अमेरिका में समस्त नागरिकों को मताधिकार प्राप्त करने में एक लम्बा समय लगा। भारत में १९०९ में १ प्रतिशत से कम, १९१९ में ३ प्रतिशत, १९३५ के विधान में १४ प्रतिशत लोगों को मत देने का अधिकार था। १९५० में प्रथम बार भारत के समस्त वयस्क नागरिकों को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ। वर्तमान समय में विस्तृत शिक्षा और उच्चतर रहन सहन के दर्जे से प्रजातन्त्र को बल और लोकप्रियता मिली है। पर बहुत-से पिछड़े देशों में यह विस्तृत शिक्षा उच्चतर रहन सहन, और सघर्ष का परिणाम न होकर, केवल विधान निर्माताओं की लेखनी के जोर से ही सभव हुआ है। भारतवर्ष इसका अच्छा उदाहरण है।

राज्य की आधुनिक समस्यायें

प्रजातन्त्र में जनमत का ह्रास

अब्राहम लिंकन ने प्रजातन्त्र की जनता का शासन, जनता द्वारा शासन, जनता के लिए शासन कहकर व्याख्या की थी। प्रजातन्त्र की कल्पना के अनुसार प्रत्येक नागरिक राज्य के शासन में, उसकी नीति निर्धारित करने में सक्रिय भाग लेता है। किन्तु प्रजातन्त्र की कल्पना और उसके व्यावहारिक स्वरूप में बड़ा अन्तर दिखाई देता है। प्रजातन्त्र ने बहुत से देशो में समस्त वासियों को मताधिकार अवश्य दिया है, किन्तु उनका राज्य के शासन में कुछ भी हाथ नहीं है।

न तो अधिकांश लोगों के पास इतना समय है, न ही उन्हें इतनी रुचि है और न उन्हें इतना ज्ञान ही है कि वह आज के राज्य के शासनसूत्र को चला सकें। एक छोटे गांव में तो प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र चल सकता है, जहां कि थोड़ी जनसंख्या है, सरल समस्याएं हैं, लोगों के सोचने के एक-से तरीके हैं। वहां पर सब लोग एक स्थान पर एकत्रित होकर किसी मसले पर अपनी राय दे सकते हैं। किन्तु वर्तमान विकसित राज्य में यह सर्वथा असम्भव है।

कुछ देशों में जनता को कानून बनाने में हिस्सा देने के लिए तथा विधान मण्डल (Legislatures) द्वारा बनाये कानून पर उनका नियन्त्रण रखने के लिए कुछ तरीके निकाले गये हैं। प्रस्ताव (Initiative) अर्थात् मतदाताओं को विधेयक उपस्थित करने का अधिकार तथा विधानमण्डल द्वारा पास किये गये विधेयक पर मतदान (Referendum) मतदाताओं की अन्तिम स्वीकृति या अस्वीकृति देने का अधिकार ऐसे ही कदम हैं। स्विटजरलैण्ड में यह रीति प्रचलित है। स्विटजरलैण्ड जैसे छोटे देश में तो यह कुछ सम्भव भी है, पर वहां भी इसकी विशेष उपादेयता नहीं है क्योंकि अधिकांश मतदाता उनके सम्मुख रखे प्रश्नों में कोई दिलचस्पी नहीं लेते। प्रत्यक्ष कानून निर्माण के एक गम्भीर गवेषक का यह कहना है कि मुश्किल से सौ में से एक आदमी ऐसा होता है जो उन कानूनों को पढ़ता है जिन पर वह मत दे रहा है। यदि कानून जटिल होते हैं, जैसा कि प्राय होता है, मतदाता उन्हें नहीं समझते और फिर मतदाता अपनी स्वतन्त्र विचार शक्ति का प्रयोग न कर बाहरी प्रचार, प्रभाव और पटाने से बहुत प्रभावित होते हैं। इस तरह शक्ति जनता के हाथ में न रहकर उन लोगों के हाथ में रहती है जो अधिकाधिक प्रचार से उसे अपनी मुट्ठी में कर सकते हैं।

प्राय जनता किसी कानून पर अपना मत नहीं देती, न ही वह आदेशों को कार्यान्वित करती है। वह इन कार्यों को संसद या विधानमण्डल में अपने प्रतिनिधियों या कार्यकारी अधिकारियों को सुपुर्द कर देती है। यहां तक कि इन मामलों में भी जनता की इच्छा नहीं जानी जाती। निर्वाचन उन व्यक्तियों द्वारा नियन्त्रित किया जा सकता है जो कि उस समय पद पर आसीन हों न कि जनता द्वारा। ऐसे बहुत-से तरीके हैं जिनसे निर्वाचन नियन्त्रित किए जा सकते हैं। यद्यपि मतदाता लाखों-करोड़ों होते हैं, किन्तु शक्ति कुछ लोगों के हाथ में ही जाती है। शुम्पीटर ने ठीक ही कहा है, "आज का प्रजातन्त्र वैकल्पिक नेतृत्व के चुनाव के अतिरिक्त कुछ नहीं है। मतदाता एक निश्चित अवधि के बाद एक नेतृत्व से असन्तुष्ट हो उसे हटा सकते हैं पर एक बार एक नेतृत्व को चुन लेने पर वास्तविक शक्ति नेतृत्व के हाथों में ही चली जाती है।"

आज के जटिल समाज में यह सर्वथा स्वाभाविक है। यद्यपि प्रजातन्त्र आज

नागरिकों को स्वय अपने नियम बनाने और शासन चलाने का अधिकार नहीं देता, तथापि वह उसे निकम्मे शासकों का बर्खास्त करने का अधिकार देता है। अत आज का प्रजातन्त्र इस दृष्टि से अधिनायकतन्त्र की तुलना में अवश्य श्रेष्ठ है।

हमारे चुनावों को कमिया

हमारे चुनावों में बहुत बार वोटों को खरीदा जाता है प्रचार साधना और अखबारों की सहायता से मतदाताओं को प्राय गुमराह किया जाता है और उन पर पानी की तरह रुपया बहाया जाता है, वास्तविक तथ्यों और समस्याओं को ताक पर रख लोगों की भावनाए भड़काई जाती हैं, पार्टी हाई कमाण्डों द्वारा ऐसे लोगों को मनोनीत किया जाता है, जो बहुत बार जनता के वास्तविक प्रतिनिधि नहीं होते किन्तु किसी दल विशेष का सदस्य होने के ही कारण तथा अन्य कोई विकल्प न होने के कारण मजबूरी में उन्हें उसे वोट देना पड़ता है। उसके अतिरिक्त भारत के प्रथम महान् चुनाव में सकीर्ण जाति भावना (Caste feeling) का पूरा-पूरा प्रयोग किया गया है।

मतदाताओं की उदासीनता हमारे चुनावों की सबसे बड़ी कमी चुनावों के प्रति सामान्य जनता की उदासीनता है। चुनाव तो कुल दिये गये मतों के आधार पर ही होते हैं। परन्तु बहुत बार ½ मतदाता भी अपना वोट नहीं देते और इस प्रकार ½ से भी कम मतदाता ½ मतदाताओं की इच्छा को कुचल सकते हैं। भारत के प्रथम सामान्य चुनाव में भी हमें यह बात दिखाई देती है। कुछ भागों में तो २० प्रतिशत मतदाताओं ने भी वोट नहीं दिये। इस तरह अल्पसंख्यक वोटों से ही कुछ लोग जनता के प्रतिनिधि चुन लिये गए।

लोग वोट क्यों नहीं देते ?

मतदाताओं के एक बड़े भाग का मताधिकार का प्रयोग न करना सच्चे प्रजातन्त्र के विकास में एक बड़ी बाधा है। लोगों के वोट न देने में जबरदस्ती रुकावट एक गौण कारण है। वोट न देने का सबसे प्रधान कारण उसके मूल्य और उपयोगिता में लोगों का सन्देह है। बहुत-से लोग सोचते हैं कि एक वोट से क्या होगा सारे उम्मीदवार या दल चोर हैं क्या व्यर्थ में अपना समय बर्बाद कर अपनी मजदूरी या कुछ समय की आय खोई जाय। सामान्यत स्त्रियां घर को ही अपना क्षेत्र समझने तथा राजनतिक बातों से सर्वथा अनभिज्ञ होने के कारण बहुत कम मताधिकार का प्रयोग करती हैं। सामान्य जनता भी राजनतिक समस्याओं को नहीं समझती, उम्मीदवार की योग्यता और चरित्र से परिचित नहीं होती और न ही उन्हें जानने में समय लगाती है। वदेशिक नीति, कर प्रस्ताव उद्योगों का सरक्षण आदि ऐसे पेचीदे मसले हैं जिन पर एक साधारण नागरिक अपना मन नहीं दे सकता। प्राय जनता इन मसलों पर मत देते हुए अपनी शक्ति का बुद्धिमत्ता

से प्रयोग नहीं करती । किन्तु बावजूद इसके सरल और अति महत्त्वपूर्ण मसलो पर उनकी शक्ति प्रभावक और निर्णायक होती है । इस तरह शासन पर उनका अंतिम अंकुश होता है ।

प्रजातन्त्र और स्वार्थी वर्ग

प्रजातन्त्र का उद्देश्य धनिको या कुलीनो के हाथ से शक्ति छीनकर सामान्य जनता को उसे प्रदान कर देना था । एकतत्त्वीय समाज में जहा एक ही वर्ग के लोग थे तथा जहाँ शासन की समस्याए बहुत सरल थीं, प्रजातन्त्र आराम से चला ।

समाज परिवर्तनशील है, पूजीवादी और औद्योगीकरण के विकास ने समाज में विचित्र विभिन्नतत्त्वीयता उत्पन्न कर दी है । आज केवल किसानो और व्यापारियो का ही वर्ग नही हैं, उद्योगपति और मजदूर हैं, जमीदार और किसान हैं, बौद्धिक वर्ग और यातायात साधनो के स्वामी वर्ग है, विभिन्न प्रान्तो, जातियो धर्मो भाषाओ और संस्कृतियों के लोग एक प्रजातन्त्र के सदस्य है । उनकी न समान शिक्षा है न समान रिवाज है न समान धारणाए है । उनके बीच भीषण मतभेद होना स्वाभाविक है । इसके अतिरिक्त सरकार द्वारा विचारणीय प्रश्नो की सूची बराबर बढ़ती जा रही है और वह प्रश्न ऐसे नही जिन्हें कि एक चौपाल में बैठकर हल किया जा सके । इन्हीं कारणो से प्रजातन्त्र का काम करना बहुत कठिन हो गया है ।

प्रारम्भ में विभिन्नतत्त्वीयता (Heterogeneity) मुख्यत भौगोलिक थी । भौगोलिक निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण कर उसे हल करने की कोशिश की जाती थी । किन्तु आजकल विभिन्नतत्त्वीयता पेशा—आर्थिक धन्धों पर आधारित है । यह नये सामाजिक वर्ग स्थान विशेषो में केन्द्रित न हो सब जगह फैले हुए हैं, और इन सामाजिक वर्गों के स्वार्थ भिन्न भिन्न और बहुत बार परस्पर विरोधी भी होते हैं ।

वास्तव में आजकल प्रजातन्त्रो में विभिन्न दल जनता के नाम पर विशिष्ट स्वार्थों के लिए सरकार चलाते है । जूट पर ड्यूटी लगने पर चीनी का दाम घटाने पर कपड़े का नियन्त्रण करने पर खाद्यान्न का आयात नियन्त्रित करने पर, मजदूरी बढ़ाने पर विभिन्न वर्गों म विभिन्न प्रतिक्रिया होनी है और ऐसी स्थिति में विभिन्न वर्ग अपने स्वार्थ के पक्ष में सरकार पर दबाव डालने की कोशिश करते हैं । अमरीका आदि देशों में लॉबिंग द्वारा स्वार्थी वर्ग विधानमण्डल की गलरी में सदस्यों को प्रभावित करके यह कार्य सम्पन्न करते है । यह ठीक है कि स्वार्थी वर्ग सरकार पर अपने पक्ष म दबाव डालते है पर कोई भी स्वार्थी वर्ग समस्त वर्गों के विरुद्ध सदा सरकार को नियन्त्रित नहीं कर सकता ।

सरकार क कार्य

सरकार के नियन्त्रण की समस्या ही आज राजनीति की प्रमुख समस्या नही ह। आज यह प्रश्न भी अत्यधिक महत्त्व का है कि सरकार को क्या-क्या कार्य करने चाहिए। अल्पतम हस्तक्षेप नीति के हिमायतिया का कहना ह कि जो सरकार जितना कम शासन करती ह वह उतनी ही श्रेष्ठ ह। उनके अनुसार न्याय, सुरक्षा तथा कुछ अन्य काय ही राज्य के मुख्य काय ह। मध्य काल में सरकार प्राय निरकुश शासन से सम्बद्ध थी। अत यह स्वाभाविक था कि लोग सरकार क हाथ में अधिक शक्ति देते हुए डरें। उधर उदीयमान उद्योगपति भी यह चाहते थे कि राज्य आर्थिक और अन्य मामला में कम-से-कम दखल दे।

इसमें सदेह नही कि शांति और व्यवस्था की स्थापना राज्य का विशिष्ट काय है। राज्य ही एक ऐसी सस्था है जिसका कानून उसकी सीमा में रहने वाल सभी व्यक्तियो पर समान रूप से लागू होता ह और जिसके पालन क लिए सबको वाध्य किया जा सकता ह। अत वह ही सुचारु रूप से शाति व्यवस्था स्थापित कर सकती है। इसके अतिरिक्त, माप, तोल, गुण और मूल्यो के मान, रहन-सहन का कम-से-कम दर्जा, विभिन्न सस्थाओ और समितियों क अधिकार क्षेत्र को निर्धारित कर सकने वाली भी एकमात्र सस्था राज्य ह।

राज्य केवल व्यवस्था कायम कर ही सतुष्ट नही हो जाता। फिर निरकुश और प्रजातन्त्र की यवस्था स्थापना में भी सदव अन्तर होता है। शाति व्यवस्था में व्यवस्थापको की प्रतिष्ठा और पद का भी प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त वह विभिन्न अवसरो पर उपयुक्त समझे जाने वाले व्यवहार पर भी आधारित होती है। इसके अन्दर सदय काई न कोई न्याय का सिद्धान्त निहित रहता है। केवल कानून के सम्मुख समानता द्वारा नागरिको के अधिकारों को सरक्षित नही किया जा सकता। अनातोले फ्रांस ने ठीक ही लिखा है "अपनी शान में समानता गरीब-अमीर दोनो को सड़को पर सोने और भीख मागने का निषेध करती है।" वास्तव में किसी राज्य की व्यवस्था बहुत कुछ वहा की सम्पत्ति पद्धति पर निभर होती ह। साम्पत्तिक अधिकार प्रकृति द्वारा निर्धारित नही होते। अत उनकी व्याख्या करने के लिए किसी अधिकारी की जरूरत पड़ती है।

सरकार के उपयुक्त काय

वसे तो उन कार्यों की जिन्हें सरकार सुचारु रूप से सम्पन्न कर सकती है, सूची तैयार करना असभव है फिर भी कुछ काय ऐस ह जिनके लिए सरकार विशेष रूप से उपयुक्त है। व्यक्ति दीघकालीन दृष्टि नही रखते, उनके स्वार्थ अनेक बार सावजनिक हित की उपेक्षा कर बठते ह। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक साधनों, जगलो खनिज पदार्थों और पशु धन का सरक्षण ऐसी ही समस्याए हैं।

जहा व्यक्तिगत प्रतियोगिता या एकाधिकार सामाजिक हित को हानि पहुचाते हैं वहा पर सरकार का हस्तक्षेप उचित हो जाता ह। जनता की शिक्षा भी ऐसा विषय है जिसका सावजनिक कल्याण मे सम्बन्ध ह। अत बेहतर ह कि राज्य उसका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ल और उसे सकीर्ण स्वार्थों से पृथक करे। ऐसे ही सामाजिक नीति निर्धारित करने के लिए भी यह जरूरी ह कि जनसख्या आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यो और आकडों का सग्रह वह करे। जैसा कि हम पहले भी कह चुके ह कि इस बात की कोई पूव निर्धारित सीमा नही ह कि राज्य क्या करे और क्या न कर।

सरकार के अनुपयुक्त काय

राज्य के अन्दर विद्यमान विभिन्न समितिया इस बात की साक्षी हैं कि राज्य अपने नागरिको की अनन्त आवश्यकताओ, रुचियो और स्वप्नो को पूरा नही कर सकता। राज्य समस्त समुदाय की सस्था है। अत यह बहतर है कि वह उन्हीं बातो को अपने नियन्त्रण में ले जिन पर सामान्यत नागरिकों में एकमत पाया जाता ह तथा जिनका सार्वजनिक महत्त्व ह। परन्तु धम, साहित्य, कला, वैज्ञानिक विवेचना व्यक्तिगत रुचिया कुछ ऐसे ही विषय हैं जिन पर राज्य का नियन्त्रण अनुचित ह। निःसदेह विश्वास, कला, साहित्य, संस्कृति सरकार से प्रभावित होते ह किन्तु इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इनकी जीवनशक्ति और प्रेरणा का स्रोत जनता में निहित है जो राज्य की निर्धारण शक्ति के परे है।

सरकार की कार्यक्षमता

विशेषकर पिछले पचास सालो में सरकार का काय-क्षेत्र बराबर बढता जा रहा ह। बहुत से व्यक्तियो को इसमें कोई मौलिक आपत्ति नही है, पर उनका मुख्य सदेह सरकार क कार्यों को बढ़ाने में सरकारी काय-क्षमता का ह। भारत में हा विद्यमान सरकारी कमचारियो में फली हुई रिश्वतखोरी भ्रष्टाचार आराम तलबी और फिजूलखर्ची की प्रवत्तियो को देखते हुए यह बहुत कुछ स्वाभाविक भी ह। कुछ व्यक्तियो का यह भी कहना ह कि सरकारी कर्मचारी अपना निजी काय या लाभ न होने के कारण सरकारी काम को उतनी मेहनत या लगन से नहीं करते जितना कि वह किसी निजी काय को करते ह। सरकारी सेवा में जाते ही उनका काय प्ररणा मारी जाती ह।

इस सम्बध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि सब जगह और सब समय सरकारी सेवाओ में ऐसा नहीं होता। शिक्षा जनमत और दण्ड की सहायता से बहुत कुछ काय-क्षमता को उन्नत किया जा सकता ह। हम देखते ह कि इगलैड और रूस में सरकारी कमचारियों की काय क्षमता व्यक्तिगत कमचारियों से किसी कद्र कम नहीं कही जा सकती। फिर सरकार के सभी विभाग आज भी एक-सी

काय-क्षमता प्रदर्शित नही कर रहे ह। बहुत बार सरकारी उद्योगो का सगठन बहुत श्रेष्ठ होता ह। भारत में ही पोस्टल विभाग का सचालन बहुत सतोषजनक ह। तो क्या कारण ह कि हम अन्य कार्यो में भी ऐसी ही काय-क्षमता प्राप्त नहीं कर सकते ?

आज के युग में राज्य का अधिकाधिक उत्तरदायित्व अनिवार्य

१९वी सदी की अल्पतम हस्तक्षेप नीति द्वारा पोषित अर्थव्यवस्था ने आर्थिक जीवन में भीषण अव्यवस्था की सृष्टि की। मन्दिया बेकारी, सम्पत्ति की बर्बादी, विनाशकारी प्रतियोगिता इसका अभिन्न अग हो गये। जनता को रोजगार देने, राष्ट्र की उत्पादन और वितरण प्रणाली को ठीक करने क लिए राज्य का हस्तक्षेप ही नही प्रत्युत आर्थिक जीवन का आयोजन आवश्यक हो गया है। इन समस्याओ को व्यक्तिगत प्रयत्नो से सुलझाना आज असम्भव प्रतीत होता है। *आर्थिक जीवन में सामजस्य और एकीकरण स्थापित करने के लिए यह आवश्यक हो गया ह कि राज्य की सावजनिक सस्था ही इस काय को अपने कधे पर ले।* इस तरह हम देखते ह कि राज्य का उत्तरदायित्व दिन पर दिन अनिवार्यत बढ़ता जा रहा ह।

सरकार और सामाजिक परिवर्तन

वतमान जटिल जगत् में अनन्त कार्यो में सलग्न सरकार में प्रजातन्त्र का सचालन सुगम नही ह। सामाजिक परिवतन का तथ्य भी इससे जुडा हुआ है। वास्तव म प्रजातन्त्र का सगठन उस अवस्था के अनुकूल ह जहा सरल समस्याए हो और जनता को शिक्षित करने का पर्याप्त समय हो। किन्तु प्रजातन्त्रीय व्यवस्थायें उस सकट अवस्था के अनुकूल नहीं हैं जहा कि शीघ्र निर्णय की आवश्यकता होती है। युद्ध और आजकल की आर्थिक मन्दिया ऐसे ही सकट ह। ऐसी स्थिति में हमें कार्यकारिणी को विस्तृत अधिकार देने पडते हैं। भारत क सविधान में भी सकट काल में राष्ट्रपति को विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए ह। युद्ध और मन्दी एक असाधारण अवस्था ह। ऐसे अवसर पर शीघ्र कायवाही का बडा महत्त्व ह। शीघ्र परिवतनशील समाज में बहुत-सी समस्याए एक सकट का रूप धारण कर उपस्थित होती ह प्रजातन्त्र की मशीन कम गतिशील समाज के लिए अधिक उपयुक्त है। यदि इसकी रफ्तार को तेज परिवतनो के अनुरूप न ढाला गया तो कोई आश्चय नही कि उसकी जगह कोई दूसरी मशीन अपनानी पड़े। अधिनायको (Dictators) की गति निर्विवाद रूप स विधान मण्डलो से तेज होती है।

सर्वसर्वा राज्य (Totalitarian States)

फ्रेंच राज्यक्रान्ति के बाद प्रजातन्त्र के स्वरूप में अनेक परिवतन हुए हैं। परिवतनशील जगत् में प्रजातन्त्र में परिवतन स्वाभाविक बात ह। हाल ही में

विशेषत प्रथम महायुद्ध क बाद एक नई प्रकार की सरकार का उद्भव हुआ ह जिसे कि सर्वेसर्वा राज्य महत ह। युद्ध के बाद अनक दशो में विशेषत पराजित राष्ट्रो में भीषण बेकारी फैल गई। प्रजातन्त्रीय सरकारें विद्यमान सकट का मुकाबिला करने में असमथ रही। ऐसे समय जनता मुक्तिदाता अधिनायको की ओर आकर्षित हुई। जमनी में प्रजातन्त्रीय तरीके से ही सर्वेसर्वा सरकार की स्थापना हुई। वहा अल्प समय में सर्वेसर्वा सरकार ने युद्धयन्त्र का निर्माण किया। रूस में सर्वेसर्वा सरकार ने अपनी पचवर्षीय योजनाओ द्वारा दस साल में असाधारण उद्योगीकरण को सम्पन्न किया। सर्वेसर्वा राज्य की सफलताए उस पर विचार करने के लिए मजबूर करती ह। वास्तव में सर्वेसर्वा राज्य प्रजातन्त्र क लिए जबरदस्त चुनौती ह।

सर्वेसर्वा राज्य जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है, प्रत्येक काय में सर्वोपरि होना है। उसके काय बहुमुखी होते हैं उसका नियन्त्रण सार्वभौम हाता है। जहाँ तक वस्तुओं के उत्पादन का सम्बन्ध ह, उसकी अवस्था बहुत कुछ राज्य-समाजवाद से मिलती-जुलती है। निम्न अन्य विशेषताए भी उसमें हो सकती ह (१) विधान मण्डल की बर्खास्तगी, (२) शासक द्वारा अधिनायकतन्त्रीय शक्ति (Dictatorial Powers) का ग्रहण करना (३) मतदाताओं द्वारा मताधिकार का अल्प प्रयोग, (४) व्यक्तिगत स्वाधीनता पर पर्याप्त पाबन्दियां।

सकटकालीन उपादेयता यहा यह बात ध्यान देन योग्य ह कि सकटकाल में यह विशेषताए प्रजातन्त्रीय राज्यों में भी दिखाई देती ह। प्रजातन्त्रीय देशो क राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री सकटकाल में अधिनायकतन्त्रीय शक्तियां ग्रहण कर लेते ह। प्राय उन देशो का सविधान भी उन्हें इस बात की छूट देता है। भारत के सविधान में भी सकटकाल में राष्ट्रपति को विस्तृत अधिकार प्रदान किए गय ह। ऐसी स्थिति में विधानमण्डल की शक्ति बहुत सीमित हो जाती ह। दलगत भावना बहुत दब जाती ह। चुनाव प्राय स्थगित हो जाते ह। सरकार अनेक नय कार्यो को अपने हाथो में ले लेता ह। निसन्देह सकटकालीन अवस्था सर्वेसर्वा राज्य के बहुत अनुकूल हैं। युद्ध की तैयारी में व्यस्त राज्य, सर्वेसर्वावाद की ओर अग्रसर होते हैं। सर्वेसर्वा राज्य को युद्धकालीन राज्य कहा जा सकता ह।

अब प्रश्न यह है कि युद्ध की आशका या योजनाएं शान्त और समाप्त होने पर क्या सर्वेसर्वा राज्य पुन प्रजातन्त्र की ओर अग्रसर होगे ? इस सम्बन्ध म हम यही कह सकते ह कि उन देशो में जहा प्रजातन्त्र की परम्परा नहीं है निसन्देह सर्वेसर्वा राज्य की अवधि पर्याप्त लम्बी रहगी। किसी चीज के कायम रहने में अभ्यास का बडा हाथ होता है। अत कोई आश्चर्य नहीं कि दीर्घकाल तक सर्वेसर्वा सरकार क अभ्यस्त नागरिक आसानी से उसे छोडना पसद न करें।

१९२० से पहले राज्यो का रुख प्रजातन्त्र की ओर था। निरकुश सरकारें समाप्त होकर प्रजातन्त्रीय सरकारें कायम हो रही थीं। क्या सर्वसर्वा सरकारो के वर्तमान उद्भव ने उस प्रवृत्ति को बदल दिया है अथवा यह एक अस्थायी व्यतिक्रम है?

दिन पर दिन यह स्पष्ट होता जा रहा है कि द्रुत गति से परिवर्तनशील और परस्पर अति निर्भर राज्य में विशुद्ध प्रजातन्त्र का सचालन असम्भव है, राज्य के कर्त्तव्यो का बढ़ना स्वाभाविक है। अत हम कह सकते है कि सर्वसर्वा राज्य की समाप्ति के बादभी, सर्वसर्वा राज्य द्वारा अपनायी हुई बहुत सी चीजें बहुत समय तक चलती रहेगी। उदाहरण के लिए, उत्पादन, वितरण, सचय विनियोग, आयात निर्यात पर नियन्त्रण तथा अन्य ऐसे ही विषय, जिन पर कि तत्काल निर्णय आवश्यक है, नई प्रजातन्त्रीय सरकारो को भी अपने हाथ में लेने पड़ेंगे तथा वह सर्वसर्वा सरकार के ढाचे को पूर्णत विनष्ट नहीं करेंगी।

स्वाधीनता बनाम सगठन

प्रजातन्त्र और सर्वसर्वावाद की बहस को हम स्वधीनता बनाम सगठन का झगडा कह सकते है। आज भी पेचीदा आर्थिक सामाजिक और राजनतिक समस्याए सगठन द्वारा ही सुलझाई जा सकती है। किसी चीज का सगठन करने में स्वाधीनता को अवश्य कुछ सीमित करना पडता है। आज की जटिल सामाजिक समस्याए सगठन द्वारा ही सुलझाई जा सकती हैं। इनमें से मुख्य समस्याए आर्थिक और औद्योगिक है। आज की सरकार के सामने एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि उसका उद्योग के साथ क्या सम्बन्ध हो। ऐसे प्रश्न बहुत कुछ सकटकालीन बन गये है। इनको तत्काल सुलझाना आवश्यक है। इन्हें स्थगित करना बहुत खतरनाक सिद्ध हो सकता है।

राज्य का भविष्य

शुरू से लेकर आज तक राज्य-सस्था में बराबर परिवर्तन होते आ रहे है। राजतन्त्र के स्थान पर सर्वसर्वा राज्यो का उद्भव हो रहा है। इस परिवर्तन और विकास में एक बात स्पष्ट दिखाई दे रही है कि सरकार की सत्ता का चाहे कोई भी स्वरूप क्यो न रहे, पर उसके उत्तरदायित्व और कार्य निरतर बढ़ते जा रहे है।

प्रसिद्ध साम्यवादी कार्ल मार्क्स का विचार था कि कम-से-कम साम्यवादी समाज में राज्य अन्ततोगत्वा विलुप्त हो जाएगा। आज के समाजवादी राज्यो पर यदि दृष्टि डालें, तो प्रकट होगा कि वहा ऐसे कोई आसार नजर नही आते। इसके विपरीत, राज्य की शक्ति बराबर सुदृढ़ और प्रबल होती जा रही है, हमारे आर्थिक, सामाजिक और नैतिक जीवन में राज्य का अधिकाधिक प्रवेश होता प्रतीत

होता ह।

राज्य सस्था पर युद्ध के साधनों का भी जबदस्त प्रभाव होता है। जब तक बन्दूक या पिस्तौल लडाई के मुख्य साधन थे तब तक जन क्रांतिया बहुत सुगम थीं। बन्दूक और पिस्तौलधारियों की सख्या बहुत कुछ सघर्ष का निणय करती थी। किन्तु आज क जल-थल आकाश युद्ध के नये साधनों न जनक्राति की सम्भावनाओं को एक अश में समाप्त कर दिया है। आधुनिक शस्त्रों का अधिकार राज्य सत्ता प्राप्त व्यक्तियों को असाधारण अन्याय की शक्ति प्रदान करता ह और अल्पसख्यक समुदाय को अपना शासन कायम रखने में समर्थ बनाता है।

राज्य और बृहत् समाज

राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध अभी तक हमने राज्य की सीमा में उसके परिवतनो और कार्यों का अध्ययन किया ह। हमें यह न भूलना चाहिए कि समाज का वृहत् क्षेत्र राज्य की सीमा के बाहर भी फला हुआ ह। कोई एक राज्य सभ्यता के साम्राज्य को नही घेरता। निःसदेह राज्यो के आर्थिक और सास्कृतिक सम्बन्ध उन्हें निरन्तर निकट ला रहे ह और वतमान सभ्यता एक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की मांग करती ह। राज्यो की व्यक्तिगत सधियो और समझौतो द्वारा यह काय कुछ अशो में सम्पन्न होता ह, किन्तु दूसरी ओर प्रलयकर युद्धो ने एक महान् सकट उत्पन्न कर दिया ह। राज्य की सीमा के अन्दर शक्ति का प्रयोग सरक्षण का आश्वासन ह, साथ ही समुदाय द्वारा नियन्त्रित भी ह। किन्तु राज्य की सीमा के बाहर, इसका बिलकुल दूसरा अथ ह। बिना अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्व और सरक्षण के यह भीषण विनाश की सृष्टि करता है। परिणामत, इस विरोधाभास का सामना करना पडता ह राज्य राष्ट्रीय दृष्टि से सामाजिक सुरक्षा का महायत्र ह अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि स यह सुरक्षा क लिए एक महान सकट ह।

आर्थिक और सामाजिक परस्पर निभरता क वढ़न क साथ-साथ यह समस्या अपनी परिधि और उग्रता में बराबर बढती जा रही है। इसन विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय-सुरक्षा की योजनाओं को हमारे सम्मुख रखा है। इसका एक तरीका विभिन्न राज्यो के बीच मैत्री-सम्बन्ध की स्थापना ह। वतमान पश्चिमी संघ, जिसमें पश्चिम योरोप के समस्त प्रमुख राज्य सम्मिलित हैं, एक ऐसा ही सगठन ह। ब्रिटिश कामनवल्थ का सगठन, पसिफिक ब्लाक का प्रस्ताव, सोवियट ब्लाक, ऐसी ही योजनाए ह। विभिन्न ब्लाकों का उद्देश्य शक्तिसतुलन स्थापित करना अपनी प्रभुता क क्षेत्र को विस्तत करना होता है। शान्ति स्थापना के लिए विरोधी ब्लाको का निर्माण सही कदम नहीं कहा जा सकता। यह केवल विभिन्न पृथक राज्यो के छोटे-छोटे युद्धों के स्थान पर कई सम्मिलित राज्यों के एक महान् युद्ध के आवाहन का अग्रदूत है।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् विभिन्न राष्ट्रों ने सयुक्त राष्ट्र सघ के रूप में बृहत समाज की ओर बढने का एक नया प्रयत्न किया है। सयुक्त राष्ट्र सघ का मुख्य कार्य विभिन्न राज्यो के झगडो को शातिपूर्वक निपटाना है। राष्ट्रसघ के कोई भी निर्णय तीन बडे राष्ट्रो के, जिन्हें निषेधाधिकार (Right of Veto) प्राप्त है, एकमत हुए बिना नही हो सकते। ऐसी स्थिति बडे राष्ट्रो के बीच के झगडे निपटाने में अभी असमर्थ है। इसके अतिरिक्त, दक्षिणी अफ्रीका, काश्मीर, कोरिया के झगडों को निपटाने में भी सयुक्त राष्ट्र सघ को विशेष सफलता नही मिली है। फिर भी यह मानना पडेगा कि किसी अन्तर्राष्ट्रीय सस्था के न होने से, कुछ कमियो वाली एक अन्तराष्ट्रीय सस्था का होना उपयोगी है।

सत्रहवां अध्याय

क्रीडा, मनोरंजन और शिक्षा

RECREATION AMUSEMENT AND EDUCATION

क्रीड़ा का कार्य और महत्व

क्रीडा एक मानवसुलभ सहज प्रवृत्ति है। बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक यह विभिन्न रूपों में अभिव्यक्त होती है। क्रीडा की इस प्रवृत्ति को परितृप्त करने के लिए बालक, युवा और वृद्ध, स्त्री और पुरुष विभिन्न प्रकार के क्रीडा समूहों, साधनों और संस्थाओं का आश्रय लेते हैं।

क्रीडा समूह एक प्रारम्भिक समूह है। आनन्द, उद्दीपन, उत्तेजना मनोरंजन इसकी क्रियाओं की विशेषताएं हैं। क्रीडा में मनुष्य अपने दैनिक कार्यों की तुलना में अधिक शक्ति का व्यय कर सकते हैं और उसकी समाप्ति पर एक अद्भुत तृप्ति और आनन्द का अनुभव कर सकते हैं। क्रीडा में समय व्यतीत होता पता नहीं चलता। क्रीडा में मनुष्य सबसे अधिक तन्मय और निश्चिन्त होता है। इस समय उसके व्यक्तित्व के दबे हुए गुणों को सरलता से उद्दीप्त किया जा सकता है।

क्रीडा-समूह, कार्य-समूह का पूरक है। क्रीडा व्यक्तित्व के प्रकाश को संतुलन प्रदान करती है। काम के घंटे कम हो जाने पर क्रीडा ही व्यक्तित्व की आवश्यकताओं को पूरा करती है। यदि संसार अधिकाधिक अवकाश की ओर अग्रसर हो रहा है, तो हमें उसकी शून्यता, उसके निठल्लेपन को भरने के लिए क्रीडा की ओर भी अधिक आवश्यकता होगी, अन्यथा खाली व्यक्तियों के व्यक्तित्वों के विश्रृंखल होने का संकट सदैव हमारे सम्मुख उपस्थित रहेगा।

अवकाश के समय व्यक्तित्वों के निर्माण और सामुदायिक जीवन की समृद्धि में क्रीडा का वही महत्व है जो कि व्यस्त समय में धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य और कार्य का है। क्रीडा को इतना ऊंचा स्थान देने का एक और भी कारण है। क्रीडा कार्य का स्थानापन्न बन सकती है यह जीवन में स्फूर्ति लाती है, व्यक्तित्व के विकास में सहायता करती है, समूह में अनुशासन और साहस कायम रखती है, लोगों में उत्साह की वृद्धि करती है और उन्हें मिलकर सामूहिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दे सकती है।

पारिवारिक जीवन, पेशागत कार्य और क्रीडा यह तीनों ही तत्व व्यक्तित्व के विकास के लिए अपेक्षित हैं। जैसे-जैसे यान्त्रिक आविष्कारों और सामाजिक

विधाना के परिणामस्वरूप अवकाश की अवधि बढती जा रही है, क्रीडा को जीवन के एक महत्वपूर्ण अग और क्रिया के रूप में स्वीकार किया जा रहा है। इस प्रकार दैनिक काय की समस्याओ की तुलना में अवकाश की समस्याए अधिक वेग से बढ़ रही ह।

या तो मनोरजन ने सदैव ही मनुष्य का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया ह पर आज तो स्वास्थ्य, कामकुशलता और सामाजिक व्यवहार को दष्टि में रख जीवन की योजना में इसे एक प्रमुख स्थान प्रदान किया जा चुका है। क्रीडा के प्रति आज यह अभिरुचि इतनी अधिक बढ चुकी है कि आज मनुष्य के समय, शक्ति और सम्पत्ति का बडा अश मनोरजन पर व्यय हो रहा है।

क्रीडा-समूह एक प्रारम्भिक समूह है, जिसम बच्चे की प्रारम्भिकतम धारणाए विकसित होती हैं। इसका जन्म प्राय परिवार में होता है, जो कि स्वय ही एक प्रारम्भिक समूह है। पडौस के बच्चे या परिवार में रहने वाले अन्य बच्चे ही एक व्यक्ति का सबसे प्रारम्भिक क्रीडा-समूह होते है। सामान्य परिस्थितियो में बाल्यावस्था और किशोरावस्था की प्रधान पृष्ठभूमि क्रीडा समूह का जीवन है। यद्यपि क्रीडा सम्बन्धी धारणाए सारे जीवन भर सामान्य ही रहती हैं।

क्रीडा समूह का महत्त्व उसकी प्रसन्नता प्रदायक प्रकृति में निहित है। यह रोचक उद्दीपना से परिपूण ह। यह सजीव है। एक क्रीडा समूह आनन्ददायक वातावरण, उद्दीपक घटनाओं और क्रिया के परिवर्तित दृश्या का एक आदर्श समन्वय है। इसमें व्यक्ति साधारणतया अपने से बडो के साथ भाग न लेकर, अपने बराबर वाला, अथवा ऐसे व्यक्तियों के साथ जो उनसे बराबर वालो जसा ही व्यवहार कर रहे हा भाग लेता ह। क्रीडा बन्धुत्व प्रदान करती ह।

क्रीडा और मनोरजन का इतिहास मानव जाति के बराबर ही पुराना है। सरल आरण्यक समुदाया से लेकर आज के जटिल औद्योगिक समाज में यह निरन्तर विद्यमान रह ह। यद्यपि विभिन्न कालो विभिन्न देशा और विभिन्न जातियो में इसके विभिन्न प्रकार रहे ह फिर भी क्रीडा के मूल तत्व बेतकल्लुफी, समानता, सक्रियता, उद्दीपन, वचित्र्य, आदर्शों और धारणाआ के निमाण और परिवतन का काय, सदैव ही उपस्थित रह हैं।

क्रीड़ा के प्रति विभिन्न धारणाए

विभिन्न समाजा और एक ही समाज में विभिन्न काला में क्रीडा के प्रति पृथक्-पृथक धारणाएं रही ह। आरण्यक सस्कृतियो के लोगों ने काय और क्रीडा को पृथक करके नहीं देखा। ग्रीक लागा में प्रतियोगिता, एक-दूसरे से आगे बढ़ने की होड की भावना ने क्रीडा को लोकप्रिय बनाया।

हमारे देश में युद्ध विद्या के अतिरिक्त, विभिन्न प्रकार के मेला में दक्षता

प्राप्त करना विशेष रूप से क्षत्रियों का धर्म समझा जाता था। मध्यकाल में वैराग्य वाद के उदय ने क्रीडा के प्रति उच्च वर्गों में उपेक्षा की भावना पैदा करने का प्रयत्न किया। फिर भी सामान्यत क्रीडा हमारी सामान्य जनता के जीवन का सभी कालों में एक अभिन्न अंग रही और उसे उन्होंने कभी भी निन्दनीय नहीं समझा। इसका एक और भी कारण था कि हमारे यहा खेल-कूद, नृत्य-गान, अभिनय और नाटक आदि क्रीडा और मनोरजन के साधन धार्मिक उत्सवों से घनिष्ठतया सम्बन्धित रहे हैं। परिणामत, धार्मिक उत्सव क्रीडा की सहजप्रवृत्ति की सुन्दर और स्वाभाविक अभिव्यक्ति के उपयुक्त अवसर बन गए हैं। वर्तमान काल में हमारे ऊपर पाश्चात्य संस्कृति के प्रबल प्रभाव के होते हुए भी, गाव में क्रीडा का धार्मिक रूप अभी तक विद्यमान है। नगरों में अवश्य क्रीडा के पाश्चात्य एहिक-साधन दिन प्रतिदिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं।

क्रीड़ा के सिद्धांत

विद्वानों ने क्रीडा के उद्गम के विभिन्न कारण प्रस्तुत किए हैं।

१ अतिरिक्त शक्ति इस सम्बन्ध में उन्नीसवीं शती के अन्त में हर्बर्ट स्पेन्सर ने अतिरिक्त शक्ति (Surplus Energy) के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसके अनुसार ज्यों ही बच्चे में अतिरिक्त शक्ति का सचार होता है वह खेलने लगता है। यह सिद्धान्त सकस में काम करने वाली उस लडकी पर लागू नहीं होता जो भभकते पट्रोल के कुए में कूद, थककर अपने प्राण दे देती है। हर्बर्ट स्पेन्सर का सिद्धान्त क्रीड़ा के एक अंश को ही समझा सकता है।

२ पुनरावृत्ति जान फिस्के ने क्रीडा के पुनरावृत्ति (Recapitulation) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उसके अनुसार बच्चा क्रीडा में मानव विकास की एक के बाद एक सीढ़ी शीघ्रता से पार करता चला जाता है। जानवरों को सताने या दल बनाकर लडने से लेकर वह सुनियमित सामाजिक क्रीडा की ओर अग्रसर होता है। यह सिद्धान्त भी अपूर्ण है और क्रीडा के केवल एक पक्ष की ही व्याख्या करता है।

३ सहज प्रेरित शिक्षण ग्रूस के अनुसार क्रीडा जीवन के लिए एक सहज प्रेरित तैयारी है। एक बिल्ली का एक लकडी के टुकडे के साथ खेलना उसे चूहे पकडने की शिक्षा देता है और एक बच्चे का खेल उसे वस्तुएं बनाने और जुटाने की शिक्षा प्रदान करता है। एक नन्हीं लड़की का अपनी गुड़िया से खेल उसे मातृत्व के लिए तैयार करता है। इसमें बहुत कुछ सत्य है। इसके अतिरिक्त क्रीडा अनुशासन और नियमपालन के प्रति सम्मान पैदा करती है। यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि क्रीडा जीवन के लिए तैयारी ही नहीं वरन् उत्कृष्ट जीवन के लिए तैयारी है। यह सिद्धान्त भी सब प्रकार की क्रीडाओं की व्याख्या करने में

असमथ है।

४ व्यक्तित्व की स्वाभाविक अभिव्यक्ति जान ड्यूई ने क्रीडा को व्यक्तित्व की स्वाभाविक अभिव्यक्ति कहा है। क्रीडा और काय का अन्तर केवल समय का है। क्रीडा में साध्य और साधन सीधे सयुक्त होते ह। अत क्रीडा में आकषण प्रत्यक्ष होता है।

निष्कष उपयु क्त कोई भी सिद्धान्त अपने आप में पूण नही ह, किन्तु प्रत्येक में ही कुछ सत्य का अश निहित है। क्रीडा की सम्पूण व्याख्या में हमें इन सभी सिद्धान्तो के सही तत्त्वो को नए तत्त्वो के साथ सम्मिलित करना होगा। क्रीडा की व्याख्या के लिए विस्तृत और सतुलित सिद्धान्त की आवश्यकता है।

क्रीडा में उन सब क्रियाओ का समावेश है, जो कि बिना किसी पुरस्कार के प्रलोभन के केवल स्वात सुखाय सम्पन्न की जाती ह। उनका उद्दीपन उनमें स्वय अतर्हित ह। बच्चों को खेल खिलाने के लिए पुरस्कारो की आवश्यकता नहीं पडती। जब हम क्रीडा का लक्ष्य पुरस्कारोंको रख देते हैं, तो खेल का उद्देश्य वस्तुगत हो जाता है और क्रीडा स्वय एक काय बन जाती है।

अवकाश के उपयोग में मुनाफावृत्ति

आधुनिक युग में मुनाफाखोर व्यापारियों ने मनुष्य की मनोरजन प्रवृत्ति का पूरा फायदा उठाया है। आज करोडा रुपया इस काय में व्यय किया जा रहा है। थियेटर सिनेमा, सकस, क्रिकेट फुटबाल नृत्य, गान प्रभृति क्रीडाए आज मुनाफा खोर व्यापारियो के हाथ में चली गई हैं।

हमने केवल व्यक्तिगत लाभ के लिए, मनुष्य को मनोरजन प्रवृत्ति के शोषण के लिए ही नही छोड दिया है, बल्कि स्वार्थी सचालको को अपने इस व्यापार में सैकडो हजारो व्यक्तियों को लगाकर उनके नतिक स्तर को नीचे गिराने उनकी कला का दुरुपयोग करने और उनके श्रमका शोषण करने की भी स्वतन्त्रता प्रदान की है। इस अनियन्त्रित व्यक्तिवादी व्यवस्था में हम व्यक्तित्व के विकास और सामाजिक कल्याण की क्या आशा कर सकते हैं?

पिछले तीस सालो से हमारे अवकाश म मनोरजन पर पूजीपतियो का आधिपत्य दिन पर-दिन बढता जा रहा ह। जनता की गाढी कमाई के करोडो रुपए प्रतिवष उनकी जेबो में जा रहे ह। मनुष्य की क्रीडा प्रवृत्ति का प्रयोग सावजनिक कल्याण या व्यक्तित्व के निमाण में न होकर रुपया बनाने में हो रहा ह। सर्वत्र मनोरजन के सस्ते और निम्न साधन जुटाए जा रहे ह। जनता की क्रीडा प्रवृत्ति को अश्लील और भडकीले विज्ञापनो द्वारा तथा सनसनीपूण मनोरजन जुटाकर तृप्त किया जा रहा है। लोग भी थोडे म पसे खच कर यहा पर इतनी उत्तेजना पाते ह कि एक बार उसका मजा चख उन्हें उनका चसका पड जाता ह।

सिनेमा

शहरों और कस्बों में सिनेमा आज मनोरंजन का प्रमुख साधन बन चुका है। दिन प्रतिदिन इसके प्रति जनता की अभिरुचि बढ़ती जा रही है। इसके प्रभाव का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता जा सकता है कि क्या गलियों के अवारा बच्चे, और क्या भद्र परिवारों के शिक्षित बच्चे सभी को ही आप कोई-न-कोई सिनेमा का नवीनतम, गाना गुनगुनाते पायेंगे। कालिजों और क्लबों में विद्यार्थियों और सभ्य सदस्यों की चर्चा का विषय भी मुख्यतया सिनेमा उनके अभिनेता और अभिनेत्रियां ही होते हैं। सिनेमा सम्बन्धी पत्रिकाओं का प्रचार भी खूब बढ़ता जा रहा है।

भारत में आज ६० स्टूडियो हैं जहां प्रतिवर्ष लगभग २७५ चित्रों का निर्माण होता है। ३,२५० सिनेमाहाल हैं जहां लगभग ६० से ७५ करोड़ व्यक्ति प्रतिवर्ष फिल्म देखते हैं। संसार के फिल्म उत्पादन में आज भारतवर्ष का दूसरा स्थान है। सिनेमा उद्योग में हमारा लगभग ४० करोड़ रुपया लगा हुआ है और लगभग ७० हजार व्यक्ति संलग्न हैं। संघ और राज्य सरकारों को सिनेमा के मनोरंजन-कर से प्राय: ५½ करोड़ रुपये प्रतिवर्ष की आय होती है। उसे काटकर सिनेमा उद्योग को लगभग २० करोड़ वार्षिक आय होती है।

सिनेमा की लोकप्रियता के कारण विभिन्न व्यक्तियों द्वारा सिनेमा की लोकप्रियता के अनेक कारण उपस्थित किए गये हैं जिनमें से प्रमुख यह हैं

(१) इसमें दिखलाई जाने वाली वस्तु की अपरिचितता का आकर्षण प्रबल है। (२) इसमें समय की कोई पाबन्दी नहीं है, जो जब चाहे जाकर बैठ सकता और उठकर चला आ सकता है। (३) इसके लिए किसी बात के प्रति किसी विशेष दृष्टिकोण और विश्वास की आवश्यकता नहीं पड़ती। यहां तक कि किसी भाषा तक का ज्ञान अनिवार्य नहीं होता। (४) यह हमारी भावनाओं को अपील करता है। चाहे वह बच्चों के प्रति प्रीति हो घर के प्रति आकर्षण हो, झंडे के प्रति आदर हो, साहस की प्रशंसा हो या प्रेम के लिए बलिदान हो, यह सब हमारी भावनाओं को उद्वेलित करते हैं। सिनेमा में इन भावनाओं को कई बार सुन्दरता से तो अनेक बार भद्देपन से प्रस्तुत किया जाता है, कई बार हमारी कामुकता की भावनाओं को उभारने का प्रयत्न किया जाता है। (५) सामान्य जनता के लिए यह एक सस्ता और सुलभ मनोरंजन का साधन है, जहां कि वह अकेले अथवा मित्रों या बच्चों के साथ सरलता से जा सकती है।

जैसे-जैसे सिनेमा की टक्नीक उन्नत होती जा रही है, उसका प्रभाव और अपील भी बढ़ती जा रही है। वास्तविक ध्वनि और टेक्नीकलर और सिनेमास्कोप चित्रों ने तो सिनेमा की सजीवता और यथार्थता में असाधारण वृद्धि कर दी है।

समार की शायद ही कोई ऐसी घटना हो जिसे कि आज यथाथ रूप में सिनेमा के पर्दे पर नही दिखाया जा सकता। इसके अतिरिक्त, उदाहरणाथ वाल्ट डिज्ने के व्यग चित्रो ने सिनेमा को एक नई दिशा दिखाई ह। यह चित्र यथायवादी चित्रो से भी अधिक तृप्ति प्रदान करते ह क्योंकि यह दशक को जीवन की कठोर वास्तविकताओ से दूर भागने, और अपन को विस्मृत करने में सहायता प्रदान करते हैं।

सिनेमा नियन्त्रण की आवश्यकता सिनेमा अप्रत्यक्ष सुझाव (Indirect suggestion) का जबरदस्त हथियार ह। पूजीवादी देशों में पैसा कमाने और तानाशाही देशो में प्रचार के लिए इसका बडे पैमाने पर प्रयोग हुआ है। सिनेमा एक ऐसा शक्तिशाली हथियार ह जिसका रचनात्मक और विनाशात्मक दोना उद्देश्यो के लिए प्रयोग किया जा सकता है। रचनात्मक या सृजनात्मक प्रवृत्तियां सौहाद, क्रीडा, कला नैतिकता, सौन्दय और सामाजिकता को मजबूत करती है। इसके विपरीत, विनाशात्मक या पतित प्रवृत्तियो घृणा, सस्ते मनोरजन अनतिकता अश्लीलता और समाज विरोधी प्रवृत्तियो को बढावा देती हैं। ऐसी स्थिति में कोई भी उत्तरदायी सरकार सिनेमा जैसे प्रभावशाली साधन को स्वतन्त्र नही छोड सकती। सिनेमा जसे अत्यन्त लोकप्रिय मनोरजन का नियन्त्रण अनिवाय प्रतीत होता ह। इसालिए प्रत्येक प्रजातान्त्रिक सम्य राष्ट्र भी आज सिनेमा के सेन्सर की पद्धति को अपना रहा ह। इसके विपरीत, तानाशाही राज्यो ने आथिक व्यवस्था और शिक्षा के साथ सिनेमा को भी पूर्णरूपेण अपनी नीति को प्रचारित करने का साधन बना लिया ह।

एक प्रसिद्ध लेखक के शब्दो में हम अपने देश की स्थिति को इस तरह व्यक्त कर सकते ह "हम आज मनोरजन के नाम पर समार की प्रत्येक अनतिकता को खुले आम अपने बच्चा के सम्मुख प्रदर्शित कर रहे हैं। अपराध को मनोरजन के लिए प्रयुक्त किया जा रहा ह। चित्र एक सजीव और सम्पूण कहानी होती ह जिसे कि वास्तविकता की तुलना में समझना सौ गुणा सुगम होता है एक दुराचारी क जीवन को एक घटा आवषक रूप से प्रस्तुत करने के बाद एक मिनिट के लिए यह कह देना कि यह भूल ह, ऐसे प्रदशन को क्षम्य नही बना सकता।

आज हमारे यहा अच्छे-बुरे सभी प्रकार के चित्र बनाए जा रहे है। पर इनमें सस्ते और निम्न स्तर के चित्रों का अनुपात ही अधिक ह। इनमें से अधिकाश तथाकथित मनोरजक चित्रो में किसी लडके लडकी की कहानी, आठ-दस सस्ते, भद्दे गान और भोडे नाच अथवा मद्यपान और मारकाट, या बेहूदे तरीके से दिखाई गई पौराणिक या धार्मिक गाथाए होती हैं। इस प्रकार सिनेमा प्रदशक सामान्य अधशिक्षित जनता की वासनात्मक व आक्रमणात्मक अपराधवृत्ति अथवा धार्मिक भावनाओ का पूरा पूरा दुरुपयोग करते ह।

एक प्रमुख चलचित्र निर्माता के अनुसार सबसे अधिक दर्शकों को आकर्षित करने वाले चित्र वह है जो कि एक किशोर के मानसिक स्तर को व्यक्त करते हैं। सामान्य चित्रों का यही बौद्धिक स्तर होता है। वे निर्माता जो कि उच्च कलात्मक या शिक्षात्मक महत्त्व और मूल्य के चित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं बहुत ही थोड़े दर्शकों को आकर्षित कर पाते हैं। यही कारण है कि 'खिड़की' या 'बहार' जैसे मस्त चित्र जहां एक-एक शहर में साल भर चल जाते हैं वहां 'डा० कोटनिस' 'छोटा भाई' 'जागृति' 'विराज बहू' जैसे सुन्दर चित्रों का एक सप्ताह चलना भी कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में अच्छे चित्रों का निर्माण जिनमें अल्प-लाभ या आर्थिक हानि की पूरी सम्भावना हो सर्वथा असम्भव है।

इन सब बातों को देखते हुए हमें नैतिकता विरोधी गन्दे चित्रों के उत्पादन और प्रदर्शन की रोकथाम युक्तिसंगत प्रतीत होती है। पर इस सम्बन्ध में दो प्रश्न विचारणीय हैं (१) चित्रों का नियन्त्रण उनके उत्पादन से पहले हो या बाद में और (२) क्या सरकार को चित्रों के निर्माण को स्वयं संचालित करना चाहिए। वास्तव में नियन्त्रण की समस्या बड़ी ही जटिल है, इसका सरल उत्तर देना बड़ा ही कठिन है। गन्दे चित्रों की रोक और अच्छे चित्रों का प्रोत्साहन आवश्यक है पर साथ ही चित्रों के निर्माण की स्वाधीनता तथा सामाजिक प्रश्नों पर विरोधी मत प्रकाशन की स्वतन्त्रता भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार एक अच्छा नियन्त्रण राजकीय आदेशानुसार निर्मित चित्रों से भिन्न वस्तु है।

अवकाश के नये उपयोग

मनुष्य ने बहुत कम अवकाश से अपनी यात्रा प्रारम्भ की। दासता और सामन्त- के युग में समाज के एक वर्ग के भाग्य में समस्त अवकाश और दूसरे वर्ग के भाग्य में समस्त काम आ पड़ा। दैनिक श्रम से राहत पाने का एक मात्र मार्ग निष्क्रियता मद्यपान या नीचे दर्जे का नाच गान था। आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले वाष्प शक्ति के विकास ने फैक्टरी-व्यवस्था को जन्म दिया। उच्च वर्ग को अत्यधिक अवकाश और श्रमिक वर्ग को पुनः अल्प अवकाश था किन्तु मशीनों के अधिकाधिक प्रसार श्रमिक के संगठन और सरकारी व सामाजिक कानूनों ने श्रमिकों के काम करने के घण्टों में पर्याप्त कमी कर दी और उनके अवकाश में बहुत वृद्धि कर दी। आधुनिक आविष्कारकों का तो यहां तक कहना है कि वह दिन अधिक दूर नहीं जब कि मनुष्य को अपनी समस्त प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चार घण्टा प्रति दिन से अधिक काम नहीं करना पड़ेगा।

आधुनिक नगर ने सामाजिक स्थिति में एक विराट परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। पहले तो बच्चे अपने गांवों में पहाड़ी चरागाहों खेतों, बाड़ों में पर्याप्त खेल-कूद कर सकते थे, पर आजकल के शहरों में भीषण स्थानाभाव के कारण यह

असम्भव हो गया है और क्रीडा के कृत्रिम और अल्प स्थानीय साधन ही हमारे पास रह गये हैं। संयुक्त परिवार विघटन और व्यक्तिवादी भावना के विकास ने अपरिपक्व अवस्था के किशोर युवक-युवतियों को स्वतन्त्र जीविका-अर्जन, और परिणामतः अपनी इच्छानुसार अपनी आय को उडाने की सुविधाएं प्रदान कर दी हैं।

आधुनिक सामाजिक व्यवस्था का झुकाव अधिकाधिक अवकाश की ओर है। आज का युग सप्ताह में कम से कम एक छुट्टी तो अवश्य प्रदान करता है। आठ घण्टे कार्य, आठ घण्टे विश्राम और आठ घण्टे अवकाश के आदर्श के निकट तो हम अभी पहुंच रहे हैं। इस भांति अवकाश के उचित उपयोग की समस्याएं हमारे लिए अधिकाधिक गम्भीर होती जा रही हैं।

अवकाश की समस्या जीवन के एक तिहाई समय की समस्या है। अवकाश के घण्टे कार्य के घण्टों के बराबर महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। बल्कि एक अर्थ में यह उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि कार्य के समय में तो किसी-न किसी प्रकार की नियमितता और समानता रहती ही है किन्तु अवकाश के घण्टों में पर्याप्त अव्यवस्था और समय की बर्बादी हो सकती है। यह समस्या तब और भी विकट रूप धारण कर लेती है जब कि हम व्यापारिक स्वार्थों को जनता के अवकाश-समय को निजी लाभ-अर्जन का साधन बनाने उनमें उत्तेजना उत्पन्न करने उन्हें अयोग्य और नशीला बनाने तथा उनकी बचत को बटोरने में तत्पर पाते हैं।

अवकाश का अर्थ कार्य की थकान में मुक्ति और ताजगी अथवा बुरी आदतों का चस्का शरीर या मन की स्फूर्ति अथवा आत्मनाश दोनों ही हो सकते हैं। भारत में ही छत्तीस करोड़ व्यक्तियों के अवकाश का समुचित नियन्त्रण आज एक महान् राष्ट्रीय समस्या बन गया है।

क्या हमारा अवकाश व्यापारिक स्वार्थों द्वारा हड़प लिया जायेगा या अवकाश का समाज के हित में उपयोग हो सकेगा? दूसरे शब्दों में, हमारे अवकाश का व्यापारीकरण होगा अथवा समाजीकरण? व्यक्तित्व के समुचित विकास और सामाजिक कल्याण की वृद्धि के लिए अवकाश-नियन्त्रण की आवश्यकता आज सभी समझदार व्यक्ति स्वीकार करते हैं।

अवकाश को व्यापारी के हाथों में छोड़ जनता के धन और चरित्र को नष्ट करने का साधन बनाया जा सकता है अथवा यों ही बर्बाद होने, आवारागर्दी करने फालतू गप्पें मारने और बैठकर दिल बहलाने का अवसर बनाया जा सकता है अथवा सामुदायिक क्रीडा और स्वस्थ मनोरंजन में व्यतीत किया जा सकता है। सामाजिक हित और व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए हमारे लिए अवकाश के अन्तिम उद्देश्य को ही अपनाना उचित होगा।

एक प्रमुख चलचित्र निर्माता के अनुसार सबसे अधिक दर्शकों को आकर्षित करने वाले चित्र वह हैं जो कि एक किशोर के मानसिक स्तर को व्यक्त करते हैं। सामान्य चित्रों का यही बौद्धिक स्तर होता है। वे निर्माता जो कि उच्च कलात्मक या शिक्षात्मक महत्व और मूल्य के चित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं बहुत ही थोड़े दर्शकों को आकर्षित कर पाते हैं। यही कारण है कि 'खिड़की' या 'बहार' जैसे सस्ते चित्र जहां एक-एक शहर में साल भर चल जाते हैं वहां 'डा० कोटनिस' 'छोटा भाई' जागृति 'विराज बहू' जैसे सुन्दर चित्रों का एक सप्ताह चलना भी कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में अच्छे चित्रों का निर्माण जिनमें अल्प-लाभ या आर्थिक हानि की पूरी सम्भावना हो सर्वथा असम्भव है।

इन सब बातों को देखते हुए हमें नैतिकता विरोधी गन्दे चित्रों के उत्पादन और प्रदर्शन की रोकथाम युक्तिसंगत प्रतीत होती है। पर इस सम्बन्ध में दो प्रश्न विचारणीय हैं (१) चित्रों का नियन्त्रण उनके उत्पादन से पहले हो या बाद में और (२) क्या सरकार को चित्रों के निर्माण को स्वयं संचालित करना चाहिए। वास्तव में नियन्त्रण की समस्या बड़ी ही जटिल है, इसका सरल उत्तर देना बड़ा ही कठिन है। गन्दे चित्रों की रोक और अच्छे चित्रों का प्रोत्साहन आवश्यक है पर साथ ही चित्रों के निर्माण की स्वाधीनता तथा सामाजिक प्रश्नों पर विरोधी मत प्रकाशन की स्वतन्त्रता भी महत्वपूर्ण है। इस प्रकार एक अच्छा नियन्त्रण राजकीय आदेशानुसार निर्मित चित्रों से भिन्न वस्तु है।

अवकाश के नये उपयोग

मनुष्य ने बहुत कम अवकाश से अपनी यात्रा प्रारम्भ की। दासता और सामन्त-के युग में समाज के एक वर्ग के भाग्य में समस्त अवकाश और दूसरे वर्ग के भाग्य में समस्त कार्य आ पड़ा। दैनिक श्रम से राहत पाने का एक मात्र मार्ग निष्क्रियता मद्यपान या नीचे दर्जे का नाच गान था। आज से डेढ़ सौ वर्ष पहले वाष्प-शक्ति के विकास ने फैक्टरी-व्यवस्था को जन्म दिया। उच्च वर्ग को अत्यधिक अवकाश और श्रमिक वर्ग को पुनः अल्प अवकाश था किन्तु मशीनों के अधिकाधिक प्रसार, श्रमिक संगठन और सरकारी व सामाजिक कानूनों ने श्रमिकों के काम करने के घण्टों में पर्याप्त कमी कर दी और उनके अवकाश में बहुत वृद्धि कर दी। आधुनिक आविष्कारकों का तो यहां तक कहना है कि वह दिन अधिक दूर नहीं जब कि मनुष्य को अपना समस्त प्रकार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए चार घण्टा प्रति दिन से अधिक काम नहीं करना पड़ेगा।

आधुनिक नगर ने सामाजिक स्थिति में एक विराट परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। पहले तो बच्चे अपने गांवों में पहाड़ी, चरागाह, खेतों आदि में पर्याप्त खेल-कूद कर सकते थे पर आजकल के शहरों में भीषण स्थानाभाव के कारण यह

असम्भव हो गया है और क्रीडा के कृत्रिम और अल्प स्थानीय साधन ही हमारे पास रह गये ह । सयुक्त परिवार विघटन और व्यक्तिवादी भावना के विकास ने अपरिपक्व अवस्था के किशोर युवक-युवतियो को स्वतन्त्र जीविका-अर्जन, और परिणामत अपनी इच्छानुसार अपनी आय को उडाने की सुविधाए प्रदान कर दी हैं।

आधुनिक सामाजिक व्यवस्था का झुकाव अधिकाधिक अवकाश की ओर है। आज का युग सप्ताह में कम से-कम एक छुट्टी तो अवश्य प्रदान करता है। आठ घण्टे कार्य, आठ घण्टे विश्राम और आठ घण्टे अवकाश के आदर्श के निकट तो हम अभी पहुच रहे ह। इस भाति अवकाश के उचित उपयोग की समस्याए हमारे लिए अधिकाधिक गम्भीर होती जा रही हैं।

अवकाश की समस्या जीवन के एक तिहाई समय की समस्या है। अवकाश के घण्टे काय के घण्टो के बराबर महत्त्वपूर्ण बनते जा रहे हैं। बल्कि एक अर्थ में यह उनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योकि काय क समय में तो किसी-न किसी प्रकार की नियमितता और समानता रहती ही ह किन्तु अवकाश के घण्टो में पर्याप्त अव्यवस्था और समय की बर्बादी हो सकती है। यह समस्या तब और भी विकट रूप धारण कर लेती है जब कि हम व्यापारिक स्वार्थों को जनता के अवकाश-समय को निजी लाभ-अर्जन का साधन बनाने उनमें उत्तेजना उत्पन्न करने, उन्हें अयोग्य और नशीला बनाने तथा उनकी बचत को बटोरने में तत्पर पाते ह।

अवकाश का अर्थ कार्य की थकान से मुक्ति और ताजगी अथवा बुरी आदतो का चस्का शरीर या मन की स्फूर्ति अथवा आत्मनाश दोनो ही हो सकते ह। भारत में ही छत्तीस करोड व्यक्तियो के अवकाश का समुचित नियन्त्रण आज एक महान् राष्ट्रीय समस्या बन गया है।

क्या हमारा अवकाश व्यापारिक स्वार्थों द्वारा हडप लिया जायेगा या अवकाश का समाज के हित में उपयोग हो सकेगा? दूसरे शब्दो में, हमारे अवकाश का व्यापारीकरण होगा अथवा समाजीकरण? व्यक्तित्व के समुचित विकास और सामाजिक कल्याण की वृद्धि के लिए अवकाश नियन्त्रण की आवश्यकता आज सभी समझदार व्यक्ति स्वीकार करते ह।

अवकाश को व्यापारी के हाथो में छोड जनता के धन और चरित्र का नष्ट करने का साधन बनाया जा सकता ह अथवा यो ही बर्बाद होने, आवारागर्दी करने, फालतू गप्पें मारने और बठकर दिल बहलाने का अवसर बनाया जा सकता है अथवा सामुदायिक क्रीडा और स्वस्थ मनोरजन में व्यतीत किया जा सकता ह। सामाजिक हित और व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए हमारे लिए अवकाश के अन्तिम उद्देश्य को ही अपनाना उचित होगा।

अवकाश के सामाजिक उपयोग

अवकाश के सामाजिक उपयोग के औचित्य को आज लगभग स्वीकार किया जा चुका है। विभिन्न देशो में इस सम्बन्ध में विभिन्न उत्तम योजनायें प्रस्तुत और सम्पादित की जा चुकी है। भारत जसे देश में भी अवकाश के सामाजिक उपयोग की एक व्यावहारिक योजना बनाने की परम आवश्यकता है। जैकोस्लोवाकिया का सामुदायिक-परिकल्पना-आन्दोलन (Community Project Movement) और अमरीका का क्रीडाक्षेत्र आन्दोलन (Playground Movement) इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य है।

क्रीडा क्षेत्र आन्दोलन अमरीका के क्रीडा क्षेत्र आन्दोलन को सात अवस्थाओं में बाटा जा सकता है। प्रथम अवस्था, बालू क बगीचे से शुरू होती है जिसमें बच्चो के लिए एक बक्स और बालू के ढेर की व्यवस्था होती है। दूसरी अवस्था में प्रति दस हजार व्यक्तियो पर एक आदर्श-क्षेत्र का निर्माण होता है। तीसरी अवस्था, कुछ थोडे लोगो के लिए सैर करने, बैठने और कुछ खेल जुटाने की है। चौथी अवस्था प्रदर्शनों और व्याख्यानों के लिए सार्वजनिक स्कूल हालो के निर्माण द्वारा मनोरंजन केन्द्र की स्थापना है। पाचवी अवस्था, नागरिक कला और कल्याण की है जिसमे सौंदर्यात्मक पहलुओ और जन चेतना पर बल दिया जाता है। छठी अवस्था पडोसी-सगठन की है जिसमें पड़ोसी विस्तृत और सक्रिय भाग लेकर एक ठोस चेतना विकसित करते हैं। सातवी अवस्था सामुदायिक सेवा की है जिसमें आपत्काल में जनता की सेवा का समावेश है।

भारतवर्ष में भी इस लाइन पर एक राष्ट्रीय क्रीडा योजना बनाई जा सकती है। इसके अतिरिक्त, जनता को क्रीडा के सिद्धान्तों की शिक्षा, सघ राज्य, जिला, कस्बा और ग्राम क्रीडा-समितियो का निर्माण, गृह मनोरंजन का विकास छोटे बच्चों और बडो के लिए क्रीडा क्षेत्रो का विस्तार मुनाफे के लिए चलाये जानेवाले मनोरंजनो का नियन्त्रण निरीक्षण और दमन, सामुदायिक या सहकारी क्रीडा को प्रोत्साहन, एक अच्छी अवकाश उपयोग योजना के अग होने चाहिए।

अवकाश-समस्याओं के प्रख्यात लेखक लिण्डमन ने आधुनिक अवकाश से स्वस्थ शरीरो और व्यक्तित्वो के गठन, सामान्य कार्यकुशलता की वृद्धि कलाओ में योगदान प्रकृति के परिचय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओ के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान मनन और सामूहिक अनुभव इन सात आवश्यकताओ की पूर्ति की आशा की है।

शिक्षण-समितिया

शिक्षा की परिभाषा कार्य, रूप और महत्व

प्रत्येक समाज अपने सदस्यो से एक विशिष्ट व्यवहार और आचार की आशा

करता ह । इसके सीखने और सिखाने क लिए वह विभिन्न विशेष व सामान्य साधन प्रस्तुत करता है । परिवार, पेशेगत समितिया, धार्मिक क्रीडा सस्थाए और सामान्य शिक्षा सस्थाए इसी प्रकार की सस्थायें है । वह प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा नहीं देती । परोक्षरूप से सुझाव दे वह एक वातावरण की सृष्टि करती ह स्थायी प्रभावो को छोडती ह, और जीवन और तथ्यो क प्रति एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में योग प्रदान करती ह । इसके विपरीत, कुछ एमी सस्थाए भी ह एकमात्र शिक्षा देना ही जिनका उद्देश्य है । पाठशाला, स्कूल, कालिज, विश्वविद्यालय ऐसी ही विशेष शिक्षण सस्थाएं है । इसके अतिरिक्त, समाचारपत्र, रेडियो, सिनेमा और पुस्तकालय भी आज शिक्षा का शक्तिशाली साधन बनते जा रहे ह ।

विशिष्ट शिक्षाकी निम्न परिभाषा दी जा सकती ह यह समुदाय या व्यक्तिया द्वारा परिचालित वह सामाजिक प्रक्रिया ह जो समाज को उसके द्वारा स्वीकृत मूल्यो और मान्यताआ की ओर अग्रसर करती ह ।

एक अर्थ में शिक्षा उन हजारा सालो के अनुभव की देन ह जिसमें कि एक व्यक्ति पदा हुआ ह । इन अनुभवा में उसकी साम्स्कृतिक विरासत छिपी हुई ह । वर्णमाला, भाषा लिपि, साहित्य परम्पराए रीति रिवाज और आविष्कार सभी का इसमें समावेश ह । सास्कृतिक विरासत और जीवन के ज्ञान का अजन ही शिक्षा ह ।

सामाजिक दृष्टि से सास्कृतिक विरासत का ज्ञान मानसिक विश्लेषण की पद्धतियो की क्षमता प्राप्त करना तथा सास्कृतिक विरासत का एक समालोचक और सुधारक बनना शिक्षा का कार्य कहा जा सकता है ।

किसी सस्कृति के प्रधान तत्त्व उसकी जनश्रुति, लोकगीता और साहित्य में विद्यमान रहते है । साहित्य 'मानव ज्ञान की सर्वोत्तम लिपिबद्ध अभिव्यक्ति है । आदिकालीन समाजा में ओझा और पुरोहित विशिष्ट शिक्षक थे । वह कबीले के इतिहास के सरक्षक और कबीले के सरदारो के प्रशस्ति-गायक थे । यही लोक गीतो का प्रारम्भ था । इस भांति धार्मिक जनश्रुति या ग्रन्थ और युद्ध गीत शिक्षा के प्रारम्भिकतम साधन थे ।

मनुष्य विचार करने से पहले अनुभव करता है । अत पहले कविता का उदय हुआ । पर विचार शक्ति के विकास के साथ शिक्षा के लिए गद्य का प्रयोग प्रारम्भ हुआ । गद्य द्वारा ही विचारों को वारीकी से प्रस्तुत करना तथा विभिन्न तथ्या का विश्लेषण सम्भव था । इसने वक्तृत्वकला के महत्त्व को बहुत बढ़ा दिया । पन्द्रहवी शती तक वक्तता, सभाषण, उपदेश ही शिक्षा का प्रधान साधन रहे । आधुनिक मुद्रण यन्त्रो के आविष्कार ने सस्ते और विस्तत साहित्य के सृजन और प्रचार को सम्भव बनाया । रेडियो और टेलीविजन के आविष्कारा ने शिक्षा में एक नई क्रान्ति ला दी ।

किसी भी समाज के लिए विशिष्ट शिक्षा का महान् महत्व है। विस्तृत अर्थों में शिक्षा साहित्य, जो व्यक्ति के भावों की, और विज्ञान जो व्यक्ति के बौद्धिक विकास की अभिव्यक्ति है, दोनों पक्षों का समावेश है। एक अच्छी शिक्षा प्रणाली में दोनों पक्षों का उचित सन्तुलन और समन्वय आवश्यक है।

अच्छी शिक्षा व्यक्ति को केवल अनुभव करना और सोचना ही नहीं सिखाती बल्कि उसे विशेष कार्य करने की प्रेरणा देती है। यह सत्य है अभी तक हमारे व्यवहार को नियन्त्रित करने में शिक्षा प्रायः दुर्बल सिद्ध हुई है। यही कारण है कि आज शिक्षा ने हमें प्रजातन्त्र के बारे में सोचना तो सिखा दिया है व्यवहार में लाना नहीं। इसके बावजूद, एक स्वस्थ सन्तुलित और वैज्ञानिक शिक्षा, चाहे वह विशिष्ट हो अथवा सामान्य और चाहे परिवार धर्म या स्कूल कहीं से भी मिले हमारे व्यक्तित्व के कल्पनात्मक भावात्मक और क्रियात्मक तीनों ही पक्षों में एक सन्तुलन-स्थापन पर बल देती है। अन्यथा शिक्षा अपूर्ण व्यक्तित्वों और संकुचित दृष्टिकोण वाले वर्गों का ही निर्माण करती है।

भारत में शिक्षा

समाज की सांस्कृतिक अवस्था के शिक्षा पर प्रभाव जानने, और आधुनिक शिक्षा-समस्याओं को समझने और उनके समाधानों के संधान के लिए भारत में शिक्षा-संस्था के परिवर्तित स्वरूपों और पद्धतियों का अध्ययन उपयोगी सिद्ध होगा।

प्राचीन काल वैदिककालीन लोग कृषक और पशुपालक थे। उन्होंने गुरुकुल शिक्षा पद्धति का सूत्रपात किया शिक्षक के परिवार (कुल) में शिष्य परिवार के एक सदस्य की हैसियत से रहता था और धार्मिक क्रिया ज्ञान और युद्धकला की शिक्षा प्राप्त करना उसका मुख्य उद्देश्य होता था। प्रायः एक गुरुकुल में बहुत थोड़े ही छात्र शिक्षा प्राप्त करते थे। सम्भवतः उनकी संख्या पन्द्रह-बीस से अधिक न होती होगी। विद्यार्थी बहुत छोटी अवस्था में गुरुकुल में प्रवेश लेते थे। सात वर्ष से लेकर पच्चीस वर्ष की आयु शिक्षा की अवधि मानी जाती थी। वहां पर पढ़ने के लिए किसी प्रकार की फीस न देनी पड़ती थी विद्यार्थी खाली समय में पास के गांव में जाकर गृहस्थों से भिक्षा मांग लाते थे जिससे शिक्षक के परिवार और उनका गुजर और खर्च चलता था। शिक्षार्थियों को अन्न वस्त्र और उपयोगी वस्तुओं की भिक्षा देना गृहस्थ अपना परम कर्तव्य समझते थे। शिक्षक और शिष्य के आत्मीय सम्बन्ध प्रकृति से निकटता, परिवार जैसा वातावरण निःशुल्क शिक्षा इस प्रणाली की प्रमुख विशेषताएं थीं। व्यक्तित्व के सन्तुलित विकास के लिए कृषि प्रधान दानभावना प्रेरित सरल समाज के लिए यह प्रणाली पर्याप्त उपयुक्त थी।

वैदिक कर्मकाण्ड के ह्रास के बाद हमारे यहां बौद्ध धर्म का उदय हुआ और उस समय बौद्ध विहार शिक्षा के केन्द्र बन गये। छोटे पैमाने पर अन्तर्राष्ट्रीय

केन्द्रों का उदय हुआ जहा पर कि देश विदेश के छात्र आकर शिक्षा प्राप्त करते थे। यह अन्तराष्ट्रीय विद्यालय इस युग की विशेषता थे। नालन्दा और तक्षशिला दर्शन और चिकित्सा की शिक्षा के प्रसिद्ध विद्यालय थे, यद्यपि इनमें पढने वाले छात्रो की संख्या आजकल के विश्वविद्यालयों की तुलना में बहुत नगण्य थी। बौद्ध शिक्षा प्रणाली और गुरुकुल प्रणाली के संगठन में विशेष अन्तर न था अन्तर केवल पाठ्यक्रम और उद्देश्यों का था।

मध्यकाल इस समय तक शिक्षा का अधिकार केवल कुछ विशिष्ट व्यक्तियों तथाकथित ब्राह्मणों के हाथ में ही सीमित हो गया। अन्य जातियां और स्त्रियां शास्त्रीय शिक्षा से वंचित होगई। इसी समय भारत में इस्लाम का आगमन हुआ और तत्कालीन धर्मधारियो की छत्रछाया में पाठशाला या टोल जो कि मन्दिरों में लगे होते थे और धनियों के दान से चलते थे तथा मक्तब और मदरसे जो कि मस्जिदों से लगे होते थे और बादशाहों की सहायता और वक्फ से चलते थे शिक्षा के प्रधान साधन हुए।

इस तरह हम देखते हैं कि मध्यकाल तक शिक्षा पर धर्म और साम्प्रदायिकता का प्रबल प्रभाव था। शिक्षा मुख्यत वेद पुराण और कुरान हदीस के अध्ययन तक ही सीमित रह गई।

आधुनिक शिक्षा भारत में आधुनिक ऐहिक (Secular) शिक्षा के सूत्रपात का श्रेय अंग्रेजो को है। उन्नीसवीं शती के मध्य में यहा पर पाश्चात्य ढंग पर भारत के प्रधान नगरो में विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई। इस नई प्रणाली का मूल उद्देश्य तो अंग्रेजी शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए छोटे अफसर और क्लर्क तैयार करना तथा अंग्रेजो और भारतीयो को एक दूसरे के निकट लाना था। यह कार्य तो इसने किया ही, पर अंग्रेजी शिक्षा ने प्रजातन्त्र और स्वाधीनता के विचारो के प्रसार में भी बड़ा योग दिया। अंग्रेजी शिक्षा ने जहां हमें अंग्रेजी साम्राज्य की सेवा सुचारु रूप से करने की सामर्थ्य प्रदान की वहां इसने हमें एक नई बौद्धिक चेतना एक नई आकांक्षा एक नई दिशा प्रदान की। संक्षेप में, उसने हमें संसार के साहित्य और आधुनिक विज्ञान से संयुक्त कर दिया। हमें प्रजातान्त्रिक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सोचने पर बाधित किया

उपर्युक्त लाभों के होते हुए भी इस प्रणाली में कई मूलभूत दोष थे, जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव हमारी शिक्षा के विकास और उसके परिणामों पर पड़ा। १९४७ में अंग्रेजी साम्राज्य का सूर्य तो अस्त हो गया पर उनके द्वारा प्रदत्त शिक्षा प्रणाली आज भी बहुत अंश में हमारे साथ है, यद्यपि उसमें परिवर्तन और संशोधन की चर्चा और पुकार है। पर किन नये सिद्धान्तो पर इसका पुनर्निर्माण हो इस विषय में पर्याप्त मत-भेद हैं। १९५१ के विश्वविद्यालय आयोग तथा १९५४ के

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने उच्च माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक रचनात्मक सुझाव दिए हैं परन्तु वे अभी तक कार्यान्वित नहीं हो सके हैं।

विद्यमान शिक्षा-प्रणाली के दोष

विद्यमान शिक्षा-व्यवस्था हमें अंग्रेजों से विरासत में मिली है। स्वाधीन होने पर भी हम अभी तक उस शिक्षा-व्यवस्था में विशेष परिवर्तन नहीं ला सके हैं। प्रायः सभी समझदार व्यक्ति, जिन्हें देश के हित की चिन्ता है, यह स्वीकार करते हैं कि हमारे यहाँ प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था में भयंकर भूलें कमियाँ, बुराइयाँ और अनेक दोष हैं। यह व्यवस्था अच्छी और वैज्ञानिक शिक्षा के समस्त ज्ञात सिद्धान्तों का उल्लंघन करती है। यह शिक्षा शास्त्र, मनोविज्ञान और जनस्वास्थ्य के नियमों के विरुद्ध है। संक्षेप में इसके प्रमुख दोषों पर दृष्टिपात करना अनुचित न होगा।

१ *वास्तविक जीवन से दूर* प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था बहुत ही कृत्रिम और औपचारिक (Formal) है और इस प्रकार वास्तविकता और जीवन से सर्वथा पृथक है। संकीर्ण अर्थों में यह बौद्धिक है। यह वस्तुओं की उपेक्षा कर उनके प्रतीकों को महत्त्व प्रदान करती है। वस्तुओं और तथ्यों को जबानी बिना दिखाए बता दिया जाता है। *लिखित शब्दों के शिक्षा का प्रधान माध्यम होने के कारण* रटाई इसका प्रमुख साधन है। वास्तविक तथ्यों और व्यावहारिक ज्ञान से इसका अल्प सम्पर्क है। वैज्ञानिक परीक्षण और प्रयोगशाला का इसमें प्रबल अभाव है। यह शिक्षा निष्क्रिय, वर्णनात्मक और अमूर्त है। इसीलिए इसमें निरीक्षण और उसके आधार पर किसी परिणाम पर पहुँचने की प्रवृत्ति नहीं है। शारीरिक दृष्टि से भी यह निर्जीव है। इसमें बढ़ते हुए बच्चे के लिए किसी प्रकार के स्वस्थ खेल-कूद और सृजनात्मक क्रियाओं का स्थान नहीं है। यह उसे क्लास के कमरे में बन्द रखती है। यह उसे ताजी हवा और सूरज की रोशनी से वंचित रखती है। जो *मानसिक ज्ञान यह प्रदान करती है वह न तो सम्पूर्ण ही होता है और न ही* एकीकृत। विद्यार्थी की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को विनमित करने में असमर्थ होने के कारण यह उसके व्यक्तित्व के विकास में रुकावट डालती है। बौद्धिकता के बाहरी आडम्बर के बावजूद भी यह उनमें निरर्थक अन्धविश्वासों, कट्टरताओं को पोषित करती है। *इसी का परिणाम हमारे पढ़े लिखे निकम्मों की सृष्टि है। जब उन्हें* जीवन की वास्तविकताओं का सामना करना पड़ता है वह असफल रहते हैं। इसीलिए प्राय यह विद्यार्थी जो किताबें रटने में प्रवीण नहीं होते और परीक्षाओं में अच्छा परिणाम नहीं दिखाते जीवन में अधिक सफल होते हैं। वह अधिक व्यावहारिक और *वास्तविक जीवन के निकट होते हैं।*

२ *पढ़े लिखे बेकारों की सृष्टि* देश की आर्थिक आवश्यकता और श्रम की माँग को बिना ध्यान में रखते हमारे यहाँ लाखों विद्यार्थी प्रतिवर्ष स्कूल, कालिज

और यूनिवर्सिटियों से डिग्रियां लेकर बाहर निकल रहे हैं। सकीर्ण साहित्यिक शिक्षा प्राप्त श्रम की माग बहुत सीमित है और फिर यह शिक्षित वर्ग केवल कुछ सफेदपोश कलमघिसाई के सम्मानित कहे जाने वाले बौद्धिक पेशो को ही अपना सकता है। इसी का यह परिणाम है कि उनमें से अधिकाश लोग बेकार रह जाते हैं अथवा उन्हें अपनी 'रुचि के विरुद्ध, उनकी दृष्टि में 'निकृष्ट' अन्य पेशो को अपनाने पर मजबूर होना पड़ता है।

आज की व्यवस्था में अधिकाश विद्यार्थियों को अपनी कालिज शिक्षा के अन्त तक भी इस बात की कोई स्पष्ट धारणा नही होती कि वह अपनी शिक्षा समाप्त कर के क्या करेंगे। तरुण लडके और लडकियां, जब तक कि उनके माता-पिता उन्हें पढाने में सर्वथा असमर्थ नही होते, एक बडे खर्चे पर प्रारम्भिक से माध्यमिक स्कूलो, माध्यमिक स्कूलो से कालिजो में चढते चले जाते हैं। उन्हें इस बात का भी कोई ज्ञान नही होता कि वह और क्या कर सकते हैं अथवा उन्हें क्या करना चाहिए। वह केवल परेशान करनेवाले इस प्रश्न को कि 'उन्हें आखिर क्या कैरियर अपनाना है" स्थगित करने के लिए, अपने अध्ययन को जारी रखते हैं। इस प्रकार निरुद्देश्य तरीके से जीवन के विकास-काल के पन्द्रह-बीस सालो को खो देने का एकमात्र परिणाम उन छात्रों में अनिश्चितता साहसहीनता और टाल-मटोल करने की प्रवृत्ति को पदा करने के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? इस अनियोजित शिक्षा से हमारे जसे निर्धन राष्ट्र के विपुल श्रम समय और सम्पत्ति की ही भयकर बरबादी हो रही है। इस शिक्षा का जीवन में कोई वास्तविक उपयोग नहीं है।

३ राष्ट्रीयता का अभाव अभी तक हमारी शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा, अग्रेजी शिक्षा प्रणाली की ही एक भद्दी और दोषयुक्त नकल रही है, जिसमें सदव मानसिक गुलामी की गन्ध रही है। इसी कारण आज लाखों पढ़े लिखे व्यक्तियों के होते हुए भी हम एक शिक्षित राष्ट्र नही कहे जा सकते। कोई भी राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र की चाहे वह कितना ही उन्नत हो, शिक्षा प्रणाली का अन्धानुकरण करके अपने नागरिको को शिक्षित नही बना सकता। उसे अपने राष्ट्र के इतिहास, परम्परा प्रतिभा और विचारो के अनुकूल और अनुरूप शिक्षा प्रणाली का विकास करना होगा।

विद्यमान भारतीय शिक्षा का सबसे बडा दोष है कि यह देश में मौजूद भाषा, कला इतिहास और दर्शन पर आधारित नही है, अपितु इसने इनकी निर्मम उपेक्षा की है और इसके स्थान पर विदेशी भाषा, विदेशी परम्परा विदेशी इतिहास विदेशी कला, विदेशी दर्शन को अपने ऊपर लाद लिया है। इस प्रकार पाठशाला परिवार की पूरक और परिवर्धक न होकर ६ घटे रोज का एक अवास्तविक स्वप्न बन गई है जिस बीच बच्चा घर से भिन्न भाषा सुनता है, अपने

अनुभव से दूर चिड़ियों पशुओं, घटनाओं और तथ्यों का वर्णन पढ़ता है अथवा उन रिवाजों और संस्थाओं की प्रतिष्ठा करना सीखता है जो उसके जीवन से सर्वथा असम्बद्ध हैं एक संवेदनशील बालक के लिए उसकी पुस्तकों का संसार ही वास्तविक और आदर्श बन जाता है। इस प्रवृत्ति का स्वाभाविक परिणाम होता है कि बच्चा अपने ही माता पिताओं की भाषा, पोशाक, रीति रिवाज और परम्पराओं को घृणा की दृष्टि से देखने लगता है। एक साहब या मेमसाहब बनना ही उसके जीवन की बड़ी आकांक्षा रह जाती है।

धार्मिक शिक्षा बनाम ऐहिक (Secular) शिक्षा

आज से सौ साल पहले तक धर्म शिक्षा का घनिष्ठ सहचर रहा है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि धर्म का उपदेश देना ही उस समय की मुख्य शिक्षा थी। उस धार्मिक शिक्षा ने स्वभावतः संकुचित और साम्प्रदायिक दृष्टिकोण को जन्म दिया, घृणा, अन्धविश्वास और कट्टरता को बल दिया और साहित्य के आनन्द और विज्ञान के प्रकाश से जनता को दूर रखा। ऐहिक शिक्षा ने शिक्षा को एक नई दिशा दी, नया और उदार दृष्टिकोण दिया। मनुष्य की ज्ञानवृद्धि, कल्पना की तृप्ति और विचारों की समृद्धि में ऐहिक शिक्षा एक निश्चित प्रगति थी। पर इसने सदाचार और नैतिकता का यहां तक वृद्धि की अथवा व्यक्तित्व को कहां तक अधिक संतुलित बनाया यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है।

शिक्षा को संस्थात्मक धर्म से पृथक करना एक सही कदम था। पर धार्मिक अन्धविश्वास के रिक्त स्थान पर एक नैतिक विश्वास को प्रस्थापित करना भी जरूरी था। हमने धर्म को तो शिक्षा से निकाल फेंका पर दूसरा काम नहीं किया। इस विश्वास की कमी ने शिक्षित मनुष्य को एक अजीब असमंजस में डाल दिया है। उसके पास आज भगवान् जैसी किसी अमूर्त कल्पना का सहारा नहीं है जिससे कि वह विपत्ति और चिन्ता में अपने को सांत्वना दे सके। अतः ऐहिक शिक्षा के साथ शिक्षा का एक नैतिक और भावात्मक आधार होना भी आवश्यक है।

शिक्षा की नई धारणाएं

बुनियादी शिक्षा गांधी जी ने राजनैतिक समस्याओं के अतिरिक्त, देश की शिक्षा-संस्थाओं में भी दिलचस्पी ली और डा० जाकिर हुसैन ने उनके विचारों के आधार पर बुनियादी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की। बुनियादी शिक्षा विद्यमान शिक्षाप्रणाली के दोषों से मुक्त होने का दावा करती है। स्वावलम्बन, सहयोग, सृजन, सरलता और व्यावहारिक उपयोगिता इसकी मुख्य विशेषताएं हैं। इसमें शिल्प और उद्योग की सहायता से स्वयं अपने हाथ से काम सीखने पर बल दिया जाता है।

हमारे देश के प्रारम्भिक स्कूलो के लिए बुनियादी शिक्षा उपयुक्त है। भारतीय सघ के कई राज्यो ने तो इसे अपने यहा अपना लिया है। बुनियादी शिक्षाप्राप्त व्यक्ति जीवन निर्वाह के लिए नौकरी पर निर्भर न रहकर कोई दस्तकारी शुरू कर सकते हैं। बुनियादी शिक्षा कुटीर-उद्योगो के प्रसार के लिए तो अनुकूल है, पर यदि हम देश में बड़े पैमाने का औद्योगीकरण चाहते है तो हमे इसकी व्यावहारिक शिल्प शिक्षा में तदनुसार परिवर्तन करना होगा।

अमरीका का प्रगतिशील शिक्षा आन्दोलन प्रगतिशील स्कूल में 'बच्चे के विकास' पर जोर दिया जाता है। इसमें बच्चे का एक समूह का कार्यशील सदस्य मान लिया जाता है और शिक्षक को उसका 'सहायक'। इसका उद्देश्य बच्चे के गले कुछ बने-बनाये तथ्य उतारने के बजाय, उसमें सृजनात्मक अभिव्यक्ति की वृद्धि करना होता है।

प्रगतिशील शिक्षा लचकदार और प्रजातान्त्रिक होती है। इसमें दैनिक कार्यों के चुनाव में भी बच्चो की आवाज सुनी जाती है। वह स्वय सामग्री का चुनाव करते है। वह इधर-उधर मेजो पर बैठते है और स्वाधीनतापूर्वक विचरण करते हैं। कतारो में अध्यापक के सामने बैठने और शिक्षक के आदेश पर पढ़ने की पुरानी प्रणाली उन्होने छोड दी है।

कुछ लोगो को भय है कि प्रगतिशील शिक्षा आवश्यक ज्ञान के अर्जन मे बाधक हो सकती है, उसकी परिकल्पित क्रियाओ में असतुलन हो सकता है। अनुशासन भी एक समस्या है। कई बार बच्चो को सामूहिक नियन्त्रण द्वारा सभालना सभव नही होता। फिर भी यह आशा की जा सकती है कि प्रगतिशील शिक्षा के अधिक परिपक्व होने पर स्वभावत यह कमिया उसमें नही रहेगी।

शिक्षा के अन्य आधुनिक साधन

समाचारपत्र

एक प्रभावशाली शिक्षा साधन स्कूल एक सगठित शिक्षणसस्था है जब कि समाचारपत्र को एक असगठित शिक्षण सस्था कहा जा सकता है। प्रतिदिन समाचारपत्रो के लाखो-करोडो पाठक अपने प्रिय समाचारपत्र से ससार की घटनाओ और समस्याओ का ज्ञान प्राप्त करते है। यह पाठक जनता प्राय प्रौढ होती है। हमारे देश में यद्यपि समाचारपत्र पाठको की सख्या अभी बहुत अधिक नहीं है, पर फिर भी भविष्य में इसकी निरन्तर वृद्धि की आशा की जा सकती है, समाचार पत्रो का प्रचार दिन प्रति दिन बढता जा रहा है।

समाचार पत्रों का पतन पैसा कमाने और स्वार्थी राजनतिक दलो के प्रचार का साधन होने और अपनी आय के लिए विज्ञापनदाताओ पर प्रधानत निर्भर होने के कारण अधिकतर समाचारपत्र अपने उच्च आदर्श से गिर गये हैं।

राजनैतिक दलदल में फंस जाने के कारण इन्होंने स्वाधीन चिन्तन को समाप्त कर दिया है।

जनमत निर्माण का शक्तिशाली साधन तार, टेलीफोन, रेडियो और टेलीविजन के साथ मिलकर समाचारपत्र ने एक नई सामाजिक चेतना को विकसित किया है। संसार के समस्त स्थान, उनकी जनता और उनकी समस्याएं आज इनके द्वारा एक दूसरे के बहुत निकट आ गई हैं। आज एक महत्त्वपूर्ण घटना को समस्त संसार की जनता सम्भवतः एक ही समय पढ़ती है। इस भांति एक पाठक एक विचित्र सामाजिक समूह का सदस्य बन जाता है। परिणामतः, समाचारपत्र आज जनमत को बनाने का शक्तिशाली साधन बन गये हैं।

पूंजीपतियों का आधिपत्य आज एक बड़े दैनिक समाचारपत्र को निकालने के लिए पन्द्रह-बीस लाख रुपए से कम पूंजी की जरूरत नहीं पड़ती। पूंजीपति स्वामी ने पहले के सम्पादक-स्वामी का स्थान ले लिया है। आज अधिकांश सम्पादक समाचार पत्र के स्वामियों के हाथों बिके हुए हैं और उनसे स्वामियों के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने की आशा की जाती है।

लाभवृत्ति का शिकार व्यवसायीकरण ने समाचारपत्र की स्वाधीनता पर प्रबल आघात किया है। लाभ की मात्रा किसी समाचारपत्र के सफल मुद्रण का मापदण्ड बन गई है। इस भांति प्रायः सार्वजनिक कल्याण पर लाभ-वृत्ति हावी हो जाती है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि समाचारपत्रों की आय का बड़ा अंश विज्ञापनों से आता है। अतः यह विज्ञापनदाताओं की इच्छा के विरुद्ध नहीं कर सकते। वह बड़ी-बड़ी कम्पनियां जो विज्ञापन देती हैं, समाचारपत्रों के कार्यालय में पवित्र गायें कहलाती हैं। समाचारपत्र में ऐसी कोई चीज नहीं छापी जाती जो कि इन 'पवित्र गायों' को नाराज करे। ऐडवर्ड रॉस ने ठीक ही चेतावनी दी है कि आज के बड़े समाचारपत्र का एक ऐसा कारखाना बनने का खतरा सदैव मौजूद है जहां कागज और स्याही और बुद्धि को मिलाकर उसे अधिकाधिक बिकने वाली वस्तु के रूप में तैयार किया जाता है।

समाचारों का प्रकाशन सूचनाओं के सम्बन्ध में समाचारपत्र विश्वास योग्य भी हो सकता है और नहीं भी। यह बहुत सी महत्त्वपूर्ण या बहुत सी फालतू बातों की ओर ध्यान आकर्षित कर सकता है अथवा उन्हें सही रूप में या तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत कर सकता है।

सुधार के सुझाव इससे स्पष्ट है कि हमें ऐसे समाचारपत्रों की जरूरत है जो विज्ञापनदाताओं के घातक प्रभाव से मुक्त हों और जिनके स्वामी राजनैतिक प्रचारकों का काम न करें और सच्चे समाचारों को छापने में किसी का भी लिहाज न करें। वर्तमान अवस्था में यह कठिन कार्य कैसे सम्पन्न हो, यह एक विकट

समस्या ह। कुछ लोगो ने एक राष्ट्रीय प्रेस का प्रस्ताव रखा है जिसका कि समाचारपत्रो पर एकाधिकार हो। किन्तु सरकारी प्रेस भी कोई अमोघ औषधि नहीं है। सर्वसर्वा राज्यों में समाचारपत्र विशिष्ट व्यक्तियों और शासक दल के प्रचार का निर्लज्ज साधन बन गये ह। लिखने, छापने और सभा करने की स्वाधीनता वहां समाप्त हो चुकी है। अत सरकारी प्रेस भी तभी सचाई से काय कर सकता ह जब कि उस पर जनता का प्रत्यक्ष नियन्त्रण हो।

रेडियो

शक्ति और प्रयोग समृद्ध देशा में रेडियो ने विशाल जनसमूहा की सृष्टि कर दी है। एक व्याख्यान अथवा सगीत के श्रोता प्राय हजारा मील के क्षेत्र में फले होते है। यदि प्रत्येक घर में एक रेडियो-सेट हो जसी स्थिति कि आज अमरीका-जसे देशो की है, तो रेडियो द्वारा किसी देश की समस्त जनता में एक प्रारम्भिक समूह भावना को सचारित किया जा सकता है।

रेडियो राष्ट्रीय और विश्व-चेतना के विकास में परम सहायक सिद्ध हो सकता ह। किसी देश के श्रेष्ठतम सगीत, नाटक और नृत्य रेडियो द्वारा प्रसारित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त ससार के समाचारो शिक्षा, धम और खेला के लिए पृथक् कायक्रम होते हैं। इस भाति रेडियो की अपील सावभौम होती जा रही ह।

अन्तर्राष्ट्रीय ब्राडकास्टिंग अभी तक रेडियो प्रसारण (ब्राडकास्टिंग) का रूप प्रधान्त राष्ट्रीय ही ह। सर्वसर्वा राज्या ने अन्तर्राष्ट्रीय ब्राडकास्टिंग के माग में रुकावट डाली ह केवल यही नहीं उन्होंने अन्य राज्यो के कायक्रमा को सुनने पर पाबन्दी तक लगा दी ह। ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय ब्राडकास्टिंग का विकास नही हो सका फिर भी यदि इस दिशा में प्रयत्न किया जाय और समान विश्व-केन्द्रो से अन्तर्राष्ट्रीय काय क्रम प्रसारित किये जाय तो इससे अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का बढाने में बडा योग मिलेगा।

टलीविजन सिनेमा एक शक्तिशाली शिक्षा-साधन है जिसके प्रभाव का हम पीछे जिक्र कर चुके ह। इसके अतिरिक्त, टेलीविजन के विकास ने शिक्षा और मनोरजन के क्षेत्र में नवीन प्रवत्तिया का सूत्रपात किया है। टेलीविजन ने रेडियो के अदृश्य कायक्रमा को मूर्त बना दिया है। इसका एक महत्त्वपूण प्रभाव सिनेमा को घर में लाना है।

रेडियो-टलीविजन का नियन्त्रण और स्वामित्व इसकी समस्या भी बहुत कुछ समाचार पत्रो और सिनमा से मिलती-जुलती है। इस पर राज्य का नियन्त्रण और स्वामित्व हो अथवा व्यक्तिया का, यह एक महत्त्वपूण प्रश्न है। व्यक्तियो के हाथ में देने से इसके लाभ के उद्देश्य के लिए प्रयुक्त हो और राज्य के हाथा

में मौपन से इसके प्रचार के लिए प्रयुक्त होने का सकट है। अत एक ऐसा मध्य मार्ग ढूंढना होगा जिससे कि इन दोनों बातों से बचा जा सके।

पुस्तकालय

इनका कार्य सार्वजनिक पुस्तकालय साक्षर देशों में शिक्षा का एक प्रभावशाली साधन बनते जा रहे हैं। पुस्तकालय केवल पढ़ने की सुविधाएं ही प्रदान नहीं करते, वह मनोरंजन और शिक्षा का भी प्रबल साधन हैं। पढ़ना एव मनोरंजन और शिक्षा ही नहीं एक चिकित्सा भी है। बहुत-से व्यक्ति पढ़ कर ही अपने अनेक कष्टों को भूल जाते हैं।

साहित्य का प्रभाव पढ़ने और सामाजिक परिवर्तन के सम्बन्ध में कुछ महत्त्वपूर्ण परीक्षण हुए हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि साहित्य जहां एक ओर समाज को प्रतिबिम्बित करता है वहां दूसरी ओर अनेक बार समाज को नियन्त्रित करता है।

पुस्तक पाठकों के अनुभवों को कैथरीन लिंड के अनुसार चार श्रेणियों में बांटा जा सकता है (१) पढ़ना अत्यधिक अरुचिकर संसार से भागकर एक काल्पनिक संसार का निर्माण करता है। (२) यह भावना उत्तेजक दैनिक अनुभवों से एक अस्थायी राहत प्रदान करता है। (३) इसका पाठक के व्यक्तित्व पर एक रचनात्मक प्रभाव पड़ता है। वह उसे स्वयं और संसार को समझने में सहायता प्रदान करता है। (४) इसके अतिरिक्त, इसके अन्य ठोस लाभ भी हैं, जैसे कि तथ्यों को देना और रुचियों को जागृत करना। यही नहीं, पढ़ना लोगों की रुचियों और धारणाओं का भी अच्छा परिचय देता है।

इस भांति आज के सस्ते और सुलभ साहित्य के युग में शिक्षा के साधन के रूप में पुस्तकों का महत्त्व अधिकाधिक बढ़ता जा रहा है। इनके नियन्त्रण और प्रचार की समस्या भी अन्य शिक्षा-साधनों के ही समान जटिल और महत्त्वपूर्ण है।

शिक्षा के सामाजिक कार्य

शिक्षा के दो मुख्य सामाजिक कार्य हैं एक तो अज्ञान का निवारण और दूसरा भ्रान्ति का निवारण। दूसरे शब्दों में इसका उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति की बौद्धिक क्षमता को विकसित करना तथा विभिन्न संस्कृतियों और विभिन्न स्वार्थों के बीच एक सामंजस्य स्थापित करना है। विशेषत प्रजातन्त्र के विकास के लिए सही अर्थों में शिक्षित नागरिकों का निर्माण आवश्यक है। केवल साक्षरता के प्रसार से शिक्षा की समस्या उन्हें सामाजिक बनाने, उन्हें बुद्धिमत्तापूर्वक व्यवहार करने और सार्वजनिक हित में काम करने की शिक्षा प्रदान करने की है। यह समाज हितैषियों का कार्य है कि वह विभिन्न शिक्षण-संस्थाओं को इस भांति आयोजित और परिचालित करें जिससे कि सामाजिक हित में अधिकाधिक वृद्धि हो सके।

अठारहवाँ अध्याय

सामाजिक परिवर्तन और विघटन

SOCIAL CHANGE AND DISORGANISATION

सामाजिक परिवर्तन

हम मनुष्य के भोजन, कपडे, घर, रीति रिवाज, धर्म पारिवारिक सम्बन्ध, धार्मिक विश्वास, जीविका उपार्जन के साधन, विभिन्न वर्गों के विकास, उनके आपसी सम्बन्ध राजनैतिक सगठन, इत्यादि समाज के किसी भी सम्बन्ध व्यवहार, आचार मान्यताओ पर दृष्टि डालें, हमें ज्ञात होगा कि किस तरह इन समस्त दिशाओं में एक ही जगह स्थित समाज में निरन्तर परिवर्तन आ रहे हैं। परिवर्तन मानव समाज की विशेषता है। सामाजिक परिवर्तनो का अध्ययन समाजशास्त्र की प्रमुख समस्या है। इन परिवर्तनों की क्या दिशा है? यह परिवर्तन मानव समाज को किस ओर ले जायेंगे? इन परिवर्तनों का क्या स्वरूप है? क्या यह परिवर्तन दूसरों से ग्रहण किए जाते हैं अथवा कोई समाज इनका स्वयं आविष्कार करता है? इन परिवर्तनों के क्या कारण हैं? इन परिवर्तनो को कैसे नियन्त्रित किया जा सकता है? यह जटिल और महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। इन प्रश्नों का केवल बौद्धिक महत्व ही नहीं है बल्कि उनका मानवीय महत्त्व है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, अत सामाजिक परिवर्तन एक मानवीय परिवर्तन है। समाज के बदलने का अर्थ, मनुष्य का बदलना है।

इस सम्बन्ध में अनेक लेखकों ने विभिन्न सिद्धान्त पेश किए हैं। इनमें से अधिकांश सिद्धान्त बहुत ही एकांगी अपूर्ण और भ्रामक हैं। सामाजिक परिवर्तन के विषय में वैज्ञानिक साहित्य का बहुत अभाव है।

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन में केवल उन परिवर्तनों का समावेश है जो कि समाज के सगठन अर्थात् उसकी रचना (Structure) और कार्यों (Functions) से सम्बन्ध रखते हैं। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का केवल एक अंश है। सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन से अधिक विस्तृत चीज है उसमें कला, विज्ञान, यन्त्रविद्या, दर्शन, इत्यादि संस्कृति की किसी भी शाखा का परिवर्तन सम्मिलित है। सामाजिक सगठन उनकी केवल एक शाखा है।

उक्त अन्तर को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। पूँजीवादी

समाज में संगठित श्रमिकों का उदय सामाजिक परिवर्तन कहा जाएगा, क्योंकि उसने मालिक और मजदूर के सम्बन्धों में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा किया, जिसका कि आर्थिक और राजनैतिक संगठन पर एक बुनियादी प्रभाव पड़ा है। इसके विपरीत, भाषा के परिवर्तनों को हम सांस्कृतिक परिवर्तन कहेंगे। किस भांति संस्कृत से प्राकृत, अपभ्रंश और फारसी के मेल से हिन्दवी और उर्दू की उत्पत्ति हुई, और किस प्रकार हिन्दी का स्वरूप निरंतर बदलता रहा और अन्त में खड़ी बोली का विकास हुआ इसका सामाजिक संगठन और उसके सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों या कार्यों को बदलने में कोई हाथ नहीं कहा जा सकता। यह विशुद्ध भाषा शास्त्री तत्व है। यह सांस्कृतिक तो है सामाजिक नहीं। अतः भाषा कला, संगीत-शैली या गणित का विकास सांस्कृतिक परिवर्तन के अंग हैं, सामाजिक परिवर्तन के नहीं। इससे स्पष्ट है कि सांस्कृतिक परिवर्तन का क्षेत्र सामाजिक परिवर्तन से अधिक विस्तृत है।

परिवर्तन और अन्तःक्रिया (Inter-action) एक समाज में व्यक्ति सदा आपस में अन्तःक्रिया में संलग्न हैं। किन्तु इस अन्तःक्रिया के रूप और नियम एक पर्याप्त समय के लिए निर्धारित हैं, अतः उनका यह कार्य क्रिया तो अवश्य है, पर सामाजिक परिवर्तन नहीं, क्योंकि समाज का संगठन अपरिवर्तित है। अतः सामाजिक अन्तःक्रिया सामाजिक परिवर्तन से भिन्न चीज है।

अल्पकालीन और दीर्घकालीन परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन में पर्याप्त लम्बे समय को ध्यान में रखना जरूरी है, क्योंकि पर्याप्त लम्बे समय में ही सामाजिक रचना या ढांचे और उसके कार्यों में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं। अतः हम वर्तमान पर ध्यान केन्द्रित कर सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन नहीं कर सकते। हमें दीर्घकालीन परिवर्तनों पर दृष्टि रखनी होगी।

रेखांकित और चक्रीय सामाजिक परिवर्तन का अध्ययन करते समय हमें यह भी देखना होगा कि इसका रूप रेखांकित (Linear) है अथवा चक्रीय (Cyclical) है। रेखांकित परिवर्तन इस बात पर जोर देता है कि परिवर्तन हमें एक निश्चित दिशा की ओर ले जा रहा है। जब कि चक्रीय परिवर्तन में हम एक दिशा में आगे बढ़ना फिर पीछे हटना और उतार-चढ़ाव देखते हैं।

निर्णयवाद (Determinism) की भांति परिवर्तन के कारणों की विवेचना में निर्णयवादी सिद्धान्त बहुत लोकप्रिय हैं। निर्णयवादी सिद्धान्त के पोषक किसी एक प्राकृतिक या सामाजिक कारण को लेकर उसे अनुचित महत्व दे, सामाजिक परिवर्तन का एक मात्र श्रेय देना चाहते हैं। कुछ लेखक भौतिक या प्राणिक कारणों को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। उनके अनुसार प्राकृतिक वातावरण या जनसंख्या के रूप में परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन के लिए

उत्तरदायी हैं। पीछे हम भौगोलिक निर्णयवाद की विस्तृत समालोचना कर चुके हैं। इसी प्रकार जनसख्या का तत्त्व भी कोई पूर्व निर्धारित तत्त्व नहीं है। हम जानते हैं कि किस प्रकार एक ही समाज में जन्म और मृत्यु-दर घट या बढ़ जाती हैं। सामाजिक तत्त्वों का इसको प्रमाणित करने में मुख्य हाथ है।

इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या प्राकृतिक या प्राणिक निर्णयवाद को छोडकर कुछ लेखकों ने किसी एक सामाजिक तथ्य को लेकर उसे सामाजिक परिवर्तन का कारण माना है। मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या इसी श्रेणी में आती है। इस मत के समर्थकों ने आर्थिक कारण की स्पष्ट व्याख्या नहीं की है। कई बार वह इसमें राजनैतिक कारणों का भी समावेश कर लेते हैं। मार्क्स और एँजिल्स उसमें यन्त्रविद्या (Technology) का भी समावेश करते नजर आते हैं। उनके अनुसार उत्पादन की प्रणाली सामाजिक, राजनैतिक और बौद्धिक जीवन का स्वरूप निर्धारित करती है।' किन्तु वह यह बताने में असमर्थ रहे हैं कि उत्पादन प्रणाली में यह परिवर्तन किस प्रकार शुरू होते हैं। साथ ही आर्थिक स्वार्थों की व्याख्या करते हुए वह उसमें राजनैतिक तथ्यों का भी समावेश कर लेते हैं और व्यक्तिगत स्वार्थों को वर्ग-स्वार्थ कहते हैं। जब कि आर्थिक कारण की परिभाषा इतनी अनिश्चित हो उससे इसे सिद्ध करना बड़ा आसान हो जाता है।

जब हम स्वार्थ की विवेचना करते हैं, तो हमारे लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि आखिर यह स्वार्थ है क्या ? यह कोई जन्मजात निश्चित सहज प्रेरणा नहीं है। मनुष्य के विश्वास, धारणाएं ज्ञान और मान्यताएं उसे बदलते रहते हैं। यह स्वार्थ जैसा कि कुछ लोगों का विश्वास है सदा आर्थिक नहीं होता। उदाहरण के लिए भारत में मुसलमानों के द्वारा की गई पाकिस्तान के रूप में एक पृथक राष्ट्र की मांग आर्थिक स्वार्थों द्वारा प्रेरित न थी। यह पहले ही अच्छी तरह ज्ञात था कि पाकिस्तान आर्थिक दृष्टि से एक कमजोर राष्ट्र होगा। फिर भी मुसलमानों ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर उसकी मांग की! यहां पर आर्थिक भावना ने नहीं, बल्कि धार्मिक भावना ने उनके व्यवहार को निर्धारित किया। इस प्रकार के अनेक उदाहरण हम सामाजिक क्षेत्र में देख सकते हैं।

सतुलन (Equilibrium) का दृष्टिकोण सामाजिक परिवर्तन को सही रूप में समझने के लिए यह आवश्यक होगा कि हम सामाजिक परिवर्तन के एक ही नियम का आग्रह छोड दें। इसके लिए हमें अनेक कारणों पर एक साथ दृष्टिपात करना होगा। सामाजिक सतुलन की कल्पना इस दिशा में उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

सामाजिक व्यवस्था एक सतत परिवर्तित सतुलन है। भावनाएं मान्यताएं, अंतिम लक्ष्य और उनकी प्राप्ति के साधन, यह समस्त यांत्रिक, आर्थिक धार्मिक और

नतिक क्रियाएं जिनमें यह सब तत्व सम्मिलित हैं, इन सब क्रियाओं का विभिन्न स्थितियों में क्रियान्वित करने क कानून संस्थाएं जन रीति, रूढियां, सम्पर्क सहयोग, विरोध और सात्मीकरण-जसा वह सब प्रक्रियाएं जो कि इन नियमों को एक रूप देती हैं, मिल कर एक समय में सामाजिक सन्तुलन का निर्माण करती हैं। इन अनेकानेक वस्तुओंमें से कोई भी तत्व समाज का सन्तुलन भंग कर सकता है। अत हम किसी एक तत्व का निर्णायक महत्व नहीं दे सकते। यह सतुलन की कल्पना सभी सामाजिक विज्ञानों के अध्ययन में अत्यन्त उपयोगी है। अर्थशास्त्र में तो इसका सफल प्रयोग हुआ है। समाजशास्त्र क क्षेत्र में परेटो और टालकौट पार्सन्स ने विशेष रूप से इसे विकसित किया है। सामाजिक परिवतन को समझने के लिए यह कल्पना अत्यन्त उपयोगी है।

सामाजिक परिवतन की परिभाषा मैकाइवर ने संस्कृति को भौतिक और अभौतिक दो भागों में विभक्त करने में आपत्ति प्रकट की है। उसने उन्हें उपयोगी (Utilitarian) और सांस्कृतिक दो भागों में बांटा है। उपयोगी या भौतिक तत्वों को उसने सभ्यता का नाम दिया है। जबकि अभौतिक तत्व, जिनका कार्य किसी बाह्य आवश्यकता की पूर्ति न होकर आतरिक आनन्द की सृष्टि है, उसके अनुसार संस्कृति है। उसके अनुसार सामाजिक सम्बन्धों में परिवतन सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन का विषय है। यह सामाजिक परिवतन उपयोगी तत्वों अर्थात् सभ्यता के परिवतनों से शुरू होता है। इस प्रकार हमारी संस्कृति की परिभाषा सामाजिक परिवतनकी परिभाषा को भी बदल देती है। हमने संस्कृति को भौतिक और अभौतिक दो भागों में बांटा है। अत हम गिलिन गिलिन के शब्दों में सामाजिक परिवतन की निम्न परिभाषा दे सकते हैं

'जीवन रीति के स्वीकृत तरीकों में परिवतन चाहे वह भौगोलिक अवस्था के सांस्कृतिक साधनों या, जनसंख्या के स्वरूप के या विचारधारा के वल्लन से हो, चाहे वह प्रसार से हो, या समूह के अपने आविष्कार से, सामाजिक परिवर्तन है।

सामाजिक परिवतन के कारण

इसके अनेको सामाजिक परिवतन के कारण माने हैं इस सम्बन्ध में हम अधिकांश लेखकों को दो भागों में बांट सकते हैं। एक तो आविष्कार (Invention) को सामाजिक परिवतन का कारण मानते हैं। दूसरे प्रसार (Diffusion) को परिवतन के लिए उत्तरदायी ठहराते हैं। वास्तव में सांस्कृतिक परिवतन में दोनों ही कारणों का हाथ होता है।

वातावरण के परिवतन किसी समाज के प्राकृतिक वातावरण में परिवतन आने से सामाजिक सम्बन्धों और साधनों, दोनों में परिवर्तन उपस्थित होते हैं। प्राकृतिक वातावरण तीन प्रकार से प्रभावित हो सकता है, (१) प्राकृतिक परिवतनों द्वारा, (२) मनुष्यों के प्रयत्नों द्वारा, अथवा (३) निष्क्रमण या निवास स्थान बदलने

के कारण। भौगोलिक वातावरण का अध्ययन करते समय हम विस्तार मे प्राकृतिक परिवतना पर प्रकाश डाल चुके हैं। मनुष्य के प्रयत्नों और निष्क्रमण का वातावरण के बदलने और बनाने में बड़ा हाथ है।

जनसख्या कोई भी कारण जो कि जनसख्या के स्वरूप, स्त्री पुरुषो की सख्या, जन्म, मृत्यु-दर और विभिन्न उम्र के लोगो के अनुपात पर प्रभाव डालता ह, सामाजिक सम्बन्धों, सस्थाओ और सगठन को प्रभावित करता है। लेकिन इन परिवतना का किसी समाज विशेष में प्रभाव सवथा निश्चित नही है। उम समाज की मान्यताए परम्परा और उसकी यान्त्रिक उन्नति इत्यादि अनेक तत्त्व इसे प्रभावित करते, ह। पर इससे इनकार नही किया जा सकता कि जनसख्या के स्वरूप में परिवतन भी सामाजिक परिवतन में सहायक होते ह। स्वय जनसख्या के परिवतन एक समाज में प्रेरणाओ और मान्यताओ के रूप को बदल सकते हैं।

सामाजिक सांस्कृतिक कारण एक सस्कृति की अपूणताए स्वय उसके परिवतन की प्रेरणा जुटाती हैं। जितना अधिक किसी समाज में विद्यमान स्थिति से असतोष और अतृप्ति होगी, उतना ही अधिक हम वहाँ पर परिवतन की सभावना कर सकते हैं।

नयीरीतियों का प्रवेश केवल समाज में विद्यमान रीतियों से असतोष ही उसमें परिवतन लाने के लिए पर्याप्त नही है। रिवाजो को बदलने के लिए यह भी जरूरी ह, कि लोगों को नई रीतियाँ आजमाने के लिए तयार किया जा सके। अत परीक्षण के लिए नए सास्कृतिक तत्त्वो को प्रस्तुत करना सास्कृतिक परिवतन की आवश्यक शत ह। आधुनिक समाजा में आविष्कारो की बढ़ती सख्या जनता के सामने अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति के नित नए और अधिक साधन उपस्थित कर रही ह।

नई रीतियों की स्वीकृति केवल आजमाइश के लिए सस्कृति के नए तत्त्वो का पेश करना ही काफी नहीं है, उसके लिए यह भी जरूरी है कि लोग उसे अपनाने के लिए तयार हो। सामाजिक और सास्कृतिक अवस्थाए इस प्रवृत्ति को बढ़ाने और घटाने में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती ह।

परिवतन में प्रभावशाली व्यक्तित्व का हाथ यद्यपि सामाजिक परिवतन का अथ जनता के पारस्परिक सम्बन्धो और व्यवहार में अन्तर का आना है, इन परिवतना को लाने में प्रतिभाशाली और प्रभावशाली व्यक्तियों का भी बड़ा हाथ होता है। महापुरुष सदा ही महान् आदोलना और परिवतना के स्रष्टा होते ह। भारत के इतिहास में ही कौटिल्य बुद्ध महावीर कबीर दयानन्द राममोहन राय, महात्मा गांधी को सामाजिक परिवतन लाने का कम श्रेय नही ह। योरोप और अमरीका के इतिहास में सुकरात, ईसा मसीह गैलीलियो, न्यूटन नैपोलियन, कालमाक्स,

लेनिन, स्टीफन्सन फैराड, ऐडीसन, लिंकन ग्राहमबेल ऐसे ही महापुरुष हैं ।

युद्ध का परिवर्तन में भाग समस्त प्रकार के भीषण सामूहिक संघर्ष अनेक प्रकार की कठिनाइयों और नई परिस्थितियों को जन्म देते हैं। राष्ट्रीय युद्ध इनमें सबसे प्रमुख हैं। युद्धों में बड़ी मात्रा में जनसंख्या और भौतिक सम्पत्ति की बर्बादी होती है। युद्ध में संलग्न राष्ट्रों को अपने सामाजिक संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने पड़ते हैं। हारे हुए राष्ट्रों को जीते हुए राष्ट्रों की इच्छाओं के सामने सिर झुकाना पड़ता है। युद्ध आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक पारिवारिक, शैक्षणिक और मनोरंजन सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों की सृष्टि करते हैं। इन परिवर्तनों का स्वरूप सभी समाजों में एक सा नहीं होता ।

परिवर्तनों का अन्य सम्बन्ध किसी समाज में नए सांस्कृतिक तत्वों का आगमन केवल कुछ नई चीजों और मान्यताओं को ही नहीं बढ़ाता, न ही वह केवल कुछ पुरानी चीजों या संस्थाओं के स्थान में नई चीजें या संस्थाएं ला देता है बल्कि यह समस्त सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन में परिवर्तन उपस्थित करता है।

यान्त्रिक परिवर्तन इस दृष्टि से नए यन्त्रों का प्रवेश महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन लाता है। उदाहरण के लिए भाप और बिजली से चलने वाली मशीनों के आगमन ने केवल उत्पादन के पैमाने, सम्पत्ति की मात्रा और रहन सहन के स्तर को ही नहीं बदला, बल्कि उसने पारिवारिक सम्बन्धों, बच्चों की शिक्षा की पद्धति, विभिन्न समूहों के एक-दूसरे से सम्पर्क मालिकों और मजदूरों के व्यक्तिगत सम्बन्धों में भी अत्यधिक परिवर्तन पैदा किए।

विचारधाराओं का प्रभाव केवल नए यान्त्रिक आविष्कार ही परिवर्तन में महत्वपूर्ण नहीं हैं, नई विचारधाराएं भी उसमें महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। जहां एक ओर खोजें और आविष्कार स्वयं सामाजिक विचारधाराओं को प्रभावित करते हैं, वहां स्वयं विचारधाराएं अनेक अंशों में उनकी दिशा और उपयोग को निश्चित करती हैं। विज्ञान पुराने विश्वासों और परम्पराओं पर प्रहार करता है। यह हमें प्रकृति और विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध और स्वरूप के विषय में नई दृष्टि प्रदान करता है। विज्ञान की खोजों का हमारे धार्मिक विश्वासों पर प्रबल प्रभाव पड़ा है। नई राजनैतिक विचारधाराएं राज्य के स्वरूप और नियन्त्रण के प्रकार पर अपना असर डालती हैं। आधुनिक प्रजातन्त्र एकतन्त्र और साम्यवाद के उदय को हम केवल यान्त्रिक कारणों से नहीं समझा सकते। इसी प्रकार स्त्री पुरुषों के बदलते सम्बन्धों को हम एकातन उत्पादन के क्षेत्र में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तनों से ही नहीं जान सकते। उनके लिए स्त्री पुरुषों के यौन सम्बन्धों के विषय में प्रचलित नई विचारधाराएं भी महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाती हैं। विचारधाराओं की सहायता से हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार एक प्रकार के यन्त्रों की सहायता से इंग्लैंड

और अमरीका ने नियन्त्रित पूजीवाद, स्वीडन न प्रजातान्त्रिक समाजवाद और रूस ने सोवियत साम्यवाद जसे भिन्न सामाजिक सगठनो को जन्म दिया और कायम रखा ह। यही, नही एक ही समाज में मनोविज्ञान, समाजशास्त्र की खोजें अनक चार सामाजिक सम्बन्धो को प्रभावित करती ह। अत सामाजिक परिवतन के अध्ययन में विचारधाराओ का अध्ययन भी आवश्यक है।

उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सामाजिक परिवतन का अध्ययन करते समय हमें धारा और दृष्टि रखनी पडती है। हम किसी एक कारण से उसे नहीं समझा सकते।

सगठन समाज का आधार सामाजिक जीवन और सामाजिक कल्याण के लिए समाज में सगठन की आवश्यकता अनुभव होती ह। किसी शरीर या वस्तु के विभिन्न अगा और क्रियाओ के सुचारु समायोजन को हम सगठन कह सकते ह। मानव शरीर सगठन का एक सुन्दर उदाहरण है, जिसमें खाने, श्वास लेने और मल त्यागने के आवश्यक अग ह। रक्त का सचार और नाडी-सस्थान पोषण, वस्तुबोध और क्रियाओ का समुचित सचालन करते हैं। किन्तु इस शरीर के किसी अग या कुछ अगों अथवा सस्थाना में किसी भी कारण से कोई विकार उत्पन्न हो जाने अथवा क्षति घटित हो जाने पर वह सुचारु रूप से अपना काय सम्पन्न नही कर सकता। दूसरे शब्दों में, हम उसे रुग्ण या विघटित कह सकते ह।

किसी भी सस्कृति क विभिन्न भौतिक और अभौतिक तत्त्व, रीति रिवाज विकास और धारणाए पारिवारिक, आर्थिक राजनतिक और शिक्षण सस्थाए, क्रीडा मनारजन क्रियाए एक समाज के सगठन का आधार होती ह। जब तक किसी समाज में भौतिक सस्कृति के विभिन्न विभाग मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, एक-दूसरे के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलती ह उन सब में एक मूलभूत एकता, अनुकूलता पूरकता विद्यमान रहती है, और हम कह सकते हैं कि वह समाज सगठित है। पर जैसे ही उसके कुछ या समस्त विभागो में किसी प्रकार की विषमता प्रतिकूलता प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाती ह, समाज विघटन की ओर अग्रसर होने लगता ह।

सामाजिक विघटन सक्षेप में, समाज की विभिन्न शक्तियो का असतुलन सामाजिक ढाचे की विशृखलता, पूव विद्यमान सामाजिक नियन्त्रणो की असफलता सामाजिक विघटन के प्रमुख लक्षण हैं

सामाजिक परिवतन सामाजिक जीवन क विभिन्न क्षेत्रो में असन्तुलन की सृष्टि करता है; अत यह सामाजिक विघटन का मूल स्रोत है अथवा सामाजिक विघटन सामाजिक परिवतन का ही एक पहलू है। सामान्यत, यह सामाजिक स्थिरता और सामाजिक पुनसगठन के बीच की अवस्था है। और फिर, सामाजिक

लनिन स्टीफन्सन फराडे ऐडीसन, लिंकन, ग्राहमबेल ऐसे ही महापुरुष हैं।

युद्ध का परिवर्तन में भाग समस्त प्रकार के भीषण सामूहिक संघर्ष अनेक प्रकार की कठिनाइयां और नई परिस्थितियों को जन्म देते हैं। राष्ट्रीय युद्ध इनमें सबसे प्रमुख हैं। युद्धों में बड़ी मात्रा में जनसंख्या और भौतिक सम्पत्ति का सर्वनाश होती है। युद्ध में संलग्न राष्ट्रों को अपने सामाजिक संगठन में क्रान्तिकारी परिवर्तन करने पड़ते हैं। हारे हुए राष्ट्र का जीते हुए राष्ट्र की इच्छाओं के सामने सिर झुकाना पड़ता है। युद्ध आर्थिक सामाजिक राजनैतिक पारिवारिक, शैक्षणिक और मनोरंजन सभी क्षेत्रों में महत्वपूर्ण परिवर्तनों की सृष्टि करते हैं। इन परिवर्तनों का स्वरूप सभी समाजों में एक-सा नहीं होता।

परिवर्तनों का पारस्परिक सम्बन्ध किसी समाज में नए सांस्कृतिक तत्त्वों का आगमन केवल कुछ नई चीजों और मान्यताओं को ही नहीं बढ़ा देता, न ही वह केवल कुछ पुरानी चीजों या संस्थाओं के स्थान में नई चीजें या संस्थाएं ला देता है बल्कि वह समस्त सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन में परिवर्तन उपस्थित करता है।

यान्त्रिक परिवर्तन इस दृष्टि से नए यन्त्रों का प्रवेश महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन लाता है। उदाहरण के लिए भाप और बिजली से चलने वाला मशीनों के आगमन ने केवल उत्पादन के पैमाने, सम्पत्ति की मात्रा और रहन-सहन के स्तर को ही नहीं बदला, बल्कि उसने पारिवारिक सम्बन्धों, बच्चों की शिक्षा की पद्धति विभिन्न समूहों के एक-दूसरे से सम्पर्क, मालिकों और मजदूरों के व्यक्तिगत सम्बन्धों में भी अत्यधिक परिवर्तन पैदा किए।

विचारधाराओं का प्रभाव केवल नए यान्त्रिक आविष्कार ही परिवर्तन में महत्वपूर्ण नहीं हैं, नई विचारधाराएं भी उसमें महत्वपूर्ण भाग लेती हैं। जहां एक ओर खोजें और आविष्कार स्वयं सामाजिक विचारधाराओं को प्रभावित करते हैं, वहां स्वयं विचारधाराएं अनेक अर्थों में उनकी दिशा और उपयोग को निश्चित करती हैं। विज्ञान पुराने विश्वासों और परम्पराओं पर प्रहार करता है। वह हमें प्रकृति और विभिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध और स्वरूप के विषय में नई दृष्टि प्रदान करता है। विज्ञान की खोजों का हमारे धार्मिक विश्वासों पर प्रबल प्रभाव पड़ा है। नई राजनैतिक विचारधाराएं राज्य के स्वरूप और नियन्त्रण के प्रकार पर अपना असर डालती हैं। आधुनिक प्रजातन्त्र एकतन्त्र और साम्यवाद के उदय को हम केवल यान्त्रिक कारणों से नहीं समझा सकते। इसी प्रकार स्त्री-पुरुषों के बदलते सम्बन्धों को हम एकान्ततः उत्पादन के क्षेत्र में हुए क्रान्तिकारी परिवर्तनों से ही नहीं जान सकते। उसके लिए स्त्री पुरुषों के यौन सम्बन्धों के विषय में प्रचलित नई विचारधाराएं भी महत्वपूर्ण प्रभाव दिखाती हैं। विचारधाराओं की सहायता से हम यह समझ सकते हैं कि किस प्रकार एक प्रकार के यन्त्रों की सहायता से इग्लैंड

और अमरीका ने नियन्त्रित पूजीवाद, स्वीडन ने प्रजातान्त्रिक समाजवाद और रूस ने सोवियत साम्यवाद जसे भिन्न सामाजिक सगठनो को जन्म दिया और कायम रखा है। यही, नही एक ही समाज में मनोविज्ञान समाजशास्त्र की खोजें अनेक बार सामाजिक सम्बन्धो को प्रभावित करती ह। अत सामाजिक परिवतन के अध्ययन में विचारधाराओ का अध्ययन भी आवश्यक हैं।

उक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सामाजिक परिवतन का अध्ययन करते समय हमें चारा ओर दृष्टि रखनी पड़ती ह। हम किसी एक कारण से उसे नहीं समझा सकते।

सगठन समाज का आधार सामाजिक जीवन और सामाजिक कल्याण के लिए समाज में सगठन की आवश्यकता अनुभव होती है। किसी शरीर या वस्तु के विभिन्न अगा और क्रियाओ के सुचारु समायोजन को हम सगठन कह सकते हैं। मानव शरीर सगठन का एक सुन्दर उदाहरण है, जिसमें खाने, श्वास लेने और मल त्यागने के आवश्यक अग हैं। रक्त का सचार और नाडी-सस्थान पोषण, वस्तुबोध और क्रियाओ का समुचित सचालन करते हैं। किन्तु इस शरीर के किसी अग या कुछ अगों अथवा सस्थानो में किसी भी कारण से कोई विकार उत्पन्न हो जाने अथवा क्षति घटित हो जाने पर वह सुचारु रूप से अपना कार्य सम्पन्न नही कर सकता। दूसरे शब्दा में, हम उसे रुग्ण या विघटित कह सकते है।

किसी भी सस्कृति के विभिन्न भौतिक और अभौतिक तत्त्व, रीति रिवाज विकास और धारणाए पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक और शिक्षण-सस्थाए, क्रीडा मनोरजन क्रियाए एक समाज के सगठन का आधार होती हैं। जब तक किसी समाज म भौतिक सस्कृति के विभिन्न विभाग मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, एक-दूसरे के साथ कदम-से-कदम मिलाकर चलती ह, उन सब में एक मूलभूत एकता अनुकूलता पूरकता विद्यमान रहती ह और हम कह सकते ह कि वह समाज सगठित है। पर जैसे ही उसके कुछ या समस्त विभागो में किसी प्रकार की विषमता, प्रतिकूलता प्रतियोगिता प्रारम्भ हो जाती है, समाज विघटन की ओर अग्रसर होने लगता ह।

सामाजिक विघटन सक्षेप में, समाज की विभिन्न शक्तियो का असतुलन सामाजिक ढाचे की विशृखलता पूव विद्यमान सामाजिक नियन्त्रणों की असफलता सामाजिक विघटन क प्रमुख लक्षण हैं

सामाजिक परिवर्तन सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में असन्तुलन की सृष्टि करता ह; अत यह सामाजिक विघटन का मूल स्रोत है अथवा सामाजिक विघटन सामाजिक परिवतन का ही एक पहलू ह। सामान्यत, यह सामाजिक स्थिरता और सामाजिक पुन सगठन के बीच की अवस्था है। और फिर सामाजिक

सगठन और सामाजिक विघटन दोनों ही सापेक्ष शब्द हैं। सामाजिक सगठन की भाँति ही सामाजिक विघटन की भी कमी या अधिकता हो सकती है। समाज का गतिशील स्वभाव अपने विभिन्न भागों में निरन्तर एक पुनर्व्यवस्थापन की आवश्यकता की ओर सकेत करता है। इस पुनर्व्यवस्थापन से उत्पन्न परिवर्तन पहले सामाजिक ढाँचे के अभिन्न अगों सस्थात्मक सम्बन्धो और व्यवहार रीति में एक विशृखलता ला देता है। परिवर्तन की गतिशीलता नई रीतियों की स्थापना को कठिन बना देती है। इस बीच वर्तमान समाज का नियन्त्रण उन साधनों से होता है, जो उस समाज में बने थे, जो अब लौट कर नहीं आयेगा।

सामाजिक विघटन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी समूह के विभिन्न सदस्यों के बीच विद्यमान सम्बन्ध छिन्न भिन्न हो जाते हैं। सामाजिक विघटन वस्तुत समूह के विघटन की प्रक्रिया है, चाहे वह समूह परिवार हो, पड़ोस हो, समुदाय हो अथवा राष्ट्र।

सामाजिक विघटन के कारण

आगे हम सक्षेप में उन शक्तियों का विश्लेषण करने का प्रयत्न करेंगे जो कि इस विशृखलता को जन्म देती हैं और किस भाँति यह विभिन्न वर्गों अथवा व्यक्तियों को प्रभावित करती है। प्रत्येक व्यक्ति अनेक समूहों के सूत्रों में बधा होता है और वह सभी सूत्र एक साथ ही नहीं टूट जाते। एक व्यक्ति के एक समूह से सम्बन्ध विच्छेद हो जाने पर अन्य समूहों से सम्बन्ध अविच्छिन्न रह सकते हैं। पर जैसे ही किसी एक समूह से यह सम्बन्ध टूटते हैं, सामाजिक विघटन विद्यमान होता है।

अनेक कारणों की सह उपस्थिति अन्य सामाजिक घटनाओं की भाँति ही सामाजिक विघटन का स्वभाव बहुत जटिल है। हम इसका कोई एक कारण नहीं ढूँढ सकते। धर्म का ह्रास, परिवार का परिवर्तित ढाँचा शासन व्यवस्था का नया स्वरूप उत्पादन के नये यन्त्र नई सामाजिक विचार धाराएं, सभी इसमें अपना-अपना योग दे रहे हैं। एक कारण बताने के धुनी लोगों ने इन कारणों में से एकान्तत किसी एक को सामाजिक विघटन के लिए उत्तरदायी ठहराया है।

आज भी हमारे यहाँ ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है जो धार्मिक विधि विधान या धार्मिक शक्ति के ह्रास को वर्तमान सामाजिक विघटन की विभिन्न अभिव्यक्तियों अपराध अनतिक भ्रष्टाचार, बेकारी, और पारिवारिक कलह का एकमात्र कारण मानते हैं। कुछ लोग मशीनों को इन सब परेशानियों की जड़ मानते हैं। एक अन्य वर्ग की राय में सुप्रजनन-शास्त्र (Eugenics) के सिद्धान्तों पर न चलना ही आधुनिक कष्टों का मूल है।

इनमें से प्रत्येक व्यक्ति या वग अपनी रुचि और रुझान के अनुसार किसी एक तथ्य को ही सामाजिक विघटन का कारण मानने लगता है। वास्तव में सामाजिक बुराइयों के किसी एक कारण का खोजने वाला व्यक्ति किसी एक समस्या के नाना पहलुओं को समग्र रूप से समझने में असमथ रहता है। इस प्रकार की तकप्रणाली को ही "विशेषात्मक भ्रान्ति" (Particularistic fallacy) कहते हैं। अत सामाजिक विघटन को सही रूप में समझने के लिए हमें उन समस्त पहलुओं पर विचार करना होगा जो कि इसमें सम्बद्ध हैं। हम देखेंगे कि सभी विघटित व्यक्ति दुराचारी, अपराधी वेश्या आदि, जनता के अन्य सदस्यों की ही भांति होते हैं। विघटित व्यवहार कभी भी किसी एक विशेष कारण का परिणाम नहीं है। वास्तव में उसमें विभिन्न कारण अन्तर्हित हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए हम सामाजिक विघटन को प्रेरित करने वाली पांच प्रमुख परिस्थितियों की ओर सकेत कर सकते हैं। वह हैं, (१) सामाजिक ढाचा, (२) सामाजिक परिवर्तन, (३) सामाजिक धारणाए (४) सामाजिक मूल्य और (५) सामाजिक सकट। वास्तव में यह सब परिस्थितियां भी एक दूसरे से पर्याप्त घनिष्ठतया सम्बद्ध हैं। नीचे हम सक्षेप में इन पर विचार करेंगे।

१ सामाजिक ढाचे (Structure) में परिवतन

एक गतिशील समाज में सामाजिक ढाचा निरतर तेजी से बदलता रहता है। व्यक्ति का पद (Status) और भूमिका (Role) ठीक निश्चित नहीं होती और व्यक्ति अपने का ऐसी स्थिति में पाते हैं जहा कोई पूवनिर्धारित व्यवहार विद्यमान नहीं होते। गतिशील समाज में स्थिर और स्थायी व्यवहारों को निश्चित करना बहुत कठिन हो जाता है। परिणामत, पद और भूमिका में पर्याप्त हेर-फेर होता रहता है। बहुत से व्यक्तियों को सवदा नई भूमिका ग्रहण करने के लिए मजबूर होना पड़ता है। यह प्रक्रिया समाज के लिए बहुत बार हितकर सिद्ध नहीं होती। इस प्रकार एक गतिशील समाज में स्वय ही सामाजिक विघटन के तत्त्व अन्तर्हित होते हैं। जो तत्त्व सामाजिक ढांचे को गतिशील बनाते हैं वही उसे विघटित भी करते हैं।

पद (Status) और भूमिका (Role) सामाजिक निर्धारण का परिणाम
सामाजिक पद और भूमिका सामाजिक निर्धारण का परिणाम होते हैं। समाज ही अधिकाश व्यक्तियों के लिए यह निर्णय करता है कि वह क्या पद ग्रहण करें और कौन सी भूमिका अदा करें। जब यह पद और भूमिकाए स्पष्ट और निश्चित होती हैं समाज सापेक्षत सुसगठित होता है। जब कि ऐसा नहीं होता, विघटन घटित होता है। हमारे वतमान समाज में पाश्चात्य शिक्षा और आर्थिक व्यवस्था के परिवतनस्वरूप पद और भूमिका के सम्बन्ध में स्पष्टता और निश्चितता निरन्तर

कम होती जा रही है और परिणामत विघटन के बीज बोए जा रहे हैं।

प्रत्याशित पद और भूमिका तथा उसकी पूर्ति में व्यवधान एक विघटित समाज में व्यक्तियों द्वारा इच्छित और प्रत्याशित पद और भूमिका की कल्पना और उनकी वास्तविक स्थिति में सदव एक बडा अन्तर प्रदर्शित होता है। प्रत्येक क्षेत्र में व्यक्ति को ऐसे आदर्शों का सामना करना पडता है, जिन्हें शायद वह कभी भी प्राप्त नहीं कर पाता। वह विश्वास करने लगता है कि वह एक करोडपति बन सकता है अनुपम सुन्दरी से विवाह कर सकता है, देश का राष्ट्रपति चुना जा सकता है, इत्यादि। परन्तु वस्तुत, उसके ऐसी किसी भूमिका के अदा करने के अवसर बहुत ही कम होते है। परिणाम यह होता है कि अन्ततोगत्वा निराश हो, अधिकांश व्यक्तियों को अपनी अतृप्त आकांक्षाओं को तृप्त करने के लिए समाज विरोधी कार्यों में कूदना पड़ता है। इसका ज्वलन्त उदाहरण वह व्यक्ति है जो चोरी, छल, कपट, गबन, चोरबाजारी तथा अन्य समाज विरोधी तरीकों से करोड़पति बनने का प्रयत्न करता है। वह समाज जहा कि जनसंख्या के पर्याप्त अनुपात समाज द्वारा अस्वीकृत तरीकों से अप्राप्य भूमिकाओं को अदा करने का प्रयास करते हैं, स्पष्टत सापेक्षतया विघटित हैं।

सामाजिक एकमतता (Consensus) का अभाव एक विघटित समाज में प्रमुख भूमिकाओं के बारे में कोई सामाजिक एकमतता नहीं होती। उदाहरणार्थ, आज हमारे समाज में एक पत्नी कौन सी भूमिका अदा करे यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। वह माता की या कमाने वाली की, या घर की शोभा बढाने वाली की, अथवा एक दिल बहलाने वाले साथी की भूमिका अदा करे यह निश्चित नहीं है। इनमें से कुछ भूमिकाएं तो एक दूसरे की पूरक हैं पर कुछ ऐसी नहीं हैं। एक स्त्री के लिए विभिन्न भूमिकाओं को अदा करने के प्रयत्न का परिणाम व्यक्तिगत निराशा ही होता है।

एक अगतिशील और पूर्णतया एकीकृत समाज में किसी व्यक्ति का पद और भूमिका रीति रिवाज द्वारा स्पष्टत पूर्वनिर्धारित होते हैं। अत व्यक्ति को इस सम्बन्ध में चिन्तित नहीं होना पडता। सामाजिक परिवर्तन की तीव्रता ने हमारे समाज के पुराने ढांचे को छिन्न भिन्न कर दिया है और परिवर्तित आर्थिक सामाजिक अवस्थाओं ने व्यक्तियों को परम्परागत व्यवहार को छोडने पर मजबूर किया है।

परिणामत एक विघटित समाज में लोग वैसा व्यवहार नहीं कर पाते जैसा कि उनसे आशा की जाती थी। जब कि पत्नी को घर से बाहर काम करना पडता है पति को स्थायी जीविका नहीं मिलती, अथवा उसे जीविका की खोज में एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमना पड़ता है, उसके बच्चे पहले की तुलना में कम होते

है, व्यक्ति उन भूमिकाओं को अदा नहीं कर सकते जो कि सर्वथा भिन्न, सरल परिस्थितियों के लिये उपयुक्त थी। जब कि अधिक संख्या में लोगों को अप्रत्याशित स्थितियों का सामना करना पड़े, समाज विघटित कहा जायेगा।

एक विघटित समाज में विश्वास और व्यवहार, प्रत्याशा (Expectation) और प्राप्ति (Achievement) में सदैव विस्तृत अन्तर विद्यमान रहता है। व्यक्ति एसे पदों की प्राप्ति या भूमिका अदा करने की शिक्षा ग्रहण करते है, जो कि उन्हें कभी भी प्राप्त नहीं होतें। इसके विपरीत, एक संगठित समाज में प्रत्याशा और प्राप्ति में पर्याप्त सामंजस्य पाया जाता है पर शीघ्र परिवर्तित समाज में बड़ो द्वारा अपने बच्चों के लिए निर्धारित भूमिकाएं कोई अर्थ नहीं रखती। परिणामत, अप्रत्याशित परिस्थितियों में व्यक्तियों की असफलता की निराशा उन्हें समूह के ही विरुद्ध खड़ा कर देती है।

७ सामाजिक परिवर्तन का प्रतिरोध

एक संस्कृति के अभौतिक तत्त्व उसकी विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का रूप धारण कर लेते है, जिन्हें बदलना सुगम नहीं होता। वह संस्थाएं जो कि एक समाज में स्थिरता लाती हैं, परिवर्तन के प्रति अपने हठ और प्रतिरोध के कारण प्राय सामाजिक विघटन का कारण बन जाती हैं। किसी संस्था अथवा समाज के जीवित रहने के लिए अनिवार्य है कि वह परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार अपने को संशोधित कर सके।

जहां कहीं भी सांस्कृतिक परिवर्तन की गति सापेक्षतया तीव्र है नई परिस्थितियां और पुरानी जीवन प्रणाली के विरोध से सामाजिक ढांचा निरन्तर हिलता रहता है। सामाजिक विघटन सामाजिक परिवर्तन और प्रगति की कीमत का एक अंश है।

सांस्कृतिक पिछड़न (Cultural Lag) यह एक सर्वविदित तथ्य है कि भौतिक संस्कृति की तुलना में अभौतिक संस्कृति में परिवर्तन बहुत मन्द गति से होते हैं। संसार में कोई वस्तु इतनी मन्द गति से परिवर्तित नहीं होती जितना कि विचार। भौतिक संस्कृति में परिवर्तन में अधिक कठिनाई नहीं होता। इसका कारण भी है। एक बैलगाड़ी की तुलना में एक मोटरकार की श्रेष्ठता प्रदर्शित करना विशेष कठिन नहीं होगा। पर एक नये राजनैतिक या सामाजिक आविष्कार की श्रेष्ठता प्रदर्शित करना और उसे अपनाना इतना सुगम नहीं होता। उससे हमारी उन भावनाओं को आघात पहुंचता है, जिन्हें हमने बचपन से संजोया है। यही कारण है कि जहां हम सरलता से नये भौतिक परिवर्तनों को स्वीकार कर लेते है, वहां अभौतिक परिवर्तनों को स्वीकार करने में प्रबल प्रतिरोध प्रदर्शित करते है। इसका परिणाम भौतिक और अभौतिक क्षेत्र के परिवर्तनों में विषमता

की सृष्टि होता है । इसी विषमता को सांस्कृतिक पिछड़न का नाम दिया गया है ।

भौतिक संस्कृति में परिवर्तन अभौतिक संस्कृति में भी तदनुसार परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हैं । आधुनिक यातायात और संवादवहन के साधनों ने आज दूरी की समस्या को बिल्कुल बदल दिया है, और परिणामत, राजनतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में विस्तृत परिवर्तनों को अनिवार्य बना दिया है । इसी प्रकार कृषि और उद्योग के नये यन्त्रों और संगठनों ने हमारे आर्थिक ढांचे में विशाल परिवर्तन ला दिये हैं । विभिन्न भौतिक परिवर्तनों के साथ-साथ समस्त अभौतिक क्षेत्र में भी उनके अनुसार परिवर्तन लाना आधुनिक युग की सबसे प्रधान समस्या है ।

३ सामाजिक धारणाओं (Attitudes) में विषमता

एक संतुलित सांस्कृतिक समीकरण (Adjustment) के लिए आवश्यक है कि सामाजिक [व्यवहार में परिवर्तित यन्त्रों, परिवर्तित आर्थिक मांगों और परिवर्तित संस्थात्मक आवश्यकताओं के अनुसार सुधार हो । परन्तु मनुष्य की चिरपोषित धारणाएं प्रायः बहुत धीरे धीरे बदलती हैं । और जब नयी धारणाएँ पुरानी स्वीकृत धारणाओं को मानने से इनकार कर देती हैं सामाजिक विघटन की सृष्टि हो जाती है । व्यक्ति परम्परागत व्यवहार को तिलाजलि दे देते हैं । सामाजिक धारणाओं और मूल्यों में यह संशोधन परिवर्तन का कारण न होकर उसका परिणाम होता है ।

एक सामाजिक धारणा 'व्यक्तिगत चेतना की वह प्रक्रिया है जो समाज में व्यक्ति की यथार्थ और संभावित क्रियाओं को निर्धारित करती है । धारणाओं की वस्तुओं और परिस्थितियों से पृथक कोई सत्ता नहीं है । वह सदैव ही किसी लक्ष्य या परिस्थिति से सम्बद्ध होती है । एक सामाजिक धारणा मन की एक स्थिति है । यह मनःस्थिति स्वयं विभिन्न वस्तुओं और परिस्थितियों का परिणाम होती है । एक *अमेरिकन या रूसी बच्चा स्कूल में ही साम्यवाद और पूंजीवाद के प्रति अपनी एक* विशिष्ट धारणा बना लेता है । एक व्यक्ति स्वयं अपनी विशेष उप-संस्कृति या समूह से ऐसी धारणाएं ग्रहण कर सकता है जो कि सार्वजनिक हित के विरुद्ध हो सकती है । एक विद्यालय में पढ़ी लड़की अनायास ही अनैतिकता की ओर अग्रसर होती है ।

ऐसी धारणाओं का ज्ञान जो कि व्यवहार के विद्यमान नियमों की क्षमता को नष्ट करती हैं, और इस प्रकार सामाजिक संस्थाओं पर प्रहार करती हैं सामाजिक विघटन के लिए परमावश्यक है ।

४ सामाजिक मूल्यों (Values) का विरोध

प्रत्येक समाज की कुछ मान्यताए अथवा मूल्य होते ह जो कि प्रत्येक समूह की सास्कृतिक विरासता का आधारभूत अश होते हैं। यह इस बात का निधारण करते हैं कि समाज किस बात को महत्त्वपूण और उचित अथवा किसे नगण्य और अनुचित समझता ह। मूल्य हमारे व्यवहार के निणय में बड़ा भाग अदा करते ह। तलाक हमारे लिए एक समस्या बन जाता ह, क्योकि उससे हमारी विवाह सम्बन्ध की अविच्छेद्यता की मान्यता पर कुठाराघात होता ह। विवाह से पूव यौन सम्बन्ध अनतिक घोषित किए जाते हैं क्योकि वह हमारी विवाह से पूव ब्रह्मचय की कल्पना के विरुद्ध जाते ह। इस तरह समस्त क्षेत्रो में सामाजिक मूल्य सामाजिक सगठन का अभिन्न अग होते ह। ज्यो ही सामाजिक मूल्यो के विरुद्ध आवाज उठती ह, सामाजिक विघटन शुरू हो जाता ह।

जब लोगों में सामाजिक एकमतता नष्ट हो जाय और वह व्यक्तिगत अथवा वर्गीय स्वाथ की दृष्टि से सामाजिक प्रश्नो पर सोचना शुरू कर दें सामाजिक विघटन विद्यमान माना जाएगा। हमारे आधुनिक समाज में इस एकमतता का अभाव अच्छी तरह व्यक्त हुआ ह। सगठित धम के ह्रास, सयुक्त परिवार के विघटन और परस्पर विरोधी राजनतिक विचारधाराओ के उदय और विकास में यह विघटन भली भाति प्रकट हुआ ह। आधुनिक समाज में अथशास्त्र राजनीति, वदेशिक सम्बन्ध धम परिवार इत्यादि महत्त्वपूण विषयो पर बहुसंख्यक जनता में एकमतता का अभाव है। परिवर्तित ससार ने विभिन्न सामाजिक विचारधाराओं को जन्म दिया ह।

हमारे यहा आज से सौ साल पहले महत्त्वपूण सामाजिक प्रश्नो पर जो एकमतता व्यक्त होती थी, वह शनः शनैः समाप्त होती जा रही ह। पाश्चात्य शिक्षा, औद्योगीकरण आधुनिक यातायात और सवादवहन के साधनो आर्थिक मन्दिया सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तनो नय सामाजिक कानूनो तथा युद्ध ने हमारी मान्यताओ और मूल्यो में पर्याप्त परिवतन ला दिए ह और सामाजिक प्रश्नो पर एकमतता नष्ट करने में यथेष्ट योग दिया है।

धारणाए और मूल्य सहवर्ती होत ह और एक दूसरे पर अत्यन्त निभर ह। दोनो ही सामाजिक परिवतन और सामाजिक मतवषम्य को प्रकट करते ह। समाज की गतिशीलता में वृद्धि के साथ साथ सामाजिक प्रश्नो व्याख्याओ आर सामाजिक मूल्यो में अधिक परिवतन स्वाभाविक ह। एक सामान्य व्यक्ति ऐसी स्थिति में अपने को अधिकाधिक कठिनाई में पाता है। वास्तव म सामाजिक मूल्यो का यह समकालीन सघष मानव इतिहास में सबसे विस्तृत सामाजिक विघटन को दर्शाता है।

✓ संकटकालीन स्थिति (Crisis)

यद्यपि सामाजिक विघटन एक क्रमिक प्रक्रिया है, परन्तु संकटकालीन परिस्थितियों में इसके बहुत-से उग्ररूप उदय होते हैं। समूह के विचारों अथवा कार्यों में एक ऐसा गंभीर व्याघात जो कि नई परिस्थितियों में पुरानी आदतों, रिवाजों और व्यवहार को प्रकट करे सामाजिक संकट है। एक सामाजिक संकट व्यक्तिगत संकटों का भी सूत्रपात करता है, क्योंकि अधिकांश व्यक्ति अपने आप परिवर्तित परिस्थितियों का सामना नहीं कर सकते।

आकस्मिक और क्रमिक संकट सामाजिक संकट दो प्रकार के हो सकते हैं आकस्मिक और क्रमिक। जब किसी समूह की आदतों में एक आकस्मिक व्याघात उत्पन्न हो जाता है और रातों रात उन्हें अपने कार्यों को नई परिस्थिति के अनुरूप ढालना पड़ता है, उसे आकस्मिक संकट कहा जाता है। नेताओं की मृत्यु, आकस्मिक दुर्घटनाएं, अकाल, भूकम्प, बैंक का फेल हो जाना अथवा शेयर बाजार का ठप्प हो जाना ऐसे ही आकस्मिक संकट हैं। हमारे लिए द्वितीय महायुद्ध भी एक आकस्मिक संकट था।

इसके विपरीत, एक क्रमिक संकट वह है जो दीर्घ काल में धीरे धीरे उग्र रूप धारण करता है। नई नस्लों के वर्गों के सात्मीकरण (Assimilation) में उत्पन्न कठिनाइयां क्रमिक संकट का उदाहरण हैं। इसी प्रकार हमारी आर्थिक व्यवस्था में हुए परिवर्तनों ने एक क्रमिक संकट को जन्म दिया है। हमारी कृषि अर्थ-व्यवस्था का सामाजिक संगठन धीरे धीरे नष्ट होता जा रहा है। पर्याप्त संख्या में जीविका की खोज में लोग गांवों से शहरों का निष्क्रमण कर चुके हैं। आधुनिक बाजारों की मांग के परिवर्तन सामयिक आर्थिक मन्दियों को जन्म देते हैं और भीषण बेकारी को फैलाते हैं।

सामाजिक विघटन के प्रमुख रूप

आर्थिक मन्दी (Depression) और बेकारी उत्पादन विनिमय और यातायात के साधनों ने जहां एक ओर जनसाधारण के लिए उपभोग और आराम की वस्तुओं का जुटाना संभव बनाया है, वहां दूसरी ओर व्यक्तिगत लाभ के लिए पूंजीपतियों द्वारा संचालित अर्थ-व्यवस्था ने आर्थिक मन्दी—बेकारी जिसका परिणाम है उसे क्रमिक संकट को जन्म दिया है। उत्पादन के लिए धन लगाने (Investment) में आकस्मिक कमी के कारण बड़ी संख्या में मजदूर बेकार हो जाते हैं। इस प्रकार लाखों मजदूरों को बेकार कर उनमें असंतोष और निराशा की वृद्धि कर और समाज-विरोधी भावनाएं जगा आर्थिक मन्दी एक विकट सामाजिक विघटन को जन्म देती है। व्यक्तिगत लाभ के लिए उत्पादन, विनिमय और वितरण-यन्त्रों का उपयोग और सम्पत्ति का अत्यन्त असमान वितरण द्वारा विघटन

के लिए उत्तरदायी हैं ।

पारिवारिक विघटन बडे-बडे कारखानो के बनने से पहले एक कृषक परिवार केवल स्नेह और कामसूत्र से ही नही, प्रत्युत् धर्म, अर्थ, शिक्षा और मनोरजन के सूत्रो से भी बधा था । इन बधनों का तोडना कठिन था । किन्तु परिवार के अधिकाश कार्य आज बाहरी सस्थाओ के पास चले गये ह । परिणामत पारिवारिक बधन ढीले हो गये ह । ऐसी स्थिति में तलाक, विच्छेद और परित्याग बढ गये ह । नई आर्थिक परिस्थितियो ने परिवार के ढाँचे को बदल दिया ह पर हमारी पुरानी पारिवारिक धारणाए और मूल्य अभी परिवर्तन में पिछड गये ह । इस कारण इस क्षेत्र में भी सामाजिक विघटन विद्यमान हैं ।

युद्ध किसी भी समाज के लिए युद्ध एक महान् आपदा और सकट ह । युद्ध आर्थिक क्षेत्र म उत्पादन, विनिमय, वितरण में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित करते हैं । युद्धकाल में उपभोग की वस्तुओ का भीषण अभाव हो जाता है । समाज की सारी शक्ति उपयोगी वस्तुए बनाने क स्थान पर विनाश के साधनो के निर्माण म लग जाती ह । युद्धो में भीषण धन और जन की हानि उठानी पडती ह । भय घृणा क्रूरता लोगो को आक्रान्त कर लेती ह । व्यक्ति और विचारों की स्वाधीनता युद्ध उद्देश्यो के लिए समाप्त कर दी जाती ह । युद्धरत समाज युद्धकाल में एक दूसरे के विरुद्ध बर्बर व्यवहार की स्वीकृति दे शांतिकाल में भी उससे मुक्त नही हो पाते । बडी सख्या में पुरुषो के युद्ध-क्षेत्र में चले जाने अथवा मारे जाने के कारण, पारिवारिक जीवन नष्ट हो जाता है और व्यभिचार और चारित्र्य-शैथिल्य उसका स्थान ले लेते ह । इस प्रकार हम देखते ह कि युद्ध समस्त विद्यमान सामाजिक सम्बन्धो, धारणाओ और मूल्यो को छिन्न भिन्न कर गभीर सामाजिक विघटन की सृष्टि करते हैं ।

अपराध जब समाज में विघटन होता है, तब लोग परम्परागत नतिकता और सदाचार की भावनाओ में विश्वास खो देते तथा विभिन्न आर्थिक मजबूरियो से प्रेरित हो समाज विरोधी दृष्टिकोण अपनाने की ओर अग्रसर होते ह । परिणामत अपराधो की वृद्धि होती है । किसी समाज में अपराधो की उपस्थिति ऐसे व्यक्तियो की उपस्थिति को सूचित करती ह, जो विक्षुब्ध असतुष्ट ह और अपने वातावरण के साथ सामजस्य स्थापित नही कर पाये हैं । सामाजिक विघटन की अवस्था में ऐसे व्यक्तियो की सख्या असाधारण रूप से बढ जाती ह । फलस्वरूप, अपराध भी बढ जाते ह । अधिक अपराधो का होना किसी भी सामाजिक सगठन के लिए बडा खतरा और उसकी रोगी और विघटित अवस्था का द्योतक ह ।

उद्योगीकरण और सामाजिक विघटन

सामाजिक विघटन की सामान्य विवेचना करते हुए हम देख चुके ह

कि अन्य अनेक कारणों के साथ अनियोजित उद्योगीकरण (Unplanned Industrialisation) वर्तमान समाज में सामाजिक विघटन का एक प्रधान कारण है। अत उस पर पृथक रूप से कुछ कहना आवश्यक है।

उद्योगीकरण और सामाजिक सगठन को लेकर कुछ अन्वेषकों और विद्वानों ने कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य सकलित किये हैं। इन तथ्यों की जानकारी अत्युपयोगी है। यह अध्ययन मुख्यत फ्रास और अमरीका को लेकर किये गये हैं किन्तु इनमें दिये हुए निष्कर्ष भारत पर भी पूरी तरह लागू होते हैं। वास्तव में जिन देशों में अनियोजित उद्योगीकरण हुआ, उन्हें ही प्राय समान परिणामों का सामना करना पडा है।

लाप्ले का अध्ययन फ्रेंच इजीनियर फ्रेडरिक लाप्ले उन्नीसवीं सदी में फ्रांस में उद्योगीकरण के प्रभावों का अध्ययन करते हुए इस परिणाम पहुँचे कि सरल सस्कृतियों में जहाँ कि जीविका का मुख्य साधन कृषि अथवा मछली पकडना के प्राथमिक उद्योग हैं, सामाजिक सगठन में स्थिरता है, जो कि विकसित उद्योग केन्द्रों में नष्ट हो चुकी है। इन सरल सस्कृतियों में प्रत्येक व्यक्ति विभिन्न आर्थिक और सामाजिक क्रियाओं को समझता है और अल्पाधिक अश में उनमें भाग लेता है। परिवार और बिरादरी के वास्तविक या काल्पनिक बधन तथा प्रत्येक सामाजिक अवसर उसे प्रत्येक सदस्य से सम्बन्धित करते हैं और यहा पर सहयोगपूर्ण कार्य करने की क्षमता बहुत उच्चस्तर पर पाई जाती है। यह स्थिति ऐसी नहीं है, जहा कि जोर जब्र से सहयोग प्राप्त किया जाता है इसके विपरीत व्यक्ति खुशी से स्वय सहयोग देते हैं और व्यक्तिगत आकांक्षाओ और सामाजिक विधान में किसी प्रकार का विरोध नहीं होता। प्रत्येक व्यक्ति इच्छापूर्वक सामाजिक कार्यों में योग देता है

लाप्ले की खोजो के अनुसार आधुनिक और औद्योगिक समुदायो की स्थिति इसस सर्वथा भिन्न है। यहा पर विस्तृत सामाजिक विघटन व्याप्त है सामाजिक विधान की सत्ता की उपेक्षा की जाती है बिरादरी और रक्त के बन्धन कमजोर हो गए हैं शान्ति और स्थिरता की क्षमता निश्चित रूप से कम हो गई है। एस समुदायो में व्यक्ति दुखी है। परिवर्तन और नवीनता की इच्छा पागलपन की सीमा तक पहुच गई है जिसने विघटन को और भी बढ़ा दिया है। विभिन्न व्यक्तियों और समूहों के बीच प्रभावशाली सम्पर्क नष्ट हो गया है और उनके बीच स्वाभाविक और प्रभावशाली सहयोग की क्षमता भी परिणामत नष्ट हो गई है। प्रसिद्ध फ्रेंच समाज शास्त्री दुरखाइम भी इससे मिलते-जुलते परिणामों पर पहुँचे हैं।

वर्तमान औद्योगिक समाज के अध्ययन से दो बातें तो स्पष्ट हैं—दुखी व्यक्तियों की सख्या निस्सन्देह बढ़ गई है तथा इसमें विभिन्न समूहों में सहयोग का स्तर पर्याप्त निम्न है।

दुरखाइम का मत दुरखाइम ने ठीक ही लिखा है कि हमारे विकास की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि उसने समस्त स्थापित सामाजिक प्रसगो को नष्ट कर दिया ह और उसका स्थान लेने के लिए कोई नई चीज पैदा नही हुई है। दूसरे शब्दो में द्रुत औद्योगिक, यान्त्रिक, भौतिक और रासायनिक उन्नति और प्रगति ने समस्त ऐतिहासिक और व्यक्तिगत सम्बन्धो को बिलकुल छिन्न भिन्न कर दिया है। ऐसा लगता ह, कि पहले की समस्त सस्थाओ में से केवल राज्य ही बचा ह जिसने समाज के विभिन्न सामाजिक कृत्यो को अपने अन्दर आत्मसात् करने की चेष्टा की ह। लेकिन वह उसमें सफल नही हो सका है।

भारतीय इतिहास के जिन विद्यार्थियो ने मेजर बी० डी० वसु लिखित भारत म अग्रेजी राज्य के उत्कर्ष की कहानी पढ़ी है वह उद्योगीकरण के प्रभाव से हुई भारतीय दस्तकारो की कगाली, भुखमरी और दयनीय अवस्था से भली भाति परिचित ह। यद्यपि भारत में उद्योगीकरण के सामाजिक प्रभावो का कोई वैज्ञानिक अध्ययन नही हुआ है, पर इसमें सदेह नहीं कि भारत में उद्योगीकरण ने भीषण सामाजिक विघटन की स्थिति को उत्पन्न किया ह।

लाप्ले और दुरखाइम के अध्ययनो से एक परिणाम प्रबल रूप में निकलता है कि औद्योगिक समाज में हम सहयोग को केवल चास—सयोग पर नही छोड सकते। राजनतिक और औद्योगिक इकाइयो में यह उपेक्षा केवल विश्रृखलता और विनाश की ही सृष्टि करेगी। निस्सदेह पिछली शताब्दी में भौतिक विज्ञानो, रसायन और चिकित्सा के क्षेत्र में असाधारण उन्नति हुई है, किन्तु इस उन्नति के असाधारण विस्तार ने समाज के सतुलन को समाप्त कर दिया है। यदि हमारी सामाजिक कुशलता भी हमारी यान्त्रिक कुशलता के साथ कदम से कदम मिलाकर चलती तो यह अव्यवस्था न होती। परिवतनशील समाज में हमें अपनी कुशलता को परिवर्तित अवस्था के अनुसार निरतर परिवर्तित करते रहकर उसके अनुकूल बनाना होगा।

यदि हम भारत में जुलाहो का ही उदाहरण लें, तो हमें पता चलेगा कि मशीनो के आयात और उद्योगीकरण से पहले यहा पर जनसख्या का बडा अनुपात कपडा कातने बुनने के काम में लगा हुआ था। मशीनो के आगमन और उद्योगीकरण की प्रगति ने उनके रोजगार को बडा धक्का पहुचाया। उनमें से अधिकाश बेकार हो गए। इस प्रकार समाज के आधार विकासवादी धारणाए हग क ो क स्व ा ा र रे क.री और ठ र े ेरा ा निराशा के गर्त में आ गिरे। अपने और समाज के प्रति उनका रुख पूण अविश्वास का हो गया और इससे भीषण सामाजिक विघटन की स्थिति उत्पन्न हो गई। यह समस्या केवल जुलाहों तक ही सीमित नही रही है, प्रत्युत् दस्तकारी में लगे हुए सभी लोग इससे प्रभावित हुए और हो रहे ह।

उक्त विवेचन से यह परिणाम निकलता है कि यदि हमें अपने टक्नीकल कौशल में आकस्मिक और बुनियादी परिवर्तन करना है, तो हमें परिवर्तित स्थिति का मुकाबिला करने के लिए उस सामाजिक कौशल का विकास करना होगा, जो कि रहन-सहन के तरीका में सामाजिक परिवर्तन ला बदली स्थिति का मुकाबिला करने के लिए इन कार्यवाहियों का संतुलन कर सके। हम किसी भी प्रकार एक पैर बीसवीं सदी और दूसरा पैर अठारहवीं सदी में रखकर नहीं चल सकते। पिछले सौ सालों में समाज ने अपनी सभी पूर्वस्थापनाओं को बदल दिया है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने सब कार्यों में संतुलन और व्यवस्थापन स्थापित करें।

सामाजिक आयोजन (Planning) की आवश्यकता हमारी अधिकांश वर्तमान सामाजिक समस्याओं के कारणों को हमारी संस्कृति के विभिन्न विभागों की असमान प्रगति में ढूंढा जा सकता है। अतः सामाजिक विघटन को रोकने का प्रभावपूर्ण उपाय संस्कृति के विभिन्न भौतिक और अभौतिक विभागों—समस्त संस्थाओं, रीति रिवाजों, विश्वासों, कानूनों को एक दिशा में, एक गति से, एक संगति से आगे बढ़ाना है। यह कार्य स्वयमेव अदृश्य हाथ के चमत्कार द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता, जैसा कि निहस्तक्षेप-नीति (Laissez faire) के समर्थकों का विश्वास था। इसके लिए हमें आयोजन को अपनाना होगा। सार्वजनिक हित की भावना से प्रेरित, व्यक्तिगत और वर्गीय स्वार्थों से रहित, सामाजिक यन्त्र के विभिन्न विभागों के संचालन की क्षमता प्राप्त व्यक्तियों द्वारा पूर्व नियोजित, जनतांत्रिक रीति से निश्चित बौद्धिक सामाजिक आयोजन द्वारा ही यह संभव है।। भौतिक आविष्कारों को रोककर सामाजिक विघटन का समाधान नहीं किया जा सकता, न ही संस्कृति के कुछ विशिष्ट भागों को अनियमित रीति से नियन्त्रित कर सामाजिक संकट का मुकाबिला किया जा सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि हम बहुमुखी और विस्तृत विकास की योजनाएं अपनायें।

परिशिष्ट

भारत की नस्लें, सस्कृति श्रौर सामाजिक जीवन पर सक्षिप्त टिप्पणियां

१

भारत की नस्लें

पहले यह समझा जाता था कि द्रविड इस भारत के मूल निवासी थे और आर्य लोग बाहर से आये थे। नई वैज्ञानिक गवेषणा के अनुसार भारत में बसने वाली सभी नस्लें मूलतः बाहर से आई हैं। भारत की वर्तमान जनता को डा० बी० एस० गुहा ने सूक्ष्म निरीक्षण के बाद छः प्रधान नस्लों में बांटा है

(१) नेग्रिटो (Negrito) (२) आस्ट्रेलायड (३) मंगोलायड, (४) मेडीटरेनियन—भूमध्यसागरीय (द्रविड), (५) पश्चिमी गोल सिर वाले और (६) नार्डिक (आर्य)।

१ नेग्रिटो नीग्रो वंश की वह शाखा है जिसका कद बहुत नाटा होता है। गहरा काला रंग, बहुत छोटा कद मोटे होंठ तथा ऊनी बाल इनकी मुख्य विशेषताएं हैं। यह भारत में बसने वाली प्राचीनतम नस्ल है और अब इसके अवशेष बहुत कम मिलते हैं। यह प्रधान रूप से आजकल अण्डमान टापू में बसी हुई है और इसके कुछ अंश भारत के दक्षिणी भाग कोचीन और ट्रावनकोर के पर्वतों की कडर और पनियन जातियों में आसाम के अंगमी नागों में तथा राजमहल (बिहार) की पहाड़ियों में बसने वाली जातियों में पाये जाते हैं। इसे इसके बाद आने वाली नस्ल ने, विशेषकर आस्ट्रेलायड नस्ल ने बहुत कुछ लुप्त कर दिया।

२ आस्ट्रेलायड नेग्रिटो नस्ल के बाद यह नस्ल भी पश्चिम से भारत में आई। भारत में इस नस्ल से सम्बद्ध विभिन्न बोलियां बोलने वाले समुदाय, संथाल, मुण्डा शबर आदि प्रधान रूप से उड़ीसा के पास झाड़-खंड में रहते हैं। इन्हें कोल भी कहा जाता है। भारत में इनकी संख्या बहुत कम है, किन्तु इस देश से बाहर इस नस्ल के लोग बर्मा, हिन्द चीन मलाया पूर्वी द्वीप समूह तथा प्रशान्त महासागर के टापुओं में बहुत दूर तक फैले हुए हैं। ऐसा समझा जाता है कि प्रागैतिहासिक युग में इनकी जो शाखा भारत में आई वह इस समय विद्यमान आस्ट्रेलयायड का पूर्व रूप थी, अतएव उसे प्राटो-आस्ट्रेलायड का नाम दिया जाता है। भारत में इसे नस्ली विशेषताएं प्राप्त हुई हैं और यहीं से इसकी एक शाखा दक्षिण पूर्व (आग्नेय) कोण की ओर चली गई। प्रोटो आस्ट्रेलायड नस्ल के लोगों की शक्ल-सूरत के सम्बन्ध में हमें सही सही ज्ञान प्राप्त नहीं है, ऐसा प्रतीत

होता है कि यह भी नाटे कद और चपटी नाक वाले थे। आज भी भारत के अधिकांश भाग में यह निम्न जातियों के रूप में विद्यमान है। प्राचीन काल में निषाद शायद इन्हीं का नाम था।

३ भूमध्यसागरीय (द्रविड़) पहले जिस नस्ल को द्रविड़ कहा जाता था, उसे अब भूमध्यसागरीय नाम दिया जाता है। इसके तीन उपभेद माने जाते हैं

(क) पुरा भूमध्यसागरीय काला रंग और मझला कद इसकी विशेषताएं हैं। यह प्रधान रूप से मलयालम, तामिल तथा कन्नड़ भाषी प्रदेशों में अवस्थित है।

(ख) असली भूमध्यसागरीय यह पुरा भूमध्यसागरीयों की अपेक्षा अधिक ऊंचे और साफ रंग के हैं। गंगा की ऊपरली घाटी में बसे हुए हैं। ऐसा समझा जाता है कि आर्यों के आने से पहले उत्तरी भारत में इसी नस्ल का निवास था।

(ग) प्राच्य भूमध्यसागरीय इनकी नाक लम्बी और रंग अधिक गोरा है। यह पंजाब, सिंध राजपूताना और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में पाई जाती है। यह सभी नस्लें लम्बे सिर वाली हैं।

(४) पश्चिमी (गोल सिर वाले) (Western Brachycephals) मध्य एशियायी पर्वतमालाओं में विकसित इस नस्ल के आल्पाइनी, दानारी और आर्मीनियन नामक तीन भेद पाये जाते हैं, पहला भेद गुजरात में, दूसरा बंगाल उड़ीसा काठियावाड़, कन्नड़ और तामिल प्रदेशों में तथा तीसरा प्रधान रूप से बम्बई के पारसियों में मिलता है।

(५)नार्डिक (आर्य) गोरा या गेहुआ रंग ऊंचा कद, उभरा हुआ माथा लम्बी नुकीली नाक और भरपूर दाढ़ी मूंछ आर्य भाषा भाषी नार्डिक नस्ल के खास लक्षण हैं। इसके नमूने उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रांत विशेषत सिन्धु नदी की ऊपरली घाटी तथा स्वात, पंजकोरा, कुनार, चित्राल नदियों की घाटियां और हिन्दूकुश पर्वत के दक्षिण में मिलते हैं। पंजाब, राजपूताना और गंगा की ऊपरली घाटी में भी यह नस्ल अन्य नस्लों के साथ सम्मिश्रित पाई जाती है। महाराष्ट्र के चितपावन ब्राह्मणों में भी इसका तत्व प्रधान है। प्राचीन साहित्य से ज्ञात है कि आर्य सुनहले बालों तथा नीली आंखों वाले थे। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय जलवायु के प्रभाव से उनके रूप में कुछ परिवर्तन आ गया।

(६) मंगोलायड पीला रंग, चपटा चेहरा, उभरी हुई गालों की हड्डियां नहीं बराबर दाढ़ी-मूंछ तथा नाक की कुछ चपटी जड़ इस नस्ल की मुख्य पहचान हैं। भारत में इसके दो भेद—लम्बे सिर वाले और गोल सिर वाले पाये जाते हैं। लम्बे सिर वाले पुराने मंगोल हैं। ये आसाम में तथा भारत और बर्मा के सीमा प्रदेश में रहते हैं। गोल सिर वाले इन्हीं से विकसित समझे जाते हैं यह चटगांव

की पहाडिमा तथा वर्मा के निवासी हैं। तिब्बत के किरात वश में इस नस्ल के भेदक चिन्ह अधिक स्पष्ट रूप में मिलते ह। ये सिक्किम और भूटान के निवासी हैं और तिब्बत से काफी आधुनिक समय में भारत आये हैं।

इस तरह भारतीय जनता प्रधान रूप से छ नस्लो के सम्मिश्रण से बनी है।

रिजले का वर्गीकरण

रिजले ने भारत की जनसंख्या का सात शारीरिक टाइप (Physical Types) में बाटा ह। उसके मत में अण्डमानवासी नेग्रिटो लोगो का भारत की जनता मे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। प्रो० डी० एन० मजूमदार ने रिजले का समर्थन किया ह। उन्होने भारतीय नस्लो का निम्न वर्गीकरण प्रस्तुत किया ह

१ तुर्क इरानी इस समूह के लोग बिलोचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में जो कि वतमान पाकिस्तान में है, रहते हैं। इनका रग गोरा तथा लम्बाई औसत से अधिक ह। इनकी आंखें प्राय काली ह किन्तु भूरी आखें भी पायी जाती हैं। इनके सिर लम्बे होते (Dolicocphalic) हैं नाक की चौडाई कुछ कम और लम्बाई बहुत अधिक होती हैं और वह विशेष रूप से उभरी हुई होती है।

२ इडो आयन यह पजाब के पूर्वी भाग राजपूताना और काश्मीर में पाये जाते हैं। इन स्थानो के खत्री और जाट खास तौर से इसके अतर्गत आते हैं। इनमें मे अधिकाश लोगो के सिर लम्बे नाक पतली लम्बी और उभरी हुई हैं। इनका रग भी पर्याप्त गोरा और आखें काली है।

३ शक द्राविड़ (Scytho-Dravidian): इसके नाम से ही प्रकट है कि यह शक और द्राविड दो भिन्न नस्ली धाराओ के अन्त मिश्रण का परिणाम ह। यह प्राय मध्यप्रदेश के पहाड़ी प्रदेश, सौराष्ट और कुर्ग में निवास करते ह। इन प्रदेशो की उच्च जातियो में शक तथा निम्न जातियो में द्राविड तत्व की प्रधानता ह। इनके सिर लम्बे ह, नाक पर्याप्त नोकीली तथा कम लम्बी ह। इनका कद मझला रग गोरा और शरीर पर बाल बहुत कम हैं।

४ आय द्राविड़ उत्तर प्रदेश, राजपूताना और बिहार में यह सबसे अधिक सख्या में ह। यह टाइप विभिन्न अनुपात में इडो-आर्य और द्रविड टाइप के अन्त-मिश्रण का परिणाम है। इनका सिर सामान्यत लम्बा है और मझले होने की तरफ उसका रुझान है। इनके रग में समानता नही ह वह स्थान-स्थान पर बदल गया ह। प्राय यह हल्के भूरे से काला है। इनकी नाक प्राय मझली हैं पर कहीं कहीं पर चौडी भी हो गई है। इडो-आयन टाइप की तुलना में इनका कद भी छोटा है।

५ मगोल द्रविड यह टाइप बगाल और विहार में पाया जाता है। बगाली ब्राह्मणो, बगाली कायस्थो और बगाली मुसल्माना की सख्या का बडा अनुपात इन्हीं में से है। रिजले के विचार में यह टाइप मगोलो के द्राविड में अन्त मिश्रण जिसमे कि इडो-आयन टाइप की भी कुछ धारायें आ मिली है, का परिणाम है। इनका रग काला है और चेहरे पर प्रचुर बाल है। इनके सिर गोल (Brachycephalic) है और उनमें कही चपटा होने का रुझान है। इनका कद मझला और कही कही नाटा है।

६ मगोलायड हिमालय प्रदेश में इनकी एक पट्टी नेपाल से शुरु होकर आसाम होती हुई बर्मा तक चली गई है। यह विभिन्न भागो में विभिन्न नामा मे पुकारे जाते है, पर इनके शारीरिक लक्षण समान हैं। इनके सिर चौडे है और नाक पतली है, जो कि कही कही चौडी हो गई है। चपटे चेहरे इनकी विशेषता हैं और इनकी आखा में एक विशेष शिकन (Epicanthic fold) पायी जाती है जो कि मगोलायड नस्ल का विशिष्ट लक्षण है। इनकी खाल का रग सावला है जिसमें पीलेपन की झलक है। शरीर पर प्राय कम बाल हैं। इनका कद नाटा है।

७ द्राविड यह भारत के दक्षिणी भाग, विशेषकर मद्रास, हैदराबाद आन्ध्र, मध्यप्रदेश के दक्षिणी भाग और छोटा नागपुर में बसे हुए है। छोटा नागपुर के सथाला और दक्षिण भारत के पनियन लोगा में इनके समस्त लक्षण पाये जाते है। इस समह के लोगो के शरीर और आख का रग सावला, कद नाटा और बाल प्रचुर होते हैं। इनके बालों का रुझान घु घरालेपन की ओर है। इनका सिर लम्बा नाक बहुत चौडी होता है। इनकी नाक के मूल में एक प्रकार का गड्ढा होता है।

२
भारतीय सस्कृति का विकास

भारतीय सस्कृति विश्व के इतिहास में विशेष महत्व और स्थान रखती है। यह ससार की प्राचीनतम मस्कृतियो में से ह। मोहेंज दोडो की खुदाई क बाद से यह मिस्र और मेसोपोटामिया की पुरानी ऐतिहासिक और विकसित मस्कृतिया के सम कालीन समझी जाने लगी है। इस सस्कृति का प्रभाव केवल भारत महाद्वीप तक ही सीमित नही रहा। उसे इस बात का श्रेय भी प्राप्त है, कि उसने सुदूर प्रदेशो को भी प्रभावित किया। साइबेरिया से लका तक मडागास्कर टापू, ईरान और अफगानिस्तान प्रशान्त महासागर म बोर्नियो, बाली के द्वीपा तक के विशाल भूखण्ड पर उसने अपना अमिट प्रभाव छाड़ा।

सम्मिश्रण भारतीय सस्कृति को प्राय केवल आर्यों की कृति समझा जाता ह। इसमें कोई सन्देह नही कि भारत की सस्कृति के निर्माण में उनका भी बडा हाथ रहा है। लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आज भारत की सस्कृति आर्य नहा, बल्कि भारतीय है। इसमें आर्यों ने और उनसे पहले यहा बसने वाली सभी आर्येतर नस्लो ने अपनी देन दी ह। जिस प्रकार मिट्टी की अनेक तहा के जमने से डेल्टा बनता ह उसी प्रकार भारतीय सस्कृति नाना जन समूहा के परस्पर सम्मिलन से बनी ह। नेग्रिटो, आस्ट्रेलायड द्रविड, ईरानी यवन, शक, कुपाण, पहलव, हूण, अरब, तुर्क, मुगल इत्यादि अनेक जनसमूहा ने इसमें हाथ बटाया ह। आज भारतीय सस्कृति जिस रूप में दिखाई दे रही है, वह आय और अनाय, अनेक जन-समहो के प्रयत्नो के सम्मिश्रण का परिणाम है।

इस प्रकार का सम्मिश्रण बहुत कम देशा में हुआ है। इस सम्मिश्रण का प्रधान कारण यहा क निवासिया की सहिष्णुता की प्रवृत्ति प्रतीत होती है। भारत में आर्यों ने ऋग्वेद के समय मे यह सिद्धान्त मान लिया था—'एक ही भगवान को लोग नाना रूपा से कहते हैं, सबको अपने ढग से पूजा करने धार्मिक विश्वास रखने और उसके अनुसार जीवन बिताने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए। भारतीय इतिहास में यह प्रवृत्ति प्रबल रही है। इसी कारण भारतीयो ने बहुत समय तक बाहर से आने वाले लोगो को विदेशी नही समझा उनस घृणा नही की और उनकी रीति-नीति और आचार विचार का विरोध नहीं किया। भिन्न धम, भाषा और और रहन-सहन होते हुए भी उन्हाने उसे स्वीकार किया। भारत मे यहूदी, पारसी,

और व्यापारी थे, तथा दूसरे सैनिक विजेता थे। आधुनिक काल में यातायात और सवादवहन के साधनों के प्रसार और उच्च अंग्रेजी शिक्षा और राजनैतिक एकता ने इस कार्य में मदद की।

ऋषि मुनी और विद्यार्थी प्राचीनकालमें ऋषि मुनियों ने भयंकर कष्ट उठाते हुए दक्षिण भारत में अपने तपोवन और आश्रम स्थापित किये। अगस्त्य आदि मुनियों ने दक्षिण की अनार्य जातियों में आर्य संस्कृति की विचारधारा को फैलाया। सब प्रान्तों में अवस्थित तीर्थों की यात्रा करनेवाले यात्रियों ने सांस्कृतिक एकता को बढ़ाया। कन्याकुमारी से पितरों की अस्थियों को प्रवाहित करने के लिए हरिद्वार आनेवाले दक्षिणवासियों और गंगा का जल रामेश्वरम् के मन्दिर में चढ़ाने वाले उत्तरवासियों के पारस्परिक सम्पर्क से एकता का पुष्ट होना स्वाभाविक ही था। संस्कृत के विद्वानों और धर्म सुधारकों ने भी इस प्रवृत्ति में सहयोग दिया। केरल के श्री शंकराचार्य ने हिमालय तक अपना प्रचार किया, महाप्रभु चैतन्य ने बंगाल से वृन्दावन तक कृष्ण भक्ति का गीत गाया। प्राचीनकाल में बड़े विश्वविद्यालय तीर्थ स्थानों और राजधानियों में होते थे। तक्षशिला, बनारस नालन्दा और उज्जयिनी इसी प्रकार के शिक्षा केन्द्र थे। भारत के विभिन्न प्रदेशों से विद्यार्थी इन स्थानों पर शिक्षा प्राप्त करने आते थे। इन्होंने भी समान संस्कृति के विकास में सहायता दी। ऋषि मुनि साधु-सन्त उन दिनों विभिन्न प्रान्तों में संचरण स्थापित करते हुए साधारण जनता के विभिन्न अंगों को एक दूसरे के पास लाते रहे।

विजेता इसी कार्य को यत्नपूर्वक करने वाले महत्वाकांक्षी और साहसी राजा थे। प्राचीनकाल से राजाओं की इच्छा दिग्विजय करके चक्रवर्ती सम्राट बनने की रहती थी। प्रतापी राजा दूसरे राज्यों को जीत कर, इस प्रकार के चक्रवर्ती राज्यों से विशाल भूखण्ड को एक शासन सूत्र में नीचे ला देते थे। एक शासन पद्धति सांस्कृतिक एकता के प्रसार में सहायता करती थी। प्राचीनकाल में चन्द्रगुप्त, अशोक तथा समुद्रगुप्त के समय राजनैतिक एकता ने इस प्रवृत्ति को पुष्ट किया। मध्यकाल में मुगल शासन तथा आधुनिककाल में ब्रिटिश शासन ने इस दिशा में महत्वपूर्ण योग दिया।

प्रागैतिहासिक काल (Pre-historic Age)

भारत में मानव के आविर्भाव से वैदिक युग तक के काल को प्रागैतिहासिक काल कहा जाता है। इस काल पर प्रकाश डालने वाली कोई लिखित सामग्री या ग्रन्थ नहीं हैं। इस काल की जानकारी का एकमात्र साधन उस युग के मानव द्वारा छोड़े औजार, हथियार तथा अन्य अवशेष हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि उसने धीरे धीरे किस प्रकार अपनी बुद्धि के प्रयोग से नये आविष्कार किये और अपने चारों ओर की परिस्थिति पर विजय पानी शुरू की।

आदिम मानव की प्रगति को चार अवस्थाओं में बाटा जा सकता है। पहली अवस्था में वह पत्थर के हथियारा का प्रयोग करता था। इसके बाद उसने तांबे और फिर कासे के हथियार बनाने शुरू किये। पापाण युग को दो बडे उपविभागों, पुराश्मकाल (Paleolithic) और नवाश्मकाल (Neolithic) में बाटा जाता है। यह पापाण युग अब से लगभग छ लाख साल पहले शुरू होकर प्राय दस हजार साल पहले तक जारी रहा। भारत म काश्मीर के पु व प्रदेश, चम्बल और नमदा नदी की घाटी, दक्खिन के कुरनूल जिले गुजरात में साबरमती नदी की घाटी मद्रास प्रात के समुद्र तटवर्ती प्रदेश, बम्बई के समीप खण्डिवली के प्रदेश, उडीसा की मयूरभज रियासत के कुलियाना नामक क्षत्र, तथा मसूर रियासत के बेल्लारी के इलाके में पापाण युग के अनक अवशेप मिले हैं।

पुराश्म काल के अनेक अवशेप, बिल्लौरी पत्थर मे बहुत से हथियार नमदा गोदावरी की घाटिया में तथा दक्खिन के पठार में पाये गये हैं। भारत में नवाश्म काल का श्रीगणेश करने वाले वतमान सथाल आदि जातियों के पूवज कहे जा सकते है। इस युग के सबसे अधिक अवशेष मध्यप्रात से मिले ह । कानपुर फतहगढ़, मथुरा, मैनपुरी से भी कुछ अवशेप मिल ह।

इसके बाद कासे का युग आया। आज से लगभग पाच हजार साल पहले सिध और पजाब में इसकी अभूतपूव उन्नति हुई। मोहेंजोदडो और हडप्पा की सस्कृतिया इस युग की प्रसिद्ध कृतिया थीं।

प्रागैतिहासिक युग में भारत में विविध नस्ला के सगामम से भारतीय सस्कृति का सूत्रपात हुआ और उसने विभिन्न नस्लो से अनेक अश ग्रहण किये। अपने प्रारम्भिक काल में इसने बहुत से महत्त्वपूण तत्त्व सथाल आदि जातियो के मूल पूवज निपादा या प्राटो-आस्ट्रेलायड तथा भूमध्यसागरीय (द्राविड) नस्लो से ग्रहण किये।

नेग्रिटो नस्ल की देन डा० गुहा के अनुसार नेग्रिटो भारत भूमि पर पदा पण करने वाली पहली नस्ल थी। किन्तु वह वहा की परवर्ती सस्कृति पर विशेप प्रभाव न डाल सकी, क्योकि वह सस्कृति की आदिम अवस्था, पुराश्मीय (Paleolithic) अवस्था में थी। इसे बाद म आनेवाली अधिक उन्नत नस्लों ने विनष्ट और विलीन कर दिया। नेग्रिटो पत्थर और हड्डी के अनगढ़ हथियारा या तीर कमान का प्रयोग करते थे। जगलो में फल मूल के सचय और जानवरों तथा मछली के शिकार से अपने जीवन का निर्वाह करते थे। इन्हें खेती मिट्टी के वर्तन बनाने और भवन निर्माण की कलाओ का ज्ञान न था। अण्डमान के आदि निवासी अभी हाला तक अनाज नही उपजा सकते थे। गुफाओ म रहते थे। भारत में नेग्रिटो शायद अफ्रीका से अरब होते हुए आये और यहा से मलाया हिन्दद्वीप समूह होते

हुए न्यूगिनी तक चले गये। इस समय भारत में इनकी सबसे बड़ी बस्ती अण्डमान टापू में ही है। सभ्यता की आदिम दशा में होने पर भी इनमें अद्भुत साहस था और उसी के भरोसे यह अपनी छोटी-छोटी किश्तियों द्वारा अफ्रीका से न्यूगिनी तक फैल गए थे। भारत की जातियों में नेग्रिटो तत्त्व बहुत समय तक बना रहा। गुप्त चित्रकला पर, विशेषतः अजन्ता के भित्ति चित्रों में, इसका कुछ प्रभाव पाया जाता है। सन्तान प्राप्ति के लिए और मृतकों की सद्गति के लिए वट वृक्ष की पूजा हिन्दू धर्म को इस जाति की विशेष देन थी।

आस्ट्रलायड नस्ल की देन आस्ट्रेलायड नस्ल को भारतीय जनता का मूल अंग माना जाता है। ये अपने साथ नवाश्मकालीन (Neolithic) संस्कृति का लाये। इन्होंने पत्थर को घिसकर उनसे धारदार औजार और हथियार बनाये, कुदाल (Hoe) से जमीन को खोद कर खेती शुरू की। कुम्हार का चाक भी उन्हीं के समय से भारत में चलना शुरू हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरी भारत के समूचे विशाल मैदान में ये बसे हुए थे क्योंकि नवाश्मकालीन अवशेष उत्तरी मैदान की प्रायः सभी नदियों की घाटियों में पाये गये हैं। बाद में आनेवाले लोगों द्वारा ये लोग हिमालय के दुर्गम प्रदेशों और विन्ध्य मेखला के गहन वनों में खदेड़ दिये गये। यासीन घाटी की बुरुशास्की में, मध्य हिमालय की कनौरी में तथा नेपाल की दुर्गम घाटियों में इनकी बोली के कुछ अवशेष मिलते हैं। किन्तु इस समय आस्ट्रेलायड भाषा भाषी संथाल, मुंडा, भूमिज, बिरहोर, असुर, अगर कोरवा आदि कबील विन्ध्य पर्वत के पूर्वी भाग में राजमहल की पहाड़ियों में बसे हुए हैं। मध्यभारत के कुरकू उड़ीसा में जुड़ीसा के जुआंग शबर तथा गदब भी आस्ट्रेलायड बोलियों का प्रयोग करते हैं। भारत में नारियल के प्रवेश का श्रेय प्रशान्त महासागर के टापुओं से आनेवाली इसी आस्ट्रेलायड नस्ल की एक शाखा को दिया जाता है। भौतिक और धार्मिक क्षेत्र में आस्ट्रेलायड लोगों की अनेक देनों ने भारतीय संस्कृति को समृद्ध किया।

भौतिक क्षेत्र में इनकी प्रधान देन न केवल कुदाल द्वारा खेती करना ही है अपितु भाषा विज्ञान के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि धान की खेती केला नारियल, बैंगन, पान, सोरी नींबू, जामुन और कपास के उत्पादन का श्रेय भी इन्हीं को है। इन्हीं ने शायद सबसे पहले मुर्गी पकड़ा बना था, हाथी को पालतू बनाया था। संस्कृत भाषा को इन्होंने बाण, लकुट (लाठी), शाल्मलि (सिम्बल) कृकवाकु (मुर्गा), मातंग गज इत्यादि शब्द प्रदान किये। गन्ने से खाने की चीजें बनाना भी इनका आविष्कार माना जाता है। पान सुपारी का व्यवहार, विवाह आदि संस्कारों में सिंदूर और हल्दी का प्रयोग भी इन्हीं का दिया गया बताया जाता है।

धार्मिक क्षेत्र में पुनर्जन्म का विचार ब्रह्माण्ड तथा सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी अनेक दन्त कथाएं, कच्छप अवतार की कल्पना, पत्थर के टुकड़े में देवता की भावना नाग, मगर आदि विभिन्न प्राणियों की पूजा भक्ष्याभक्ष्य, छूतछात तथा वर्जन (Taboo) का विचार बुरी नजर को निछावर से बचाना आदि प्रोटोआस्ट्रेलायड प्रभाव का परिणाम हैं। चन्द्रमा की कला के अनुसार तिथियों की गणना तथा इसके अनुसार धार्मिक त्योहारों का मनाना भी शायद इन्हीं से लिया गया। सत्ताईस नक्षत्रों में मातृका (कृत्तिका) का मूल भी इन्हीं से बताया जाता है। महाभारत और पुराणों में पाताल-लोक के अधिपति वासुकि आदि नागों, अण्डे से सृष्टि की उत्पत्ति मत्स्यगन्धा और गणेश आदि के सम्बन्ध में प्रचलित मनोरंजक कथाओं का मूल भी इनका पुराण है। विद्वानों का मत है कि नदियों की पूजा और अस्थि विसर्जन ये दोनों विचार सथाल आदि कबीलों से लिए गये हैं। दामोदर नदी में अस्थियां डाले बिना सथालों की गति नहीं होती। तीर्थों का महत्त्व और नदियों की पूजा वैदिक साहित्य में कहीं नहीं मिलती। स्पष्ट ही यह अनार्य जातियों से ग्रहण की गई है।

द्रविड़ नस्ल की देन प्रोटोआस्ट्रेलायड लोगों के बाद हमारे देश में द्रविड़ लोगों का आगमन हुआ। द्रविड़ अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा अधिक सुसंस्कृत और नगर सभ्यता से सम्पन्न थे। इस समय द्रविड़ भाषा भाषी केवल दक्षिण भारत में पाये जाते हैं, किन्तु प्राचीन काल में उत्तरी भारत में भी इनके निवास करने के पक्के प्रमाण मिलते हैं। यह समझा जाता है कि यह लोग मूलतः क्रीट से आये।

धार्मिक क्षेत्र में द्रविड़ प्रभाव का परिणाम नये ढंग की उपासना पद्धति की शुरूआत थी तथा नये देवताओं का आगमन था। द्रविड़ प्रभाव से देवताओं की पूजा, अर्थात् पत्थर की मूर्ति या किसी प्रकार के देवता के प्रतीक पर पत्र पुष्प चढ़ाना, उसे सिन्दूर चन्दन लगाना, इसके सामने धूप दीप जलाना, घंटा-घड़ियाल बजाना, संगीत नृत्य का आयोजन करना भोग लगाना प्रसाद लेना प्रचलित हुआ। यह सब अनुष्ठान सर्वथा अवैदिक है। पूजा शब्द भी संभवतः द्रविड़ मूल का है पूजा के साथ-साथ शिव, उमा, विष्णु, श्रीकृष्ण कुमार, हनुमान गणेश, शीतला आदि नवीन देवता भी द्रविड़ों की देन थे। शिव की लिंग के रूप में पूजा भी इन्हीं लोगों ने चलाई। बाद में आनेवाले आर्यों ने इन्हें अपनाया। सभी पुराणों में इस बात का उल्लेख है कि ऋषियों ने अपनी पत्नियों की हठ से विवश हो इसे स्वीकार किया। मातृ-शक्ति की पूजा भी द्रविड़ों की देन है। उनके मूलस्थान ईजियन सागर के टापुओं में यूनान और लघु एशिया में 'मां' नामक मातृ देवता की पूजा बहुत प्रचलित थी। विष्णु आंशिक रूप से वैदिक है, लेकिन उसका वर्तमान

स्वरूप अवैदिक है, कृष्ण वेद में इन्द्र विरोधी है, लेकिन पीछे सांख्य के इस द्रविड़ देवता को विष्णु के साथ एक कर दिया गया।

मंगोलों की देन भारतीय संस्कृति पर मंगोलों का अधिक प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि उनके आगमन तक भारतीय संस्कृति का स्वरूप बहुत कुछ निश्चित हो चुका था। स्वयं यह जातियां बहुत पिछड़ी हुई थी और इनका विस्तार भी भारत की उत्तर पूर्वी सीमाओं पर रहा। फिर भी हिमालय प्रदेश की बोलियों तथा गोरखाली बंगला, आसामी भाषाओं के विकास में इनका कुछ प्रभाव पड़ा। १३ वीं सदी में आसाम जीतने वाले अहोम धीरे धीरे हिन्दुओं में मिल गए।

आर्य व आर्येतर संस्कृतियों का संगम प्रागैतिहासिक युग में इस प्रकार जो आर्येतर तथा आर्य संस्कृतियों का संगम हुआ, यही आने वाले समय में भारतीय संस्कृति का सुदृढ़ आधार बना। संभवतः आस्ट्रेलायड और द्राविडों के अनबन और और विरोध में आर्यों को सफलता मिली। उनकी भाषा देश के अधिकांश भाग में प्रचलित हुई। भाषा की दृष्टि से आज भारत में ७६ ४ प्रतिशत आर्य भाषा भाषी हैं, २० ६ प्रतिशत द्राविड़ भाषा भाषी और ३ प्रतिशत लोग आस्ट्रेलायड भाषा-भाषी हैं। किन्तु धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से कुछ विद्वानों के अनुसार वैदिक और अवैदिक आर्य और आर्येतर संस्कृतियों के आपसी घनिष्ट सम्पर्क से यह अनुपात बिल्कुल उलट गया है। वे वर्तमान भारतीय संस्कृति में २५ प्रतिशत अंश को ही वैदिक या आर्य और 'रुपए में बारह आना' इसका मूल आर्येतर मानते हैं भारतीय धर्म, खान-पान, भाषा, सामाजिक रीति रिवाज पर आदि सभी बातों में आर्येतर अंश प्रबल है। धर्म के सम्बन्ध में अनार्य तत्वों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है यहाँ यह कहना ही पर्याप्त है कि भक्ति सिद्धान्त की उत्पत्ति पुराणों के अनुसार द्रविड़ देश में हुई। तुलसी वड़ पीपल बेल आदि वृक्षों की पूजा और पवित्रता का विचार आर्यों ने आर्येतर लोगों से सीखा।

वैदिक आर्यों का प्रधान भोजन जौ और मक्खन था। आज भारतीय भोजन में चावल गेहूं, दाल घी और तेल आदि की प्रमुखता है। वैदिक आर्यों के ऊनी का स्थान सूती कपड़ों ने ले लिया। भाषा शास्त्रियों के मतानुसार वर्तमान आर्य भाषाओं के वाक्यों की रचना हिन्द-योरपीय परिवार की अन्य भाषाओं की अपेक्षा द्रविड़ भाषाओं से अधिक मिलती है। इन भाषाओं में यदि सौ के लगभग आस्ट्रेलायड शब्द हैं तो चार सौ पचास के लगभग द्रविड़ शब्द हैं। विवाह में निषिद्ध पीढ़ियों का विचार मांगलिक अवसरों पर अग्नि का प्रयोग, वैवाहिक विधियों में शंख, स्वस्तिक, रोचन, सफेद सरसों हल्दी और सिन्दूर का व्यवहार भी अवैदिक है।

आर्येतर और आर्य तत्वों के समन्वय से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वह न तो अवैदिक और अनार्य थी और न ही वैदिक और आर्य। वह सब का साझी संस्कृति थी।

३

हिन्दू समाज पर इस्लाम का प्रभाव

सातवी शती ई० म अरब प्रायद्वीप में एक नये धम और नई शक्ति का अभ्युत्थान हुआ और वह धीरे धीरे अनेक देशो में फैलने लगा। इस्लाम की विश्व व्यापी लहर शीघ्र ही सीमान्तो से भारत में प्रवेश करने लगी। इस देश में इसका प्रचार दो ढग से हुआ, शान्तिपूवक और शक्तिपूवक।

शातिपूवक प्रचार प्रथम तरीके से प्रचार करने वाले अरब व्यवपारी, मुस्लिम फकीर और दरवेश थे। दूसरे के माध्यम थे, अरब, तुक और मुगल आक्रान्ता। प्राय यह समझा जाता ह कि इस्लाम तलवार के जोर से भारत में फैला किन्तु यह बात सर्वांश में सत्य नही ह। भारत में सवप्रथम इसका प्रसार शातिपूवक हुआ। अरबो और भारतीयो का सम्बन्ध हजरत मुहम्मद के जम से कई सदियो पहले से चला आता था। ये नाविकों और व्यापारियों के रूप म भारत के पूर्वी तथा पश्चिमी तटो के बन्दरगाहो पर आते थे। विशेषत पश्चिम तट पर, चौल कल्याण और सुपारा तथा मलाबार में इनकी अनेक बस्तिया थीं। इस्लाम के प्रचार के बाद में ये कट्टर मुसलमान होकर भारत आने लगे। इनमें से अरब व्यापारी भारत में ही बस जाते थे, भारतीय स्त्रियो स शादी कर लेते थे। इन्ही की सन्तान कोकण की नटिया और मलाबार की मोपला जातियाँ हैं। उस समय के पश्चिमी तट के हिन्दू शासको, विशेषत सौराष्ट्र के वलभी वश और कालीकट के जमेरिना की नीति इन व्यापारियो को अपने राज्य में पूरा प्रोत्साहन दने की थी क्योंकि इससे उनके राज्यो को बडी आय थी। वलभी के राजाओ ने उन्हें अपने राज्य में न केवल मस्जिदें बनाने की इजाजत दी, बल्कि स्वय भी इनके लिए मस्जिदें बनवाई। मलाबार के राजाओ ने इन्हें अपने राज्य में बडी रियासतें और ऊचे पद दिये। एक राजा ने तो यहां तक आज्ञा दे दी कि हर हिन्दू मल्लाह के घर कम-से कम एक लडका को बचपन स ही मुसलमानों की तरह शिक्षा दी जाय। इन कारणों से दक्षिण में इस्लाम का प्रचार तेजी से होने लगा।

शातिपूवक धम प्रचार में सब से अधिक महत्व और सफलता मुस्लिम फकीरो और दरवेशो को मिली। ११ वीं शती से इनका काय शुरू हुआ। इन फकीरो के पीछ कोई राजनतिक शक्ति न थी। उन्होंने अपने उपदेशो और चमत्कारो से ही हिन्दू जनता को मुस्लिम बनाया। ११ वीं शती में शेख इस्माइल और

अब्दुल्ला यमनी भारत आये, १२ वीं शती के प्रारम्भ में नूर सतागर ईरानी ने गुजरात की नीची जातियों को मुसलमान बनाया। तेरहवीं शती के प्रसिद्ध फकीर जलालउद्दीन बुखारी, सैयद अहमद कबीर, ख्वाजा मुइनउद्दीन चिश्ती थे। इनकी शिष्य परम्परा में फरीदुद्दीन निजामउद्दीन औलिया (१३वीं १४वीं शती) ख्वाजा कुतुबुद्दीन शाह अलाउद्दीन अली, अहमद साबिर पिरानकलियर वाले प्रसिद्ध है। इन्हें हिन्दुओं की सकीर्ण जाति प्रथा के कारण बहिष्कृत और पददलित व्यक्तियों और नीच जातियों को मुसलमान बनाने में काफी सफलता मिली।

बलपूर्वक प्रचार बलपूर्वक इस्लाम प्रचार का कार्य कुछ मुस्लिम आक्रान्ताओं ने किया। मुहम्मद बिन कासिम ने ७१२ ई० में सिंध पर पहला हमला किया। इसके तीन सौ वर्ष बाद ग्यारहवीं शती में मुहम्मद गजनवी ने सत्रह बार हमले किये। इसके दो सौ बारह वर्ष बाद शहाबउद्दीन गोरी ने ११९२ ई० में पृथ्वीराज को हराया। उक्त हमलों का मुख्य उद्देश्य लूट मार था अत यह हमले भारतीय समाज और संस्थाओं पर कोई स्थाई प्रभाव न डाल सके। १२०२ ई० में शहाबउद्दीन के सेनापति कुतुबुद्दीन ने दिल्ली में मुस्लिम शासन की स्थाई नींव डाली। १५२६ ई० तक दिल्ली पर तुर्कों और अफगान सुलतानों का शासन रहा और इसके बाद दो सौ वर्ष तक मुगलों का। इस काल में फीरोजशाह तुगलक (१३५१ ८८ ई०), सिकन्दर लोदी (१४८८ १५१७ ई०) काश्मीर के सिकन्दर (१३९४ १४१६ ई०) तथा औरंगजेब (१६५९ १७०७ ई०) आदि बादशाहों ने इस्लाम प्रचार के लिए राजशक्ति का प्रयोग किया।

कम सफलता किन्तु सुदीर्घ काल तक मुस्लिम शासन द्वारा शक्ति प्रयोग तथा शान्तिपूर्वक प्रचार से इस्लाम को उल्लेखनीय सफलता न मिली। हिन्दू-धर्म और इस्लाम के सम्पर्क से दोनों के इतिहास में एक नवीन तथा अभूतपूर्व घटना हुई। इस्लाम से पहले भारत पर यवन, शक हूण आदि उनके जातियों के आक्रमण हुए थे। हिन्दू धर्म और हिन्दू समाज ने इन जातियों को अपने में आत्मसात कर लिया था। किन्तु मुसलमान ही ऐसी पहली आक्रान्ता जाति थी जो हिन्दू जाति का अंग न बन सकी। भारत में आने से पहले इस्लाम जिस देश में गया था वहाँ उसे विलक्षण सफलता मिली थी। उन देशों की समूची जनता को उसने अपने रंग में रंग लिया था। किन्तु भारत में इस्लाम कई सदियों तक प्रभाव डालने के बावजूद भी बहुत थोड़े भाग को ही हजरत मुहम्मद का अनुयायी बना सका। हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों के एक दूसरे को अपने रंग में न रंग सकने के दो प्रधान कारण थे। (१) इस्लाम का कट्टर एकेश्वरवाद, (२) हिन्दू धर्म की पाचन शक्ति की हीनता।

इस्लाम का एकेश्वरवाद धार्मिक दृष्टि से भारत में आने वाले मुस्लिम

विजता अपने पूर्ववर्ती सभी आक्रान्ताओ स भिन्न थे। शक, कुषाण और हूण जातियो का अपना कोई विशिष्ट विकसित धर्म नहीं था। किन्तु मुसलमान न कवल एक कट्टर एकेश्वरवादी धम साथ लेकर आये वल्कि उनमें अपने धर्म को फलाने की लगन और जोश भी था। बुतपरस्ती से जहा उन्ह नफरत थी, यहा बुतशिकन होने में फख भी था। हिन्दू समाज को इसमें कोई ऐतराज न था कि उनके ततीस करोड देवो में अल्लाह को भी शामिल कर लिया जाय। उन्होने अल्लोपनिपद् की रचना भी कर डाली किन्तु मुसलमानो का अल्लाह लाशरीक था और शिरकत इस्लाम की नजर में वडा कुफ्र था। अत इस्लाम के अनुयायी हिन्दू धम में विलीन होने को तैयार न थे।

यदि यह किसी तरह मुमकिन भी होता तो भी हिन्दू धम इस्लाम को न पचा पाता। इसमें प्राचीनकाल में दूसरो का अपनाने और जज्ब करने की शक्ति अब तक खतम हो गई थी। इसका नतीजा यह हुआ कि जिन राजवशो के पूर्वज पहले एक पीढी में ही बाहर की जातियो को अपना अग वना लेत थे, वे अब मलेच्छो के स्पश मात्र से घबराने लगे। विदेश यात्रा से ही उनका धम नष्ट होने लगा। जब उच्च वर्ण हिन्दू जाति के निम्न वर्णों से भी अलग रहने लगे तब विधर्मी मुसलमानो को किस तरह अपन में मिला सकते थे?

सम्पर्क का महत्व फिर भी हिन्दू धम और इस्लाम का जो सम्पर्क हुआ उसका वडा महत्व ह। इस प्रकार की दो विरोधी सस्कृतियो का सम्पर्क भारतीय इतिहास में एक विलक्षण घटना थी। सर जान मार्शल ने ठीक ही लिखा ह कि "मानव जाति के इतिहास में एक ऐसा दृश्य कभी नही देखा गया, जब इतनी विशाल, इतनी सुविकसित और साथ ही मौलिक रूप से इतनी विभिन्न सभ्यताओ का सम्मिलन और सम्मिश्रण हुआ हो। इन सस्कृतियो और धर्मों के विस्मृत विभेद उनके सम्पर्क के इतिहास को विशेष शिक्षाप्रद बनाते ह।

सम्मिलन की प्रवृत्ति यद्यपि दोनो धर्म एक दूसरे के कट्टर विरोधी थे, दोनो म उग्र राजनतिक सघष और युद्ध भी हुए, लेकिन इसके बावजूद हम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दोनो को एक दूसरे क पास आते हुए पाते ह। साधारण जीवन के सभी पहलुओ में सम्मिलन, सम्मिश्रण, सहयोग, सामीप्य, पारस्परिक प्रेम, सामजस्य और समन्वय की प्रवृत्तियो के दशन होते हैं। इस्लाम का सूफीवाद वेदान्त से प्रेरणा प्राप्त करता ह। हिन्दू धम के सुधार आन्दोलन इस्लाम की समानता और भ्रातृत्व की भावना से प्रभावित होते हैं। सवसाधारण जनता में एसे पथो की पूजा शुरू होती ह जिनमें हिन्दू-मुस्लिम का भेद नही रहता। जो लोग मुसलमान वने भी वह सशोधित रूप में हिन्दुओं की जाति प्रथा और अन्य रिवाजो को अपनाए रहे। दो सस्कृतियो के सम्पर्क से वास्तु, चित्र, सगीत कलाओं में नई शैलियो का

आविर्भाव हुआ जिनके मूल तत्त्व तो भारतीय थे किन्तु वाह्य आकार ईरानी। मुगल बादशाहों ने हिन्दुओं के तुलादान इत्यादि रिवाज ग्रहण किये। हिन्दू सरदारों ने फारसी भाषा, मुस्लिम रहन-सहन पोशाक और पहनावा अपनाया।

धार्मिक प्रभाव मुसलमानों की कट्टरता और धर्म प्रचार की भावना के कारण हिन्दू धार्मिक नेताओं को इस बात की चिन्ता हुई कि कैसे हिन्दुओं की उनसे रक्षा की जाये। इसके प्रतिकार का उपाय कट्टरता सोचा गया। इस समय के धर्म शास्त्रकारों ने जाति भेद के नियमों को कठोर बना कर हिन्दू धर्म को मजबूत किला बनाने की कोशिश की, जिसका कि इस्लाम भेदन न कर सके। हेमाद्रि ने साल भर में २००० अनुष्ठान करने के लिए व्यवस्था की।

हिन्दू धर्म में सुधार आन्दोलन किन्तु धर्मशास्त्रियों की व्यवस्थाएं हिन्दू धर्म की पूरी रक्षा नहीं कर सकती थीं। समाज की नीची जातियां और अछूत उच्च वर्णों द्वारा उत्पीड़ित थे। इस्लाम समानता और भ्रातृभाव पर जोर देता था। उत्तर अफ्रीका और पश्चिमी एशिया में उसके शीघ्र प्रसार का एक कारण यह भी था कि उन देशों के पददलित लोगों को अपने त्राण का एकमात्र उपाय इस्लाम ही प्रतीत हुआ। भारत में भी इस्लाम अत्यधिक लोकप्रिय हो जाता, यदि उसी समय समानता और भक्ति तत्त्व पर जोर देने वाले आन्दोलन जोर न पकड़ते।

मध्ययुग में पहले दक्षिण भारत और फिर उत्तर भारत में सुधार आन्दोलन शुरू हुए। भारत में इस्लाम का शान्तिपूर्वक प्रवेश पहले दक्षिण भारत में हुआ था। अतः यहीं से सुधार आन्दोलनों का शुरू होना यह सूचित करता है कि इस्लाम से इन्हें कुछ प्रेरणा अवश्य मिली। इस्लाम के अनुयायियों की उपस्थिति ने जाति भेद, आत्मिक जीवन और ईश्वर के अस्तित्व आदि पर लोगों की विचारधारा को उत्तेजित किया। एकेश्वरवाद और समानता आदि के विचार हिन्दू धर्म में पहले से ही विद्यमान थे किन्तु इस्लाम से उन्हें बल मिला। शंकर (७८८-८२० ई०) और रामानुज (लगभग ११०० ई०) इस सुधारक आन्दोलन के अग्रणी थे। यद्यपि इन शाखाओं के सिद्धान्तों पर इस्लाम का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, किन्तु लिंगायत पर अवश्य पड़ा। हिन्दुओं का अंग होते हुए भी यह जाति भेद स्वीकार नहीं करते। इनमें तलाक और विधवा विवाह की इजाजत है। मूर्ति पूजने की बजाय दफनाये जाते हैं। ये श्राद्ध और पुनर्जन्म को नहीं मानते। सब एक दूसरे के साथ शादी करते हैं। इस मत का प्रसार इस समय बेलगांव, बीजापुर और धारवाड़ जिलों, कोल्हापुर और मैसूर रियासतों में है।

उत्तर भारत में सुधार आन्दोलनों के संस्थापक रामानन्द थे। इन्होंने राम की भक्ति पर जोर दिया और हर जाति के लोगों को अपने शिष्यों में सम्मिलित किया। उनके शिष्यों में एक नाई, एक चमार और एक मुसलमान था। भक्तमाल में

मतानुसार इसमें कोई सन्देह नहीं कि बनारस में विद्वान मुसलमानों से रामानन्द की भेंट हुई। रामानन्द के शिष्यों में कबीर (१३९८-१५१८ ई०) इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं। उन्होंने इस्लाम और हिन्दू धर्म की चौड़ी खाई को पाटने का प्रयत्न किया। उन्होंने दोनों धर्मों के वाह्य भेदों, रूढ़ियों और आडम्बरों का खंडन करते हुए आन्तरिक एकता पर जोर दिया। कबीर की शिक्षाएं रहस्यवाद से ओत-प्रोत थीं। उन पर सूफी फकीरों का स्पष्ट प्रभाव था।

इस्लाम के समानता और मूर्तिभंजन के सिद्धान्त महाराष्ट्र की जनता पर भी गहरा प्रभाव डाल रहे थे। वहाँ ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों प्रकार के प्रचारक इस बात पर जोर दे रहे थे कि राम और रहीम को एक समझो, जाति धर्म के बंधनों को तोड़ दो, मनुष्यमात्र से प्रेम करो। खेचर और उनके शिष्य नामदेव इनमें प्रमुख थे। इनके शिष्यों और अनुयायियों में किसी धर्म वर्ण और जाति का भेद न था। इनमें स्त्री-पुरुष हिन्दू-मुसलमान ब्राह्मण-अब्राह्मण कुनवी दर्जी, कुम्हार, अन्त्यज, महार, और धर्मनिष्ठ वेश्याएं तक सम्मिलित थीं।

१५ वीं सदी में पंजाब में गुरु नानक ने कबीर की भाँति सब धर्मों की मौलिक एकता और हिन्दू-मुसलमानों के अभेद पर बल दिया। नानक के शिष्यों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। नानक के समकालीन महाप्रभु चैतन्य (१४८५-१५३३) थे। उन्होंने बंगाल में हरि भक्ति के प्रचार द्वारा ब्राह्मणों के कर्म-काण्ड और जाति भेद का जबदस्त खण्डन किया। उनके शिष्यों में नीच जाति के लोग और मुसलमान भी थे।

इस्लाम में परिवर्तन केवल हिन्दू धर्म पर ही इस्लाम का प्रभाव नहीं पड़ा बल्कि स्वयं इस्लाम हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आने से बदला। भारत में इस्लाम के साथ ऐसी बातें जुड़ गईं जो पैगम्बर की शिक्षा के सर्वथा प्रतिकूल और अंध-विश्वासों से परिपूर्ण थीं। मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी होते हुए भी बंगाल में उन्होंने शीतला, काली धर्मराज वैद्यनाथ और इतर देवताओं की पूजा जारी रखी। इसके साथ उन्होंने नदियों की अधिष्ठाता ख्वाजा खिज्र सुन्दरवन में शेर की सवारी करने वाली देवी के प्रेमी और अंगरक्षक जिन्दागाजी आदि नये मुसलमान देवता बना डाले। पीरों के मजारों की पूजा चल पड़ी। इसका प्रधान कारण यह था कि भारत में इस्लाम ने जो अनुयायी बनाये वे सहसा मूर्तिपूजा और अंध-विश्वासों को नहीं छोड़ सकते थे।

सम्मिश्रण की प्रवृत्ति इस्लाम और हिन्दूधर्म के सम्पर्क से दोनों में सम्मिश्रण की प्रवृत्ति बढ़ी और ऐसे सम्प्रदायों और सुधारकों का जन्म हुआ जिनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे। हिन्दुओं ने उदारतापूर्वक मुस्लिम देवी देवताओं पीरों और मजारों की पूजा शुरू की। इसी शती के शुरू में पंजाब में अब्दुल कादिर

जिलानी के मुरीदों में रावलपिण्डी के ब्राह्मण थे, बहराइच में सयद सालार मसूद के उपासक हिन्दू भी हैं। अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती के मजार की भी यही दशा है। बंगाल के देहाती मुसलमानों में हिन्दू देवताओं की पूजा का जिक्र किया जा चुका है। मध्यकाल में अकबर और दाराशिकोह हिन्दू धर्म की ओर झुके थे।

हिंदू-मुसलमानों के मेल और सामीप्य की लहरों का परिणाम यह हुआ कि सत्यपीर, सतनामी, नारायणी आदि ऐसे पंथों का आविर्भाव हुआ जिनके अनुयायी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही थे, और जो दोनों में कोई भेदभाव नहीं मानते थे। बारहवीं सदी में बंगाल में हिन्दुओं का मुसलमानों की दरगाहों पर मिठाई चढ़ाना, कुरान पढ़ना और मुस्लिम त्योहार मनाना शुरू हो गया था। मुसलमान भी हिन्दुओं की धार्मिक रिवाजों के प्रति श्रद्धात्मक सम्मान प्रदर्शित करते थे। इसी मेल-जोल से बंगाल में एक नये देवता 'सत्यपीर' की पूजा शुरू हुई। कहा जाता है कि गौड़ का बादशाह हुसेनशाह (१४९०-१५१९ ई०) इस सम्प्रदाय का संस्थापक था। औरंगजेब के समय में सतनामी और नारायणी सम्प्रदायों के मिलाने की कोशिश हुई। पिछले पंथ में हिन्दू-मुसलमान दोनों लिए जाते थे, वे पूर्व की ओर मुँह कर दिन में पाँच बार प्रार्थना करते थे, ईश्वर के नामों में अल्लाह को भी गाते थे और मुर्दों को दफनाते थे। गुजरात के एक साधक प्राणनाथ ने जाति भेद, मूर्ति-पूजा और ब्राह्मणों के प्रभुत्व का खंडन किया। उनसे हर नव दीक्षा लेनेवाले को हिन्दू और मुसलमान दोनों के साथ बैठकर भोजन करना पड़ता था।

कला के क्षेत्र में मिश्रण वास्तुकला जो सामीप्य और मेल-जोल की प्रवृत्ति धर्म के क्षेत्र में थी वही विभिन्न कलाओं के क्षेत्र में दृष्टिगोचर होती है। वास्तुकला (भवन निर्माण) के क्षेत्र में यह विशेष रूप से व्यक्त हुई। मध्ययुग में कला के एक नवीन रूप का जन्म हुआ, जिसमें हिन्दू और मुस्लिम कला-शैलियों का सुन्दर सामंजस्य पाया जाता है। इसे भारत मुस्लिम (Indo-Saracenic) या पठान कला कहा जाता है। भारतीय कला में विशालता, स्थूलता, और विस्तार पर अधिक बल था। इसके विपरीत, बड़े-बड़े भवन ऊँची मीनारें साफ और सादी दीवारें मुस्लिम कला की विशेषताएं थीं। मुसलमान भारत में गुम्बद, मीनार और डाट लाये और उन्होंने भारतीयों से उन स्तम्भ पंक्तियों तथा सजावट कला के अन्य उपकरण ग्रहण किये। मुसलमानों को महराब का ज्ञान था अतः उन्हें धरनों की आवश्यकता न थी। सल्तनत युग और मुगल युग की वास्तु कला में इन दोनों का सम्मिश्रण हुआ। इस सम्मिश्रण के दो कारण सहायक सिद्ध हुए—(१) मुस्लिम भवनों की शिल्पी हिन्दू थे, जो मुसलमान बादशाहों की देख रेख में भवन-निर्माण करते थे (२) बहुत से नये मुस्लिम भवन पुराने हिन्दू मन्दिरों की विध्वस्त सामग्रियों से बने थे। अतः मुस्लिम वास्तुकला पर हिन्दू प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।

हिंदू प्रभाव की मात्रा विभिन्न कला शैलियों में परिस्थितियों के अनुसार बदलती रही। मुगल युग की इमारतों में ईरानी और भारतीय दोनों शैलियों का सामंजस्य बड़े सुंदर रूप में हुआ। अकबर द्वारा बनवाये फतहपुर सीकरी के भवनों, आगरा के जहांगीरी महल, मुहम्मद गौस और हुमायूं के मकबरों में यह प्रभाव स्पष्ट है। इसका चरम उत्कर्ष शाहजहां की इमारतों—आगरे के ताजमहल और मोती मस्जिद में—दिखाई देता है। यह प्रभाव केवल राजभवनों तक ही सीमित न रह कर धनी नागरिकों की इमारतों और मकानों पर भी विस्तीर्ण हुआ।

संगीत और चित्रकला इस्लाम के संसर्ग का भारतीय संगीत पर गहरा असर पड़ा और वह नये वाद्य यंत्रों और नये रागों से समृद्ध हुआ। प्राचीन भारतीय तथा ईरानी संगीत के सम्मिश्रण ने एक नई संगीत शैली को जन्म दिया। अमीर खुसरो की असाधारण प्रतिभा से भारतीय संगीत को एक अनुपम विशालता और एकता मिली। भारत में वह सितार का प्रारम्भकर्ता माना जाता है। उसने भारत की उत्तरी और दक्षिणी शैलियों के बीच सामंजस्य स्थापित किया। कव्वाली भी उसी ने शुरू की, जो कि अभी तक लोकप्रिय है। जौनपुर के शर्की दरबार की सबसे बड़ी देन 'खयाल' है। मुस्लिम दरबारों में भारतीय संगीत को प्रोत्साहन मिला। इसमें तराना, ठुमरी, गजल, कव्वाली का प्रवेश हुआ। चित्रकला के क्षेत्र में भी ईरानी और हिंदू कला का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ।

उद्यान निर्माण-कला उद्यानों की योजना और निर्माण भारतीय कलाओं में मुगलों की सबसे बड़ी देन है। भारत में मुगलों के आने से पहले बाग थे किन्तु वे मुख्य रूप से फलों के लिए थे और प्रायः वन जैसे होते थे। मुगलों के बगीचे ईरान और तुर्किस्तान में विकसित उद्यान कला के अनुरूप थे। नहरों को ऊंचाई से लाकर उनसे सात आठ झरने बनाए जाते थे। इनमें फव्वारे लगे होते थे। नहरों पटरियों के दोनों ओर फूलों की क्यारियां इनकी विशेषताएं थीं। सबसे ऊंचे या निचले फव्वारे पर बारादरी होती थी जहां से सारे दृश्य को देखा जा सकता था। काश्मीर के शालामार, निशात, अच्छाबल, वैरीनाग और लाहौर के शालामार बाग इसके अच्छे उदाहरण हैं।

साहित्य विज्ञान और जीवन रीति इस्लाम ने भारत के मध्ययुग में साहित्य और वैज्ञानिक उन्नति और राजनैतिक एकता में बड़ा भाग लिया। इसने जन साधारण के जीवन, रहन-सहन, वेश भूषा और खान पान पर भी प्रभाव डाला। प्रान्तीय भाषाओं के विकास में मुसलमान राजाओं ने बहुत योग दिया। बंगला को साहित्य पद पर प्रतिष्ठित करने का मुख्य श्रेय उन्हें ही था। बहमनी बादशाहों ने मराठी को प्रोत्साहन दिया। उर्दू भाषा और साहित्य का विकास हिंदू-मुस्लिम सांस्कृतिक सम्पर्क का सीधा परिणाम था। सोलहवीं सदी में इसका जन्म हुआ और

अठारहवीं सदी में यह साहित्य की भाषा बनी। फारसी तवारीखों से देश में इतिहास लिखने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

वैज्ञानिक उन्नति विशेष रूप से सामरिक कला में हुई। मुगलों ने योरोपीय रण कला तथा बारूद बन्दूक और तोपों का प्रयोग तुर्कों और ईरानियों से सीखा और उसका भारत में प्रसार किया। युद्धविद्या, सैनिक व्यवस्था और किलेबन्दी की इस समय विशेष उन्नति हुई। कागज बनाने की कला मुसल्मान ही भारत में लाये। इससे विद्या प्रसार के कार्य में बड़ी सहायता मिली।

उत्तर भारत की भाषा, वेश भूषा, रहन सहन और खान-पान में मुस्लिम प्रभाव बहुत स्पष्ट है। हिंदी, बंगला, मराठी में सैकड़ों फारसी, अरबी और तुर्की शब्दों की वृद्धि हुई। हिन्दुओं के विवाह जैसे पवित्र संस्कार में सेहरा और जामा का प्रयोग होने लगा। हमारी अधिकांश मिठाइयाँ इसी काल की ईजाद हैं। बालूशाही, शकरपारा, कलाकन्द, गुलाबजामुन बरफी, हलवा, सब मुसलमानी नाम हैं।

शासन और न्याय व्यवस्था राजनैतिक क्षेत्र में मुगल शासन ने सारे देश में सुदृढ़ शासन द्वारा राजनैतिक एकता उत्पन्न की। यही नहीं, उसने स्थानीय, प्रान्तीय और केन्द्रीय शासन की व्यवस्था को प्रभावित किया तथा कम से कम नगरों में न्याय-व्यवस्था में आमूल चूल परिवर्तन पैदा किये। इस्लाम के कानून को उन्होंने अपनी दंड-व्यवस्था का आधार बनाया।

आर्थिक संगठन परिवार इस्लाम के सम्पर्क ने आर्थिक और पारिवारिक क्षेत्र में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन पैदा नहीं किया। आवश्यकतापूर्ति प्रधान अर्थ व्यवस्था ही हमारे आर्थिक संगठन का मुख्य आधार बना रही। उत्पादन वितरण और विनिमय के क्षेत्र, वर्गों के सम्बन्ध और मान्यताओं पर इस्लाम का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इस दृष्टि से उसने कोई ऐसा सामाजिक विघटन पैदा नहीं किया जैसा कि अंग्रेजों के आगमन से हुआ।

निष्कर्ष में, इस्लाम के साथ हिन्दू धर्म के सम्पर्क ने जो प्रभाव पैदा किए वह अनुपम है। उसने एक नई समन्वयात्मक सभ्यता को जन्म दिया, जो न हिंदू थी और न मुसलमान बल्कि हिन्दुस्तानी थी। उसने धार्मिक सुधार के बीज बोए, कला साहित्य, विज्ञान की उन्नति को आगे बढ़ाया। भारतीय संस्कृति में वृद्धि की, उसे समृद्ध बनाया।

४

भारतीय सस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव

सगठनात्मक (Structural) और कार्यात्मक (Functional) परिवतन का सूत्रपात या तो इस्लाम के आगमन से भी पहले भारतीय और पाश्चात्य सस्कृति का सम्पक हुआ था। ३२७ ई० पू० में सिकन्दर ने भारत पर हमला किया। उसे हार कर लौटना पड़ा। सेल्यूकस आदि उसके कुछ सेनापति यहा पर रह गए। चन्द्रगुप्त मौर्य (३२५-३०० ई० पू०) ने उन्हें भी पराजित किया। इस समय में रोम और यूनान से भारतीयो के सम्बन्ध थे। पर यह सम्बन्ध तत्कालीन उन्नत भारतीय और सस्कृति और समाज पर कोई उल्लेखनीय प्रभाव नही डाल सके। मुगल काल में पुर्तगाली और फ्रासीसी व्यापारी इस सम्पक के प्रवतक थे। लेकिन शीघ्र ही अग्रेजो ने उन्हें पीछे धकेल दिया। वास्तव में अग्रेज हमारे देश में पाश्चात्य सस्कृति के प्रसार के माध्यम बने। १८ वी शती के मध्य में बगाल में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना हुई। धीरे-धीरे सारा देश अग्रेजो के आधीन हो गया। इस प्रकार १८ वी शती के उत्तराध में हमारा पाश्चात्य सस्कृति से साधा और प्रभावयुक्त सम्बन्ध स्थापित हुआ।

यह सास्कृतिक सम्पक और सघात पिछले सब विदेशी सम्पर्कों की तुलना में अद्वितीय और क्रान्तिकारी था। इस्लाम यहा आया उसने यहा के धम साहित्य और कलाओ को प्रभावित किया, पर वह यहां के सामाजिक सगठन और सम्बन्धो या कार्यों में कोई उल्लेखनीय परिवतन न कर सका। उसके द्वारा जीवन रीति, धार्मिक विश्वास खान-पान, शिष्टाचार में सशोधन हुए पर समाज के ढाचे में कोई बुनियादी परिवतन नही हुआ। पर अग्रेजों के द्वारा पाश्चात्य सस्कृति के प्रवेश ने विद्यमान, आर्थिक राजनैतिक सामाजिक व्यवस्था शिक्षा-पद्धति, विभिन्न वर्गों के पारस्परिक सम्बन्धो जीविका उपाजन के साधनो मान्यताओ उद्देश्यो में बुनियादी परिवतन उपस्थित किए। कुछ अशों में यह स्वाभाविक भी था। क्योकि जिस समय अग्रेजो ने भारत में प्रवेश किया उस समय उनके देश में औद्योगिक क्रांति अपने पर जमा चुकी थी। साथ ही वहा पर मुक्त व्यापार (Free Trade) और राज्य द्वारा आर्थिक मामलो में अल्पतम हस्तक्षेप की नीति (Laissez faire) का बोलबाला था। नई उत्पादन प्रणाली और तत्कालीन सामाजिक विचारधारा ने वहां पर पूजीवाद व्यवस्था की नींव डाली। भारत के यह नये शासक मुस्लिम

आक्रान्ताओं की तरह भारत के स्थायी निवासी नहीं बने। ऐसी स्थिति में उनके लिए भारत की अर्थ-व्यवस्था को अपने देश की अर्थ-व्यवस्था के हित में रूपान्तरित करना आवश्यक हो गया। इस रूपान्तरण के लिए यह जरूरी था कि भारत कच्चे माल का उत्पादक और ब्रिटेन के पक्के माल का ग्राहक बने। मशीनों के द्वारा बने माल की तुलना में हाथ के कारीगर न टिक सकते थे।

मनाफा प्रधान बाजार अर्थ व्यवस्था (Market Economy) का प्रचलन पाश्चात्य सस्कृति के इस आक्रमण का पहला परिणाम भारत के कुटीर उद्योगों का विनाश था। इस प्रकार विभिन्न हाथ के दस्तकारो, विशेषत कपड़े के कारीगरों को, अपने पतृक पेशों को छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा। गांवो में अभी तक उत्पादन केवल स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए होता था। मुनाफावृत्ति और प्रतियोगिता को उसमें स्थान न था। विक्रय का उसमें अभाव था। अत वस्तुओं और सेवाओं की आपसी अदल-बदल ही विनिमय का मुख्य साधन था। लेकिन ब्रिटेन के कारखानों की मांग ने किसानों को बाहर बाजारों में बेचने के लिए उत्पादन करने के लिए प्रेरित किया। शासकों ने आधुनिक यातायात और सवादवहन के साधनों के असाधारण विकास द्वारा उसे सम्भव बनाया। इस प्रकार भारत के गाव और उनके कच्चे माल का उत्पादन अन्तर्राष्ट्रीय बाजारों से सयुक्त हो गया। उत्पादन का उद्देश्य बदल गया, गांवो की आत्मनिर्भरता नष्ट हो गई और आर्थिक सम्बन्धों का स्थान मुनाफावृत्ति ने ले लिया। धीरे धीरे देश में भी कारखाने शुरू हो गए और बडी सख्या में गांवो के भूमिहीन और दस्तकार बेकार शहरों में रोजगार के लिए औद्योगिक केन्द्रों की ओर जाने लगे।

जाति के कार्यात्मक आधार पर आघात इस नई लहर के आने से पहले जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक सगठन का कठोर आधार थी। वह एक व्यक्ति के रोटी-बेटी के ही सम्बन्धों को निर्धारित करने के अलावा उसके पेशे को भी निश्चित करती थी। औद्योगिक क्रांति ने समाज में पुराने पेशेवार वर्गीकरण को अक्रियात्मक बना दिया। अनेक जातियों के सदस्यों के लिए अपने पैतृक पेशे द्वारा जीविका उपार्जन दूभर हो गया। अत उन्हें अपने पेशे को बदलने पर मजबूर होना पड़ा। शहरों की ओर निष्क्रमण की प्रवृत्ति बढ़ी।

नए भूमि सम्बन्धों का सूत्रपात अंग्रेजों के आने से पहले भारत की जनसंख्या पर्याप्त सीमित थी। *जनसख्या का पर्याप्त अनुपात उद्योगों में लगा हुआ था।* जो लोग जमीन पर खेती करते थे वही व्यवहारत उसके मालिक थे। वह अनाज की शक्ल में *राज्य को लगान देते थे* जिसकी राशि पर्याप्त कम थी। अंग्रेजों के लिए इस प्रकार लगान वसूल करना सुविधाजनक न था। वह नकद और निश्चित रकम चाहते थे। अतः काफी परेशानियों में से गुजरने के बाद उन्होंने कुछ मध्यस्थों

के नाम जमीन के बडे हिस्से सुपुर्द कर दिए और उनसे एक निश्चित रकम लगान के रूप में तय कर दी। इस प्रकार एक नए जमींदार वर्ग का उदय हुआ, जो स्वयं काश्तकार न था। वह एक तरह का ठेकेदार था जिसे कि मिल्कियत के हक हासिल हुए। भारत के अधिकांश भागों में यह भूमि व्यवस्था विस्तीर्ण हो गई और इस प्रकार गावों में एक ऐसा स्थायी वर्ग बन गया, काश्तकारों का शोषण ही जिसकी आय का मुख्य साधन बन गया। इस प्रकार ग्राम्य जीवन के संगठन और वर्ग सबंधों में एक बुनियादी परिवर्तन घटित हुआ। जमींदारी प्रथा ने कृषि में आर्थिक शोषण का सूत्रपात किया।

पुराने औद्योगिक सम्बन्धों का विनाश अंग्रेजी शासन स्थापित होने के कुछ ही समय बाद स्वयं भारत में नये तरीके पर कारखाने स्थापित होने लगे। इस कारखानों में दस्तकार दैनिक मजदूरी पर काम करने लगे। वह स्वयं उत्पादन यन्त्रों के स्वामी न रहे। पारिवारिक उत्पादन की इकाई नष्ट हो गई और मालिक और मजदूर के निर्वैयक्तिक सम्बन्धों का विकास हुआ। आपसी सहयोग का स्थान संघर्ष ने ले लिया और आर्थिक स्वार्थों को प्रधानता दी जाने लगी। इस प्रकार मालिक और मजदूर के नये वर्गों, नये सम्बन्धों और नये संगठनों का जन्म और विकास हुआ। इन कारखानों में विभिन्न स्थानों, विभिन्न धर्मों, प्रान्तों और जातियों के लोग बड़ी संख्या में काम करने के लिए इकट्ठा हुए और उनमें एक नई वर्गीय भावना का सूत्रपात हुआ जो कि उनकी पुरानी सीमित स्थानीय और जाति भावना से भिन्न थी। अपने जन्म-स्थानों और प्रायः परिवारों से दूर, इन श्रमिकों में नई जीवन रीतियां, नैतिकता और मान्यताओं का विकास हुआ।

परिवार में परिवर्तन व्यक्तिवादी नई विचारधाराओं और नए आर्थिक परिवर्तनों ने संयुक्त परिवार की प्रथा पर आघात किया। परिवार के आर्थिक कृत्यों का ह्रास हुआ। संयुक्त परिवार के विभाजन की प्रवृत्ति को बल मिला। शहरों में निष्क्रमण की प्रवृत्ति बढ़ी, किन्तु शहरों में निवास स्थानों की कमी और किफायत की दृष्टि से मजदूर अपने पत्नी और बच्चों को गांव में ही छोड़ जाते थे। इससे पारिवारिक सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ और यौन-नैतिकता पर भी इसका प्रभाव पड़ा।

धार्मिक सुधार आन्दोलन अंग्रेजी शासन के साथ-साथ ईसाई मिशनरियों ने भी यहां संस्था में प्रवेश किया। हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही प्रधान भारतीय धर्म इस समय अत्यन्त ही पतित अवस्था में थे। अज्ञानता, आडम्बर, अन्धविश्वास, अनाचार का उनपर एक छत्र राज्य था। ईसाई प्रचारकों ने उनकी निर्मम आलोचना शुरू की और नए विज्ञान ने उसके विश्वासों की जड़ों को हिलाया

इस धक्के ने पुनः एक बार धार्मिक सुधार के आन्दोलन को जन्म दिया। ये आन्दोलन दो प्रकार के थे। एक जो धर्म और समाज में उग्र क्रान्तिकारी सुधार करना चाहते थे। इनकी प्रेरणा का प्रधान स्रोत पश्चिमी शिक्षा और विचारधारा थी। इनमें ब्रह्मसमाज और प्रार्थनासमाज मुख्य थे। इनके नेताओं ने पश्चिमी विचारों से आकृष्ट होकर जब अत्यधिक मौलिक परिवर्तन करने चाहे तो इसकी प्रतिक्रिया कट्टर सुधारवादी आन्दोलनों के रूप में प्रकट हुई। थियासफी और रामकृष्ण मिशन ऐसे ही प्रयास थे। दोनों अतिवादियों के बीच में अनेक नरम विचारों वाले सुधारक और आर्यसमाज के नेता थे, जो वैदिक परम्परा को अक्षुण्ण रखते हुए परवर्ती युगों में उत्पन्न हुई कुरीतियों का संशोधन करना चाहते थे। ब्रह्मसमाज ईसाइयत के विरोध में हिन्दू समाज की रक्षा के लिए पहला बाँध था। यह अन्त में ईसाइयत के जबदस्त प्रवाह का मुकाबला न करके, उसी के साथ बह गया। मूर्ति-पूजा के विरोध के अतिरिक्त, ब्रह्मसमाज ने जातिभेद आदि कुरीतियों के निवारण की ओर बहुत ध्यान दिया। केशवचन्द्र सेन के प्रयत्न से १८७२ ई० में विशेष विवाह कानून पास हुआ जिससे ब्राह्मो में अन्तर्जातीय विवाह वैध हो गये। १८६८ ई० में बम्बई में प्रार्थनासमाज की स्थापना हुई। यह ब्रह्मसमाज का ही दूसरा रूप था। यह आन्दोलन अधिक शक्तिशाली न बन सका। १८५१ में शिक्षित पारसियों ने पारसी धर्म की रक्षा और कुरीतियों के संशोधन के लिए *'रहनुमाये मज्दायस्नान' नामक समिति की स्थापना की।* इस्लाम में सर सय्यद अहमद ने नये धार्मिक सुधारों का श्रीगणेश किया। कट्टर एवं रूढ़िगत इस्लाम को उन्होंने युक्तिसंगत बनाने का प्रयत्न किया। वह तर्क को ही प्रमाण मानते थे। हजरत मुहम्मद की शिक्षाओं को समयानुकूल बनाने का दूसरा प्रयास भारत के सबसे पहले प्रिवी कौंसिलर अमीर अली ने किया।

उक्त धार्मिक आन्दोलनों ने विज्ञान और धर्म के बीच एक संतुलन स्थापित करने की कोशिश की तथा धर्म को विज्ञानसम्मत रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया। पाश्चात्य संस्कृति के आक्रमण ने भारतीय धर्मों को समयानुकूल परिवर्तित होने के लिए मजबूर किया।

शिक्षा पद्धति में परिवर्तन अंग्रेजों के आगमन के समय हमारी शिक्षा मुख्यतः धार्मिक थी। यह धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन तक सीमित थी। साथ ही उसे ग्रहण करने का अधिकार केवल कुछ विशेष वर्गों को ही प्राप्त था। निम्न जाति के लोग और स्त्रियाँ उससे वंचित थीं। यह सीमित शिक्षा निःशुल्क थी और इसमें शिक्षक और विद्यार्थी का सीधा व्यक्तिगत स्नेह का सम्बन्ध था। इसका कोई ऐहिक उद्देश्य न था। अंग्रेजों ने १८५७ में तीन प्रमुख विश्वविद्यालय स्थापित कर सर्वथा नई शिक्षा पद्धति का सूत्रपात किया। यह शिक्षा सर्वथा लौकिक थी।

इसमें समाज और भौतिक विनान जसे विषयो का समावेश था। यह शिक्षा हर एक के लिए खुली थी। इस शिक्षा की प्राप्ति परिवर्तित अवस्थाओ में व्यक्तिगत उन्नति और सामाजिक प्रतिष्ठा का साधन थी। यह शिक्षा खर्चीली थी, अत थोड़े ही लोग इसे प्राप्त कर सकते थे। इस शिक्षा पद्धति ने एक नये नता (Elite) वग को जन्म दिया। अब देश का नेतृत्व वेद और कुरान के पडितो मौलवियों और सामान्तो के हाथ से निकलकर वज्ञानिक दृष्टिकोण और पाश्चात्य सामाजिक विचारधाराओ से अनुप्राणित उच्च अग्रेजी शिक्षाप्राप्त वग के हाथ में आ गया। भारत के इतिहास में यह अभूतपूव घटना थी।

इस शिक्षा के प्रसार में अग्रेजो का मूल उद्देश्य यद्यपि साम्राज्यवादी शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए वफादार भारतीय तयार करना था, किन्तु इसके परिणाम युगान्तर लानेवाले सिद्ध हुए। पाश्चात्य शिक्षा ने नये शिक्षित वग में तत्कालीन योरोप की ऐहिकता, राष्ट्रवाद समानता, स्वाधीनता, प्रजातन्त्र समाजवाद साम्यवाद आयोजन के विचारो का प्रसार किया। इस शिक्षित वग ने भारत में ऐहिक राष्ट्रवाद और भावी समाजसुधार और राजनतिक आन्दोलन की नींव रखी। पाश्चात्य शिक्षा के ग्रहण करने में हिन्दू अग्रणी थे। वह मुस्लिम राज्य की समाप्ति पर अप्रसन्न न थे। मुसलमानो में अग्रेजो के प्रति पर्याप्त कटुता थी। अत वह इस शिक्षा से काफी समय तक अलग रहे। पर अग्रेजी शासन के शुरू में हिन्दुओ के बढ़ते प्रभाव ने मुसलमानो को चौकन्ना कर दिया। अग्रेज भी नही चाहते थे कि वह आपस में मिलें। अत उन्होने मुसलमानो को हिन्दू शासन का भय दिखाकर और बाद में विशेष रियायतें प्रदान कर अलग रखने की कोशिश की। धीरे धीरे अग्रेजी शिक्षाप्राप्त मुसलमानो में भी पृथक राष्ट्रीयता की भावना ने जोर पकड़ा, जिसकी अतिम परिणति पाकिस्तान की स्थापना में हुई।

राजनैतिक सस्थाओं का पाश्चात्य स्वरूप अग्रेजी शिक्षा ने हमारी राजनतिक विचारधारा को विशेष रूप से प्रभावित किया। आत्मनिणय और प्रतिनिध्यात्मक सरकार की माग रखी गई और उसके लिए आन्दोलन शुरू किये गये। भारतीय राजतन्त्र और पुरोहित-तन्त्र का कोई नाम लेवा भी न रहा। स्त्री पुरुष सब बालिगो को सरकार चुनने का अधिकार होना चाहिए, जैसी नई पाश्चात्य कल्पनाएं उनके स्वप्न और आदश बन गये। स्वाधीन भारत के सविधान पर हम पाश्चात्य विचारों, पाश्चात्य राजनतिक सस्थाओ की छाप स्पष्ट देख सकते है। यह सविधान निर्विवाद रूप से पाश्चात्य प्रभाव की कृति है। ऐहिक राज्य (Secular state) और नागरिको के मूलाधिकारो की घोषणा, सबो को मताधिकार और कानून के सामने सबों की समानता सबथा पाश्चात्य विचार कहे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त

कार्यकारिणी, न्यायपालिका और विधानसभा की रचना और उनके बीच शक्ति और कार्यों का विभाजन पूर्णत पाश्चात्य प्रणालिया हैं। हमने राजनतिक और प्रशासन के क्षेत्र में पाश्चात्य प्रजातन्त्र राज्या का अनुकरण किया है।

पाश्चात्य न्याय-व्यवस्था का प्रवेश　अग्रेजो ने यद्यपि उत्तराधिकार इत्यादि के जातीय और धार्मिक कानूनों में तो कोई विशेष हस्तक्षेप नही किया, पर उन्होंने दीवानी और फौजदारी के नये कानून बनाये जो कि अग्रेजी कानूनों की शैली पर थे और यहा के समस्त अधिवासिया पर समान रूप से लागू होते थे। मुकदमो का फैसला करने में भी साक्षी इत्यादि के आधुनिक अग्रेजी नियमो को अपनाया गया और 'दिव्यों (Torture) इत्यादि के पुराने तरीका का परित्याग कर दिया गया। नये शिक्षित वग ने नई न्याय और नई दड व्यवस्था को अधिक श्रेष्ठ समझ कर स्वीकार किया और आज स्वाधीन भारत में भी हम उस न्याय व्यवस्था को स्वीकार किये हैं, जो कि स्पष्ट ही पाश्चात्य सस्कृति की दन हैं। नये प्रकार के न्यायालयों ने पुरानी जाति-पचायतों की सत्ता को बहुत कुछ समाप्त कर दिया और इस प्रकार एक सवथा नये प्रकार की न्याय व्यवस्था की स्थापना की।

सामजिक कानून का प्रारम्भ　पाश्चात्य शिक्षा और विचारा क प्रसार ने सामाजिक कुरीतियों के प्रतिकार के लिए सामाजिक कानूना की मांग की। पाश्चात्य सस्कृति के प्रवेश से पहले प्रचार और प्रेरणा ही समाज सुधार का मुख्य साधन थे। लेकिन पाश्चात्य देशों के उदाहरणों ने सामाजिक कानूना का रास्ता दिखाया। यह कानून किसी एक राजा या बादशाह की मनमर्जी का परिणाम न होकर समाज के प्रतिनिधिया की सम्मिलित स्वीकृति का परिणाम थे। उदाहरण के लिए, १८२९ में सरकारी कानून द्वारा सती प्रथा को अवध और दण्डनीय अपराध बना दिया गया। १७९५ में बाल वध को बगाल में नर हत्या घोषित कर दिया गया। १८०२ में बालिका-वध के विरुद्ध कानून बनाया गया। १८५६ में विधवा पुनर्विवाह को जायज ठहराने वाला कानून बनाया गया। १८९१ में एक कानून बनाकर सहवास की वयस को ११ वर्ष निश्चित किया गया। १९२९ में बाल विवाह-निषेधक कानून पास हुआ जिसके अनुसार १८ वष से कम आयु के लडके और १४ वष से कम आयु की लडकी के विवाह का अवध घोषित कर दिया गया।

सामाजिक कानून केवल सामाजिक कुरीतियों के रोकन तक ही सीमित नही रह, बल्कि दुर्बल वर्गों के आर्थिक हितो की रक्षा और सामाजिक कल्याण में वृद्धि भी उनका कतव्य बन गया। नय आर्थिक सम्बन्धों क उदय ने उनकी आव श्यकता की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया। उदाहरण के लिए १८८१, ९१, १९११, २२, ३४ ४८ के फैक्टरी एक्ट १९२३-५२ का भारतीय खान एक्ट १९३२ का चाय जिलों का निष्क्रमणार्थी श्रम एक्ट, ११५१ का बगान-श्रम एक्ट

१८९१, १९३१ का रेल्वे एक्ट, १९२३-१९४९ के भारतीय व्यापारिक जहाजरानी एक्ट, १९०८ का डौक कमचारी एक्ट, १९२६ ने ४७ तक के भारतीय श्रम-सघ एक्ट, व्यावसायिक विवाद एक्ट, मातृत्व लाभ एक्ट और १९४८ का राज्य-बीमा एक्ट ऐसे ही कानून हैं। पाश्चात्य प्रभाव ही इन कानूनो का मूल स्रोत हैं।

समाज सुधार के आन्दोलन पाश्चात्य शिक्षा ने प्रबल रूप मे और ऐहिक रूप में स्त्री-पुरुषों और समाज के सभी सदस्यों की समानता की घोषणा की। स्त्रियों और शूद्रों की दयनीय अवस्था स्वाधीनता और समानता के सिद्धान्तो के विरुद्ध थी। यद्यपि अंग्रेजो के आगमन स पहले भी उनकी स्थिति को ऊचा उठाने के प्रयत्न हुए थे, लेकिन समय के गुजरने के साथ वह मृतप्राय हो गये। पाश्चात्य सस्कृति के सघात और ईसाइयो द्वारा दलित जातियो के धम परिवतन के प्रयत्नो ने एक बार भारतीयो को पुन अपनी समाज व्यवस्था को सुधारने की प्रेरणा दी। आयसमाज और प्रायनासमाज ने इस दिशा में काय शुरू किया। १९२० में गाधी जी ने हरिजनोद्धार को रचनात्मक कायक्रम का अग बना लिया।

पाश्चात्य सस्कृति के प्रवेश ने पुन स्त्रियो में शिक्षा के प्रसार का श्रीगणश किया और इसी से स्त्रियो के उत्थान के आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। १९१७ में भारतीय स्त्रियो के प्रतिनिधिमण्डल न पहली बार तत्कालीन भारतमत्री से स्त्री-मताधिकार की माग की। भारत के इतिहास में यह अनुपम घटना थी। १९१९ के शासन विधान के अनुसार प्रातीय विधान परिषदो को नारियो को वोटर बनाने का अधिकार दे दिया गया। १९२६ २८ में लगभग सभी प्रातो में स्त्रियां निर्वाचक बन गई। १९२६ में मागरेट काजिन्स के प्रयत्न से अखिल भारतीय महिला परिषद की स्थापना हुई। यह शिक्षित महिलाओ का प्रधान सघठन ह। पिछली दो शताब्दियो में भारतीय नारियो पर लगे प्रतिबन्धो और कानूनी बाधाए हटान तथा समान अधिकारों की माग करने में इस सस्था ने मुख्य भाग लिया ह। इस पर हम पाश्चात्य विचारों का प्रत्यक्ष प्रभाव देख सकते ह।

भारत विषयक अध्ययन का प्रारम्भ १७८३ में सर विलियम जोन्स सुप्रीम-कोट का जज बनकर भारत आया और १७८४ में उसने पौरस्त्य वाङ्मय और ज्ञान विज्ञान की शोध के लिए बगाल रायल एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की। इसने सवप्रथम विद्वानो का ध्यान इस ओर खीचा कि योरोप की पुरानी साहित्यिक भाषाओं, यूनानी तथा लटिन और ईरान की पुरानी जन्द का सस्कृत स घनिष्ट सम्बन्ध है। ये सब एक मूल से प्रादुर्भूत भाषाए हैं। बाद में इन्ही भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से योरोप में तुलनात्मक भाषाशास्त्र की नीव पड़ी। इसी से यह ज्ञात हुआ कि इन्हे बोलनेवाली जातियो के धम-कम देवगाथाओ, प्रथाओ, और सस्थाओ मे बडा सादृश्य है। इस प्रकार आय

नम्न का पता लगा। भारत विषयक अध्ययन की नाव रखने का श्रेय जोन्स को है। उसने प्राचीन भारत के तिथि क्रम को प्रस्तुत किया। १७८५ से पुराने अभिलेख पढ़ने की ओर योरोपीय विद्वानों का ध्यान गया। प्रिन्सप ने यूनानी सिक्कों की सहायता से मौर्य युग की ब्राह्मी लिपि पढ़ली। कनिंघम ने भरहुत तथा साँची स्थानों की खुदाई कराई, कनिंग के समय में पुरातत्व विभाग की स्थापना हुई, सारे देश का पुरातत्वीय निरीक्षण किया जाने लगा। कर्जन के समय प्राचीन इमारतों के संरक्षण का कानून बना। इस समय से पुरातत्त्व विभाग ने तक्षशिला नालन्दा मोहिंजोदड़ो हड़प्पा साँची, सारनाथ इत्यादि अनेक प्राचीन स्थानों की खुदाई करायी। इनसे भारत के प्राचीन इतिहास का पुनरुद्धार हुआ। इस कार्य के पथ प्रदर्शक अंग्रेज थे। यह पाश्चात्यों की प्रेरणा का ही परिणाम था कि भारतीयों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होंने इसके महत्त्व को समझा।

प्रांतीय भाषाओं और साहित्य का विकास ब्रिटिश शासन की स्थापना के समय शिक्षित एवं सुसंस्कृत भारतीय अरबी तथा संस्कृत का अध्ययन करते थे। हिन्दी बंगला गुजराती, मराठी, उर्दू, तामिल, तेलगू इत्यादि भाषाएं बहुत काल से लोक प्रचलित थी। किन्तु इनमें उस समय पद्यात्मक साहित्य—वीर, शृंगार भक्तिरस की कविताएं और महाकाव्य ही थे। ब्रिटिश काल में बाइबिल का संदेश जनता तक पहुंचाने के लिए लोकभाषाओं की उन्नति की ओर ध्यान दिया गया। उन्होंने सबसे पहले बंगला, हिन्दी आदि लोकभाषाओं के टाइप बनाये, छापेखाने स्थापित किये, व्याकरण और शब्दकोषों का निर्माण किया। पादरियों के इस कार्य ने परोक्ष रूप से भारतीय शिक्षित वर्ग के हाथ में प्रचार और शिक्षा का क्रांतिकारी साधन प्रस्तुत किया। राष्ट्रीय जागरण ने लोकभाषाओं में पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन को बहुत उत्तेजन दिया। पाश्चात्यों ने उन्हें केवल लोक भाषा के महत्व का ज्ञान ही नहीं कराया, बल्कि उन्हें उसके लिए नय विचार और शैलियां भी प्रदान की। आधुनिक उपन्यास और कहानी के रूप को हमने पाश्चात्य देशों से ही ग्रहण किया। यही नहीं, पाश्चात्य देशों के रोमांटिकवाद यथार्थवाद प्रगतिवाद, *अस्तित्ववाद, मार्क्सवाद अनेक साहित्यिक आन्दोलन और शैलियां की भारतीय लोक* भाषाओं के साहित्य में अभिव्यक्ति हुई। इससे भारतीय साहित्य समृद्ध हुआ और लोकशिक्षा सुलभ हुई।

वैज्ञानिक उन्नति छठी शती तक वैज्ञानिक क्षेत्र में भारत संसार के प्रायः सभी देशों से आगे बढ़ा हुआ था। लेकिन मध्य युग में यहां वैज्ञानिक अनुसंधान लगभग बंद ही हो गये। १२०० वर्ष की जड़ता के बाद पाश्चात्य संस्कृति ने उसे जगाया और वैज्ञानिक उन्नति की ओर उसका ध्यान खींचा। राममोहन राय आदि नेताओं ने यह अनुभव किया कि पश्चिम की उन्नति का प्रधान कारण उसकी वैज्ञा

निक प्रगति हुई। प्रारम्भ में सरकार की ओर से केवल चिकित्साशास्त्र और सिविल इजीनियरिंग की शिक्षा शुरू की गई। १८७६ में महेन्द्रलाल सरकार ने 'वैज्ञानिक अध्ययन की भारतीय परिषद' की स्थापना की। पुन भारतीयों ने वैज्ञानिक अन्वेषण में अपने को लगाया। भारतीय वैज्ञानिकों ने महत्वपूर्ण खोजें की और विज्ञान के क्षेत्र में विश्वव्यापी ख्याति प्राप्त की। १९११ में टाटा ने इडियन इस्टीटयूट आफ साइस की स्थापना की। हाल ही में सरकार ने सारे देश में विभिन्न प्रयोगशालाओं की स्थापना की है। वैज्ञानिक उन्नति में पाश्चात्य शिक्षा का महत्वपूर्ण हाथ है।

चिकित्सा पद्धति चिकित्सा के क्षेत्र में पाश्चात्य देशों ने हमें ऐलोपैथिक चिकित्सा पद्धति प्रदान की। दिन पर दिन देश में ऐलोपैथिक चिकित्सा और पाश्चात्य शल्यक्रिया (Surgery) का प्रचार बढता जा रहा है। हम तीव्र गति से विभिन्न रोगों के लिए पाश्चात्य औषधियों को अपना रहे है। यही नहीं पाश्चात्य सस्कृति के सम्पर्क ने सफाई और जन-स्वास्थ्य और रोगों के कारणों के सम्बन्ध में हमारी धारणाओं में आमूलचूल परिवर्तन ला दिये हैं।

कलाए ब्रिटिश शासनकाल के प्रारम्भिक काल में शासकों की उपेक्षा तथा शिक्षितों पर पाश्चात्य कला की चकाचौंध का गहरा असर होने से भारतीय ललित कलाओं की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। किन्तु पाश्चात्य शिक्षा जनित राष्ट्रीय जागृति के आरम्भ से भारतीयों का ध्यान कलाओं की ओर भी गया। भारत सरकार ने कलकत्ता बम्बई मद्रास तथा लाहौर में आर्ट स्कूल खोले। १९वी शती में भारतीय कलाकार पर पाश्चात्य शैली हावी होगई। पिछली शती के अन्त में रवि वर्मा ने पश्चिमी शैली में भारतीय कल्पनाओं को प्रकट किया। वर्तमान शती के प्रारम्भ में पुन प्राचीन भारतीय चित्र कला के पुनरुज्जीवन का प्रयत्न हुआ। लेकिन शीघ्र ही सम्मिश्रण की प्रवृत्ति व्यक्त हुई। १९०३ ४ में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक नई चित्रण शैली का विकास किया जिसमें भारतीय और पाश्चात्य शैली का सुन्दर समन्वय हुआ। पिछले बीस सालो में भारतीय चित्रकला और मूर्तिकला पर पाश्चात्य शैली, विशेष कर फ्रासीसी कलाकारों का प्रबल प्रभाव पडा है। वास्तुकला (भवन निर्माण) के क्षेत्र में तो पाश्चात्य प्रभाव बहुत ही प्रबल है। सरकारी इमारतों और शहरी मकानों पर पाश्चात्य शैलियों की स्पष्ट छाप है। सगीत और नृत्य के क्षेत्र में, जहा एक ओर शास्त्रीय और लोकशैली के पुनरुज्जीवन की चेष्टा चल रही है वहां दूसरी ओर विशेषकर सिनेमा के माध्यम से, पाश्चात्य सगीत और नृत्य शैली का भद्दा अनुकरण हो रहा है।

व्यापारिक मनोरजन पाश्चात्य सस्कृति के प्रवेश से पहले कला और मनोरजन दोनो ही भारतीय सामुदायिक जीवन का अभिन्न अग थे। सामूहिकता, अनामता और व्यापारिक वृत्ति का अभाव उनकी विशेषताएं थीं। वह केवल आनन्द

या पूजा के उपादन थे। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रवेश ने, जहा हमारी उत्पादन प्रणाली को प्रतियोगिता और मुनाफावृत्ति पर खडा कर दिया, वहा उसने कला और मनोरजन को भी क्रय-विक्रय और मुनाफे का साधन बना दिया। व्यापारिक मनोरजन में सिनेमा प्रधान ह। सिनेमा पाश्चात्य सस्कृति की देन ह। सिनेमा के सामने भारतीय लोक-मनोरजन पराभूत हो गया ह। सिनेमा के रूप में हमने पाश्चात्य देशा से केवल मनोरजन का एक नया साधन ही नही अपनाया बल्कि हम कथावस्तु, सगीत और अभिनय में भी बहुत अशो में उनका अनुकरण कर रहे ह।

जीवनरीति पर पाश्चात्य प्रभाव जहा कि पाश्चात्य सस्कृति के सम्पर्क और सघात ने हमारी महत्वपूर्ण सस्थाओ को प्रभावित किया है, वहा उसने हमारे यात्रा खान पान वेश-भूषा साज-सज्जा बतन फर्नीचर रोजाना प्रयोग की वस्तुए और शिष्टाचार पर भी कम प्रभाव नही डाला है। नगरो में ता यह प्रभाव बहुत ही प्रबल ह और दिन पर दिन इसकी प्रबलता बढती ही मालूम होती है। रेल मोटर, केक बिस्कुट सिगरेट, सोडावाटर, कोको, टाई, कोट, पतलून, क्रीम, पाउडर, टूथ पस्ट मज, कुर्सी इत्यादि वस्तुओ का प्रयोग हम पाश्चात्य प्रभाव से ही सीख रह हैं। हमारे घरो की सजावट, केश विन्यास, फशन, पत्र लिखने की शली, अभिवादन की रीति, सभी क्षेत्रो में हम पाश्चात्य प्रभावो को देख सकते हैं।

बहुमुखी प्रभाव उक्त विवेचना से हम इस बात का अनुमान लगा सकते ह कि भौतिक और अभौतिक, दोना क्षेत्रो में पाश्चात्य सस्कृति न भारतीय सस्कृति में एक असाधारण रूपान्तरण ला दिया है। यह रूपान्तरण किसी क्षेत्र में अधिक है तो किसी में कम। पर अल्पाधिक रूप में इसने सभी क्षत्रो को प्रभावित किया है। पाश्चात्य सस्कृति के सम्पर्क ने केवल हमारी सस्कृति में वृद्धि ही नहा की, बल्कि उसमें सामाजिक परिवतन उपस्थित किया ह। जहा इस सम्पर्क ने अनक बार कुछ वर्गों के लिए भीषण सकटो, कठिनाइयो और दबावो की सृष्टि की ह वहां इसने भारत को अन्तर्राष्ट्रीय जगत से सयुक्त कर दिया ह और उसक मानसिक क्षितिज का विस्तार किया ह।

१५

भारत में जातिभेद और जातिवाद

जातिभेद भारतीय सामाजिक सगठन की एक अद्वितीय विशेषता है। यह भेद केवल हिन्दुओं तक ही सीमित न होकर, भारत के मुसलमानों में भी विद्यमान है। यही नही, हिन्दू धर्म के सम्पर्क में आने वाली आदिम जनजातियां (Tribal Communities) भी इसे ग्रहण कर रही है।

भारतीय समाज में मनुष्य की जाति जन्म से ही निर्धारित हो जाती है। बहुत अशों में वह समाज में उसके पद (Status) और भूमिका को निर्धारित करती है, उसके खाने-पीने, साथ हुक्का पीने और विवाह करने का क्षेत्र निश्चित करती है। उसके पडोस और रोज के सम्पर्कों को प्रभावित करती है। ससार के किसी भी अन्य देश में इस प्रकार की कठोर व्यवस्था विकसित नही हुई।

भारत में जाति प्रथा किस प्रकार विकसित हुई यह एक अत्यन्त विवादग्रस्त प्रश्न है। सौ साल की निरतर गवेषणा के बाद भी विद्वान इसके मूल के सम्बन्ध में किसी एक मत पर नही पहुच सके है। जितने विद्वान हैं उतने ही सिद्धान्त उन्होंने प्रस्तुत किए हैं। प्रो० घुरे इसे गगा के काठे में बसी ब्राह्मणों द्वारा विकसित हिन्द-आर्य सस्कृति की सतान मानते है। बनरजी ने इण्डो योरोपियन लोगो के आदिम अन्धविश्वासो में इसके मूल को खोजा है, नस्फील्ड ने श्रम विभाजन के आधार पर इसकी व्याख्या की है, हट्टन ने प्रागद्रविड आदिम जातियो के 'माना' की कल्पना में इसके उद्गम को देखा है, इबटसन ने एक जनजाति के फिरदर जीवन को छोडकर स्थिर पेशो को ग्रहण करने की विकासवादी प्रक्रिया में इसके दर्शन किए है, शरत चन्द्र राय के अनुसार जाति व्यवस्था इण्डो-आर्य वर्णव्यवस्था और प्रागद्रविड जनजातीय व्यवस्था और द्रविड लोगो का पेशेवार वर्ग व्यवस्था के अन्त मिश्रण का परिणाम है, रिजले ने हिन्द-आर्यो के आवास द्वारा हुए नस्ली मिश्रण की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वास्तव में इनमें से किसी भी सिद्धान्त को पूर्णत सतोषजनक नहीं कहा जा सकता। फिर भी जातियो के निर्माण में नस्ली तत्त्व पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है। विभिन्न जातियो के शारीरिक लक्षणो और रक्त वर्गों की परीक्षा से यह ज्ञात हुआ है कि जिन जातियों में द्रविड रक्त की अधिकता है उन्हें भारतीय समाज के श्रेणी विभाजन मे निम्न स्थान प्राप्त हुआ है।

विभिन्न परिस्थितियो और कारणो ने भारत में विभिन्न प्रकार के जातीय

वर्गों का विकास किया है और आज भारत में जातियों की संख्या ३००० के करीब पहुंच गई है।

भारत की बहुत सी जातियों का मूल विभिन्न जन या कबीलों में है। अनेक कार्यों या पेशों के आधार पर बन गई है, कई जातियां विभिन्न सम्प्रदायों या पंथों से सम्बद्ध हैं कई विभिन्न जातियों के अन्त मिश्रण से बनी है, कइयों का राष्ट्रीय मूल है तो कई निष्क्रमण द्वारा विकसित हुई है और कई रिवाजों के परिवर्तन से पैदा हुई हैं।

जाति का पद निर्धारण (Caste Ranking) और अन्तर्जातीय सम्बन्ध (Inter Caste Relations) एक समाजशास्त्री की हैसियत से हमें जातिभेद के मूल से अधिक उसके विद्यमान व्यावहारिक रूप में अधिक दिलचस्पी है। अत जातिभेद के इस पहलू पर ही हम संक्षेप में विचार करेंगे। इस सम्बन्ध में विभिन्न जातियों का पद निर्धारण और अन्तर्जातीय सम्बन्धों का अध्ययन महत्वपूर्ण है। इन्हें समझने के लिए हाल ही में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एक गांव में, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों की लगभग बराबर जनसंख्या थी, लेखक द्वारा की गई गवेषणा का संक्षिप्त सारांश कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

हिन्दुओं में सामान्यत ब्राह्मण को सबसे ऊंचा माना जाता है। फिर भी विभिन्न जातियों के सापेक्ष पद के सम्बन्ध में विभिन्न जातियों यहां तक कि एक ही जाति के विभिन्न सदस्यों, के बीच कोई एकमतता नहीं है। मुसलमान कुछ जातियों की श्रेष्ठता स्वीकार करने में प्राय एकमत हैं। अधिकांश जातियों अथवा उनके कुछ सदस्यों में, अपने को, या कम-से कम अपने से कुछ ऊंची समझी जाने वाली जाति की तुलना में, श्रेष्ठ समझे जाने की एक सामान्य प्रवृत्ति है। प्राय सभी जातियां जाति अहंकार से ग्रसित हैं। अधिकांश लोग निश्चित रूप से यह बताने में असमर्थ है, कि कौन जाति असल में ऊंची है और क्यों? यद्यपि अधिकांश लोग तथाकथित बहुत ऊंची या बहुत नीची जातियों की ओर निर्देश कर सकते हैं, लेकिन वह बीच की जातियों के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं बता सकते।

मुसलमानों में जाति भेद

यह मुस्लिम जातियां जिनके नाम या कार्य हिन्दुओं से मिलते हैं, प्राय भारतजन्मा मुस्लिम जातियों में हिन्दू जातियों के बराबर दर्जा रखती है। किन्तु मुसलमान अरबी मूल की जातियों को सबसे ऊंचा मानते हैं। इसका कारण उनका पैगम्बर और उनकी भूमि से निकट सम्बन्ध है। इसके बाद साम्राज्य स्थापित करने की सामर्थ्य को महत्व दिया गया है। उदाहरण के लिए, सय्यद का स्थान सबसे ऊंचा है क्योंकि वह पैगम्बर के सीधे वंशज हैं। उसके बाद कुरैशियों का नम्बर आता है, क्योंकि वह पैगम्बर की लड़की फातिमा की सन्तान हैं। उसके

कुछ नीचे असार ह, जो कि मदीना क रहने वाले ह और जिन्होंने सबसे पहले पैगम्बर की मदद की थी। उसके बाद हिजाज क मुसलमान आते हैं जिन्ह कि शेख लागा के बाद मुसलमान बनाया गया। पठान उन्ही में से हैं।

उक्त अरब जन्मा जातिया के बाद उन मुस्लिम जातियो का स्थान है, जिन्होने किसी समय हिन्दुस्तान पर हकूमत की। यह राजपूत पठान और मुगल ह। इन जातिया का दर्जा बहुत कुछ बराबर है और यह आपस में कई बार शादी ब्याह भी कर लेती ह।

हकूमत करनेवाली जातियो के बाद मुसलमान त्यागी जैसी जानिया का स्थान ह, जो कि ब्राह्मण से मुसल्मान बनी ह। यह एक रोचक तथ्य हैं कि मुसलमाना में ब्राह्मणो को राजपूतो से नीचा दर्जा मिला। इसका यही कारण कहा जा सकता ह कि इस्लाम ने उनके हाथ से धार्मिक कृत्या का एकाधिकार छीन लिया और उनकी धार्मिक पवित्रता को नष्ट कर दिया। इनके बाद जाट, गाढ़ा गूजर, आदि काश्तकार जातिया का नम्बर आता है। उसके नीचे हिन्दुआ की भाति क्रमश ही जुलाहा, बढई, लुहार, सक्का, तेली, नाई, धोबी, आदि दस्तकार जातिया का स्थान ह। फकीर, शेख ढपालिया, भगी और डोम क्रमश मुसल्माना की निम्नतम जातिया ह।

ऊच नीच का आधार मुसलमानो में पैगम्बर और उनके देश से सम्बन्ध, साम्राज्य स्थापित करने की क्षमता सबसे श्रेष्ठ जाति होने के प्रमुख मापदण्ड हैं। खान-पान और धार्मिक पवित्रता का उनके यहां कोई महत्व नही हैं। आर्थिक निर्भरता और स्वाधीनता महत्वपूर्ण तत्त्व हैं। काश्तकार जातिया दस्तकार जातिया की तुलना में इसलिए श्रेष्ठ हैं कि वह आत्मनिर्भर ह जब कि दस्तकार अपनी जीविका के लिए काश्तकारो पर आश्रित है। साफ और गदे काम भी जातीय स्थिति को प्रभावित करते ह। तेली धोबी और भगिया और डोमा को इसलिए नीचा माना जाता है कि वह गदा और नीचा काम करते हैं।

अन्तर्जातीय सम्बन्ध मुस्लिम जातियो में नामा अभिवादन की रीति और खान पान के कोई अन्तर नहीं हैं। ऊचे से ऊची जाति का मुसलमान सिवाय डोम या भंगी को छोड कर हरएक मुसलमान के साथ खा पी सकता और हुक्का पी सकता ह। उठने-बैठने में जरूर छोटी-बडी जात का खयाल रखा जाता ह। एक समान उम्र के लोगों में अक्सर बडी जाति के सदस्य सिरहाने की तरफ बैठते ह। मुसलमानों के अन्तर्जातीय सम्बन्ध मुख्यत विवाह के क्षेत्र में ही प्रबल रूप में देखे जाते ह। हिन्दुओ की तरह ही इनमें अन्तर्जातीय विवाह बहुत निन्दनीय समझे जाते हं। एक ऊची जाति का आदमी कुछ नीची जाति की मुसल्मान औरत से तो शादी कर सकता है लेकिन इससे उल्टा नही होता। इस प्रकार अनुलोम विवाह

(Hypergamy) कुछ अंशों में प्रचलित है।

हिन्दुओं में जाति प्रथा

ऊँच-नीच का आधार जैसा कि हम पीछे सकेत कर चुके हैं कि विभिन्न जातियों में आपसी श्रेष्ठता सिद्ध करने का कोई सर्वथा निश्चित सिद्धान्त नहीं है, फिर भी लेखक ने अपनी गवेषणा में विभिन्न जातियों के स्थान का क्रम सामान्यत इस प्रकार पाया। सबसे ऊँचे ब्राह्मण हैं। खान-पान की पवित्रता और धार्मिक श्रेष्ठता इसका मुख्य कारण है। उसके बाद राजपूतों का नम्बर है। यद्यपि इन लोगों में पुरुष बकरे आदि का बेहतर समझा जाने वाला शिकार खा लेते हैं, फिर भी प्राचीन काल में इनके राजा होने के कारण इनका स्थान ऊँचा है। इसके बाद वैश्य या बनियों की विभिन्न जातियों का नम्बर आता है। उनके नीचे जाट, अहीर आदि काश्तकार जातियाँ हैं। उनके बाद बढ़ई लुहार, सुनार, झीवर, सिमानी आदि दस्तकार जातियाँ हैं। जोगियों की स्थिति विवादास्पद है। कोई उन्हें ब्राह्मणों के बाद तो कोई दस्तकारों से भी नीचे मानते हैं। दस्तकारों के भी दो वर्ग हैं—एक साफ और ऊँचा जो काम करते और शुद्ध, अर्थात् शाकाहारी भोजन करते हैं। दूसरे जो मांसाहारी हैं और कुछ गंदा और नीचा काम करते हैं। बढ़ई, लुहार झीवर पहले वर्ग में आते हैं। कुम्हार, गडरिया, भड़भूजा, नाई और धोबी क्रमशः निम्नवर्ग के दस्तकार हैं। हिन्दुओं में सबसे नीचे अछूत जातियाँ हैं जो कि गंदे काम करती हैं और अपवित्र भोजन खाती हैं। इनमें चमारों का स्थान ऊँचा है। उसके बाद भंगी, गदीले, सिमानी और बगाली हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दुओं में जाति की उच्चता को निर्धारित करने वाले तत्वों में धार्मिक श्रेष्ठता आर्थिक स्वाधीनता या पराधीनता खानपान की शुद्धता और जाति के कार्य की सफाई और गंदगी प्रमुख हैं। मांसाहारियों की तुलना में शाकाहारी प्रायः ऊँचे हैं। मांसाहारियों में भी क्रमशः बकरा खानेवाले मछली और कछुआ, मरे पशु या गीदड़ का मांस खानेवाले से श्रेष्ठ हैं। माल काटने या कपड़े धोने की तुलना में लकड़ी या लोहे का काम करने वाले दस्तकार अधिक ऊँचे हैं।

अन्तर्जातीय सम्बन्ध मुसलमानों की तुलना में हिन्दुओं के अन्तर्जातीय सम्बन्ध बहुत ही जटिल हैं। कुछ जातियों के हाथ का पानी पिया जा सकता है पर खाना नहीं खाया जाता। उदाहरण के लिए, ब्राह्मण झीवर, जो कि मांसाहारी हैं के हाथ का पानी पी सकता है, खाना नहीं खा सकता। इसी प्रकार कुछ जातियों के हाथ से पक्का-घी में पकाया हुआ खाना खाया जा सकता है पर कच्चा पानी में पकाया हुआ नहीं। पानी के बारे में भी सरल नियम नहीं है। एक जाति के हाथ से कुएँ पर डोर द्वारा पानी पिया जा सकता है पर उसके घड़े से नहीं।

शादी विवाह तो एक दूसरी जाति में सवथा वर्जित ह। गावों में हुक्का भी इस दृष्टि से महत्वपूण ह। सब उपजातिया का अलग हुक्का होता हैं जिसे कि उस जाति के सदस्य ही मुह लगाकर पी सक्ते हैं। हुक्का जाति की एकता भातृत्व का प्रतीक और उसके सदस्या के सम्मिलन का केन्द्र हैं। अत जब जाति क किसी सदस्य को कोई दड देना होता है, तो उसका हुक्का पानी बद कर दिया जाता ह। हुक्के का गिराना जाति दड-व्यवस्था का मुख्य अस्त्र है। इक्का दुक्का बराबरकी उपजातियां एक साथ हुक्का पी लेती ह पर कइयो को केवल नली निकाल कर ही हुक्का दिया जा सकता है। कइया को केवल साफी के साथ चिलम दी जा सकती है। पर अति निम्न जातिया के लिए यह भी निषिद्ध हैं। आज से कुछ साल पहले अन्त-र्जातीय सम्बन्धा में छूत का भी विचार था। लेकिन अब प्राय उत्तर भारत म एक उच्च जाति के लाग निम्न जाति के लोगों को छू सक्ते ह।

जाति प्रथा में परिवतन पिछले बीस सालो में अन्तर्जातीय सम्बन्धो में विभिन्न स्थानो में अल्पाधिक गति से महत्वपूण परिवतन हुए ह। छूत छात का विचार प्राय समाप्त हो गया है। एक जाति के अपनी से निम्न जाति के हाथ के कच्चे, पक्के भाजन और पानी ग्रहण करने के विचार बहुत कुछ शिथिल हाते जा रह ह। यद्यपि बहुत ऊची और बहुत नीची जातियो में यह विचार अभी भी काफी प्रबल है। फिर भी विवाह के क्षेत्र में जाति का आज भी बोल बाला ह। अनेक जातिया अपने पैतृक पशो को छोडने पर मजबूर हो रही ह। अनेक जातिया मासाहार मदिरापान या गदे समझे जाने वाले कामा को छाडकर अपने का ऊचा उठान का प्रयास कर रही हैं। महत्वपूर्ण राजनतिक कानूनी और आर्थिक परिवतना और जाति प्रथा क विरुद्ध निरन्तर प्रचार का इन परिवर्तना में मुख्य हाथ है। अन्य सामाजिक सस्थाओ की भाति जाति की एक परिवतनशील सस्था ह। उसका रूप निरतर बदलता रहा हैं।

जातिवाद और अस्पृश्यता

भारतीय समाज के उग्र जाति भद ने लगभग पाच करोड की जनसख्या को दलित जातियो की श्रेणी में डाल दिया है। इन जातिया की अनेक अनहताए हैं। इन्हें प्राय सडको पर चलने कुओ से पानी भरने, मन्दिरों में दशन करने, शिक्षा सस्थाओं में प्रवेश पाने में पर्याप्त कठिनाइयो का सामना करना पडता ह। दलित जातिया सभी प्रान्तो में दलित नही हैं। विभिन्न प्रदेशों में एक ही जाति की विभिन्न कठिनाइया अयोग्यताए और अधिकार ह। जहां पर कि उनकी सख्या कम है वहा यह कठिनाइया और अयोग्यताए अधिक उग्र हैं। जहा पर कि विभिन्न जातियां प्राय एक नस्ल की ह या जहा पर उच्च जाति के सदस्या की सख्या अधिक नहीं ह, यह अयोग्यताए कम ह। और फिर एक जाति दलित या शोपित हा सकती ह

पर उनके कुछ सदस्यो को समाज में पर्याप्त ऊँचा स्थान प्राप्त होता है। तथापि हरिजनो के बारे में यह सत्य है।

पिछले पैंतीस साला में दलित जातिया या हरिजनों की स्थिति को सुधारने के अनेक प्रयत्न हुए है। पहले आर्यसमाज ने इस दिशा में कुछ काम किया। १९२० के बाद से महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण को अपने रचनात्मक कार्यक्रम का अंग बना लिया। १९३७ में कांग्रेसी सरकारों के स्थापित हो जाने के बाद हरिजनों की उन्नति शिक्षा तथा सामाजिक बाधाओं को दूर करने की ओर अधिक ध्यान दिया गया। भारत के नये संविधान में अस्पृश्यता को एक अपराध घोषित किया गया। १९५५ में केन्द्रीय सरकार ने अस्पृश्यता अपराध कानून पास किया।

पिछले दस सालो में जहा अस्पृश्यता निवारण की दिशा में पर्याप्त प्रगति हुई, वहां इस काल में जातिवाद (Castism) की समस्या ने पर्याप्त गभीर रूप धारण कर लिया है। डा० श्रीनिवास ने इस तथ्य को इन शब्दो में व्यक्त किया है, 'जाति प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त हमारे राष्ट्रीय जीवन में बुरी तरह घर कर गया है। सभी ने, यहा तक कि हमारे नेताओं ने भी, इसे मौनरूप में स्वीकार कर लिया है। मन्त्रिमडलों में हर एक प्रमुख जाति का प्रतिनिधित्व होना जरूरी है। यही सिद्धात हमारी प्रांतीय राजधानियों से लौटकर हमारी गांव पंचायतो में पहुच गया है। हर एक मिनिस्टर के पास अपनी उपजाति में से एक सेक्रेटरी का लेना जरूरी है। मैसूर में तो इस सिद्धान्त का पालन केवल सरकारी नियुक्तियों में ही नही, बल्कि स्कूलो के प्रवेश में भी होता है। हमारे यहां मतदान जाति के आधार पर किया जा रहा है। लोग अपने प्रतिनिधियों से अपनी जाति की सहायता के लिए याचना करने में कोई अनैतिकता नही समझते। बिना जाति की इस शक्तिशाली संस्था के आज हम प्रांतीय राजनीति को नही समझ सकते।'

आज से पहले विभिन्न जातियों के सम्बन्ध ठेके (Contract) से निर्धारित न होकर पद (Status) द्वारा निर्धारित होते थे। अत एक जाति के सदस्यों में अधिक एकता सभव नही थी। पाश्चात्य शिक्षा ने विभिन्न जातियों में एक नई चेतना उत्पन्न की। उसके पढ़े लिखे सदस्यों ने जातीय अखबार निकाले, जातीय संस्थाएं और छात्रावास स्थापित किए तथा जातीय सम्मेलनों का आयोजन किया। इस प्रकार पढ़े लिखे लोगों में सरकारी नौकरियां के लिए छीना झपटी शुरू हुई। यह व्यक्तिगत संघर्ष धीरे धीरे सम्पूर्ण जातियों में फैलने लगा। वास्तव में यह एक जाति के शिक्षित वर्ग की दूसरी जाति के शिक्षित वर्ग से प्रतियोगिता थी। हरिजनों की शिक्षा ने उनमें अपनी विद्यमान स्थिति के प्रति असंतोष जागृत कर जातिवाद की भावना को और भी प्रबल किया।

१९५५ का जातियाद और अस्पश्यता समीनार जातिवाद और अस्पृश्यता की समस्याओ पर विचार करने के लिए १९५५ के अत में एक महत्वपूर्ण सम्मेलन डा० श्रीनिवास की अध्यक्षता में दिल्ली में बुलाया गया। जातिवाद और अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में इस सम्मेलन ने कुछ महत्वपूर्ण सिफारिशें की और विचार व्यक्त किये, जिनका कि साराश हम नीचे रहे हैं —

१ २ अक्टूबर, महात्मा गाधी के जन्मदिन पर राष्ट्रीय भातृत्व दिवस मनाया जाय। उसमें ऐसे कार्यक्रम रखे जायें, जिसमे विभिन्न जातियो को एक दूसरे के पास आने का मौका मिले। गावो मे दिवाली, दशहरा और होली जसे त्योहारों का अन्तर्जातीय भातृत्व को बढाने मे उपयोग किया जाना चाहिए।

२ सम्मेलन की यह राय है कि जाति दिन पर दिन हमारे सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन पर व्याप्त होती जा रही है। बालिग मताधिकार ने इस बुराई को और भी बढ़ावा दिया है और इस बुराई के लक्षण हम जाति के आधार पर चलाई गई गृह समितियो सामाजिक सगठनो दान कलवा इत्यादि में भी दिखाई देते है।

३ चूकि जाति अपने सदस्यो के लिए अनेक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित करती है, अत केवल इसके विरुद्ध प्रचार करके हम बहुत आगे नही बढ सकते। इसलिए यह आवश्यक है कि हम आर्थिक विकास और कल्याणपरक राज्य के लक्ष्य की ओर बढने के साथ साथ उन उपयुक्त साधनो का विकास करें, जो कि इन कार्यो को अपने हाथ में ले सकें।

४ धर्म जातिवाद का समर्थन नही करता और जातिवाद एक अमानवीय संस्था है जिसके शीघ्र से शीघ्र उच्छेद के लिए पूर्ण प्रयत्न होना चाहिए।

५. चूकि पिछडी हुई जातिया ही हमारे यहा सबसे अधिक निर्धन है अत अगली पंच-वर्षीय योजना में उनकी आर्थिक अवस्था की उन्नति की विशेष व्यवस्था होनी चाहिए।

६ दूसरी पचवर्षीय योजना में दस्तकारियो के पुनरुद्धार में इस बात की पूरी सावधानी बरती जानी चाहिए कि किन्ही भी दस्तकारियो को प्रोत्साहन किसी प्रकार पशेगत जातियो को पैतक (Hereditary) रूप प्रदान न करे। यह तभी हो सकता है जब कि प्रशिक्षण सस्थाए इस बात का आग्रह करें कि किसी दस्तकारी की शिक्षा के लिए सभी जातियो के लोग लिये जायें।

७ सम्मेलन की यह राय है कि केवल कानून बनाकर, जब तक कि उसे सगठित और प्रभावशाली जनमत का समर्थन प्राप्त न हो सामाजिक बुराइयो का प्रतिकार नही किया जा सकता। इसके लिए इस बुराई पर आक्रमण करने के लिए राज्य को प्रचार के सभी साधनों का उपयोग करना चाहिए। इसमें उसे सार्वजनिक शिक्षा, हरि-कथा, भजन-कीर्तन-मडली आदि परम्परागत साधनो को भी प्रयुक्त

करना चाहिए। स्कूलों में जानेवाले बच्चों को हरिजन संतों की जीवनियों से भी परिचित कराना चाहिए। प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की पुस्तकों की अच्छी तरह जाँच होनी चाहिए कि उनमें जाति के पक्ष में किसी प्रकार का प्रचार तो नहीं है।

८ अलग बस्तियों में जातियों का पृथक्करण गाँवों और शहरों में जाति भेद की सबसे बड़ी बुराई है। इसलिए नए शहरों और गाँवों के निर्माण और आयोजन में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह पृथक्करण किसी प्रकार भी कायम न रहे।

९ जातीय छात्रावास जातिवाद को जन्म देने और बढ़ाने के दूषित अड्डे हैं। अतः सार्वजनिक या सार्वभौम छात्रवासों को प्रोत्साहन देना चाहिए और हरिजन विद्यार्थियों को उनमें प्रवेश करने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

१० हरिजनों को अधिकाधिक शिक्षा प्राप्ति की सुविधाएं प्रदान की जानी चाहिए। इस बात के विरुद्ध आवश्यक कदम उठाया जाना चाहिए कि यह स्कूल उन्हें पृथक ना नहीं रखने।

११ मन्दिरों, कुओं, होटलों और सार्वजनिक स्थानों में हरिजनों के प्रवेश को सुनिश्चित करने के लिए ठोस कदम उठाना जरूरी है। छोटे अधिकारियों को अस्पृश्यता एक्ट के बारे में पूरी जानकारी होनी चाहिए और हरिजनों को अपने कानूनी अधिकारों की रक्षा के लिए मुफ्त कानूनी सहायता की सुविधा दी जानी चाहिए।

१२ यह तथ्य बहुत ही चिन्ताजनक है कि हमारे यहाँ हाथ से मैला उठाने का गन्दा काम स्थाई रूप से कुछ जनसंख्या को अछूतों की श्रेणी में डाल देता है। अतः सम्मेलन जोरदार शब्दों में सिफारिश करता है कि जहाँ कहीं भी नयी गृह योजनाएं चालू हों वहाँ राज्य भंगी के बिना प्रयोग होने वाली टट्टियां (Scavenger-freelavtries) की व्यवस्था करें तथा विद्यमान खुली टट्टियों को भी उसमें परिवर्तित करें।

१३ सम्मेलन इस बात पर जोर देना जरूरी समझता है कि विभिन्न जातियों के बीच जन्मजात नस्ली विभिन्नताएं हो सकती हैं, किन्तु उससे हम किसी जाति की जन्मजात श्रेष्ठता सिद्ध नहीं कर सकते। किसी जाति के पिछड़े होने में उस जाति के सदस्यों का विकास की आवश्यक सुविधाओं से वंचित रखा जाना ही मूल कारण है। अतः पिछड़े हुए वर्गों को तब तक यह विशेषाधिकार और और रियायतें देना जरूरी है जब तक कि यह उच्च वर्गों के बराबर दर्जे पर न आजाय।

१४ सम्मेलन का सुझाव है कि सरकार और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को जब तक कि यह एकदम अनिवार्य ही न हो, अर्जियों और अन्य सरकारी कागजों में व्यक्ति की जाति नहीं लिखवानी चाहिए। स्कूलों में बच्चों के भर्ती करते समय उनके नाम के आगे जाति या कुल के नाम नहीं दर्ज किये जाने चाहिए।

६

हिन्दू और मुस्लिम विवाह

शादी या व्याह की रस्म हिन्दू और मुसलमान दानों में, सतानोत्पत्ति और एक स्त्री और पुरुष के स्थायी रूप से साथ रहने के लिए एक आवश्यक चीज ह। इस रस्म को पूरा करके ही वह समाजशास्त्र की भाषा में एक केन्द्रीय परिवार का निर्माण करते हैं। भारत क विभिन्न प्रातो के हिन्दू-मुसलमानों और उनकी विभिन्न जातियों में विवाह की रस्मो में पर्याप्त अन्तर पाये जाते ह। उनम अनेक स्थानीय और बाह्य, आर्य और अनार्य हिन्दू और मुस्लिम रिवाजो का सम्मिश्रण ह। भारत के अधिकांश मुसल्मानों ने जिनके पूर्वज भी हिन्दू थे अपने पुराने रिवाजो को भी इस्लामी विवाह में मिला लिया है। फिर भी हिन्दू और मुसल्मानो क प्रधान विवाह-सस्कार और उसके मौलिक उद्देश्यो और कानूनी स्थिति में बुनियादी भेद ह। हिन्दुओ म सप्तपदी और मुसल्मानो में निकाह विवाह-सस्कार का आधार है। हिन्दुओ में धार्मिक दृष्टि से विवाह एक पवित्र और अविच्छिन्न सम्बन्ध ह जब कि मुसल्मानो में वह एक प्रकार का ठेका है, जिसे कि स्त्री पुरुष विशेष शर्तों के अनुसार समाप्त कर सकते ह।

आगे हम उत्तर भारत के उच्च जातीय हिन्दुओ और साधारण मुसलमानो म प्रचलित विवाह की रस्म का सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इससे प्रकट होगा कि इन्होंने अपने विवाह की रस्मो में कितनी जन जातीय और स्थानीय प्रथाओ को सम्मिलित कर लिया है और कहीं-कहीं उनमें कितनी अधिक समानता है। यहाँ पुन यह स्मरण रखना आवश्यक है कि हिन्दू मुस्लिम विवाह प्रथाओ का कोई सर्वथा निश्चित रूप नहीं है। उसके रूप में परिवर्तन आते रहे ह और आते रहेंगे। आगे जो विवरण हम दे रह हैं वह केवल कुछ वर्गों में वर्तमान अवस्था में ही लागू होता ह।

हिन्दू विवाह

लडकी के माता पिता या उनके बुजुर्ग सम्बन्धी या मित्र उपयुक्त लड़के की खोज करते ह। उसके लिए अपनी ही जाति का और अपने गोत्र, प्रवर और पिंड से भिन्न होना आवश्यक ह। लडके के पिता, या उसके न होने पर लडके के संरक्षक क सामने वह प्रस्ताव रखते ह। यदि वह रजामन्दी जाहिर करे तो पडित द्वारा लड़के-लड़की की जन्मपत्री मिलवाई जाती ह। यदि जन्मपत्री में ग्रह

हों और रुपए-पैसे के लेने-देने के बारे में सब बातें तय हो जायें, तो लड़के वाला अपनी स्वीकृति दे देता है।

रोपना इसके बाद शुभ दिन देखकर लड़की वाले नाई या ब्राह्मण के हाथ लड़के वाले के यहां नारियल, जनेऊ, सुपारी सवा रुपया और लड़के के लिए कुछ कपड़े भेज देता है। इसे रोपना कहते हैं।

गोद भरना इसके बाद किसी शुभ दिन लड़के का पिता या भाई लड़की के लिए कुछ कपड़े और जेवर लेकर जाते हैं। लड़की उन्हें पहनकर उपस्थित होती है, तब वह उसकी गोद में कुछ फल और छुहारे रखकर लड़की को देखता है। इस रस्म को गोद भरना कहते हैं। इस रस्म का उद्देश्य यही हो सकता है कि लड़की खूब संतान उत्पन्न करे।

सगाई या लगन इसके बाद किसी शुभ दिन लड़की वाला अपने रिश्तेदार और दोस्तों को बुलाकर पंडित से विवाह का शुभ दिन निकलवाकर, एक लगन या टेवा लिखवाता है जिसमें लड़की वाला लड़के और लड़की के ३,५ या ७ दिन के हलद बांध निश्चित करके भेजता है और विवाह की तारीख की सूचना देता है। इस लगन की चिट्ठी को तथा साथ में मिठाई, फल थाल बतन, जूता, छतरी और लड़के के लिए कुछ कपड़े लेकर नाई और ब्राह्मण लड़के वाले के यहां जाते हैं। लड़के वाला अपने यहां लोगों को बुलाकर पंडित से गणेश पूजन करवाता है लड़का चीज ग्रहण करता है प्रणाम कर उन्हें घर की बड़ी औरतों को दे देता है। लड़के वाले लौटते समय लड़की वाले नाई के हाथ लड़की के लिए कुछ जेवर, कपड़ा और चोटी भेजते हैं जिसमें वापसी पर नाइन लड़की की सिरगुंदी करती है।

बान बधाई विवाह से ३, ५ या ७ निश्चित दिन पहले लड़के और लड़की के यहां क्रमशः उनके नाई और नाइन तेल, हल्दी मेंहदी, बेसन, आटे का उबटन से लड़के-लड़की की मालिश करते हैं। मालिश होने के बाद लड़के-लड़की को चौक में पूर्व या उत्तर की ओर मुंह करके एक चौकी पर बैठाया जाता है। वहां लड़के और लड़की के माता पिता और बड़े सम्बन्धी दोनों हाथों में दूब की नाल लेकर उसे तेल हल्दी और मेंहदी में डुबाकर उनके पैर, घुटने कंधे और माथे पर ३, ५ या ७ बार छुआते हैं। इसे तेल बांध कहा जाता है। इसके बाद वह उनके ऊपर वार फेर करते हैं, जिसका पैसा नाइन को मिलता है।

मढ़ा विवाह के एक दिन पहले लड़के और लड़की, दोनों के यहां मढ़ा नाम की रस्म होती है जिसमें रिश्तेदार और परिचितों को कच्चा या पक्के भोजन की दावत दी जाती है। उसी दिन लड़के और लड़की के हाथ में सुहागिन लोहे का एक छल्ला जिसमें एक कौड़ी और एक सुपारी लिपटी होती है बांधती हैं। इसे कंगना कहते हैं।

भात इसी दिन लडकी के मामा उसके लिए कुछ जेवर, पलग, कपडा, बरतन रुपए और मिठाई लाता ह । जेवरा में नथ और बिछुए आवश्यक ह । यह नथ और बिछुए लडकी विवाह-सस्कार के समय पहनती हैं और पलग विदा के समय उसे दिया जाता हैं । लडकी की मा, लडकी के मामा-मामी का टीका करती ह और उन्हें रुपया और लड्डू देती हैं । इसके बाद मामा-मामी विवाह सस्कार के समय तक घर में आ नहीं सकते ।

बरात -मडा समाप्त होने पर लडके वाले लडकी वाले के यहा एक दल बना कर रवाना होते है । लडकी के नगर या गाव की सीमा पर बरात पहुचने पर लडकी वाल के आदमी बरात की अगवानी करते ह । बरात में प्राय पुरुष और बच्चे होते हैं । पर पजाब के खत्रियो, गुजरात के सारस्वत ब्राह्मणों आदि में स्त्रिया भी बरात में जाती हैं । अगवानी के समय शरबत पिलाया जाता ह । लडकी वाला अपने समधी को इस समय १ या १०१ रुपए दुशाला या कुछ और सामान भी देता है, जिसे बाग कहा जाता ह । इसक बाद लडकी वाले बरात को न्योतने आते हैं ।

शाम के समय बाजे-गाजे के साथ बरात निकलती ह और लडकी वाले के घर क सामने जाकर रुक जाती ह । यहा स्त्रिया लडके का स्वागत करती हैं । लडकी की मा लडके की आरती उतारती ह और लडकी लडके के गले में और लडका लडकी क गले में वरमाला डालते ह ।

फेरे इसके बाद निश्चित मुहूत पर विवाह का असली सस्कार होता ह जिसे फेर कहते हैं । लडकी के घर के चौक में केले के पेडो से एक मण्डप बनाया जाता ह । उसके चारों ओर आम के पत्तो और छुहारो की बन्दनवार लगी होती हैं । बगाल में लडके-लडकी के बठने के स्थान पर सुन्दर अल्पना चावल की पिट्ठी के डिजाइन बनाते हैं । लडका मडप में अपने निश्चित स्थान पर पूर्व या उत्तर की ओर मुह करके बठना है । यहा पर पण्डित उससे गणेश नवग्रह और कुलदेवता की पूजा कराता ह । लडकी मामा द्वारा दिये गये नथ और बिछुए तथा माथे पर एक सुहाग पुडा जिसे बहनोई लाता है धारण किए होती ह । उसे मामा गोद में उठा कर लडक के दाहिनी ओर बिठा देता ह ।

कन्या-दान इसके बाद लडकी का पिता हाथ में चावल-पानी लेकर सकल्प पढ़ता हुआ लडकी का हाथ लडके के हाथ में देता है और लडके-लड़की की चादर में हल्दी और पसे बाध उनके पल्ले के कोने मिलाकर गाठ बाध देता है । इसके बाद वह कन्यादान के दोष की निवृत्ति के करने के लिए ब्राह्मण को एक गौ या उसके स्थान पर कुछ रुपये का दान करता है ।

सप्तपदी उसके बाद लडका-लडकी मडप की अग्नि के चारों ओर दाहिने स बायें कहीं पर ४ कही पर ७ फेरे लेते ह । उसके बाद वह दोनों एक-दूसरे को

पति पत्नी के रूप में स्वीकृति देते ह। दूसरे फेरे के बाद लडकी लडके क बाई ओर बैठ जाती हैं।

शिलारोहण इसके बाद लडका लडकी दोनों एक सिल पर पर रखत ह और इस बात की घोषणा करते हैं कि वह अपने वचना पर चट्टान की तरह दृढ रहेंगे। इस प्रकार विवाह की मुख्य रस्म समाप्त हो जाती है।

अन्तर्पट इसके बाद लडके-लडकी के चारो ओर ओट कर दी जाती है और वह घी से भरी एक कांसे की कटोरी में अपना-अपना मु ह देखते ह। इस रस्म को अन्तपट कहते हैं। यहा घी ५ आने, कुछ कपडा महाब्राह्मण को नजर के रूप में दिया जाता है।

उक्त रस्म पूरी होने पर स्त्रियाँ लडके को घर के अन्दर ले जाती ह। वहा सालियाँ लडके क जूते छिपा लेती ह। सवा रुपया और माला देन पर वह वापिस किये जाते ह। इस मौके पर स्त्रिया गाली गाती हैं। कुछ जगह इसके बाद लडक-लडकी को नहलाया जाता है। लडकी वाला लडके को बदलने क लिए कपडे दता ह।

बरी का सामान अगले दिन सवर लडके वाले के यहा स कुछ फल, छोटे बच्चा के लिए खिलौने जेवर और कपडा लडकी वाल को भेजा जाता है। इसे बरी का सामान कहते हैं।

बटेरी मिनसना और पलग लडकी वाला दहेज के सामान का फलाफर उसे पानी से मिनसना है। इसे बटेरी मिनसना कहते हैं। इसके बाद उस सामान का जिसमें मामा द्वारा दिया गया पलग भी होता है प्रदर्शन किया जाता है। वर-वधू को उस पलग पर बठा दिया जाता ह। लडकी के मां-बाप और उनकी ओर क बड़े उस पलग के सात बार परिक्रमा करते हुए वर वधू के हाथ में धान दत हैं।

विदा इसके बाद लडक वाले लडकी को लेकर विदा होते हैं। उस समय लडकी अपने परिजना स गले मिलती हैं और प्राय पर्याप्त दुखांत दृश्य उपस्थित होता ह।

कंगना खुलना लडके के घर पहुचने पर वर वधू एक-दूसरे के हाथ का कगना खोलते हैं। इस कगने को एक अगूठी और एक रुपया मिलाकर लडक का भाभी उछालती ह और तब वर-वधू दोनों उसे ऊपर पकडने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार सात बार किया जाता ह। और वर-वधू की हार जीत निश्चित होती ह।

मुह दिखाई वर के घर में वर पक्ष के बडे पुरुष और स्त्री लडकी को देखने आते हैं। वह उनके पैर छूती ह और वे उसे रुपये और आशीर्वाद दते हैं। उसे सूई कहते हैं।

गौना या चाल्सा कभी विवाह के समय ही और कभी-कभी विवाह के कई साल बाद भी गौने की रस्म होती है, जिसमें लडका स्थायी रूप से लडकी को पत्नी के रूप में अपने घर ले आता ह और वह इस प्रकार नये परिवार की स्थायी सदस्य

वन जाती है ।

इस प्रकार हिंदू विवाह की मुख्य रस्में समाप्त होती ह ।

मुस्लिम विवाह

मुख्य रस्म को छोडकर भारत के मुसल्माना की शादी के रिवाज अपने हिंदू पडौसिया से वहुत मिलते-जुल्ते ह । हालाकि इस्लाम के असर से उनमें महत्व पूण परिवतन हो गये हैं । उनके यहा भी लडकी वाला लडके को तालाश करता है । वह भी अपनी ही जाति का लडका देखता ह हालाकि वह वहुत से उन लोगो से रिश्ता नम कर सकता है, जो कि हिंदुओ में सपिण्ड की श्रेणी में आते हैं। उनके यहां गोत्र या प्रवर जैसा भी कोई विचार नही है ।

शुरू की वातचीत हो जाने पर, लडकी वाले की तरफ से नाई लडके वाले के लिए चिटठी ले जाता है और इस तरह मगनी की रस्म पूरी होती है । उसके वाद लडके वाले की तरफ से उसका वाप या भाई लडकी की गोद भरने जाते ह । वह अपने साथ अगूठी, मिठाई आदि सामान ल जाते ह । इस रस्म को निशानी भी कहा जाता है ।

शादी से पाच-सात दिन पहले लडके लडकी के यहा वान बधने की रस्म शुरू हो जाती है । लडक लडकी दोनो क रोज उवटना मला जाता है । शादी से एक दिन पहले मडा होता है । उसी दिन ध्यानिया सेहरा वाधता है और योछावर मजूर करता ह । सेहरा वांधकर दूल्हे को किसी मशहूर मजार पर ले जाते हैं और वह वहा पर इवादत करता ह ।

इसक वाद लडकी वालें क मुकाम के लिए वारात रवाना होती है, जिसमें सिफ मर्द होते हैं । पहुचने के वाद एक मुकरर वक्त पर लडका, वाराती और लडकी वाले क आदमी लडकी वाले के घर या मस्जिद में जमा होते हैं । वहा मौल्वी आता है । वह लडकी के किसी रिश्तेदार को अन्दर भेजता है, जो कि लडकी को लडके के वारे में बताता है । उसकी मजूरी लेकर वह वाहर आता ह और कहता है कि लडकी न उसे इस वात का हक दिया है कि वह महर यानी दहेज देने वाले आदमी के साथ उसकी शादी तय कर दे । उसके वाद मौलवी मेहर की रकम कागज पर लिखता ह जो कि तलाक होने की हालत में लडकी को मिलती ह । इस पर लडके और लडकी या उसके नुमाइन्दे के दस्तखत लेकर वह कुरान की कुछ आयतें पढ़ता है । इस तरह निकाह या विवाह सस्कार पूरा हो जाता ह । निकाह के वाद छुहारे वाटते हैं ।

अगले दिन दहेज दिखाया जाता है, लडकी की विदा होती है वखेर की जाती ह ताकि लड़का-लडकी आफतो से महफूज रहें।

लडके के घर पहुचने पर एक वकरे का कुरवानी दी जाती है ।-प्रात

सुहागिनें लड़की को खीर खिलाती हैं, उसकी मुंह दिखाई होती है और उसकी गोद में एक बच्चे को भी रखा जाता है। मुसलमानों की शादी के साथ या उसके बाद में गौने की रस्म की जाती है।

जहां हिन्दू और मुसलमानों की विवाह की रस्मों में कुछ बाह्य समानताएं हैं वहां मौलिक भेद भी है। जैसा कि हम जिक्र कर चुके हैं कि हिन्दुओं में विवाह एक अविच्छिन्न बंधन है, मुसलमानों में यह एक ठेका या समझौता है, जिसे समाप्त किया जा सकता है। मुस्लिम कानून तलाक की इजाजत देता है, जब कि वर्तमान हिन्दू धर्म इसके विरुद्ध है। फिर भी जब कि इस्लाम के कानून में पर्याप्त कठोरता निश्चितता और स्थायित्व है, हिन्दुओं में ऐसा कम है। किसी समय हिंदू समाज में विशेष अवस्थाओं में तलाक की अनुमति थी। मध्यकाल में उसे बन्द कर दिया गया। हाल के विशेष विवाह कानून और हिन्दू विवाह कानून ने इस दिशा में महत्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित किये हैं। अतः इनका संक्षिप्त परिचय भी आवश्यक है।

नए विवाह कानून

पिछले दो वर्षों में भारतीय समाज की विवाह-पद्धति में मौलिक परिवर्तन करने वाले दो महत्वपूर्ण कानून पास हुए हैं (१) १९५४ का विशेष विवाह कानून, (२) १९५५ का हिन्दू विवाह कानून।

१९५४ का विशेष विवाह कानून यद्यपि यह १८७२ के विशेष विवाह कानून का संशोधित रूप है किन्तु इसके कई संशोधन सर्वथा नवीन और क्रान्तिकारी हैं।

विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच विवाह और तलाक की व्यवस्था इस कानून का उद्देश्य हिन्दू-मुसलमान ईसाई आदि विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच विवाह की व्यवस्था करना है। इसकी मुख्य विशेषता तलाक की सुविधा तथा इस कानून के बनने से पहले और पीछे होने वाले विवाहों को इसके अनुसार रजिस्ट्री कराकर तलाक पाने की सुविधा देना है। किसी पक्ष के व्यभिचारी होने, तीन वर्ष तक अकारण परित्याग करने, सात वर्ष या इससे अधिक अवधि का कारावास पाने, क्रूरता, कम-से-कम तीन वर्ष के असाध्य पागलपन दूसरे को छूत से लगने वाली यौन व्याधि अथवा कुष्ठ से पीड़ित होने, सात वर्ष तक कोई सूचना न मिलने, कानूनी पार्थक्य की आज्ञा के बाद दो वर्ष तक सहवास न करने, दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति की आज्ञा के बाद दो वर्ष तक इस अवस्था की अवहेलना करने तथा पति के बलात्कारादि जघन्य अपराधों का अपराधी होने पर दूसरा पक्ष अदालत से तलाक प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त इस कानून की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था पारस्परिक सहमति द्वारा तलाक की है।

तलाक की शर्तें इसके लिए निम्न शर्तें आवश्यक हैं तलाक का आवेदन पत्र दोनो पक्षो द्वारा दिया जाना चाहिए, इसमें तीन कारणो का निर्देश होना चाहिए (क) वे एक साल या इससे अधिक समय से पृथक् रह रहे ह, (ख) वे इकट्ठा रहन में असमर्थ हैं (ग) उन्होंने विवाह विच्छेद करने के लिए आपस में समझौता कर लिया हैं। इस आवेदन पत्र देने के एक वष बाद भी यदि दोनो पक्ष अदालत स सम्ब ध विच्छेद चाहते हैं और अपना तलाक का आवेदन पत्र नही लौटाते तो उनका तलाक अदालत अपनी जाच के बाद स्वीकृत कर सकती ह।

तलाक की इन व्यवस्थाओ के करते हुए भी इसका दुरुपयोग रोकन तथा विवाह सस्था को सुरक्षित रखने की दृष्टि से यह विधान किया गया है कि विवाह के बाद पहले तीन वर्ष के भीतर तलाक का कोई आवेदन पत्र नही दिया जा सकता और तलाक पान के एक वष बाद तक पुनर्विवाह नहीं हो सकता। इन प्रतिबन्धो के कारण पारस्परिक सहमति से तलाक प्राप्त करने वाले पति पत्नी भी पाच वष से पहले दूसरा विवाह नही कर सकते।

१९५५ का हिन्दू विवाह कानून व गोत्र जाति और सपिण्डता की शर्तों में ढिलाई इसके अनुसार हिन्दू विवाह में गोत्र के नियम की पाबन्दी या जाति के बन्धन का पालन आवश्यक नहीं रहा। सपिण्डता की नई व्याख्या के अनुसार सपिण्ड सबन्धियो की सख्या कम कर दी गई ह।

एक विवाह और तलाक की व्यवस्था बहु विवाह को निषिद्ध ठहराते हुए एक विवाह का नियम बनाया गया है। इस कानून द्वारा पहली बार हिन्दू विवाह में तलाक की व्यवस्था की गई ह। निम्न नौ कारणो के आधार पर पति या पत्नी तलाक के लिए आवेदनपत्र दे सकता है किसी पक्ष का व्यभिचारी होना, हिन्दू धम छोडकर अन्य धर्म ग्रहण करना, निरन्तर तीन वर्ष से असाध्य रूप से पागल, कोढ़ी या दूसरे के सम्पक द्वारा होने वाली असाध्य यौन व्याधि से पीड़ित होना, सन्यासी होना, सात वष से जीवित होने का समाचार न मिलना, कानूनी पार्थक्य की आज्ञा के बाद दो वष तक सहवास न करना, दाम्पत्य अधिकारो की पुन प्राप्ति के आदेश के बाद दो वष तक उसका पालन न करना।

तलाक की अवांछित वृद्धि को रोकने के लिए इस कानून में भी यह व्यवस्था है कि विवाह के पहले तीन वर्षों में कोई आवेदन पत्र नही दिया जा सकता और तलाक का आवेदन पत्र स्वीकृत होने के एक वर्ष के भीतर नया विवाह नही किया जा सकता। हिन्दू विवाह कानून में पारस्परिक सहमति द्वारा तलाक की व्यवस्था नही रखी गई। इस कानून का भी दुरुपयोग होने की सम्भावना बहुत कम है क्योंकि तलाक की शर्तें काफी कड़ी ह और विवाह करने के लिए तलाक पाने वाले व्यक्तियो को कम से कम पांच वष की दीर्घ प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

७

हिन्दू और मुस्लिम संस्कार

संसार के सभी उन्नत और अनुन्नत समुदायों में व्यक्ति के जीवन के कुछ अवसरों और घटनाओं को बहुत महत्त्वपूर्ण पवित्र या रहस्यपूर्ण माना जाता है और उस समय विशेष विधि विधान और कर्मकाण्ड की व्यवस्था होती है। गर्भाधान, जन्म युवावस्था का आगमन, विवाह मृत्यु ऐसी ही महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। हिन्दुओं में यह संस्कारों के रूप में विकसित हुए हैं। सामाजिक जीवन पर धर्म की गहरी छाप होने के कारण, उन संस्कारों का धार्मिक महत्त्व है। ईसाइयों का बपतिस्मा, मुसलमानों का खतना ऐसे ही संस्कार कहे जा सकते हैं। आगे हम कुछ संक्षेप में कुछ प्रमुख हिन्दू और मुस्लिम संस्कारों का विवरण दे रहे हैं

हिन्दू संस्कार

सामान्यतः हिन्दू शास्त्रों के अनुसार हिन्दुओं के दस मुख्य संस्कार गिनाए गए हैं। उनकी संख्या के बारे में विभिन्न शास्त्रकार एक मत नहीं हैं। गौतम, अंगिरस और आश्वलायन जैसे अधिकारियों में उस विषय पर मतभेद है। पर दस प्रमुख संस्कारों को सभी मानते हैं। हिन्दुओं में विवाह, अर्थात् परिवार का निर्माण एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। अतः यह संस्कार विवाह से शुरू होते हैं और विवाह में ही समाप्त होते हैं। इस प्रकार विवाह, गर्भाधान, सीमन्तोन्नयन, पुंसवन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूडाकर्म, निष्क्रमण, उपनयन और समावर्तन दस प्रधान संस्कार हैं। हिन्दुओं का विश्वास है कि इन संस्कारों के करने से शरीर शुद्ध होता है और इस लोक के पाप दूर होते हैं और परलोक में सुख की प्राप्ति होती है

१ विवाह विवाह संस्कार का वर्णन हम पीछे कर चुके हैं अतः उसे दोहराने की जरूरत नहीं है। कन्यादान, सप्तपदी और शिलारोहण इसके मुख्य अंग हैं। इसमें सन्तानोत्पत्ति की इच्छा को लेकर आजन्म एक-दूसरे के प्रति निष्ठावान होने का निश्चय लेकर विवाह के पवित्र बन्धन में बंधते हैं।

२ गर्भाधान जैसा कि नाम से प्रकट है, इस संस्कार का उद्देश्य स्त्री में गर्भ की स्थापना है। ऐसा विश्वास है कि विवाह के एकदम पश्चात् पति-पत्नी का सम्भोग ठीक नहीं है। यदि पति सम्भोग करना चाहता है, तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह उससे पहले उचित धार्मिक कृत्य सम्पन्न करे। सम्भोग से चार दिन पहले एक बलि देने का विधान है। इस बलि को कूष्माण्डिका कहते हैं। इसके अन्त

में पतिपत्नी के लिए प्राथना करता है कि ईश्वर उसे गभवती होने की क्षमता प्रदान करे और उसे अच्छी सतान प्रदान करे। निश्चित रात्रि को वह शय्या के बीच में पडी हुई उदम्बरा वृक्ष की लकडी को उठाता है, और फिर अभ्यान्द नामक पौधे या घास के रस को अपनी पत्नी पर छिडकता है। शायद उनका विश्वास था कि इसमे सभोग की इच्छा बढ़ती है और उसका कोई और गुण भी है। इसके बाद पति प नी सभोग करते है।

३ पु सवन पु सवन का शाब्दिक अथ पुत्र की कामना है। यह सस्कार गर्भाधान होने के तीसरे और चौथे महीने के बाद में सम्पन्न किया जाता है। इसमें निश्चित दिन पर होम किया जाता है। माता को फूल की माला पहनाई जाती ह और उसकी गोद में कछुए की खाल रखी जाती ह। इसका कुछ जादू का असर समझा जाता है। माता को दही का सेवन कराया जाता है और नाक से पानी पिलाया जाता है। पति उसके पेट को छूता ह। इसके अलावा पति-पत्नी के हाथ में जौ की एक बाली रखता है और उसे छूकर कहता है कि यह पुरुष लिंग है, यह उसके अण्डकोष हैं इत्यादि जिससे कि माता के मन में सदा पुत्र का ही चित्र बना रह।

४ सीमतोन्नयन इसका शाब्दिक अथ माता के बालो को ऊपर करना है। वास्तव में यह पत्नी के गर्भवती होने की सावजनिक और औपचारिक सूचना ह। इस सस्कार का मुख्य उद्देश्य गभवती स्त्री की इच्छाओ की पूर्ति ह। यह सस्कार गर्भावस्था के पाचवें या छठे महीने में किया जाता ह। माता के सिर के बालो की माग निकालने के अतिरिक्त इसमें उसे सजाया जाता है, उसके गले में उदुम्बरा पुष्प की माला पहनाई जाती है, इच्छित खाने के पदाथ दिये जाते ह और गाना-बजाना सुनाया जाता ह।

५ जातकम यह सस्कार बच्चा पैदा होने पर किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य नवागत शिशु का अभिनन्दन, पिता के व्यक्तिगत प्रभाव का उस पर स्थानातरण उसको एक गुप्त नाम देना, नजर स रक्षा करना और उसके जीवन और स्वास्थ्य के लिए कामना है। प्रारम्भिक विधि की समाप्ति पर पिता बच्चे के शरीर को छूता है, दुर्भाग्य से उसकी रक्षा करने के लिए उसे सू घता है और उसकी बुद्धि की वृद्धि के लिए उसके ऊपर सास छोडता तथा उसकी समृद्धि के लिए प्रार्थना करता ह। नजर से बचाने लिए बच्चे को स्नान कराया जाता ह और उसके हाथ में एक सोने का तार बाधा जाता ह। इसके पीछे यह जादुई भावना छिपी हो सकती ह कि बच्चा सोने-जसा ठोस और चमकीला हो। अत में पिता बच्चे के सिर के ऊपर एक पानी का घडा पकडता ह और माता और जमीन की ओर मु ह करके फुसफुसाता है कि कुदृष्टि, दुशमन और भूत प्रेतो स उसकी रक्षा करें। इसके

बाद माता बच्चे को शहद, मक्खन खिलाती है और स्तन पान कराती है। इस सम्बन्ध में यह दृष्टव्य है कि बच्चे को प्यारा नाम देने की प्रथा अभी भी जारी है पर पहले जमाने में यह नाम केवल माता पिता ही तक सीमित रहता था और बाहर के लोगों से छिपाकर रखा जाता है।

६ निष्क्रमण इसका अर्थ बच्चे को घर से बाहर लाना है। जन्म के तीसरे या चौथे महीने में होम करने के बाद बच्चे को चांद और सूरज की रोशनी दिखाने के लिए बाहर लाया जाता है ताकि वह इनका अभ्यस्त हो सके। इसमें चांद और सूरज से यह प्रार्थना की जाती है कि वह बच्चे की दृष्टि को ठीक रखें।

७ अन्नप्राशन बच्चे के लगभग छ या आठ महीने का होने पर, जब कि उसके दांत निकल आयें अन्नप्राशन का आयोजन किया जाता है। इसमें होम और पूर्वजों की पूजा करने के पश्चात् दही शहद, मक्खन, मछली और मांस का पका हुआ भोजन पहली बार बच्चे को खिलाया जाता है।

८ चूड़ा कर्म इस संस्कार को मुंडन भी कहते हैं। इसका उद्देश्य बच्चे के मस्तिष्क की रक्षा और वृद्धि है। इसमें पहली बार बच्चे के सिर के बाल उतारे जाते हैं पर एक चोटी छोड़ दी जाती है। इसमें पहले उसके सिर को गुनगुने पानी से धोया जाता है मक्खन मला जाता है फिर चुभने वाली कुशा घास बालों पर रखी जाती है और अंत में उस्तरे से बाल उतार दिये जाते हैं। बाल में यह बाल गोबर में दबा दिए जाते हैं। बहुत-से लोग मुण्डन कराने के लिए गंगा के किसी तीर्थ पर जाते हैं, वह इन बालों को गंगा में बहा देते हैं।

९ उपनयन उपनयन का अर्थ बच्चे के हाथ को गुरु के हाथ में देना है। पांच या सात साल की अवस्था में पिता बच्चे को यज्ञोपवीत पहनाता है और वस्त्र दंड और मेखला प्रदान करता है। संस्कार के समय बच्चा दोनों हाथ मिलाकर चुल्लू बनाकर उसमें पानी भरता है और इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट करता है, अपनी दृढ़ता प्रदर्शित करने के लिए पत्थर पर पैर रखता है, बुद्धि की शुद्धि के लिए दही का सेवन करता है। उसके बाद पिता उसका हाथ गुरु के हाथ में दे देता है और अंत में गुरु उसे स्वीकार करता है। इस प्रकार बच्चा द्विजत्व को प्राप्त करता है। उपनयन संस्कार बच्चे के लिए शिक्षा के द्वार खोलता है। केवल उच्च वर्णों को ही इसका अधिकार है।

१० समावर्तन गुरुकुल की शिक्षा समाप्त होने पर यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। समावर्तन का अर्थ है घर लौटना। इसमें ब्रह्मचारी अपनी शिक्षा समाप्त करके घर लौटता था। यह आजकल के दीक्षांत का पुराना रूप कहा जा सकता है। इसकी मुख्य रस्म केवल स्नान होती थी।

व्यावहारिक रूप ऊपर हमने संस्कारों के शास्त्रीय रूप का वर्णन किया है

जो कि शायद आज से दो हजार साल पहले प्रचलित रहा हो। इस दीघ काल में उसमें अनेक सशोधन और परिवतन हो गये हैं। कई सस्कार तो प्राय छूट ही गये है, जैसे कि गर्भाधान, पु सवन, सीमतोनयन, समावतन आदि, और कइयो का रूप आश्चयजनक रूप से बदल गया है। इस परिवर्तित व्यावहारिक रूप का अध्ययन समाजशास्त्रीय दृष्टि मे महत्वपूण और मनोरजक ह।

मुस्लिम सस्कार

हिन्दुओ की तरह मुसल्मानो में भी कुछ महत्वपूर्ण सस्कार ह यद्यपि मुसलमान उन्हें सस्कार नही कहते। तुलनात्मक दष्टि से उनका परिचय भी उपयोगी होगा। मुसलमानो के छ प्रमुख सस्कार कहे जा सकते ह। वह हैं गोद भरना, अजान, अकीका खतना बिसमिल्ला और निकाह।

१ निकाह निकाह यानी विवाह सस्कार का जिक्र हम पीछे कर चुके हैं। किसी भी हिन्दू की तरह एक मुसलमान के जीवन में यह एक महत्वपूण घटना है। यह व्यक्ति को सवथा एक नये जीवन में प्रवेश कराता है।

२ गोद भरना स्त्री के गर्भवती होने क पाचवें-सातवें महीने में उसकी गोद में सात किस्म के मेवे, गभवती स्त्रियो के लिए बनाई गई गोंद इत्यादि की विशेष पजीरी और गुलगुले रखते ह। पास में हिफाजत के लिए तलवार या छुरी भी रख देते हैं। जिस स्त्री का पहला बच्चा मर जाता ह वह यह सस्कार नही मनाती। गोद भरने का यह सस्कार समतोन्नयन से मिलता-जुलता ह।

३ अजान-तकबीर बच्चा पदा होने के बाद मौल्वी को बुलाया जाता ह, वह उसके दाहिने कान म अजान और बायें कान में तकबीर पढ़ता ह। एसा माना जाता है कि इससे वह ओजस्वी बनता ह और उसकी रक्षा होती ह।

४ अकीका जन्म के सात दिन बाद बच्चे के सिर के बाल उतारे जाते हैं। बालो के वजन की चादी तोलकर गरीबो में तकसीम कर दी जाती ह। लडके के जन्म पर दो और लडकी के जन्म पर एक बकरे या मेंढे की कुरबानी दी जाती ह। यह सस्कार हिन्दुओं के चूडाकम से मिलता-जुलता ह।

५ खतना जन्म के तीसरे दिन से लेकर बारह साल तक लडके का खतना किसी भी समय किया जा सकता है। खतना मुसल्मान बनने की निशानी समझी जाती ह।

६ बिसमिल्ला जब बच्चा चार साल चार महीने चार दिन का हो जाता है उस दिन उसे अच्छे कपडे पहनाकर हाथ में कलम तख्ती देकर मदरसे में कुरान शरीफ पढने बैठाते ह। उस दिन से वह शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश करता है। यह सस्कार हिन्दुओं के उपनयन सस्कार के समकक्ष कहा जा सकता ह।

सहायक शब्द-कोष

Accommodation	समवस्थापन
Acculturation	पर संस्कृति-ग्रहण
Adaptation	अनुकूलन
Adjustment	समीकरण
Adrenal Gland	अधिवृक्क-ग्रन्थि
Affective	रागात्मक
Aggregation	राशीकरण
Amphibian	उभयचर
Anatomy	शरीरशास्त्र
Animism	जडपूजा, जीववाद
Anthropoid	मानवसम
Anti social Individuals	समाजविरोधी व्यक्ति
Arbitration	पचनिणय
Archeozoic	आदिजीवीय
Artificial Selection	कृत्रिम चुनाव
Assault	आक्रमण
Assimilation	सात्मीकरण
Association	समिति
Attributes	गुण
Aurignacian Culture	परवर्ती संस्कृति
Behaviour	व्यवहार
Behaviour Mechanics	व्यवहार यन्त्र व्यवहार प्रक्रियायें
Bimodal Curve	द्विविध वक्ररेखा
Biological Nature	प्राणिक प्रकृति
Birth Rate	जन्म-दर
Blood Pressure	रक्तचाप
Bushman	झाडवासी
Business Cycle	व्यवसाय चक्र
Calendar	पचाग
Capitalism	पूजीवाद

Environment	वातावरण
Eocene	आदिनूतन
Ethnocentricism	जात्याभिमान जाति अहंकार
Ethos	विशेषताएं
Eugenics	सुप्रजननशास्त्र
Evolution	विकासवाद
Exogamy	बहिर्विवाह
Experience	अनुभव
Exponential Principle	व्याख्यात्मक सिद्धान्त
Extroversion	बहिर्मुखता
Family	परिवार
Farm population	कृषि जनसंख्या
Fascism	फासिस्टवाद
Feeble minded	मन्दधी
Feral Man	विजनपालित मनुष्य
Feudalism	सामन्तवाद
Folkways	जनरीति
Genes	वाहकाणु
Genotypes	प्रजननरूप
Geography	भूगोल
Gift	उपहार
Glandular system	ग्रन्थि संस्थान
Gonad Gland	प्रजनन ग्रन्थि
Gossip	गपशप चर्चा
Government	सरकार
Group Habits	समूह स्वभाव
Group Interaction	समूह अन्तःक्रिया
Group Life	समूह जीवन
Group Marriage	समूह विवाह
Growth	वृद्धि
Habit	स्वभाव
Handicrafts	दस्तकारी
Heredity	आनुवंशिकता

Heritage	विरासत
Holocene	सवनूतन
Homo Sapiens	मेधावी मानव
Hormones	अन्त स्राव
Hospitality	आतिथ्य
Hypnosis	सम्मोहन
Hysteria	उन्माद
Ideas	विचार
Identification	एकरूपता
Ideologies	विचारधाराए
Imitation	अनुकरण
Immigration	आवास
Inbreeding	अन्तजनन
Individual	व्यक्ति
Industrial Revolution	औद्योगिक क्रान्ति
Inferiority Feeling	हीन भावना
In Group	अन्त समूह
Inheritance of acquired characteristics	अर्जित गुणों का वशागम
Inhibition of Self	आत्म निरोध
Inorganic	अनैन्द्रियिक
Insanity	पागलपन
Instinctive Behaviour	सहज व्यवहार
Instincts	सहजप्रवृत्ति
Institutions	सस्थाए
Intelligence test	बुद्धि परीक्षा
Intermixture	अन्त मिश्रण
Introversion	अन्तमु खता
Invention	आविष्कार
Isolation	पार्थक्य पृथक्करण
Joint Stock Company	सयुक्तपू जी की कम्पनी
Kinship	रक्तसम्बन्ध, बन्धुता, साकुल्य
Labour	श्रम

Psychosis	चित्त विकृति
Public	जनता
Opinion	जनमत
Relations	सार्वजनिक सम्बन्ध
Utility	सर्वजनोपयोगी उद्योग
Punctuality	समयपालन
Race	नस्ल
Rationalisation	युक्तीकरण
Rebelliousness	विद्रोह वृत्ति
Reflex Arc	उत्क्षेप चाप
Reform	सुधार
Regions	प्रदेश
Relief Families	दानोपजीवी परिवार
Religion	धर्म
Repression	दमन
Response	प्रत्युत्तर
Role	भूमिका
Secondary Group	माध्यमिक समूह
Secularisation	ऐहिकीकरण
Sex	काम, लिंग
Shaman	शामन
Share holder	हिस्सेदार
Slums	गन्दी बस्तियां, चाल
Social Class	सामाजिक श्रेणी या वर्ग
Control	नियन्त्रण
Distance	दूरी
Heritage	विरासत
Institutions	संस्थाएं
Interactions	अन्तर्क्रियायें
Inventions	आविष्कार
Organisation	संगठन
Planning	आयोजन
Pressure	दबाव

Socinl Problem	सामाजिक समस्याएं
Processes	प्रक्रियाए
Status	पद, दर्जा
Socialisation	समाजीकरण
Socio ogy	समाजशास्त्र
Specialisation	विशेपीकरण
Species	जीव जाति
Speech	भाषण, बोला
Standard of living	रहन सहन का दर्जा
State	राज्य
Status	पद, दर्जा
Submission	आधीनता
Sub races	उप-नस्लें
Suffrage	मताधिकार
Suggestion	सुझाव, सकेत
Superiority Feeling	श्रेष्ठ भावना
Super Naturalism	अतीन्द्रियवाद
Super Organic	अधिजविक
Sympathy	सहानुभूति
Synthetic Materials	सयोगजन्य पदाय, मिश्रित पदाय
Taboo	टवू वर्जित निपद्ध
Technological Advance	यान्त्रिक उन्नति
Technology	यत्रशास्त्र
Thyroid	चुल्लिका ग्रन्थि
Thyroxin	चुल्लिका स्राव
Totalitarianism	समग्रशक्तिवाद सर्वसर्वावाद
Toleration	सहिष्णुता
Tools	औजार
Totem	टोटम गणचिन्ह
Trade	व्यापार
Transportation	यातायात, परिवहन
Twins	जुडवा
Unemployment	बेकारी

Value	मूल्य, मान्यता
Variability	अन्यथाकरण, विपयय
Vertebrate	पृष्ठवंशी
Vested Interests	निहित स्वार्थ

सहायक ग्रन्थ सूची

सामान्य

Bennet J W and Tumin M. M Social Life Structure an d Function (1948)
Boas F ed General Anthropology (1948)
Bogardus E S Sociology 3rd ed (1949)
Cuber I F Sociology 2nd ed (1951)
Davis, K Human Society (1949)
Dawson C A and Getty W E An Introduction to Sociology 3rd ed (1948)
Dube S C Anthropology (1952)
Elridge S and Associates Fundamentals of Sociology A Situational Analysis (1950)
Gillin J L and Gillin J P Cultural Sociology (1948)
Gurvitch G and Moore W E ed Twentieth Century Sociology (1945)
Hiller E T Social Relations and Structures A Study in Principles of Sociology (1947)
Herskovits M I Man and His Works (1047)
Hoebel A E Man in the Primitive World (1949)
Jones M E *Basic Sociological Principles (1049)*
Kroeber A L ed Anthropology To day (1954)
Landis P H Man in Environment An Introduction to Sociology (1949)
Linton R The Study of Man, An Introduction (1936)
LaPiere R T Sociology (1946)
Levy M The Structure of Society (1952)
McCormick T C Sociology An Introduction to the Study of Social Relations (1950)
MacIver R M and Page C H Society An Introductory Analysis (1949)
Martindale Don and Monachesi E. D Elements of Sociology (1951)
Murray R W Sociology for a Democratic Society (1951)
Odum H W Understanding Society The Principles of Dynamic Sociology (1947)
Ogburn W F Nimkoff M F Sociology 2nd ed (1950)
Pareto V Man and Society Tr (1935)
Parsons T The Social Action (1937)
Parsons T Social System (1942)
Rumney J and Mair J The Science of Society 2nd ed. (1953)
Sutherland R L and Woodward J L Introductory Sociology 3rd ed (1948)
Sorokin P Contemporary Sociological Theories (1928)
Sorokin P Society Culture and Personality (1947)
Taimasheff N S and Facey P W Sociology An Introduction to Sociological Analysis (1949)

Wilson L and Kolb W L Sociological Analysis An Introductory Text and Case Book (1949)
Young K. Sociology A study of Society and Culture 2nd ed (1949)
राजेश्वरप्रसाद अगल समाजशास्त्र (१९५४)
कलासनाथ शर्मा, समाजशास्त्र के मूल तत्व (१९५५)
जाफर हसन इस्नदायी समाजियात (उर्दू)
, हिन्दुस्तानी समाजियात
मस्लेहुद्दीन सिद्दीकी, समाजियात

भारतीय समाज पर

Acharya P K Indian Culture and Civilization 2nd ed (19..
Blunt E A H Caste System of Northern India (1931)
Chauhan B R Recent Social Trends Among Depressed Classe in Rajsthan Paper submitted to I S C 1955
Crooke W Tribes and Castes of N W Provinces and Oudh (1896)
Dube S C Indian Village (1955)
Dutt N K. Origin and Growth of Caste in India (1931)
Hutton J H Castes in India (1940)
Ghurey G S Caste and Race in India (1932)
Guha B S Racial Elements in the Indian Population (1944)
Karve I Kinship Organisation in India (19 3)
Kapadia K M Marriage and Family in India (1953)
Mulla, D F Principles of Mohamedan Law 14th ed (1955)
Majumdar D N Races and Cultures of India (1944)
Marriot M. Village India (1955)
Mukherji, D P Modern Indian Culture (1940)
Pannikar K M A Survey of Indian History (1950)
Prabhu P N, Hindu Social Organisation (1954)
Ramakrishna Centenary Volume Cultural Heritage of India 2nd ed (1954)
Sachchidananda Class and Caste in Tribal Bihar I S C 195
Srinivas M N Religion and Society Among the Coorgs o Malabar (19 -)
Srinivas M N Castes Can they Exist in India of Tomorrow, Economic Weekly Oct 15 1955
ed India s Villages (1955)
क्षितिमोहन सेन, भारतवर्ष में जातिभेद (१९४२)
हरिदत्त, हिन्दू परिवार मीमांसा (१९५४)
हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास (१९५६)
कलासनाथ शर्मा भारतीय समाज संस्कृति और संस्थाएं (१९५०)
अशरफअली थानवी, इस्लाहुर रसूम

SOCIOLOGY

B A EXAMINATION

University of Lucknow

Part I

Paper I

(1) *Elements of Sociology* Meaning of society the constitution of society language and society society as a structure society as a process

Scope of Sociology Sociology and the social sciences sociology and philosphy the methods of sociology The social and the natural order levels of the social order the country and the city the regional approach

(2) *Social Structure* Social action and social relationship major forms of social relationship communal and associative groups (family caste and class) main forms of organised social action the economic technic the legal political and the religious cultural organisation the principle of hierarchy religion culture and tradition Institutions and customs Conventions and fashion Morals

Part I

Paper II

(1) *The Indian Social system* The basis and forms of social differentiation and social stratification The fourfold (Varna) hierarchy caste groupings The doctrine of *Karma* the notion of birth and rebirth Degrees of inter caste connubium and commensality some theories of the origin of caste system The functioning of caste system in India a historical survey and analysis The concept of *Dharma* Myths and symbols the hero types and the concept of man in India The individual and his duties the four *Ashramas* Joint family and the village community

The sacramental marriage other forms of marriage Endogamy Exogamy and Hypergamy *Anuloma* and *Pratiloma* marriage

Rites Major *Sanskaras* birth initiation marriage and the last rites Changes in the caste system the emergent pattern of stratification changes in the joint family marriage and the village community Influence of acculturation. Modern social legislation

Part II

Paper I

Social Change and Central Social Processes Social differentiation division of labour cooperation conflict and competition Social Stratification vertical and horizental mobility Propaganda and public opinion

Socialisation and continuity of social structure. Social learning and imitation Role of the communal groups, the state and the religious groups Role of education tradition customs conventions and fashions The role of language art and play

Social Change Broad patterns of social change technology and social change ideas and social change material condition and social change social progress

Part II

Paper II

Applied Sociology The nature and scope of Applied Sociology Research techniques

Social disorganisation in general nature and causes

Personality disorganisation The creative and pathological types diagnosis theories

Groups and Institutional disorganisation Maladjustments in family Marriage and village communities occupational maladjustment

Cultural disorganisation Symptoms effects of industrialization and technology culture contact culture conflict and the problem of cultural understanding in India

Social Pathology Crime delinquency poverty unemployment commercialised recreation white collar criminality

Social disorganisation in India Schemes of social reconstruction, labour welfare refugee rehabilitation community development child and maternity welfare schemes Educational reconstruction

University of Agra

Part I

Paper I—Elements of Sociology

Primary Concepts—Society Community Associations Institutions Nature and scope of Sociology and its relation to other Social Sciences Methods of Study Society and Environment Meaning of Environment Geographical conditions affecting the life of a Society contrast of Urban and Rural Life Heredity and Environment

Social evolution and change from primitive to civilised society Biological technological and cultural factors of social change Meaning of progress and civilisation

Paper II—Elements of Sociology

Social Organisation The family Horde Clan Tribe Caste Race and Nation Groups Associations and Institutions—Political Economic Religious and Cultural Social relations Social codes Religion and Morals Custom and Law Society and the Individual

Social Disorganisation and Poverty Unemployment and Crime Human nature and collective behaviour Instinct in society Role of suggestion imitation and sympathy in social life Characteristics of the crowd Crowd Behaviour

Part II

Paper I—Peoples and Institutions of India

Peoples and races of India Racial history and cultural stages in India Primitive life in India

Indian social customs and institutions Hindu social organisation the caste system and its different aspects its effect, untouchability the caste system to-day The joint family original advantages and present effects social and economic present day tendencies Hindu marriage its various forms Problems connected with the institution of marriage in India to day Divorce Child marriage its effects and present position Widow marriage Position of women in Indian society Movement of Reform Muslim Marriage Impact of Hindu and Muslim institutions Influence of the West on society Religion and society Village Panchyats

Paper II—Social Welfare and Security

Theories of Social Welfare and Re-construction Principles of State Action Social Legislation Social Reform Educational reforms with special reference to Social and Basic Education

The causes of Indian Poverty Poverty and Population Poblems Health and Nutrition in India

Rural Life in India Importance of the village its organisation Rural Re construction and Planning

The growth of Towns Urban Problems Industrialisation its Socio-economic effects Social Dis-organisation Crime in India Juvenile delinquency prohibition Labour conditions Problems of Labour Welfare State and labour in India Labour legislation Social Security

Socialisation and continuity of social structure Social learning and imitation. Role of the communal groups the state and the religious groups Role of education, tradition customs conventions and fashions The role of language art and play

Social Change Broad patterns of social change technology and social change ideas and social change material condition and social change social progress

Part II

Paper II

Applied Sociology The nature and scope of Applied Sociology Research techniques

Social disorganisation in general nature and causes

Personality disorganisation The creative and pathological types diagnosis, theories

Groups and Institutional disorganisation Maladjustments in family Marriage and village communities occupational maladjustment

Cultural disorganisation Symptoms effects of industrialization and technology culture contact culture conflict and the problem of cultural understanding in India

Social Pathology Crime delinquency poverty unemployment commercialised recreation white collar criminality

Social disorganisation in India Schemes of social reconstruction labour welfare refugee rehabilitation community development child and maternity welfare schemes Educational reconstruction

University of Agra

Part I

Paper I—Elements of Sociology

Primary Concepts—Society, Community Associations Institutions Nature and scope of Sociology and its relation to other Social Sciences Methods of Study Society and Environment Meaning of Environment Geographical conditions affecting the life of a Society contrast of Urban and Rural Life Heredity and Environment

Social evolution and change from primitive to civilised society Biological technological and cultural factors of social change Meaning of progress and civilisation

Paper II—Eléments of Sociology

Social Organisation The family Horde Clan Tribe Caste Race and Nation Groups Associations and Institutions—Political Economic Religious and Cultural Social relations Social codes Religion and Morals Custom and Law Society and the Individual

Social Disorganisation and Poverty, Unemployment and Crime Human nature and collective behaviour Instinct in society Role of suggestion imitation and sympathy in social life Characteristics of the crowd Crowd Behaviour

Part II

Paper I—Peoples and Institutions of India

Peoples and races of India Racial history and cultural stages in India Primitive life in India

Indian social customs and institutions Hindu social organisation the caste system and its different aspects its effect untouchability the caste system to-day The joint family original advantages and present effects social and economic present day tendencies Hindu marriage its various forms Problems connected with the institution of marriage in India to day Divorce Child marriage its effects and present position Widow marriage Position of women in Indian society Movement of Reform Muslim Marriage Impact of Hindu and Muslim institutions Influence of the West on society Religion and society Village Panchyats.

Paper II—Social Welfare and Security

Theories of Social Welfare and Re construction Principles of State Action Social Legislation Social Reform Educational reforms with special reference to Social and Basic Education

The causes of Indian Poverty Poverty and Population Poblems Health and Nutrition in India

Rural Life in India Importance of the village its organisation Rural Re construction and Planning

The growth of Towns Urban Problems Industrialisation its Socio economic effects Social Dis-organisation Crime in India Juvenile delinquency prohibition Labour conditions Problems of Labour Welfare State and labour in India Labour legislation Social Security

University of Rajputana

Paper I—Principles of Sociology

Nature scope and methods of sociology Primary concepts Society Community, association group interest attitude, their types Heredity and environment Socialization of the individual Social structure and social institutions, family class and caste their nature and functions The great associations—their nature and functions Rural and urban life Social control

Paper II—Social Anthropology

(*a*) Anthropology definition and scope origin of man in the east and the west Prehistoric cultures General characteristics of old Stone Age and New Stone Age Civilizations Race it meaning and reality Races of man

(*b*) Culture its meaning Inventions and diffusion Aspects of Culture

(*c*) Social Structure family, marriage Kin Clan Caste and other units of social organisation Primitive religion and magic Art mythology and oral literature Primitive law

(*d*) Anthropology and modern life

Application of anthropology to administrative and social problems (Candidates are expected to illustrate their answers with examples drawn from the Indian life and be familiar with the Indian Problems)

Paper III—Social Change

Mechanism of Social Change Ineraction accommodation competition, conflict *integration, evolutian revolution* progress Social disorganisation Poverty Crime Delinquency Disease Insecurity Class Conflict War Panel Reforms Labour Welfare Social Security Planning and Community Projects in India